सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय

२

(१८९६–१८९७)

THE GRIEVANCES

OF

THE BRITISH INDIANS

IN

SOUTH AFRICA.

AN APPEAL

TO

THE INDIAN PUBLIC.

SECOND EDITION—4,000 COPIES.

Madras:

PRINTED AT THE PRICE CURRENT PRESS,

161, POPHAM'S BROADWAY.

1896.

सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय

२

(१८९६–१८९७)

प्रकाशन विभाग

सूचना और प्रसारण मन्त्रालय

भारत सरकार

भूमिका

इस खण्डका सम्बन्ध गाधीजीके जीवनकी एक महत्त्वपूर्ण मंजिलसे है। उनके और दक्षिण आफ्रिकी सरकारके बीच भावी संघर्षके चिह्न १८९६ में ही प्रकट हो चुके थे; फलतः अब जो कागज-पत्र पाठकोंके सामने रखे जा रहे है, उनमें उन चिह्नोंकी झलक मिलेगी। गांधीजीने जब पहली बार लोकहितके लिए अपने प्राणोंको जोखिममें डाला था, उस प्रसंगकी परिस्थितियोंका लेखा भी इस खण्डमें उपलब्ध है।

गांधीजी १८९६ में स्वदेश लौटे थे। उस समय वे २६ वर्षके थे। दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंके साथ जो व्यवहार किया जा रहा था उसका परिचय भारतकी जनता और अधिकारियोंको देनेकी जिम्मेदारी उन्हें सौंपी गई थी। उन्होंने भारतमें राजनीतिक जीवनके मुख्य-मुख्य केन्द्रोंका दौरा किया, लोक-नेताओंसे मुलाकातें की और बड़ी-बड़ी सार्वजनिक सभाओंमें भाषण दिये। उक्त विषयपर कुछ पुस्तिकाएँ भी प्रकाशित कीं।

इनमें से एक पुस्तिका आम तौरपर *ग्रीन पैम्फलेट* ('हरी पुस्तिका') के नामसे प्रसिद्ध हुई थी। उसकी विषय-वस्तुका एक गलत समाचार दक्षिण आफ्रिकी पत्रोंमें प्रकाशित हुआ। भारत-स्थित एक पत्र-प्रतिनिधिने पुस्तिकाका और उसपर *पायोनियर* तथा *टाइम्स आफ़ इंडिया*की टिप्पणियोंका एक छोटा-सा सारांश तार द्वारा लंदन भेज दिया था। रायटरके लंदन-कार्यालयसे उस सारांशका भी सारांश, एक तीन पंक्तियोंका तार, दक्षिण आफ्रिका पहुँचा और उसने बड़ी-बड़ी घटनाओंका सूत्रपात कर दिया। गाधीजीने भारतमें जो-कुछ कहा था उसके भ्रामक समाचारसे डर्बनके नागरिक क्रुद्ध हो उठे। वर्षका अन्त होते-होते, और जब कि गांधीजीको दक्षिण आफ्रिका वापस लानेवाला जहाज सवारियाँ उतारनेके लिए इजाजतकी प्रतीक्षा कर रहा था, उनके विरुद्ध छिड़ा हुआ तीव्र आन्दोलन अपनी चरम सीमापर पहुँच गया। जनवरी १३, १८९७ की शामको जब वे डर्बनमें उतरे, भीड़के एक हिस्सेने उनपर आक्रमण करके लगभग उनकी हत्या ही कर डाली। यह उसी भीड़का हिस्सा था जो पहले डर्बनके जहाज-घाटपर एकत्र हुई थी। यदि पुलिस सुपरिंटेंडेंट और उसकी पत्नीने चतुराईसे काम न लिया होता तो गांधीजीके प्राणोंकी रक्षा न होती।

इस खण्डका आरम्भ *हरी पुस्तिका*से होता है। उसमें दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंके साथ किये जानेवाले व्यवहारका बड़ा मार्मिक चित्रण किया गया है। गांधीजीके शब्दोंमें, वहाँ "द्वेष-भावना कानूनके रूपमें मूर्त हो अुठी थी।" और कुछ स्थानोंमें तो "किसी भी प्रतिष्ठित भारतीयका रहना असम्भव कर दिया गया था।" *हरी पुस्तिका* एक प्रामाणिक पुस्तिका थी। उसमें उपर्युक्त स्थितिमें निहित प्रजातीय (रेशियल) और साम्राज्य-सम्बन्धी प्रश्नोंको स्पष्ट किया गया था। भारतीय मामलेको पेश करनेमें गांधीजीने सर्वथा सत्य ही कहनेकी बहुत सावधानी रखी थी। नेटालके भारतीयोंके साथ किये जानेवाले व्यवहारके बारेमें अपने विवरणका उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा है: "आगे दिये जानेवाले प्रत्येक विवरणका एक-एक शब्द रंच-मात्र सन्देहके भी परे सही सिद्ध किया जा सकता है।" भारतमें, उसके राजनीतिक इतिहासके इस कालमें, शायद इतनी खपत किसी भी सार्वजनिक प्रश्नके प्रचार-साहित्यकी नहीं हुई, जितनी कि इस पुस्तिकाकी हुई थी। मद्रासकी सभामें तथा अन्यत्र एकत्रित हुई जनताकी भारी माँग पूरी नहीं की जा सकी और गांधीजीने भारतसे विदा होते-होते शीघ्रतामे उसकी एक और आवृत्ति प्रकाशित की थी।

'प्रमाणपत्र'-रूपी छोटा-सा किन्तु ऐतिहासिक पत्र भी इस खण्डमें प्रकाशित किया जा रहा है। इसके द्वारा गांधीजीको दक्षिण आफ्रिकावासी देशबन्धुओंकी ओरसे पैरोकारी करनेका अधिकार प्राप्त हुआ था और इसे गांधीजीने *हरी पुस्तिका*के अन्तमें जोड़ दिया था। इसपर हस्ताक्षर करनेवालोंकी प्रातिनिधिक भूमिका उस एकताकी प्रतीक थी, जो दक्षिण आफ्रिकाके समस्त भारतीयोंमें — वे किसी भी धर्म अथवा स्थानके क्यों न हों — विद्यमान थी।

*हरी पुस्तिका*के बाद दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंकी कष्टगाथापर एक स्वतन्त्र और बिलकुल तथ्यात्मक "टिप्पणी" प्रकाशित हुई। उसके साथ विभिन्न अधिकारियोंको भेजे गये स्मरणपत्रों और प्रार्थनापत्रोंकी नकलें भी दी गई थीं। इस "टिप्पणी" में दक्षिण आफ्रिकाके प्रत्येक राज्यके भारतीयोंकी स्थितिका स्पष्ट वर्णन उपलब्ध है। गांधीजीने अपने पाँच मासके भारत-वासमें जो शिक्षणात्मक कार्य किया, उसकी पृष्ठभूमिका परिचय भी इससे पाठकोंको मिलता है। भविष्यके विद्यार्थियोंके लिए यह ब्रिटिश उपनिवेशके भारतीयोंकी असह्य स्थितिका विशद रूपसे चित्रण करती है। इसमें वर्णित परिस्थितियोंके ही विरुद्ध गांधीजीने लगभग बीस वर्ष तक एक सतत और

विषम संघर्षका नेतृत्व किया, और उस दौरानमें उन्होंने सत्याग्रह-रूपी महान् अस्त्रको गढ़ा।

लिखित शब्दों द्वारा भारतीय लोकमतको शिक्षित करनेके अपने आन्दोलनको गांधीजी सभाओंमें भाषण देकर पुष्ट करते थे। उन्होंने इसका आरम्भ बम्बईकी एक सभामें भाषण द्वारा किया। सभाके अध्यक्ष फीरोजशाह मेहता थे और उसमें नगरके प्रमुख व्यक्ति उपस्थित थे। यह पहला प्रसंग था, जब कि नौजवान गांधीजीने, जो अभी अपनी उम्रके तीसरे दशकमें ही थे, सीधे अपने देशभाइयों और राष्ट्रके नेताओंकी सभामें भाषण किया। भाषणका उपलब्ध अंश इस खण्डमें शामिल कर दिया गया है। उसमें उन्होंने उन समस्याओंकी रूपरेखा बताई थी, जिनका दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंको सामना करना पड़ रहा था। उन्होंने बताया था कि किस तरह यूरोपीय उपनिवेशियों और स्थानिक सरकारके विरोधका ज्वार उनके विरुद्ध बढ़ रहा है, और किस तरह दक्षिण आफ्रिकी विधानमण्डलों द्वारा बनाये गये एशियाई-विरोधी कानूनोंका परिणाम उनका राजनीतिक अधःपतन और आर्थिक विनाश होनेवाला है। उन्होंने चेतावनी दी थी कि भारतीय "सब ओरसे घिरे हुए हैं;" और भारतकी जनता, भारत-सरकार तथा साम्राज्यकी सरकारसे अपील की थी कि उनके हितोंका संरक्षण किया जाये।

भारतीयोंके साथ जो अपमानास्पद व्यवहार किया जाता था उसकी जानकारी दक्षिण भारतको देनेके लिए गांधीजी बम्बईसे मद्रास गये। दक्षिण भारतके तमिल-भाषी प्रदेशसे सर्वाधिक प्रवासी नेटाल गये थे। इसलिए, वहाँ जो-कुछ हो रहा था उससे मद्रासके नागरिकोंका गहरा सम्बन्ध था। इसका प्रमाण उस प्रातिनिधिक और तत्पर श्रोता-मण्डलीसे मिला, जिसने गांधीजीका भाषण सुननेके लिए उमड़कर पचैयप्पा भवनको ठसाठस भर दिया था। गांधीजीके मद्रास पहुँचनेसे कुछ ही पहले नेटालके एजेंट-जनरलने एक वक्तव्य निकाला था। वह उन बातोंके उत्तरमें था जो, बताया गया था, *हरी पुस्तिका*में गांधीजीने कही थीं। इसलिए, गांधीजीने एजेंट-जनरलके वक्तव्यका प्रतिवाद करनेके लिए मद्रासकी सभाके अवसरका उपयोग किया। उन्होंने अनेकानेक प्रमाण देकर अपने दावेको सिद्ध किया, जिससे उनका मद्रासका भाषण उनके भारत-यात्राके अन्य सब भाषणोंसे जोरदार बन गया। उस भाषणकी पूरी प्रति इस खण्डमें प्रकाशित की गई है।

एक असाधारण स्वरूपकी वस्तु भी पाठकोंके सामने रखी जा रही है—अपने कार्यके सम्बन्धमें भारतका दौरा करते हुए गाधीजीने जो खर्च किया था, उसका सविस्तर हिसाब। उससे भारतमें उनकी गतिविधि और प्रवृत्तियोंपर प्रकाश पड़ता है। संयोगवश वह रोचक आर्थिक आँकड़ों—उन्नीसवीं सदीके अन्तके भावों और मजदूरीके स्तरोंकी जानकारी भी देता है। किन्तु उनका मुख्य महत्त्व इस बातमें है कि उससे सार्वजनिक धनके तमाम खर्चोंका उचित हिसाब रखनेके बारेमें गाधीजीकी चिन्ताका परिचय मिलता है। पाठक देखेंगे कि उसमें आधा आना जैसी छोटी-छोटी रकमें भी शामिल हैं। चारित्र्यकी यह विशेषता, जो उस छोटी उम्रमें दिखलाई पड़ती है, जीवन-भर उनके सार्वजनिक धनके व्यवहारमें स्पष्ट रही।

गांधीजीके जहाजके डर्बन पहुँचनेपर उनके सामने आनेवाली विरोधी स्थिति, उनकी हत्याके प्रयत्नकी घटना और उनके इस निर्णयके परिणामस्वरूप कि, जिन लोगोंने उनपर आक्रमण किया था उनके खिलाफ कोई कार्रवाई न की जाये, अखबारों, नेटालकी सरकार और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी लंदन-स्थित ब्रिटिश समितिके नाम सन्देशोंका ताँता बँध गया। मुलाकातों, केबलों और पत्रों द्वारा दिये गये ये सन्देश पाठकोंका परिचय इस खण्डकी सबसे महत्त्वपूर्ण वस्तुसे कराते हैं, जो है—दक्षिण आफ्रिकावासी बत्तीस प्रमुख भारतीयोंके हस्ताक्षरसे तत्कालीन मुख्य उपनिवेश-मन्त्री श्री जोज़ेफ़ चेम्बरलेनको भेजा गया वृहत् प्रार्थनापत्र। उसमें बहुत विस्तारके साथ उन घटनाओंका वर्णन किया गया है, जिनसे नेटालमें भारतीय-विरोधी आन्दोलन छेड़ा गया और जिनके अन्तमें डर्बनके ब्रिटिश नागरिकोंने उनके विरुद्ध एक सार्वजनिक प्रदर्शनका संगठन किया। कुछ लोगोंका प्रस्ताव था कि गांधीजी तथा अन्य भारतीयोंके उतरनेको "पूरी तरहसे रोक देनेके लिए" हम लोग मनुष्योंकी एक दीवार बना लें, जो "एकके-पीछे-एक तीन या चार कतारोंकी हो और सब लोग एक-दूसरेके हाथसे हाथ व भुजासे भुजा बाँधे हुए हों।" प्रार्थनापत्रमें घर जाते हुए गांधीजीपर किये गये आक्रमणका वर्णन किया गया है, जिसमें उन्हें "ठोकरें मारी गई थीं, चाबुकें लगाई गई थीं और उनपर सड़ी मछलियाँ तथा अन्य वस्तुएँ फेंकी गई थीं, जिनसे उनकी आँखमें चोट आई, कान कट गया और पगड़ी सिरसे अलग जा गिरी।" उत्तेजित प्रदर्शनकारियोंके रोषके, सरकारका प्रतिनिधित्व करनेवाले प्रमुख अधिकारियोंके रुखके और अल्प संख्यामें होते हुए भी ब्रिटिश लोकमतके अधिक

जिम्मेदार वर्गने जातीय असहिष्णुता तथा अन्यायके ज्वारके विरुद्ध जो दृढ़ रुख अख्तियार किया उसके बारेमें स्थानीय पत्रोंसे काफी सामग्री उसमें उद्धृत की गई है। प्रार्थनापत्रका अन्त जोरदार दलीलोंसे होता है कि नेटालवासी भारतीयोंके प्रति सरकारी नीतिपर फिरसे बुनियादी रूपमें विचार किया जाये, ब्रिटिश साम्राज्यमें भारतीयोंका दरजा क्या है इस सम्बन्धमें नई घोषणा की जाये और नेटाल-सरकार द्वारा प्रस्तावित भारतीय-विरोधी कानूनोंको वापस लिया जाये।

भारतीयोंको दक्षिण आफ्रिकामें जो-कुछ भोगना पड़ रहा था उससे ब्रिटिश न्यायके प्रति गांधीजीकी आस्थापर अबतक आँच नहीं आई थी। इसलिए रानी विक्टोरियाके प्रति भारतीयोंके हृदयोंमें निष्ठा और भक्तिकी जो भावना थी उसे व्यक्त करनेके लिए गांधीजीने रानीकी हीरक-जयन्तीके अवसरका उपयोग किया। सम्राज्ञीके नाम चाँदीकी ढालपर खुदवाये गये अभिनन्दनपत्र और उसपर गाधीजी-सहित इक्कीस व्यक्तियोंके हस्ताक्षरों और अन्य सम्बद्ध कागज-पत्रोंसे मालूम होता है कि शुरू-शुरूके उस कालमें ब्रिटिश साम्राज्यके प्रति गाधीजीका रुख क्या था।

सन् १८९६-७ के भीषण भारतीय अकालके समाचारों और सहायता-निधिके संगठनके कारण गांधीजीको अपनी प्रवृत्तियोंकी दिशा अस्थायी रूपसे बदल कर उस मानवधर्मकी पुकारको सार्थक करनेमें लग जाना पड़ा। वे अपनी स्वाभाविक निष्ठासे चन्दा जुटानेके कार्यमें डूब गये। उन्होंने नेटाल और ट्रान्सवालके ब्रिटिश नागरिकोंके और धर्मोपदेशकोंके नाम जो अपीलें निकाली थीं, और सारे दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय समाजको जो परिपत्र भेजा था, वे सब भी इस खण्डमें दी हुई अन्य सामग्रीमें सम्मिलित हैं।

डर्बन बन्दरगाहपर गांधीजीके विरुद्ध प्रदर्शन संगठित करनेवालोंको वचन दिया गया था कि सरकार भारतीयोंके नेटालमें प्रवेश करने, व्यापार करने और बस जानेके विरुद्ध प्रतिबन्धात्मक कानून बनानेका काम उठायेगी। इस वचनका त्रिविध फल निकला — संक्रामक रोग सूतक विधेयक (क्वारंटीन बिल), व्यापार परवाना विधेयक (ट्रेड लाइसेंसेज़ बिल) और प्रवासी विधेयक (इमिग्रेशन बिल) के रूपमें। इन नये कानूनोंसे ब्रिटिश साम्राज्यके नागरिकोंके नाते भारतीयोंका प्रत्येक अधिकार खतरेमें पड़ गया। गांधीजीने विधेयकोंके विरुद्ध जोरदार आन्दोलन चलाया। जैसे-जैसे पाठक पुस्तकके

अन्तकी ओर बढ़ेंगे, उन्हें नेटाल विधानमण्डल और साम्राज्य-सरकारके नाम लिखे विभिन्न प्रार्थनापत्र और वे सामान्य तथा व्यक्तिगत पत्र दिखलाई पड़ते जायेंगे, जो गांधीजीने इन कानूनोंके सम्बन्धमें दादाभाई नौरोजी, विलियम वेडरबर्न और इंग्लैंडके अन्य लोकनायकोंको लिखे थे। वे सब दक्षिण आफ्रिका-वासी भारतीयोंकी स्थितिपर इस नये आक्रमणके जोरदार प्रतिरोधके बोलते हुए लेखे हैं।

आभार

इस खण्डकी सामग्रीके लिए हम निम्नलिखितके ऋणी हैं: गांधी स्मारक निधि, नेशनल आर्काइव्ज़ तथा अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीका पुस्तकालय, नई दिल्ली; नवजीवन ट्रस्ट तथा साबरमती आश्रम संरक्षण व स्मारक ट्रस्ट, अहमदाबाद; कलोनियल आफिस पुस्तकालय तथा इंडिया आफिस पुस्तकालय, लंदन; प्रिटोरिया तथा पीटरमैरित्सबर्ग आर्काइव्ज़, दक्षिण आफ्रिका; बम्बई, मद्रास तथा पश्चिमी बंगालकी सरकारें; श्री रुस्तमजी फर्दुनजी सोराबजी तलयारखाँ, बम्बई; भारत सेवक समिति, पूना; और समाचारपत्र: *बंगाली*, *इंग्लिशमैन*, *स्टेट्समैन*, *बाम्बे गज़ट*, *टाइम्स आफ़ इंडिया*, *हिन्दू* तथा *इंडिया*।

अनुसंधान और संदर्भकी सुविधाएँ देनेके लिए गुजरात विद्यापीठ ग्रंथालय तथा *गुजरात समाचार*-कार्यालय, अहमदाबाद; एशियाटिक पुस्तकालय व *बाम्बे क्रानिकल*, *मुम्बई समाचार* तथा *गुजराती* पत्रोंके कार्यालय, बम्बई; राष्ट्रीय पुस्तकालय तथा *अमृत बाजार पत्रिका*-कार्यालय, कलकत्ता; और ब्रिटिश म्यूज़ियम पुस्तकालय, लंदन भी हमारे धन्यवादके पात्र हैं।

पाठकोंको सूचना

इस खण्डमें संपूर्ण गांधी वाङ्मयके पहले खण्डका जो सन्दर्भ सूचित किया गया है, वह १५ अगस्त, १९५८ (२४ श्रावण, १८८०) को प्रकाशित संस्करणका है। जहाँ *आत्मकथा*का सन्दर्भ बताया गया है, वह गांधीजी-कृत मूल गुजराती पुस्तक *सत्यना प्रयोगो अथवा आत्मकथा*की नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद द्वारा १९५२ में प्रकाशित नौवीं आवृत्तिका है।

साधन-सूत्रके तौरपर बताई गई संख्याओंके साथ दिये *एस०* *एन०* संकेत का अर्थ है, साबरमती संग्रहालय, अहमदाबादमें उपलब्ध मूल कागज-पत्रोंकी क्रम-संख्या। इन कागज-पत्रोंकी फोटो-नकलें गांधी स्मारक संग्रहालय, नई दिल्लीमें सुरक्षित हैं। इसी प्रकार, *जी० एन०*का अर्थ है, वे मूल कागज-पत्र जो नेशनल आर्काइव्ज, नई दिल्लीमें उपलब्ध हैं। उनकी भी फोटो-नकलें, गांधी स्मारक संग्रहालय, नई दिल्लीमें सुरक्षित हैं। *सी० डब्ल्यू०* संकेत उन कागज-पत्रोंका है जिन्हें "सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय" (कलेक्टेड वर्क्स ऑफ़ महात्मा गांधी) के कार्यकर्ताओंने प्राप्त किया है। उनकी फोटो-नकलें नेशनल आर्काइव्जमें उपलब्ध हैं।

विषय-सूची

चित्र-सूची

१. दक्षिण आफ्रिकावासी ब्रिटिश भारतीयोंकी कष्ट-गाथा

भारतकी जनतासे अपील

गांधीजी घरेलू कारणोंवश जून ५, १८९६ को दक्षिण आफ्रिकासे भारतकी यात्राके लिए रवाना हुए थे। दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीय समाजके मुखियोंने उन्हें यह जिम्मेदारी सौंपी थी कि वे दक्षिण आफ्रिकी भारतीयोंकी कष्ट-गाथा भारतके अधिकारियों और जनताके सामने पेश करें। गांधीजीने अपने लगभग पाँच मासके भारतवासमें इस दिशामें जो सबसे पहली कार्रवाई की वह थी *ग्रीवैंसेज़ आफ द ब्रिटिश इंडियन्स इन साउथ आफ्रिका* (दक्षिण आफ्रिकावासी ब्रिटिश भारतीयोंकी कष्ट-गाथा) नामसे एक पुस्तिकाके प्रकाशनकी। यह पुस्तिका अपने आवरणके रंगके कारण बादमें *ग्रीन पैम्फ्लेट* (हरी पुस्तिका) के नामसे प्रसिद्ध हुई। इसकी माँग बहुत थी, और गांधीजीको शीघ्र ही इसका दूसरा संस्करण प्रकाशित करना पड़ा।

प्रस्तावना

मद्रासके पचैयप्पा-भवनकी सभामें इस पुस्तिकाकी प्रतियोंके लिए जो छीना-झपटी हुई उसके कारण इसका दूसरा संस्करण निकालना आवश्यक हो गया है। वहाँ जो दृश्य दिखाई दिया था उसे कभी भुलाया नहीं जा सकता।

पुस्तिकाकी उस माँगसे दो बातें सिद्ध हुईं—दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंके कष्टोंके प्रश्नका महत्त्व कितना है, और समुद्र-पार निवासी देश-भाइयोंकी भलाईमें भारतीय जनताने कितनी दिलचस्पी दिखाई है।

आशा है कि यह दूसरा संस्करण भी पहली आवृत्तिके समान ही शीघ्रतापूर्वक खप जायेगा, और यह सिद्ध हो जायेगा कि इस विषयमें जनताकी दिलचस्पी कायम है। कदाचित् दुखड़ोंका मुख्य इलाज प्रचार ही है, और यह पुस्तिका उस लक्ष्यकी पूर्तिका एक साधन है।

इसमें जो परिशिष्ट[1] जोड़ दिया गया है, वह प्रथम आवृत्तिमें नहीं था। नेटालके एजेंट-जनरलने रायटरके प्रतिनिधिको जो वक्तव्य दिया है उसके

१. पुस्तकमें पृथक् 'परिशिष्ट' के तौरपर कोई वस्तु जोड़ी नहीं गई थी। यह उल्लेख उस सामग्रीका है जो पृष्ठ ३६ पर "परन्तु, सज्जनो, आपको हाल ही में नेटालके एजेंट-जनरलने बताया है..." से शुरू होनेवाले अनुच्छेदसे आरम्भ होकर

उत्तरमें यह अंश मद्रासके भाषणमें पढ़कर सुनाया गया था। इस तरह यह मद्रासके भाषणका अंश है।

पुस्तिकामें नेटाल प्रवासी-कानून संशोधन-अधिनियमका जिक्र किया गया है। दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंके दुर्भाग्यसे उसे सम्राज्ञीकी स्वीकृति प्राप्त हो गई है। सादर निवेदन है कि इस प्रश्नका हमारे लोकनिष्ठ व्यक्तियोंको अधिकसे अधिक बारीकीके साथ अध्ययन करना चाहिए। और जबतक अधि-नियम रद न हो जाये या सरकारी सहायतासे नेटालको मजदूर भेजना स्थगित न कर दिया जाये, तबतक हमें शान्तिसे नहीं बैठना चाहिए। मद्रासकी सभाने एक प्रस्ताव स्वीकार किया है। उसमें अनुरोध किया गया है कि अगर उपर्युक्त अधिनियमको रद न कराया जा सके तो इस प्रकार मजदूर भेजना स्थगित कर दिया जाये।

कलकत्ता, १–११–१८९६ मो० क० गांधी

यह एक अपील है — दक्षिण आफ्रिकावासी एक लाख भारतीयोंकी ओरसे भारतकी जनताके नाम। उस देशमें सम्राज्ञीकी भारतीय प्रजाको जिन मुसी-बतोंमें जिन्दगी बसर करनी पड़ती है, उन सबकी जानकारी भारतकी जनताको दे देनेकी जिम्मेदारी वहाँके भारतीय समाजके प्रमुख सदस्योंने, प्रतिनिधियोंकी हैसियतसे, मुझे सौंपी है।[1]

दक्षिण आफ्रिका अपने-आपमें एक महाखण्ड है। वह अनेक राज्योंमें बँटा हुआ है। उनमें से नेटाल और केप आफ़ गुड होप, सम्राज्ञीके शासना-धीन उपनिवेश — जूलूलैंड, और दक्षिण आफ्रिकी गणराज्य या ट्रान्सवाल, आरेंज फ्री स्टेट और चार्टर्ड टेरिटरीज़में कम या ज्यादा संख्यामें भारतीय बसे हुए हैं। यूरोपीय और उन उपनिवेशोंके असली निवासी तो वहाँ हैं ही। पोर्तुगीज़ प्रदेशों, अर्थात् डेलागोआ-बे, बैरा और मोज़ाम्बिकमें भारतीयोंकी आबादी बहुत बड़ी है। परन्तु वहाँ भारतीयोंको सर्वसामान्य जनतासे अलग कोई शिकायतें नहीं हैं।

पृष्ठ ४४ पर "भारतीय समाजकी समृद्धिशीलता साबित करनेके लिए . . ." से शुरू होनेवाले अनुच्छेदमें समाप्त होती है (देखिए पादटिप्पणी, पृष्ठ ३६; और मद्रासका भाषण भी, पृष्ठ ११४–१२२)।

१. देखिए पृष्ठ ५८–५९।

नेटाल

भारतीय दृष्टिसे दक्षिण आफ्रिकाका सबसे महत्त्वपूर्ण प्रदेश नेटाल है। उसमें मूल निवासियोंकी संख्या लगभग चार लाख, यूरोपीयोंकी लगभग पचास हजार और भारतीयोंकी लगभग इक्कावन हजार है। भारतीयोंमें लगभग १६,००० इस समय गिरमिटिया हैं, लगभग ३०,००० ऐसे हैं, जो किसी समय गिरमिटिया थे और इकरारनामेसे मुक्त होनेके बाद स्वतंत्र रूपसे वहाँ बस गये हैं। लगभग ५,००० लोग व्यापारी समाजके हैं। व्यापारी समाजके लोग अपने खर्चेसे वहाँ आये थे। उनमें से कुछ अपने साथ पूँजी भी लाये थे। गिरमिटिया भारतीय मद्रास और कलकत्तेकी मजदूर जमातसे लाये गये हैं। उनकी संख्या लगभग बराबर है। मद्राससे आये हुए लोग साधारणतः तमिलभाषी हैं, कलकत्तेसे आये हुए हिन्दी बोलते हैं। इनमें ज्यादातर लोग हिन्दू हैं; परन्तु मुसलमानोंकी संख्या भी अच्छी-खासी है। बारीकीसे देखा जाये तो ये जाति-बन्धन नहीं मानते। इकरारनामेसे मुक्त हो जानेपर ये बागबानी या घूम-घूमकर सब्जियाँ बेचनेका रोजगार करते हैं और दो-तीन पौंड महीना कमा लेते हैं। कुछ लोग छोटी-मोटी दूकानें खोल लेते हैं। परन्तु दूकानदारी सचमुच तो उन पाँच हजार भारतीयोंके ही हाथमें है, जो मुख्यतः बम्बई प्रदेशके मुसलमान समाजसे आये हैं। इनमें से कुछका कारोबार अच्छा है। अनेक बड़े-बड़े भूस्वामी हैं, और दो तो अब जहाज-मालिक भी बन गये हैं। एकके पास भापसे चलनेवाली तेल-घानी भी है। ये लोग या तो सूरतके हैं, या बम्बईके आसपासके, या पोरबन्दरके। सूरतसे आये हुए अनेक व्यापारी अपने परिवारोंके साथ डर्बनमें बसे हैं। इनमें से ज्यादातर लोग अपनी भाषाएँ लिखने-पढ़नेका ज्ञान रखते हैं। यह ज्ञान दूसरे लोग जितना समझते हैं उससे ज्यादा है। ऐसे लिखे-पढ़े लोगोंमें सरकारी सहायतासे आये हुए भारतीय भी शामिल हैं।

मैंने नेटालकी विधानसभा और विधानपरिषदके सदस्योंके नाम जो *खुली चिट्ठी*[१] लिखी थी उसका निम्नलिखित अंश मैं यहाँ उद्धृत कर रहा हूँ। इसका उद्देश्य यह दिखाना है कि इस उपनिवेशका साधारण यूरोपीय समाज भारतीयोंके साथ कैसा व्यवहार करता है:

१. मूल पाठके लिए देखिए खण्ड १, पृष्ठ १४२ से १६६।

साधारण लोग भी उनसे द्वेष करते हैं, उन्हें कोसते हैं, उनपर थूकते हैं और अक्सर उन्हें पैदल-पटरियोंसे बाहर ढकेल देते हैं। अखबारोंको तो मानो उनकी निन्दा करनेके लिए अच्छेसे अच्छे अंग्रेजी कोशमें भी काफी जोरदार शब्द ढूंढ़े नहीं मिलते। कुछ उदाहरण[1] लीजिए — 'सच्चा घुन, जो समाजका कलेजा ही खाये जा रहा है'; 'वे परोपजीवी'; 'मक्कार, मुए अर्ध-बर्बर एशियाटिक'; 'दुबली और काली, कोई चीज निराली; सफाई न निकली छू, कहाते मुए हिन्दू'; 'भरा नाकतक बुराइयोंसे, जीता खा तन्दूल, कोसूंगा दिल भरकर उसको, वह हिन्दू चण्डूल'; 'गंदे कुलीकी झूठी जबान और धूर्त आचार'। अखबार उन्हें सही नामोंसे पुकारनेसे लगभग एक स्वरसे इनकार करते हैं। उन्हें 'रामीसामी' कहा जाता है, 'मिस्टर सामी'[2] कहा जाता है, 'मिस्टर कुली' और 'ब्लैक मैन' [काला आदमी] कहकर पुकारा जाता है। और ये संतापकारक उपाधियाँ इतनी आम बन गई हैं कि इनका प्रयोग (कमसे कम इनमें से एक — 'कुली' — का तो अवश्य ही) अदालतकी पवित्र सीमामें भी किया जाता है — मानो, 'कुली' कोई कानूनी और व्यक्तिवाचक नाम है, जो किसी भी भारतीयको दिया जा सकता है। लोकनिष्ठ व्यक्ति भी इस शब्दका स्वच्छन्दतासे उपयोग करते दिखाई देते हैं। मैंने अक्सर ऐसे लोगोंको भी इन दुःखदायी शब्दों — 'कुली क्लार्क' — का प्रयोग करते सुना है, जिन्हें ज्यादा अच्छा ज्ञान होना चाहिए।[3] . . . ट्रामगाड़ियाँ भारतीयोंके लिए नहीं हैं। रेलवे-कर्मचारी भारतीयोंके साथ जानवरोंके जैसा व्यवहार कर सकते हैं। भारतीय चाहे कितने भी स्वच्छ क्यों न हों, उपनिवेशके प्रत्येक गोरे व्यक्तिको उन्हें देखकर ही सन्ताप हो आता है। और वह सन्ताप इतना होता है कि वे थोड़ी देरके लिए भी भारतीयोंके साथ रेलगाड़ीके एक ही डिब्बेमें

१. मूल अंग्रेजी प्रतिमें "सैम्पल्स" शब्दका प्रयोग किया गया है, जिसका अर्थ होगा "बानगी" या "नमूने"।

२. मूल प्रतिमें "राममामी" और "सैमी" दिया है।

३. मूल प्रतिमें यहा दो वाक्य और हैं, जिन्हें हरी पुस्तिकामें छोड़ दिया गया है। देखिए खण्ड १, पृष्ठ १६३।

बैठना पसन्द नहीं करते। होटलोंके दरवाजे भारतीयोंके लिए बन्द हैं।[1] . . . सार्वजनिक स्नानगृह भी भारतीयोंके लिए नहीं हैं — फिर वे भारतीय कोई भी क्यों न हों! . . . आवारा-कानून गैर-जरूरी तौरपर उत्पीड़क है। अक्सर वह प्रतिष्ठित भारतीयोंको बड़ी अड़चनमें डाल देता है।

मैंने यह उद्धरण इसलिए दिया है कि मेरा वह वक्तव्य लगभग डेढ़ वर्षसे दक्षिण आफ्रिकाकी जनताके सामने है और उसपर प्रायः प्रत्येक दक्षिण आफ्रिकी समाचारपत्रने मुक्त रूपसे अपने विचार व्यक्त किये हैं; फिर भी अबतक उसका कोई खंडन नहीं हुआ। (सचमुच तो, एक पत्रने उसे पसन्द करते हुए उसका अनुमोदन भी किया है)। फिर, इस डेढ़ वर्षकी अवधिमें मैंने ऐसी कोई बात भी नहीं देखी, जिससे मेरा वह खयाल बदल जाता। तथापि, बताया जाता है, परम माननीय चेम्बरलेनने उस वक्तव्यके ध्येयके साथ पूरी सहानुभूति रखते हुए भी माननीय दादाभाई[2]के नेतृत्वमें गये शिष्टमण्डलसे कहा है कि हमारी शिकायतें भावनात्मक ज्यादा हैं, ठोस और वास्तविक कम हैं। और यदि उन्हें वास्तविक शिकायतका कोई उदाहरण बताया जा सके तो वे वैसी शिकायतोंका निपटारा करा देंगे। *टाइम्स आफ़ इंडिया*ने, जिसने हमें बहुत सहायता दी है और दृढ़तापूर्वक हमारी हिमायत करके हमें अत्यन्त आभारी बना लिया है, हमारी शिकायतोंको भावनात्मक बतानेपर श्री चेम्बरलेनकी लानत-मलामत की है। फिर भी सच्ची शिकायतोंका प्रमाण देनेके लिए और भारतमें हमारे पक्षका समर्थन करनेवालोंके हाथ मजबूत करनेके लिए मैं स्वयं अपनी और उन लोगोंकी साक्षी देनेकी इजाजत चाहता हूँ, जिन्होंने खुद मुसीबतें झेली हैं। आगे दिये जानेवाले प्रत्येक विवरणका एक-एक शब्द रंच-मात्र सन्देहके भी परे सही सिद्ध किया जा सकता है।

डंडीमें पिछले वर्ष क्रिसमसके समय गोरोंके एक गिरोहने मजा लूटनेके लिए एक भारतीय वस्तु-भंडार (स्टोर)में आग लगा दी थी। इस गिरोहको जरा भी उत्तेजित नहीं किया गया था। श्री अब्दुल्ला हाजी आदम, जो दक्षिण आफ्रिकी भारतीय समाजके एक अग्रगण्य सदस्य और एक जहाज-

१. यहाँ मूल प्रतिका एक वाक्य छोड़ दिया गया है। देखिए खण्ड १, पृष्ठ १६३।
२. दादाभाई नौरोजी।

मालिक हैं, मेरे साथ क्लैंज़क्लूफ़ स्टेशन तक यात्रा कर रहे थे। वे डाककी गाड़ीसे नेटाल जानेके लिए वहाँ उतर गये। वहाँ कोई उन्हें रोटी मोल देनेको भी तैयार न हुआ। होटलवालेने उन्हें होटलमें कमरा नहीं दिया और उन्हें रातभर ठंडमें ठिठुरते घोड़ागाड़ी (कोच)में ही पड़े रहना पड़ा। आफ्रिकाके उस हिस्सेकी सर्दी भी कोई मजाक नहीं है। एक अन्य प्रमुख भारतीय सज्जन हाजी मोहम्मद हाजी दादा कुछ दिन पहले प्रिटोरियासे चार्ल्सटाउनकी यात्रा कर रहे थे। उन्हें घोड़ागाड़ीसे जबरन बाहर निकाल दिया गया और उन्हें तीन मीलका[1] रास्ता पैदल तय करना पड़ा। कारण यह था कि उनके पास परवाना (पास) नहीं था। इस हरकतसे उनपर क्या बीतेगी, इसकी कोई परवाह नहीं की गई।

श्री रुस्तमजी नामके एक पारसी सज्जन अपने वित्तसे भी ज्यादा उदार हैं और डर्बन कारपोरेशनको दूसरोंके समान ही कर देते हैं। परन्तु वे अपने स्वास्थ्यके लिए कारपोरेशनके सार्वजनिक स्नान-गृहमें टर्किश स्नान नहीं कर सके। फील्ड स्ट्रीटमें गत वर्ष क्रिसमसके समय कुछ नौजवानोंने भारतीय वस्तु-भंडारोंमें जलते हुए पटाखे फेंककर उन्हें कुछ हानि पहुँचाई थी। अभी, तीन महीने पहले, उसी सड़कके एक अन्य भारतीय वस्तु-भंडारमें कुछ नौजवानोंने गोफनसे सीसेकी एक गोली फेंक दी थी। उससे एक ग्राहक घायल हो गया और उसकी आँख जाते-जाते बची। इन दोनों घटनाओंकी सूचना पुलिस सुपरिटेंडेंटको दी गई। उन्होंने वादा भी किया कि वे जो कुछ कर सकेंगे, सो सब करेंगे। परन्तु बादमें उसकी बाबत कुछ और सुनाई नहीं दिया। फिर भी, सुपरिटेंडेंट महाशय एक आदरणीय सज्जन हैं। वे डर्बनके सब समाजोंका संरक्षण करनेको उत्सुक भी हैं। परन्तु अति प्रबल विरोधियोंके सामने वे बेचारे क्या करें? क्या उनके मातहत कर्मचारी बदमाशोंका पता लगानेका कष्ट उठायेंगे? जब घायल व्यक्ति पुलिस-थानेमें गया तब पहले तो पुलिसवाले हँस पड़े और बादमें उन्होंने उससे कहा कि बदमाशोंकी गिरफ्तारीके लिए मजिस्ट्रेटसे वारंट ले आओ। दरअसल, ऐसे मामलोंमें जब पुलिसवाला अपने कर्तव्यका पालन करना चाहता है तब उसे किसी वारंटकी जरूरत नहीं होती। मेरे नेटालसे रवाना होनेके एक ही दिन पहले एक भारतीय भद्र पुरुषका लड़का साफ, बेदाग कपड़े पहने डर्बनके

१. देखिए खण्ड १, पृष्ठ २१०।

मुख्य मार्गकी पैदल-पटरीसे जा रहा था। कुछ यूरोपीयोंने उसे पटरीसे ढकेल दिया। ढकेलनेका कारण मनोरंजनके सिवा और कुछ नहीं था। गत वर्ष नेटालके एक गाँव एस्टकोर्टके मजिस्ट्रेटने कठघरेमें खड़े एक भारतीय कैदीको उससे निकलवा दिया था। उसकी टोपी जबरन उतार दी गई थी और उसे नंगे सिर वापस ले आया गया था। उसका यह सारा विरोध व्यर्थ हुआ था कि टोपी उतारना भारतीय प्रथाके विरुद्ध है और इससे उसकी धार्मिक भावनाओंको भी चोट पहुँचती है। मजिस्ट्रेटपर दीवानी मुकदमा चलाया गया। परन्तु न्यायाधीशोंने फैसला सुनाया कि उसने मजिस्ट्रेटकी हैसियतसे जो-कुछ किया उसके लिए उसपर दीवानी मुकदमा नहीं चलाया जा सकता। जब हमने कानूनका आश्रय लिया उस समय हम जानते थे कि निर्णय यही होनेवाला है। परन्तु हमारा उद्देश्य यह था कि मामलेकी पूरी छान-बीन हो जाये। एक समय उपनिवेशमें यह प्रश्न बहुत बड़ा था।

एक भारतीय कर्मचारी जब अपने अधिकारीके साथ नियतकालीन दौरे-पर जाता है, उसे होटलोंमें स्थान नहीं मिलता। उसे झोंपड़ियोंमें ठहरना पड़ता है। जब मैं नेटालसे रवाना हुआ उस समय शिकायत इस हदतक पहुँच गई थी कि वह त्यागपत्र दे देनेका गम्भीरतापूर्वक विचार कर रहा था।

डीसिलवा नामके एक यूरेशियन सज्जन फिजीमें एक जिम्मेदारीके पदपर काम करते थे। वे धन कमानेके इरादेसे नेटाल आ गये। वे एक सनद-याफ्ता दवासाज़ हैं। उन्हें पत्र द्वारा दवासाज़के स्थानपर नियुक्त किया गया था। परन्तु जब उनके मालिकने देखा कि वे पूरे गोरे नहीं हैं तो उसने उन्हें नौकरीसे बरतरफ कर दिया। मैं दूसरे यूरेशियनोंको भी जानता हूँ, जो गोरोंमें मिल जाने योग्य गोरे हैं, इसलिए सताये नहीं जाते। यह उदाहरण मैंने यह बतानेके लिए दिया है कि नेटालमें भेद-भाव कितना तर्कहीन है। मैं ऐसे कितने ही उदाहरण गिना सकता हूँ। परन्तु, आशा है, यह बतानेके लिए कि हमारी शिकायतें सच्ची हैं, इतने उदाहरण काफी होंगे। और जैसा कि इंग्लैण्डसे एक हमदर्दने एक पत्रमें लिखा है, "इनके निवारणके लिए इन्हें जान लेना ही बस है।"

अब, ऐसे मामलोंमें हम कार्रवाई किस तरहकी करें? क्या हम प्रत्येक मामलेमें श्री चेम्बरलेनके पास जा-जाकर औपनिवेशिक कार्यालयको दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंकी छोटी-छोटी शिकायतें सुननेका कार्यालय बना दें? "छोटी-छोटी" शब्दोंका प्रयोग मैंने जानबूझकर किया है, क्योंकि

मैं मंजूर करता हूँ कि इनमें से ज्यादातर मामले छोटी-छोटी मार-पीटों और असुविधाओंके ही हैं। परन्तु जब ये नित्य-नियमसे होते हैं, तो इतने बड़े बन जाते हैं कि हमें इनका संताप निरन्तर बना रहता है। जरा किसी ऐसे देशकी कल्पना कीजिए जहाँ, आप कोई भी हों, अपने-आपको ऐसी मार-पीटसे कभी भी सुरक्षित न समझते हों; जहाँ आपके दिलमें सदा घबराहट रहती हो कि यदि कभी भी किसी यात्रापर गये तो पता नहीं क्या हो जायेगा; जहाँ एक रातके लिए भी आपको किसी होटलमें स्थान न मिल सकता हो। बस, इससे आपको नेटालकी उन हालतोंकी तसवीर मिल जायेगी, जिनमें हम जिन्दगी बसर कर रहे हैं। मेरा विश्वास है, मैं यह कहूँ तो कोई अतिशयोक्ति न होगी कि अगर भारतीय उच्च न्यायालयोंका कोई न्यायाधीश दक्षिण आफ्रिका जाये और उसने पहलेसे कोई विशेष प्रबन्ध न कर लिया हो तो शायद उसे भी किसी होटलमें स्थान नहीं दिया जायेगा। मुझे यह भी निश्चय है कि यदि वह सिरसे पैरतक यूरोपीय पोशाकसे लैस न हो तो उसे चार्ल्सटाउनसे प्रिटोरिया तक 'काफिरों'[1]के डिब्बेमें यात्रा करनी पड़ेगी।

मैं जानता हूँ कि ऊपर जो उदाहरण दिये गये हैं उनमें से कुछमें श्री चेम्बरलेन आसानीसे राहत नहीं पहुँचा सकते। उदाहरणके लिए, श्री डीसिलवाके मामलेमें। परन्तु सच बात साफ है। ये घटनाएँ इसलिए होती हैं कि दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंके खिलाफ भेद-भाव गहरा जमा हुआ है, जिसका कारण भारतीयोंकी शिकायतोंके प्रति भारत और ब्रिटेनकी सरकारोंकी उदासीनता है। मार-पीटके तमाम मामलोंका आम तौरपर हम कोई खयाल नहीं करते। जहाँतक हो सकता है, हम 'एक मील कहा तो दो मील जाने'के सिद्धान्तका पालन करते हैं। सहिष्णुता, सच्चे और निष्कपट रूपमें, दक्षिण आफ्रिकावासी और, खास तौरसे, नेटालवासी भारतीयोंका चिह्न है। परन्तु, मैं यह कह दूँ कि हम इस नीतिका पालन परोपकारके हेतुसे नहीं, शुद्ध स्वार्थकी दृष्टिसे करते हैं। हमने अपने कष्टमय अनुभवोंसे समझ लिया है कि अपराधियोंको न्यायालयमें ले जाना बहुत खर्चीला और परेशानीका काम है। फिर, उसका परिणाम अक्सर हमारी अपेक्षाओंसे उलटा होता है। अपराधीको या तो चेतावनी देकर छोड़ दिया जाता है, अथवा "पाँच शिलिंग या एक दिन"के जुर्मानेकी सजा दी जाती

१. दक्षिण आफ्रिकाकी एक आदिम जातिके लोग।

है। कठघरेसे निकलनेके बाद वही आदमी और भी ज्यादा डराने-धमकानेका रुख अख्तियार कर लेता है और शिकायत करनेवालेको बड़ी अड़चनकी स्थितिमें डाल देता है। इस तरहके कारनामे अखबारोंमें प्रकाशित होते हैं, तो दूसरे लोगोंको भी वैसी ही हरकतें करनेकी उत्तेजना मिलती है। इसलिए नेटालमें हम आम तौरपर जनताके सामने इन बातोंका जिक्र भी नहीं करते।

इस तरहका गहरा जमा हुआ द्वेष-भाव सारे दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंके लिए विशेष रूपसे बने कानूनोंमें उतारा गया है। इन कानूनोंका लक्ष्य वहाँके भारतीय समाजको नीचे गिराना है। नेटालका महान्यायवादी (अटर्नी-जनरल) भारतीयोंको सदैव "लकड़हारे और पनिहारे" बनाकर रखना चाहता है। हमें दक्षिण आफ्रिकाके आदिवासियों — काफिर जातियों — के वर्गमें रखा गया है। उसने भारतीयोंकी मान-मर्यादाकी व्याख्या इन शब्दोंमें की है: "इन भारतीयोंको स्थानिक उद्योगोंके विकासके लिए मजदूर बनाकर लाया गया है; विभिन्न राज्योंमें जिस दक्षिण आफ्रिकी राष्ट्रका निर्माण किया जा रहा है, उसके अंग बन जानेके लिए नहीं।" ऑरेंज फ्री स्टेटकी नीतिको दूसरे राज्योंने अपनी नीतिका आदर्श बनाया है। और उस नीतिने, उस राज्यके ही प्रमुख पत्रके शब्दोंमें, "भारतीयोंको आफ्रिकी आदिवासियोंकी कोटिमें रखकर ही उनका वहाँ रहना असम्भव कर दिया है।" अगर भारतीय जनता सावधान न रहे तो ऑरेंज फ्री स्टेटने जो कुछ किया है, उसे दूसरे राज्य भी बहुत थोड़े समयमें ही पूरा कर डालेंगे। इस समय हम एक नाजुक संकट-कालसे गुजर रहे हैं। हमें चारों ओरसे प्रतिबन्धों और जोर-जबरदस्तीके कानूनों द्वारा जकड़ रखा गया है।

अब मैं बताऊँगा कि ऊपर बताये हुए द्वेष-भावको किस तरह कानूनका ठोस रूप दिया गया है। कोई भारतीय ९ बजे रातके बाद तबतक अपने घरसे नहीं निकल सकता जबतक कि उसके पास किसीके दस्तखतका ऐसा पत्र न हो जिससे मालूम हो कि वह किसीके निर्देशसे बाहर निकला है; या जबतक वह अपने बाहर निकलनेके बारेमें ठीक-ठीक कैफियत न दे सके। यह कानून सिर्फ आदिवासियों और भारतीयोंपर लागू है। पुलिस अपने विवेकसे काम लेती है और साधारणतः उन लोगोंको परेशान नहीं करती जो मेमन लोगों [बोहरों] की पोशाकमें होते हैं, क्योंकि वह पोशाक भारतीय

व्यापारियोंकी पोशाक मानी जाती है। श्री अबूबकर, जो अब नहीं रहे, नेटालके सबसे प्रमुख व्यापारी थे और यूरोपीय समाज उनका बहुत आदर करता था। एक बार उन्हें उनके एक मित्रके साथ पुलिसने गिरफ्तार कर लिया था। जब वह उन्हें ९ बजे रातके बाद बाहर निकलनेके आरोपमें पुलिस-थाने ले गई तो अधिकारियोंने फौरन समझ लिया कि उससे गलती हो गई है। उन्होंने श्री अबूबकरसे कहा कि वे उन जैसे प्रतिष्ठित पुरुषको गिरफ्तार करना नहीं चाहते। फिर उनसे पूछा गया कि क्या वे व्यापारियों और मजदूरोंको पृथक् पहचाननेका कोई स्पष्ट चिह्न बता सकते हैं? श्री अबूबकरने अपना लम्बा चोगा दिखा दिया। उस दिनसे जनता और पुलिसके बीच यह मूक समझौता-सा हो गया कि जो लोग लम्बा चोगा पहने हों वे अगर ९ बजे रातके बाद भी बाहर पाये जायें तो उन्हें गिरफ्तार न किया जाये। परन्तु व्यापारी तो तमिल और बंगाली भी हैं। वे भी उतने ही सम्माननीय हैं, फिर भी चोगा नहीं पहनते। इसके अलावा शिक्षित ईसाई युवक हैं। वे बड़े नाजुक-मिजाज हैं। वे भी चोगा नहीं पहनते। उन्हें बराबर सताया जाता है। अभी सिर्फ चार महीने पहलेकी बात है, एक नौजवान, सुशिक्षित, रविवासरी स्कूल शिक्षक और एक अन्य शिक्षकको गिरफ्तार करके रातभर काल-कोठरीमें बन्द रखा गया था। उनका सारा विरोध कि वे घर जा रहे थे, व्यर्थ हुआ। मजिस्ट्रेटने बादमें उन्हें रिहा कर दिया। मगर यह तो बड़े अल्प समाधानकी बात हुई। एक भारतीय महिलाको, जो स्वयं शिक्षिका और लेडीस्मिथके भारतीय दुभाषियेकी पत्नी है, कुछ ही दिन पहले एक रविवारकी शामको गिरजेसे लौटते समय दो काफिर पुलिसवालोंने गिरफ्तार कर लिया था। उसके साथ ऐसी खींचातानी की गई कि उसके कपड़े गंदे हो गये। जो सब तरहकी गालियाँ दी गईं, सो अलग। उसे काल-कोठरीमें बन्द कर दिया गया था; परन्तु जैसे ही पुलिस सुपरिटेंडेंटको मालूम हुआ कि वह कौन है, उसे रिहा कर दिया गया। वह बेहोशीकी हालतमें घर ले जाई गई। उस साहसी स्त्रीने गैर-कानूनी गिरफ्तारीके कारण कारपोरेशनपर हर्जानेका दावा किया और सर्वोच्च न्यायालयसे उसे २० पौंड और खर्चेका मुआवजा मिला। मुख्य न्यायाधीशने फैसलेमें कहा कि उसके साथ "अन्याय, कठोरता स्वेच्छाचार और अत्याचारका" व्यवहार किया गया। तथापि, इन तीन मुकदमोंका परिणाम यह हुआ कि विभिन्न कारपोरेशन अधिक अधिकार पाने

और कानूनमें परिवर्तन करानेके लिए चीख-पुकार करने लगे हैं। यदि साफ-साफ कहा जाये तो, इसमें उनका उद्देश्य यह है कि सारे भारतीयोंपर, उनकी स्थितिका खयाल किये बगैर, प्रतिबन्ध लगा दिये जायें, ताकि, जैसा कि विधानसभाके एक सदस्यने १८९४ का प्रवासी विधेयक स्वीकार होनेके अवसरपर कहा था, "भारतीयोंके जीवनको नेटाल-उपनिवेशकी अपेक्षा उनके अपने देशमें ही ज्यादा आरामदेह बनानेका उपनिवेशका मंशा" पूर्ण हो सके। किसी भी दूसरे देशमें इस प्रकारके उदाहरणोंसे सही विचारोंवाले सब लोगोंकी सहानुभूति जाग्रत हो जाती और ऊपर बताये हुए निर्णयका आनन्दके साथ स्वागत किया गया होता।

लगभग आठ महीने हुए, कोई २० भारतीय, जो शुद्ध मजदूर थे, अपने सिरोंपर शाक-सब्जीकी टोकरियाँ लेकर डर्बनके बाजार जा रहे थे। उनकी टोकरियोंसे साफ जाहिर था कि वे आवारा नहीं हैं। उन्हें ४ बजे सुबह उसी कानूनके अन्तर्गत गिरफ्तार कर लिया गया। पुलिसने बड़ी सरगर्मीसे मुकदमा चलाया। दो दिनकी सुनवाईके बाद मजिस्ट्रेटने उन्हें छोड़ दिया। परन्तु उन बेचारोंको कितनी कीमत चुकानी पड़ी! वे अपनी दिन भरकी कमाईकी आशा अपने कंधों पर ढो रहे थे। वह तो गई ही, ऊपरसे तड़के उठकर काममें लग जानेके साहसके लिए उन्हें, मेरा खयाल है, दो दिन तक जेलमें पड़े रहना पड़ा। इस सारे सौदेमें अटर्नीका जो मिहनताना चुकाना पड़ा सो अलग! परिश्रमका कितना उपयुक्त पुरस्कार! और श्री चेम्बरलेन सच्ची शिकायतोंके उदाहरण चाहते हैं!

नेटालमें परवाने (पास)का नियम है। रात हो या दिन, अगर कोई भारतीय अपना परवाना दिखाकर यह नहीं बता सकता कि वह कौन है तो उसे गिरफ्तार किया जा सकता है। इसका उद्देश्य गिरमिटिया भारतीयोंको काम छोड़कर भागनेसे रोकना और उनको पहचाननेकी सहूलियत करना है। इस हदतक, मैं मानता हूँ, यह जरूरी है। परन्तु कानूनका अमल जिस तरह होता है वह अत्यन्त संतापजनक है, और हमें उसकी जोरदार शिकायत है। अगर क्रूरताकी भावना न हो, तो स्वतः उस कानूनसे कोई अन्याय होना जरूरी नहीं है। कानूनके अमलके सम्बन्धमें समाचार-पत्र क्या कहते हैं, उनकी ही भाषामें सुनिए। *नेटाल एडवर्टाइज़र*के १९ जून, १८९५ के अंकमें इस विषयपर निम्नलिखित शब्द प्रकाशित हुए थे :

केटोमेनर[1]के काश्तकारोंको १८९१ के कानून २५ के खण्ड ३१ के अनुसार जिस तरीकेसे गिरफ्तार किया जाता है, उसकी कुछ जानकारी मैं आपको देना चाहता हूँ। जब वे अपनी जमीनपर घूमते-फिरते होते हैं उस समय पुलिस वहाँ पहुँचती है और उनसे परवाने दिखलानेको कहती है। काश्तकार अपनी पत्नियों या सम्बन्धियोंको परवाने लानेके लिए आवाज देते हैं। परन्तु उनके लेकर आनेके पहले ही पुलिस उन भारतीयोंको थानेकी ओर घसीटना शुरू कर देती है। थानेके रास्तेमें परवाने ले जाकर दिये जाते हैं तो पुलिस उनकी ओर देखभर लेती है और फिर उन्हें जमीनपर फेंक देती है। वह गिरफ्तार व्यक्तियोंको थानेमें ले जाती है। उन्हें रातभर हवालातमें रखा जाता है और सुबह उनसे हवालातकी काल-कोठरी साफ कराई जाती है। बादमें उन्हें मजिस्ट्रेटके सामने पेश किया जाता है। मजिस्ट्रेट उनकी सफाई सुने बिना ही उनपर जुर्माना कर देता है। वे संरक्षक[2]के पास जाकर फरियाद करते हैं, तो वह उनसे मजिस्ट्रेटके पास जानेको कह देता है और (पत्र-लेखक कहता है) संरक्षक भारतीय प्रवासियोंकी रक्षा करनेके लिए नियुक्त किया गया है! अगर उपनिवेशमें ये हालतें हैं (लेखक आगे कहता है) तो वे अपनी फरियाद लेकर किसके पास जायें?

मेरे खयालसे, मजिस्ट्रेट सफाई नहीं सुनता — इस कथनमें कुछ भूल अवश्य है।

नेटाल सरकारके मुखपत्र *नेटाल मर्क्युरी* के १३ अप्रैल, १८९५ के अंकमें निम्नलिखित संपादकीय प्रकाशित हुआ है:

प्रतिष्ठित भारतीयोंके लिए एक बहुत महत्त्वका मुद्दा उनकी गिरफ्तार होनेकी शक्यता है। इससे बहुत ईर्ष्या-द्वेष भी उत्पन्न होता है। यहाँ मैं एक उदाहरण दे दूँ। डर्बनमें एक सुविख्यात भारतीय है। शहरके विभिन्न भागोंमें उसकी जायदाद है। वह सुशिक्षित और बहुत बुद्धिमान भी है। सिडनहममें भी उसकी जायदाद है। पिछले दिनों एक रातको वह अपनी

१. डर्बनका एक उपनगर।
२. भारतीय प्रवासियोंका संरक्षक।

मांके साथ सिडनहम गया था। वहाँ उसे दो आदिवासी पुलिस सिपाही मिले। उन्होंने उस नौजवानको उसकी मांके साथ गिरफ्तार कर लिया और वे उन्हें पुलिस-थानेमें ले गये। इतना कह देना जरूर न्यायसंगत होगा कि उन पुलिसवालोंने अपना बरताव बड़ा सराहनीय रखा। वहाँ उस नौजवानने बताया कि वह कौन है और जाँच-पड़तालके लिए उसने दूसरोंके नाम भी दिये। आखिरकार नायकने उसे यह चेतावनी देकर छोड़ दिया कि अगर दुबारा तुम्हारे पास परवाना न हुआ तो तुम्हें गिरफ्तार कर लिया जायेगा और तुमपर मुकदमा चलाया जायेगा। वह नौजवान एक ब्रिटिश प्रजाजन है और एक ब्रिटिश उपनिवेशमें रहता है। इस नाते वह अपने साथ किये गये इस तरहके बरतावपर आपत्ति करता है, हालाँकि वह आम तौरपर चौकसीकी जरूरतसे इनकार नहीं करता। वह जो दलीलें पेश करता है वे बहुत जोरदार हैं और अधिकारियोंको निश्चय ही उनपर विचार करना चाहिए।

न्यायकी माँग है कि यहाँ अधिकारियोंका कथन भी दे दिया जाये। वे यह तो मानते हैं कि शिकायत सच्ची है, परन्तु पूछते हैं कि हम गिरमिटिया मजदूर और स्वतंत्र भारतीयके बीचका फर्क कैसे पहचानें? दूसरी ओर, हमारा कहना यह है कि इससे सरल तो कुछ हो ही नहीं सकता। गिरमिटिया भारतीय कभी भी भद्र पोशाक नहीं पहनते। फिर जब किसी भारतीयके बारेमें अनुमान लगाया जाये — खास तौरसे उस किस्मके भारतीयके बारेमें जिसकी मैं चर्चा कर रहा हूँ — तो वह अनुमान उसके अनुकूल होना चाहिए, प्रतिकूल नहीं। किसी भारतीयको भगोड़ा मान लेनेमें उतना ही औचित्य है, जितना कि किसी आदमीको चोर मान लेनेमें। अगर कोई भारतीय भाग ही जाये और भद्र दिखाई देनेका बन्दोबस्त भी कर ले, तो भी उसके लिए बहुत दिनों तक छिपे रहना कठिन होगा। परन्तु दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंके तो कोई भावना है, ऐसा माना ही नहीं जाता। वे तो पशु हैं—"एक काली और दुबली चीज", "जी-भरके कोसने लायक एशियाई गन्दगी!"

एक और कानून है, जिसमें कहा गया है कि आदिवासियों और भारतीयोंके पास गाय-बैलोंका गल्ला ले जाते समय खास किस्मके परवाने

होने चाहिए। डर्बनमें एक उप-नियम है, जिसके जरिये आदिवासी नौकरों और "एशियाकी असभ्य जातियों (रेसेज़)के अन्य लोगों"के पंजीकरण (रजिस्ट्रेशन)का विधान किया गया है। इसके पीछे यह मान्यता है कि भारतीय बर्बर हैं। आदिवासियोंके पंजीकरणका तो एक बहुत अच्छा कारण मौजूद है कि उन्हें अभीतक श्रमकी प्रतिष्ठा और आवश्यकता सिखाई ही जा रही है। परन्तु भारतीय उन बातोंको जानते हैं, और वे जानते हैं इसीलिए उन्हें लाया गया है। फिर भी उन्हें आदिवासियोंकी कोटिमें शामिल करनेका सुख प्राप्त करनेके लिए उनका पंजीकरण भी आवश्यक कर दिया गया है। जहाँतक मैं जानता हूँ, नगरके पुलिस सुपरिटेंडेंटने इस कानूनको कार्यान्वित कभी नहीं किया। एक बार मैंने एक भारतीयकी पैरवी करते हुए आपत्ति की थी कि वह पंजीकृत (रजिस्टर्ड) नहीं है। सुपरिटेंडेंटने इस आपत्तिपर नाराजी जाहिर की और कहा कि मैंने कभी यह कानून भारतीयोंपर लागू नहीं किया। उसने मुझसे सवाल किया कि क्या आप भारतीयोंको अपमानित कराना चाहते हैं? फिर भी, कानून तो मौजूद है ही। उसका उपयोग कभी भी दमन-यंत्रके रूपमें किया जा सकता है।

परन्तु हमने कभी इनमें से किसी निर्योग्यताको दूर करानेका प्रयत्न नहीं किया। हम उनकी कठोरताको स्थानिक रूपसे कम करानेके जो प्रयत्न कर सकते हैं, सो कर रहे हैं। हालमें हम नये कानून न बनने देने और जो बन चुके हैं उन्हें रद करानेमें ही अपनी सारी शक्ति लगा रहे हैं। परन्तु इसका उल्लेख करनेके पहले मैं कुछ और उदाहरणों द्वारा बता दूँ कि भारतीयोंको और भी अनेक रूपोंमें देशी लोगोंके स्तरपर रखा जाता है। रेलवे स्टेशनोंमें पाखानोंपर लिखा होता है: "आदिवासियों और एशियाइयोंके लिए।" डर्बनके डाक-तार घरमें आदिवासियों और एशियाइयोंके लिए अलग और यूरोपीयोंके लिए अलग प्रवेश-द्वार थे। हमें इससे बहुत अधिक अपमान महसूस हुआ। खिड़कियोंपर तैनात मुहर्रिर प्रतिष्ठित भारतीयोंका भी अपमान किया करते थे, और सब तरहकी गालियाँ सुनाते थे। हमने अधिकारियोंको यह द्वेषजनक भेद-भाव मिटा देनेके लिए प्रार्थनापत्र दिया और उन्होंने अब आदिवासियों, भारतीयों और यूरोपीयोंके लिए तीन पृथक् प्रवेश-द्वार बना दिये हैं।

अबतक भारतीयोंने उपनिवेशके सामान्य मताधिकार-कानूनके अन्तर्गत मताधिकारका उपभोग किया है। इस कानूनके अनुसार ५० पौंडकी अचल सम्पत्ति रखनेवाले या १० पौंड सालाना किराया देनेवाले बालिग पुरुषका नाम मतदाता सूचीमें शामिल किया जा सकता है। आदिवासियोंके लिए एक विशेष मताधिकार-कानून है। पहले कानूनके अन्तर्गत १८९४ में, जबकि यूरोपीय और भारतीय दोनों समाजोंकी आबादी लगभग बराबर थी, यूरोपीय मतदाताओंकी संख्या ९,३०९ और भारतीय मतदाताओंकी २५१ थी। फिर भारतीय मतदाताओंमें से जीवित केवल २०३ ही थे। इस प्रकार १८९४ में यूरोपीयोंके मत भारतीयोंके मतसे ३८ गुने थे। फिर भी सरकारने सोचा या सोचनेका बहाना किया कि एशियाई मतोंके यूरोपीय मतोंको निगल जानेका सच्चा खतरा पैदा हो गया है। इसलिए उसने नेटालकी विधानसभामें एक विधेयक पेश किया, जिसका मंशा उन एशियाइयोंको छोड़कर, जिनके नाम उस समय वाजिब तौरपर मतदाता-सूचीमें दर्ज थे, शेष सारे एशियाइयोंका मताधिकार छीन लेना था। विधेयककी प्रस्तावनामें कहा गया था कि एशियाई चुनावमूलक प्रातिनिधिक संस्थाओंसे परिचित नहीं हैं। इस विधेयकके विरुद्ध हमने नेटालकी विधानसभा[1] और विधानपरिषद[2] दोनोंको प्रार्थनापत्र भेजे। परन्तु यह व्यर्थ हुआ। तब हमने लार्ड रिपनको प्रार्थनापत्र[3] भेजा और उसकी नकलें भारत तथा इंग्लैंडकी जनता और समाचारपत्रोंको भी भेजीं। इसमें हमारा मंशा उनकी सहानुभूति एवं सक्रिय समर्थन प्राप्त करना था और हम धन्यवाद करते हैं कि कुछ हदतक ये दोनों हमें प्राप्त भी हुए।

फलतः वह कानून अब रद कर दिया गया है। उसके बदले एक दूसरा कानून बनाया गया है, जिसमें विधान है: "ऐसे किन्हीं लोगोंके नाम मतदाता-सूचीमें दर्ज नहीं किये जायेंगे जो (यूरोपीयोंके वंशज न होते हुए) इस देशके आदिवासी हों, या ऐसे देशोंके निवासियोंकी पुरुष-शाखाके वंशज हों, जिनमें अबतक संसदीय मताधिकारके आधारपर स्थापित प्राति-निधिक संस्थाएँ नहीं हैं। यदि ऐसे लोग अपने नाम दर्ज कराना चाहें तो

१. देखिए खण्ड १, पृष्ठ ९३–९८ ।
२. देखिए खण्ड १, पृष्ठ १०७–१११ ।
३. देखिए खण्ड १, पृष्ठ ११७–१२८ ।

पहले उन्हें स-परिषद-गवर्नरसे आदेश लेना होगा कि वे इस कानूनके अमलसे मुक्त कर दिये गये हैं।" उन लोगोंको भी इस कानूनके अमलसे मुक्त कर दिया गया है, जिनके नाम किसी मतदाता-सूचीमें वाजिब तौरसे शामिल हैं। यह विधेयक पहले श्री चेम्बरलेनके पास भेजा गया था। उन्होंने इसे अपनी अनुमति लगभग दे दी है। इसपर भी हमने इसका विरोध करना उचित समझा और इसका निषेध करा देनेके अभिप्रायसे श्री चेम्बरलेनको एक प्रार्थनापत्र[1] भेजा है। आशा है कि हमें अबतक जितना समर्थन प्राप्त हुआ है, उतना ही अब भी प्राप्त होगा। हम मानते हैं कि इस प्रकारके सब कानूनोंका सच्चा प्रयोजन भारतीयोंके साथ ऐसा भेद-भावपूर्ण व्यवहार करना है जिससे कि किसी भी प्रतिष्ठित भारतीयका उस देशमें रहना असम्भव हो जाये। एशियाइयोंके मतोंका यूरोपीय मतोंको निगल जाने या एशियाइयोंके दक्षिण आफ्रिकाका शासन हथिया लेनेका कोई सच्चा खतरा उपस्थित नहीं है। फिर भी विधेयकके समर्थनमें इसी मुद्दे-पर मुख्य रूपसे जोर दिया गया था। उपनिवेशमें सारे प्रश्नकी भली भाँति छानबीन कर ली गई है और चेम्बरलेनके पास निर्णयके लिए पूरी-पूरी सामग्री मौजूद है। स्वयं सरकारने अपने ही पत्र *नेटाल मर्क्युरी*के २५ मार्च, १८९६ के अंकमें विधेयकके सम्बन्धमें जो विचार प्रकट करके उसका समर्थन किया है, उनका मुलाहजा कर लें। मतदाता-सूचीसे आँकड़े उद्धृत करनेके बाद कहा गया है:

> सच बात यह है कि संख्याके परे, जो जाति सर्वथा श्रेष्ठ होगी वही सदैव शासनका सूत्र अपने हाथमें रखेगी। इसलिए हमारा विश्वास कुछ ऐसा है कि भारतीय मतोंके यूरोपीय मतोंको निगल जानेका खतरा बिलकुल काल्पनिक है। हम नहीं मानते कि यह खतरा जरा भी सम्भव है, क्योंकि पिछले अनुभवने सिद्ध कर दिया है कि भारतीयोंका जो वर्ग साधारणतः यहाँ आता है, वह मताधिकारकी परवाह नहीं करता। इसके अलावा, उनमें से ज्यादातर लोगोंके पास मताधिकारके लिए आवश्यक थोड़ी-सी सम्पत्ति भी नहीं है।

१. देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३३१–३५४।

यह अनिच्छापूर्वक स्वीकार किया गया है। *मर्क्युरी*का अनुमान है, और हमारा विश्वास है कि, अगर विधेयकका मंशा एशियाइयोंको मताधिकारसे वंचित करना हुआ तो वह अपने उद्देश्यमें विफल हो जायेगा। और *मर्क्युरी* कहता है कि अगर वह विफल हो गया तो कोई हर्ज न होगा। तो फिर, भारतीय समाजको सतानेके सिवा उसका उद्देश्य क्या है? विधेयकके पेश किये जानेका सच्चा कारण *मर्क्युरी*ने अपने २३ अप्रैल, १८९६ के अंकमें बचा-बचाकर लेकिन स्पष्ट भावसे इस प्रकार बताया है:

> **सही हो या गलत, न्यायपूर्ण हो या अन्यायपूर्ण, दक्षिण आफ्रिकाके और विशेषतः दोनों गणराज्योंके यूरोपीयोंके दिलोंमें भारतीयों या किन्हीं भी दूसरे एशियाइयोंको बे-रोक मताधिकार देनेके खिलाफ जोरदार भावना मौजूद है। भारतीयोंका तर्क बेशक यह है कि खुले मताधिकारके अन्तर्गत हालमें ३८ यूरोपीय मतदाताओंके पीछे केवल एक भारतीय मतदाता है और जिस खतरेका अनुमान किया जाता है वह काल्पनिक है। शायद हमें खतरेको सच्चा मानकर ही चलना होगा। जैसा कि हम बता चुके हैं, इसका कारण सर्वथा हमारा विचार नहीं है; बल्कि देशके शेष यूरोपीयोंकी भावना है जो, हम जानते हैं, उनके दिलोंमें मजबूतीके साथ जमी हुई है। फिर, हम यह नहीं चाहते कि देशकी दूसरी यूरोपीय सरकारें हमपर यह अधिक बड़ा और अधिक घातक प्रतिबन्ध लगाकर कि हम उनके सम्पर्कसे दूर और उनसे बेमेल अर्ध-एशियाई देश बन गये हैं, हमें अपनेसे अलग कर दें।**

तो, यह है नग्न सत्य। लोगोंकी चिल्लाहटको मानकर — चाहे वह न्यायपूर्ण हो या अन्यायपूर्ण — एशियाइयोंको दबाना ही है! यह विधेयक सरकार द्वारा आयोजित एक गुप्त बैठकके, जिसमें कि इसे पास करनेके सच्चे कारण बताये गये थे, बाद पास किया गया। उपनिवेशियों और समाचार-पत्रोंने, और स्वयं इसके पक्षमें मत देनेवाले सदस्योंने इसे ना-काफी कहकर इसकी निन्दा की है। उनकी शिकायत है कि यह विधेयक भारतीयोंपर लागू नहीं होगा, क्योंकि "भारतमें संसदीय मताधिकारपर आधारित चुनाव-मूलक प्रातिनिधिक संस्थाएँ मौजूद हैं और इस विधेयकसे उपनिवेश अनन्त मुकदमेबाजी और आन्दोलनके जालमें फँस जायेगा।" हमने भी इसी

तर्कका आधार ग्रहण किया है। हमने जोर दिया है कि भारतकी विधान-परिषदें "संसदीय मताधिकारपर आधारित चुनावमूलक प्रातिनिधिक संस्थाएँ हैं।" बेशक, शब्दोंके लोक-स्वीकृत अर्थमें हमारे देशकी संस्थाएँ ऐसी नहीं हैं; परन्तु लन्दनके *टाइम्स* और डर्बनके एक सुयोग्य न्यायशास्त्रीके मतानुसार, कानूनी दृष्टिसे हमारी संस्थाएँ विधेयकमें वर्णित संस्थाके वर्गमें बखूबी बैठ सकती हैं। *टाइम्सका* कथन है: "यह तर्क कि भारतमें भारतीयोंको किसी भी प्रकारका मताधिकार नहीं है, वस्तुस्थितिसे मेल नहीं खाता।" नेटालके एक प्रमुख वकील श्री लॉटनने एक समाचार-पत्रमें लिखते हुए कहा है:

> **तो, क्या भारतमें संसदीय (या विधानमंडलीय) मताधिकार है? और है तो वह क्या है? वह है, और उसकी व्यवस्था विक्टोरिया अध्याय ६७ के अधिनियम २४ व २५, और विक्टोरिया अध्याय १४० के अधिनियम ५५ व ५६ के अनुसार उपर्युक्त दूसरे कानूनके खंड ४ के अन्तर्गत बने नियमोंसे की गई थी। हो सकता है, जिसे हम उदार आधार कहते हैं उसपर वह निर्मित न हो, और उसका निर्माण एक बहुत मोटे आधारपर किया गया हो। फिर भी वह संसदीय मताधिकार तो है ही। और विधेयकके अन्तर्गत, उसे ही भारतकी चुनावमूलक प्रातिनिधिक संस्थाओंका आधार मानना होगा।**

यह मत नेटालके अन्य प्रतिष्ठित लोगोंका भी है। तथापि श्री चेम्बरलेन इस विषयमें अपने खरीते[1]में कहते हैं:

> **मैं यह भी स्वीकार करता हूँ कि भारतीयोंकी उनके अपने देशमें कोई प्रातिनिधिक संस्थाएँ नहीं हैं और इतिहासके उन युगोंमें, जबकि वे यूरोपीय प्रभावसे मुक्त थे, उन्होंने स्वयं कभी इस प्रकारकी प्रणालीकी स्थापना नहीं की।**

स्पष्ट है कि हमने *टाइम्सका* जो मत आंशिक रूपमें उद्धृत किया है, यह मत उसके विरुद्ध है। स्वाभाविक बात है कि इससे हम डर गये हैं। हम जाननेको उत्सुक हैं कि यहाँके सर्वश्रेष्ठ कानूनी पंडितोंका मत क्या है?

१. सितम्बर १२, १८९५।

तथापि, हम कितनी भी बार कह सकते हैं कि हम राजनीतिक सत्ताके लोलुप नहीं हैं, बल्कि उस गिरावटका विरोध करते हैं, जो इन मताधिकार-विधेयकोंसे अवश्यंभावी है। अगर किसी उपनिवेशको किसी एक बातमें भारतीयोंके साथ यूरोपीयोंकी अपेक्षा भिन्न आधारपर व्यवहार करने दिया गया तो उस उपनिवेशका और आगे बढ़ जाना भी कठिन न होगा। उनका लक्ष्य केवल मताधिकारका अपहरण करना नहीं है, बल्कि भारतीयोंको बिलकुल मिटा देना है। भारतीयोंको वहाँ अछूतोंके तौरपर, गिरमिटिया मजदूरोंके तौरपर या, ज्यादासे ज्यादा, स्वतंत्र मजदूरोंके तौरपर रहने दिया जा सकता है। परन्तु उन्हें इससे ऊँची आकांक्षा नहीं रखनी चाहिए। जब पहला मताधिकार-विधेयक पेश किया गया था उस समय भारतीयोंका म्यूनिसिपल मताधिकार छीननेकी चीख-पुकारके उत्तरमें महान्यायवादी (अटर्नी-जनरल)ने कहा था कि निकट भविष्यमें ही [इस बातका] निबटारा कर दिया जायेगा। लगभग एक वर्ष पूर्व नेटाल-सरकार एक सभा करना चाहती थी, जिसे 'कुली सभा' नाम दिया गया था। उसका मंशा यह था कि सारे दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयों-सम्बन्धी कानूनोंमें अनुरूपता हो। उस समय भी डर्बनके उप-मेयरने एक प्रस्ताव पेश किया था कि एशियाइयोंको पृथक् बस्तियोंमें रहनेके लिए राजी किया जाये। अब सरकार यह सोच निकालनेके लिए परेशान है कि वह भारतीय व्यापारियोंकी बाढ़को सीधे और कारगर तरीकेसे कैसे रोके। श्री चेम्बरलेनने तो उन व्यापारियोंको "शान्तिप्रेमी, कानूनका पालन करनेवाले, पुण्यशील व्यक्तियोंका समुदाय" बताया है। उन्होंने आशा व्यक्त की है कि उनकी "असंदिग्ध उद्योगशीलता, बुद्धिमानी और अजेय कार्य-तत्परता उनके धंधोंमें आनेवाली सब बाधाओंको जीतनेके लिए पर्याप्त होगी।" इसलिए, हमारा नम्र विचार है कि वर्तमान विधेयकके बारेमें इन तथ्योंकी दृष्टिसे विचार करना चाहिए। लन्दन *टाइम्स*ने मताधिकारके प्रश्नको इस रूपमें पेश किया है:

> **इस समय श्री चेम्बरलेनके सामने जो प्रश्न है वह सैद्धान्तिक नहीं है। वह प्रश्न दलीलोंका नहीं, जातीय भावनाओंका है। . . . हम अपनी ही प्रजाओंके बीच जाति-युद्ध होने देकर लाभ नहीं उठा सकते। भारत-सरकारके लिए नेटालको मजदूर भेजना बन्द करके उसकी प्रगतिको एकाएक रोक देना उतना ही गलत होगा, जितना कि नेटालके लिए ब्रिटिश**

भारतीय प्रजाजनोंको नागरिक अधिकार देनेसे इनकार करना। ब्रिटिश भारतीयोंने तो वर्षोंकी कमखर्ची और अच्छे कामसे अपने-आपको नागरिकोंके वास्तविक दर्जेतक उठा ही लिया है।

नेटाल-विधानमंडलने जो दूसरा विधेयक स्वीकार किया है उसका मंशा यह है कि गिरमिटिया भारतीयोंको सदैव गिरमिटिया बनाये रखा जाये। या, अगर उन्हें यह पसन्द न हो तो, पहले पाँच वर्षके इकरारनामेकी अवधि पूरी होनेपर उन्हें भारत भेज दिया जाये। या, अगर वे न जाना चाहें तो, उन्हें तीन पौंड[1] सालाना कर देनेके लिए बाध्य किया जाये। हमारी समझके बाहरकी बात है कि एक ब्रिटिश उपनिवेशमें इस प्रकारके कानूनका विचार भी कैसे किया गया। नेटालके लगभग सभी लोकनिष्ठ व्यक्ति इस बातमें एकमत हैं कि उपनिवेशकी समृद्धि भारतीय मजदूरोंपर अवलम्बित है। विधानसभाके एक वर्तमान सदस्यके शब्दोंमें, "जब भारतीयोंको लानेका निश्चय किया गया उस समय उपनिवेशकी प्रगति और करीब-करीब उसका अस्तित्व ही डाँवाँडोल था। परन्तु एक अन्य प्रमुख नेटालवासीके शब्दोंमें:

भारतीयोंके आगमनसे समृद्धिका आगमन हुआ। भाव बढ़ गये। अब लोग वस्तुएँ बोने और उपजको मिट्टी मोल बेच देने-भरसे सन्तुष्ट नहीं रहने लगे। वे कुछ ज्यादा कमा सकते थे। अगर हम १८५९ की ओर देखें तो हमें पता चलेगा कि भारतीय मजदूरोंसे भावी उन्नतिका जो आश्वासन मिला, उससे राजस्वमें तुरन्त वृद्धि हुई, और कुछ ही वर्षोंमें आय चौगुनी हो गई। जो मिस्त्री मजदूरी नहीं पा सकते थे और रोजाना ५ शिलिंग या इससे भी कम कमाते थे, उनकी मजदूरी दूनीसे भी ज्यादा हो गई। इस प्रगतिने नगरसे लेकर समुद्रतकके सब लोगोंको प्रोत्साहन दिया।

नेटालके वर्तमान मुख्य न्यायाधीशके शब्दोंमें ये भारतीय "विश्वस्त और उपयोगी घरेलू नौकर सिद्ध हुए हैं।" फिर भी इनका जीवन-रक्त ही निचोड़ लेनेके बाद इन उद्योगी और अपरिहार्य लोगोंपर कर लगानेके मंसूबे बाँधे जा रहे हैं। दस वर्ष पहले वर्तमान महान्यायवादी (अटर्नी-जनरल)का जो

१. देखिए खण्ड १, पृष्ठ २१५–२३२।

अभिप्राय था वह नीचे दिया जा रहा है। आज उन्होंने ही उस विधेयककी रचना की है जो, लंदनके एक आमूल सुधारवादी पत्रके कथनानुसार, "भीषण अनाचार, ब्रिटिश प्रजाका अपमान, अपने निर्माताओंपर कलंक और हम-पर लांछन-स्वरूप है।" महान्यायवादीका विचार यह था :

> **जहाँतक अवधि पूरी कर लेनेवाले भारतीयोंका सम्बन्ध है, मैं नहीं समझता कि किसी व्यक्तिको, जबतक वह अपराधी न हो और उस अपराधके लिए उसे देश-निकाला न दिया गया हो, दुनियाके किसी भी भागमें जानेके लिए बाध्य किया जाना चाहिए। मैंने इस प्रश्नके बारेमें बहुत-कुछ सुना है। मुझसे बार-बार अपना दृष्टिकोण बदलनेको कहा गया है, परन्तु मैं वैसा नहीं कर सका। एक आदमी यहाँ लाया जाता है। सिद्धान्ततः रजामंदीसे, व्यवहारतः बहुधा बिना रजामंदीके लाया जाता है। वह अपने जीवनके सर्वश्रेष्ठ पाँच वर्ष यहाँ खपा देता है। नये सम्बन्ध स्थापित करता है, शायद पुराने सम्बन्धोंको भुला देता है। यहाँ अपना घर बसा लेता है। ऐसी हालतमें, मेरे न्याय और अन्यायके विचारसे, उसे वापस नहीं भेजा जा सकता। भारतीयोंसे जो-कुछ काम आप ले सकते हैं वह लेकर उन्हें चले जानेका आदेश दें, इससे तो यह बहुत अच्छा होगा कि आप उनको यहाँ लाना ही बिलकुल बन्द कर दें।**

परन्तु वही चीज, अर्थात् न-कुछ मिहनताना लेकर पाँच वर्षतक उपनिवेशकी सेवा करना, जो दस वर्ष पहले भारतीयोंमें सद्गुण-रूप मानी गई थी, आज एक अपराध बन गई है। अगर महान्यायवादीको भारत-सरकार और ब्रिटिश सरकार इजाजत दे दें, तो उस अपराधका दण्ड है—भारतमें निर्वासन। मैं यहाँ कह दूँ कि १८९३ में नेटालसे जो एक-पक्षीय आयोग (कमिशन)[1] भारत आया था उसके अनुरोधपर भारत-सरकारने अनिवार्य शर्तबन्दीका सिद्धान्त स्वीकार कर लिया है। तथापि हमें दृढ़ विश्वास है कि ब्रिटेन और भारतकी सरकारोंको दिये गये प्रार्थनापत्रोंमें[2] जो हकीकतें बताई गई हैं वे भारत-सरकारको अपना विचार बदलनेकी प्रेरणा देनेके लिए काफी होंगी।

१. बिन्स-मेसन आयोग।
२. देखिए खण्ड १, पृष्ठ २१७–२३५।

यद्यपि हमने खासकर उन भारतीय मजदूरोंपर असर करनेवाली बातोंके बारेमें कोई आवाज नहीं उठाई, जो अभी इकरारनामेकी अवधि काट ही रहे हैं, तथापि यह बखूबी माना जा सकता है कि जायदादों (एस्टेट्स)में उनकी हालत कुछ खास आरामदेह नहीं है। हम समझते हैं कि साधारण आबादीके सम्बन्धमें उपनिवेशके रुखमें परिवर्तन होनेका असर गिरमिटिया भारतीयोंके मालिकोंपर भी पड़ेगा। फिर भी एक-दो बातें खास तौरसे भारतीय जनताकी नजरमें लानेके लिए मुझसे कहा गया है। अबसे काफी पहले, सन् १८९१ में, श्री हाजी मोहम्मद हाजी दादाकी अध्यक्षतामें एक भारतीय कमेटीने एक प्रार्थनापत्र दिया था। उसमें एक माँग यह की गई थी कि प्रवासियोंका संरक्षक कोई ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जो तमिल और हिन्दुस्तानी भाषाएँ जानता हो। और सम्भव हो तो वह भारतीय ही होना चाहिए। हम उस स्थितिसे पीछे नहीं हटे और जो समय बीचमें बीता उसमें हमारा वह मत और भी पक्का हुआ है। वर्तमान संरक्षक एक सज्जन पुरुष हैं। फिर भी उनका भारतीय भाषाओंका अज्ञान एक गम्भीर कमी तो है ही। हमारा नम्र खयाल यह भी है कि संरक्षकको निर्देश दिया जाना चाहिए कि वह प्रवासियों और उनके मालिकोंके बीच निर्णायककी हैसियतसे काम करनेकी अपेक्षा भारतीयोंके हिमायतीके रूपमें अधिक काम करे। मैं उदाहरण देकर अपनी बात समझा दूँ। १८९४ में बालसुन्दरम् नामके एक भारतीयको उसके मालिकने ऐसा मारा-पीटा कि उसके दो दाँत करीब-करीब निकल गये। वे उसके ऊपरी ओंठमें घुसकर बाहर निकल आये, जिससे इतना खून गया कि उसकी लम्बी पगड़ी तर हो गई। उसके मालिकने हकीकतको मंजूर कर लिया, परन्तु यह कहा कि उस आदमीने उसे गम्भीर उत्तेजना दी थी। उस आदमीने उत्तेजना देनेका आरोप नामंजूर किया। मार खाकर, मालूम होता है, वह संरक्षकके मकानपर गया, जो उसके मालिकके मकानके पास ही था। संरक्षकने खबर भेज दी कि वह दूसरे दिन दफ्तरमें आये।

वह आदमी मजिस्ट्रेटके पास गया। मजिस्ट्रेटको सारा दृश्य देखकर बहुत दया आई। उसने पगड़ी अदालतमें रखा ली और उसे इलाजके लिए तुरन्त अस्पताल भिजवा दिया। कुछ दिन अस्पतालमें रहनेके बाद उसे वहाँसे रुखसत कर दिया गया। उसने मेरे बारेमें सुना था, इसलिए वह मेरे दफ्तरमें आया। अबतक वह इतना स्वस्थ नहीं हुआ था कि कुछ बातचीत कर सकता। इसलिए मैंने उससे तमिलमें — जो वह जानता था — अपनी

शिकायत लिख देनेको कहा। वह मालिकपर मुकदमा चलाना चाहता था, ताकि उसका मजदूरीका इकरारनामा रद कर दिया जाये। मैंने उससे पूछा कि अगर तुम्हें किसी दूसरे मालिकके पास तब्दील कर दिया जाये, तो क्या तुम सन्तुष्ट हो जाओगे? उसने संकेतसे हामी भर दी। इसपर मैंने उसके मालिकको एक पत्र लिखकर पूछा कि क्या वह उस व्यक्तिका दूसरे मालिकके पास तबादला कर देना मंजूर करेगा? उसने पहले तो अनिच्छा बताई, मगर बादमें वह राजी हो गया। मैंने उस आदमीको संरक्षकके दफ्तरमें भेजा। साथमें अपने एक तमिल मुंशीको भेज दिया, जिसने संरक्षकको उसकी बातें समझा दीं। संरक्षकने चाहा कि उस आदमीको उनके दफ्तरमें छोड़ दिया जाये। उन्होंने खबर भेजी कि अपनी शक्तिभर जो कुछ वे कर सकेंगे, अवश्य करेंगे। इसी बीच मालिक संरक्षकके दफ्तरमें पहुँचा। उसने अपना मन बदल दिया और कहा कि उसकी पत्नी तबादला करना स्वीकार नहीं करती, क्योंकि उसकी सेवाएँ बहुत ही मूल्यवान हैं। कहा जाता है कि इसपर उस आदमीने समझौता करके संरक्षकको एक लिखित बयान दे दिया कि उसे कोई शिकायत नहीं करनी है। संरक्षकने मुझे पत्र लिख भेजा कि चूँकि उस आदमीको कोई शिकायत नहीं है और मालिकने उसकी सेवाओंकी अदला-बदली करना स्वीकार नहीं किया है, इसलिए मैं इस मामलेमें हस्तक्षेप नहीं करूँगा। मैं पूछता हूँ, क्या यह ठीक था? क्या संरक्षकका उस आदमीसे इस प्रकारका लिखित वक्तव्य लेना उचित था? क्या वे उस आदमीसे स्वयं अपनी रक्षा करना चाहते थे? परन्तु मैं वह दर्दभरी कहानी आगे सुनाऊँ। स्वाभाविक था कि संरक्षकके पत्रने मुझे गहरा धक्का पहुँचाया। मैं उस धक्केसे उबरा भी नहीं था कि वह आदमी रोता-बिलखता मेरे दफ्तरमें आ पहुँचा और उसने कहा कि संरक्षक उसकी बदली नहीं करता। मैं, अक्षरशः, संरक्षकके दफ्तरको दौड़ा और मैंने दरियाफ्त किया कि मामला क्या है। संरक्षकने वह लिखा हुआ कागज मेरे सामने रख दिया और पूछा कि मैं कैसे उस आदमीकी मदद कर सकता हूँ? उन्होंने कहा कि उस आदमीको इस कागजपर दस्तखत नहीं करने थे। और यह कागज एक हलफनामा था, जिसे स्वयं संरक्षकने प्रमाणित किया था। मैंने संरक्षकसे कहा कि मैं उस आदमीको सलाह दूँगा कि वह मजिस्ट्रेटके पास जाकर शिकायत करे। उन्होंने उत्तर दिया कि यह कागज मजिस्ट्रेटके सामने पेश कर दिया जायेगा और शिकायत व्यर्थ हो जायेगी। यह कारण बताकर

उन्होंने मुझे सलाह दी कि मामलेको अब छोड़ दिया जाये। मैं अपने दफ्तरमें वापस चला आया और मैंने उस आदमीके मालिकको तबादला मंजूर कर लेनेकी प्रार्थना करते हुए एक पत्र लिखा। मालिक वैसा कुछ भी करनेको तैयार नहीं था। मजिस्ट्रेटने हमारे साथ बिलकुल दूसरा ही व्यवहार किया। उसने उस आदमीको उस समय देखा था जब कि खून बह ही रहा था। फरियाद बाकायदा कर दी गई। सुनवाईके दिन मैंने सारी परिस्थितियाँ बताई और खुली अदालतमें फिर मालिकसे अपील की और वादा किया कि अगर वह तबादला करनेके लिए राजी हो तो हम मुकदमा उठा लेंगे। इसपर मजिस्ट्रेटने मालिकको चेतावनी दी कि अगर उसने मेरे प्रस्तावपर ज्यादा अनुकूल विचार नहीं किया तो परिणाम उसके लिए गम्भीर हो सकता है। मजिस्ट्रेटने यह भी कहा कि, उसका खयाल है, उस आदमीके साथ पाशविक व्यवहार किया गया है। मालिकने कहा कि उस आदमीने उसे उत्तेजित किया था। मजिस्ट्रेटने डपटकर जवाब दिया : "आपको कानूनकी अवज्ञा करनेका और इस आदमीको पशुके जैसा मारनेका कोई अधिकार नहीं था।" उसने मालिकको मेरे प्रस्ताव-पर विचार करनेका मौका देनेके उद्देश्यसे एक दिनके लिए सुनवाई स्थगित कर दी। मालिक झुका और उसने सम्मति दे दी। इसपर संरक्षकने मुझे लिखा कि जबतक मैं किसी ऐसे यूरोपीय मालिकका नाम न सुझाऊँ, जो संरक्षकको स्वीकार हो, तबतक वह तबादला करना स्वीकार नहीं करेगा। खुशीकी बात है कि उपनिवेश उदार आदमियोंका बिलकुल कंगाल नहीं है। एक स्थानिक वेज़लियन धर्मोपदेशक और सालिसिटरने धर्मभावसे उस आदमीकी सेवाएँ स्वीकार कर लीं और इस तरह इस दुःखमय नाटकके अन्तिम दृश्य पर परदा पड़ा। संरक्षकने जो तरीका अख्तियार किया उसपर टीका-टिप्पणी व्यर्थ होगी। यह एक नमूनेका मामला मात्र है, जो बताता है कि गिरमिटिया लोगोंके लिए न्याय प्राप्त करना कितना कठिन है।

हमारा निवेदन है कि संरक्षक कोई भी हो, उसके कर्तव्योंकी स्पष्ट व्याख्या होनी चाहिए, जैसे कि न्यायाधीशों, एडवोकेटों, सालिसिटरों आदिके कर्तव्योंकी होती है। प्रलोभनोंको टालनेके लिए, उसका मन हो तो भी, उसे कुछ खास-खास काम करनेका अधिकार न होना चाहिए। जरा एक न्याया-धीशके एक ऐसे अपराधीका मिहमान बननेकी कल्पना कीजिए, जिसका वह मुकदमा कर रहा हो। फिर भी, संरक्षक तो जब जायदादों (एस्टेट्स)में मजदूरोंकी हालतोंकी जाँच करने और उनकी शिकायतें सुनने जाता है, तब

मालिकोंका मिहमान बन सकता है, और अक्सर बनता भी है। हमारा निवेदन है कि संरक्षक कितना भी उच्चमना क्यों न हो, यह व्यवहार सिद्धान्ततः गलत है। जैसा प्रवासियोंके एक सर्जन-सुपरिंटेंडेंटने पिछले दिनों कहा था, संरक्षकके पास तुच्छसे तुच्छ कुलीकी भी पहुँच सरलतासे होनी चाहिए, परन्तु बड़ेसे बड़े मालिककी उसके पास कोई पहुँच न हो। सम्भवतः वह नेटालका आदमी न हो। संरक्षकका एक ऐसे आयोग (कमिशन) का सदस्य बनाया जाना भी विचित्र मालूम पड़ता है, जिसका उद्देश्य गिरमिटिया मजदूरोंके लिए अधिक कड़े कानून बनानेकी सम्मति देनेके लिए भारत-सरकारको समझाना हो। जब संरक्षकको ऐसे विरोधी कर्तव्य करने हों, तब गिरमिटिया मजदूरोंकी रक्षा कौन करेगा?

गिरमिटिया मजदूरोंके लिए अपनी सेवाओंका तबादला करा लेना सरल होना चाहिए। कुछ भारतीय बरसोंसे जेलोंमें पड़े हैं, क्योंकि वे अपने मालिकोंके पास जानेसे इनकार करते हैं। उनका कहना है कि उनकी शिकायतें ऐसी हैं, जिन्हें वे अपनी विचित्र परिस्थितियोंमें प्रमाणित नहीं कर सकते। एक मजिस्ट्रेट ऐसे मामलोंसे इतना आजिज आ गया कि वह सोचने लगा, काश! ऐसे मुकदमे मुझे करने ही न पड़ते! *नेटाल मर्क्युरीने* अपने १३ जून, १८९५ के अंकमें एक ऐसे ही मामलेकी मीमांसा इस प्रकार की है:

> अगर कोई आदमी, या कुली प्रवासी भी, जिस मालिककी मजदूरी करनेको प्रतिज्ञा-बद्ध है उसका काम करनेकी अपेक्षा जेल जाना अधिक पसन्द करता है, तो स्वाभाविक अनुमान यह होगा कि कहीं-न-कहीं कुछ खराबी जरूर है। और शनिवारको जब श्री डिलन कामसे इनकार करनेके एक ही अपराधपर तीन कुलियोंके मुकदमेकी सुनवाई कर रहे थे उस समय उन्होंने जो कुछ कहा था उससे हमें आश्चर्य नहीं है। तीनों अभियुक्तोंने यह एक ही जवाब दिया था कि हमारे मालिकोंने हमारे साथ बुरा बरताव किया है। बेशक, यह सम्भव है कि ये खास कुली बगीचोंके कामसे जेलके कामको अधिक पसन्द करते हों। दूसरी ओर, यह भी सम्भव है कि कुलियोंके पास अपने प्रति व्यवहारके सम्बन्धमें शिकायतोंका कोई आधार मौजूद हो। यह विषय ऐसा है, जिसकी जाँच होनी चाहिए और, कमसे कम, ऐसी शिकायतें करनेवाले लोगोंका दूसरे मालिकोंके

> **पास तबादला कर देना चाहिए। अगर वे फिर भी काम करनेसे इनकार करें तो फौरन पता चल सकेगा कि वे काम करना नहीं चाहते। कहा भले ही जाये कि किसी कुलीके साथ दुर्व्यवहार हो तो वह मजिस्ट्रेटके सामने फरियाद कर सकता है, परन्तु ऐसे मामलोंको साबित करना किसी कुलीके लिए सरल नहीं है। यह तो प्रवासियोंके संरक्षकका काम है कि वह शिकायतोंकी जांच और, अगर सम्भव हो तो, उनका इलाज करे।**

भारतीय मजदूरोंके मालिकोंका एक प्रवास-न्यास-मंडल (इमिग्रेशन ट्रस्ट बोर्ड) है। उसे अब बहुत व्यापक अधिकार प्राप्त हो गये हैं। और उसके सदस्योंकी हैसियतको देखते हुए उसके कार्योंपर भारत-सरकारको बड़ी दक्षताके साथ चौकसी रखनी होगी। काम छोड़कर भागनेकी सजा अभी ही बहुत भारी है, फिर भी लोग गम्भीरताके साथ सोच रहे हैं कि क्या ऐसे मामलोंके निबटारेके लिए कोई ज्यादा कड़ा तरीका नहीं निकाला जा सकता। तिसपर, यह याद रखना चाहिए कि १० में से कमसे कम ९ मामलोंमें तथाकथित भगोड़े दुर्व्यवहारकी शिकायत करते हैं। ऐसे भगोड़े सजा पानेसे कानूनन संरक्षित हैं, परन्तु चूंकि वे बेचारे अपनी शिकायतोंको साबित नहीं कर सकते, इसलिए उन्हें सच्चे भगोड़े माना जाता है और इसीके अनुसार संरक्षक उन्हें मजिस्ट्रेटके पास दण्डके लिए भेज देता है। ऐसी परिस्थितियोंमें, हमारा निवेदन है, कार्य-त्याग सम्बन्धी कानूनमें कोई भी ऐसा परिवर्तन करनेके पहले, जो उसे ज्यादा खराब बनानेवाला हो, सावधानीसे विचार करना आवश्यक है।

उनमें से कुछ लोग आत्महत्या करके जिन्दगीसे छुटकारा पा लेते हैं। ये मृत्युएँ बड़ी शोचनीय हैं। इनकी कोई सन्तोषजनक कैफियत नहीं दी जाती। इस बारेमें सबसे अच्छा यही होगा कि मैं १५ मई, १८९६ के *एडवर्टाइज़र*से निम्नलिखित उद्धरण दे दूं:

> **प्रवासी-संरक्षकके वार्षिक विवरणके एक पहलूपर अभी आम तौरपर जितना ध्यान दिया जाता है उससे ज्यादा दिया जाना जरूरी है। वह पहलू है जायदादोंमें हर साल होनेवाली कुलियोंकी आत्महत्याओंका। इस वर्ष कुल ८,८२८ लोगोंमें आत्महत्या करनेवालोंकी संख्या ६ दर्ज हुई है। १८९४ में एक बड़ी संख्यामें आत्महत्याएँ हुई थीं। कुछ हो, यह**

एक बहुत बड़ा प्रति-शतमान है। इससे सन्देह होता है कि कुछ जायदादोंमें 'कुली' मजदूरोंके साथ जैसा व्यवहार करनेकी प्रथा प्रचलित है, वह गुलामोंके प्रति किये जानेवाले व्यवहारसे बहुत ज्यादा मिलता-जुलता है। कुछ खास जायदादोंमें ही इतनी आत्महत्याएँ होती हैं, यह बात अत्यन्त अर्थ-गर्भित है। इस विषयमें जाँच-पड़ताल करना जरूरी है। जो अभागे लोग जिन्दगीसे मौतको ज्यादा पसन्द करते हैं, उनके साथ किया जानेवाला व्यवहार क्या ऐसा है जिससे उनका जीवन असह्य हो जाता है? इसका निश्चय करनेकी दृष्टिसे किसी प्रकारकी जाँच-पड़ताल नहीं की जाती। यह विषय ऐसा है कि, सम्भव है, इसकी ओर लोगोंका ध्यान न जाये। परन्तु ऐसा होना नहीं चाहिए। हाल में ही दक्षिणकी एक जायदादमें कुछ कुलियोंने काम छोड़ दिया था। मुकदमेके दौरानमें उन कैदियोंने अदालतके सामने खुल्लमखुल्ला कहा कि वे अपने मालिकके पास लौटनेके बजाय आत्महत्या करना पसन्द करेंगे। मजिस्ट्रेटने कहा कि उसके पास सिवा इसके कि उन्हें गिरमिटकी अवधि पूरी करनेके लिए भेज दिया जाये, दूसरा कोई विकल्प नहीं है। अब समय आ गया है, जब कि उप-निवेशको प्रबन्ध करना चाहिए कि ऐसे फरियादी किसी जाँच-अदालत और जनताके सामने अपनी शिकायतों-सम्बन्धी तथ्य पेश करनेका मौका पा सकें। यह भी वांछनीय है कि मंत्रिमंडलमें भारतीय मामलोंके एक मंत्रीकी नियुक्ति की जाये। आजकी हालतोंमें, गिरमिटिया भारतीयोंपर बागोंमें चाहे जैसी भी पाशविकताका व्यवहार क्यों न हो, उनके पास उसके खिलाफ अपील करनेका कोई कारगर तरीका है ही नहीं।

फिर भी हम अपने कथनसे यह खयाल पैदा करना नहीं चाहते कि नेटालमें गिरमिटिया भारतीयोंका जीवन सब दूसरे देशोंकी अपेक्षा ज्यादा मुश्किल है, या यह उपनिवेशके सब भारतीयोंकी सर्वसामान्य शिकायतका हिस्सा है। उलटे, हम जानते हैं कि नेटालमें ऐसी जायदादें मौजूद हैं, जिनमें भारतीयोंके साथ बहुत अच्छा व्यवहार किया जाता है। इसके साथ ही, हम नम्रतापूर्वक यह भी कहते हैं कि गिरमिटिया भारतीयोंकी अवस्था जैसी होनी चाहिए थी, पूरी तरह वैसी नहीं है और कुछ बातें ऐसी हैं, जिनकी ओर ध्यान देना आवश्यक है।

जब किसी गिरमिटिया भारतीयका मुफ्त परवाना (फ्री पास) खो जाता है, तो उसे उसकी नकलके लिए तीन पौंडकी रकम देनी पड़ती है। इसका कारण यह बताया जाता है कि भारतीय अपने परवाने चोरीसे बेच देते हैं। परन्तु इस प्रकारकी चोरीकी बिक्रीके अपराधमें तो उन्हें कानून द्वारा सजा दी जा सकती है। जो आदमी अपना परवाना बेच देता है उसे तो ३ पौंड देनेपर भी कभी उसकी नकल नहीं मिलनी चाहिए। दूसरी ओर, साधारण भारतीयके लिए नकल पाना उतना ही आसान होना चाहिए, जितना कि असलको पाना। उनसे अपने परवाने अपने साथ रखनेकी अपेक्षा की जाती है। फिर अगर वे अक्सर खो जाते हैं तो इसमें क्या आश्चर्य? मैं एक आदमीको जानता हूँ, जो इसलिए नकल नहीं पा सका कि उसके पास ३ पौंड नहीं थे। वह जोहानिसबर्ग जाना चाहता था परन्तु जा नहीं सका। संरक्षकके विभागमें ऐसे मामलोंमें अस्थायी परवाना दे देनेकी प्रथा प्रचलित है। इसमें शर्त यह होती है कि परवाना लेनेवाला अपनी कमाईसे सबसे पहले संरक्षकके कार्यालयके तीन पौंड चुका दे। जिस मामलेकी चर्चा मैं कर रहा हूँ उसमें उस आदमीको ६ महीनेके लिए अस्थायी परवाना दे दिया गया था। इतने समयमें वह ३ पौंड नहीं कमा सका। इस तरहके मामले दर्जनों हैं। मुझे कहनेमें कोई संकोच नहीं कि तीन पौंड वसूल करनेकी यह प्रणाली अनुचित दबाव डालकर रुपया ऐंठनेकी प्रणालीके अलावा कुछ नहीं है।

जूलूलैंड

ब्रिटिश सम्राज्ञीके शासनाधीन उपनिवेश — जूलूलैंडके कुछ कस्बोंमें जमीनकी बिक्रीके नियम प्रकाशित किये गये हैं। यद्यपि उसी उपनिवेशके मेलमॉथ नामक कस्बेमें भारतीयोंके पास लगभग २,००० पौंडकी जमीन है, एशोवे और नोन्दवेनी नामक कस्बोंके नियम उनके जमीन खरीदने या उसपर स्वामित्व रखने[1]पर प्रतिबन्ध लगानेवाले हैं। हमने श्री चेम्बरलेनको प्रार्थनापत्र[2] भेजा है और अभी वह उनके विचाराधीन है। नेटालके उपनिवेशियों (कॉलनिस्ट्स)का कथन है कि अगर सम्राज्ञीके शासनाधीन उपनिवेशमें भारतीयोंपर ऐसे प्रतिबन्ध लगाये जा सकते हैं तो फिर नेटाल जैसे उत्तरदायी शासनके उपनि-

१. देखिए खण्ड १, पृष्ठ २९९-३०१ और ३०६-३१४।
२. देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३१०-३१४।

वेशको भी उनके साथ स्वेच्छानुसार व्यवहार करनेका अधिकार होना चाहिए। जूलूलैंडमें हमारी स्थिति फ्री स्टेटसे बेहतर नहीं है। जूलूलैंड जाना इतना खतरेका है कि जिन एक-दो लोगोंने वहाँ जानेका साहस किया, उन्हें लौट आना पड़ा। वहाँ भारतीयोंके लिए कमाईके अच्छे साधन हैं, परन्तु दुर्व्यवहार आड़े आता है। हमें आशा है कि इस कठिनाईको दूर करनेमें अधिक विलम्ब न किया जायेगा।

केप कालोनी

केप कालोनीमें मेयरोंकी कांग्रेसने एक प्रस्ताव पास करके यह इच्छा व्यक्त की है कि वहाँ एशियाइयोंकी बाढ़को रोकनेके लिए कानून बनाया जाये। उसने आशा की है कि कार्रवाई तुरन्त की जायेगी। उधर, केप विधानमंडलने भी हाल ही में एक कानून पास किया है। वह उस उपनिवेशके एक शहर ईस्ट लंदनकी म्यूनिसिपैलिटीको अधिकार देता है कि वह कुछ ऐसे उपनियम बना ले, जिनसे आदिवासियों और भारतीयोंको कुछ खास बस्तियोंमें हट जाने और वहीं निवास करनेके लिए बाध्य किया जा सके और उन्हें पैदल-पटरियों पर चलनेसे भी रोका जा सके। क्रूरतापूर्ण उत्पीड़नके इससे अधिक उपयुक्त उदाहरणकी कल्पना करना कठिन है। २३ मार्च, १८९६ के *मर्क्युरी*के अनुसार, केप-सरकारके अधीन ईस्ट ग्रिक्वालैंडमें भारतीयोंकी स्थिति इस प्रकार है :

> इस्माइल सुलेमान नामक एक अरबने ईस्ट ग्रिक्वालैंडमें एक वस्तु-भंडार (स्टोर) बनवाया। उसने अपने मालपर तट-कर अदा कर दिया और परवाने (लाइसेन्स) के लिए अर्जी दी, जिसे मजिस्ट्रेटने नामंजूर कर दिया। श्री अटर्नी फ्रान्सिसने उस अरबकी ओरसे केप-सरकारके सामने अपील की। परन्तु केप-सरकारने मजिस्ट्रेटका फैसला बहाल रखा और निर्देश दिया कि ईस्ट ग्रिक्वालैंडमें किसी अरब या कुलीको व्यापार करनेका परवाना न दिया जाये और जिन एक-दो लोगोंके पास परवाने हैं, उनका कारबार बन्द करा दिया जाये।

इस प्रकार दक्षिण आफ्रिकामें सम्राज्ञी-सरकारके शासनाधीन कुछ हिस्सोंमें उसकी भारतीय प्रजाके निहित स्वार्थ भी संरक्षणकी वस्तु नहीं हैं। उस

भारतीयका आखिर क्या हुआ, मैं पक्की तरहसे जान नहीं सका। परन्तु ऐसे मामले अनेक हैं, जिनमें भारतीयोंको व्यापारके परवाने देनेसे बिना किसी शिष्टाचारके इनकार कर दिया गया है। नेटालमें आदिवासियोंके मामलों-पर एक सरकारी विवरण प्रकाशित हुआ है। उसमें एक मजिस्ट्रेटने कहा है कि वह भारतीयोंको व्यापारके परवाने देनेसे सीधे-सीधे इनकार कर देता है और इस प्रकार उनके अनधिकार प्रवेशको रोकता है।

चार्टर्ड टेरिटरीज़

चार्टर्ड टेरिटरीज़में भी भारतीयोंके साथ यही व्यवहार हो रहा है। हाल ही की बात है, एक भारतीयको व्यापारका परवाना देनेसे इनकार कर दिया गया था। उसने सर्वोच्च न्यायालयमें फरियाद की और न्यायालयने फैसला दिया कि उसे परवाना देनेसे इनकार नहीं किया जा सकता। अब रोडेशियाके लोगोंने सरकारको एक प्रार्थनापत्र भेजकर अनुरोध किया है कि कानूनमें ऐसा परिवर्तन कर दिया जाये जिससे भारतीयोंका परवाना पाना कानूनन रोका जा सके। कहा जाता है कि सरकारका रुख उनकी प्रार्थना स्वीकार करनेके अनुकूल है। जिस सभा द्वारा प्रार्थनापत्र भेजा गया है उसके बारेमें दक्षिण आफ्रिकी *डेली टेलिग्राफ*के संवाददाताका कथन है :

> वह सभा किसी भी रूपमें प्रातिनिधिक नहीं थी — यह मैं कह सकता हूँ, और सचाईके साथ कह सकता हूँ — इसकी मुझे खुशी है। अगर वह प्राति-निधिक होती भी तो उससे शहरके निवासियोंकी कोई प्रशंसा न होती। उसमें कोई आधा दर्जन प्रमुख वस्तु-भंडार मालिक, एक पत्र-सम्पादक, इक्के-दुक्के छोटे सरकारी कर्मचारी और काफी बड़ी संख्यामें सोने-चाँदीकी खानें खोजनेवाले, मिस्त्री और कारीगर शामिल थे। जिन्होंने सभाका आयोजन किया था वे तो हमें यही बताना पसन्द करेंगे कि ये ही सैलि-सबरीके लोकमतके प्रतिनिधि थे। मैंने प्रस्तावकों और समर्थकोंके नामके साथ जो प्रस्ताव तारसे आपको भेजा है वह बैठक शुरू होनेके पहले ही अच्छी तरह कतर-ब्योंत कर तैयार कर लिया गया था और समय आनेपर आँकड़ोंको व्यवस्थित करके यथास्थान भर दिया गया। भारतीय एक भी उपस्थित नहीं था, न किसीने भारतीयोंकी ओरसे कुछ कहनेका

साहस ही किया। क्यों, यह कहना कठिन है; क्योंकि शहरके बहुत बड़े बहुजन-समाजकी भावना उस एकांगी, स्वार्थमय और संकीर्ण मतके बिलकुल विपरीत है, जो इस प्रश्नपर बोलनेवाले लोगोंने व्यक्त किया है।... मैं यह खयाल किये बगैर नहीं रह सकता कि जिस जातिके लोग परिश्रमी और स्थिर हैं और अवसर आनेपर अपने गोरे रंगके भाइयोंकी जोड़ीमें ऊँचे पदोंको योग्यता और इज्जतसे निभानेकी शक्तिका परिचय दे चुके हैं, उस जातिके लोगोंके आगमनसे किसी हानिकी आशंका नहीं होनी चाहिए।

ट्रान्सवाल

अब गैर-ब्रिटिश राज्यों—ट्रान्सवाल और फ्री स्टेटके बारेमें। १८९४ में ट्रान्सवालमें लगभग २०० व्यापारी थे, जिनकी चुकता पूँजी एक लाख पौंड होगी। इनमें से कोई तीन पेढ़ियाँ इंग्लैण्ड, डर्बन, पोर्ट एलिज़ाबेथ, भारत तथा अन्य स्थानोंसे सीधे माल मँगाया करती थीं। दुनियाके दूसरे भागोंमें उनकी शाखाएँ थीं, जिनका अस्तित्व मुख्यतः उनके ट्रान्सवालके व्यापारपर अवलम्बित था। बाकी लोग छोटे-छोटे दूकानदार थे। उनकी दूकानें विभिन्न स्थानोंमें थीं। गणराज्यमें लगभग दो हजार फेरीवाले थे, जो माल खरीद-कर घूम-घूमकर बेचते थे। यूरोपीय घरों या होटलोंमें काम करनेवाले मजदूरोंकी संख्या लगभग १,५०० थी। इनमें से लगभग १,००० जोहानिसबर्गमें रहते थे। यह हालत थी, मोटे तौरपर, १८९४ के अन्तमें। अब संख्या बहुत बढ़ गई है। ट्रान्सवालमें भारतीय अचल सम्पत्ति नहीं रख सकते। उन्हें पृथक् बस्तियोंमें रहनेका आदेश दिया जा सकता है। उन्हें व्यापारके नये परवाने नहीं दिये जाते। उन्हें ३ पौंडका विशेष पंजीकरण (रजिस्ट्रेशन)-शुल्क देना पड़ता है। ये सब प्रतिबन्ध गैर-क़ानूनी हैं, क्योंकि ये लंदन-समझौतेके विरुद्ध हैं। लंदन-समझौतेके द्वारा तो सम्राज्ञीकी समस्त प्रजाके अधिकारोंको सुरक्षित कर दिया गया है। परन्तु सम्राज्ञीके भूतपूर्व उपनिवेश-मंत्रीने समझौतेका उल्लंघन करनेकी अनुमति दे दी थी, इसलिए ट्रान्सवाल उपर्युक्त प्रतिबन्ध लादनेमें समर्थ हुआ है। १८९४-९५ में इन प्रतिबन्धोंपर पंच-फैसला कराया गया था और पंचने भारतीयोंके खिलाफ निर्णय दिया। अर्थात्, उसने कह दिया कि गणराज्य इन कानूनोंको मंजूर करनेका अधिकार

रखता है। पंचके निर्णयके खिलाफ ब्रिटिश सरकारको एक प्रार्थनापत्र[1] भेजा गया था। श्री चेम्बरलेनने अब उसपर अपना निर्णय दे दिया है। उन्होंने प्रार्थनाके प्रति सहानुभूति तो व्यक्त की है, परन्तु पंचका निर्णय स्वीकार कर लिया है। तथापि उन्होंने समय-समयपर ट्रान्सवाल-सरकारसे मैत्रीपूर्ण निवेदन करते रहनेका वादा किया है और इसका अधिकार सुरक्षित रखा है। और अगर निवेदन काफी जोरदार हुए तो हमें कोई सन्देह नहीं कि अन्ततः हमें न्याय प्राप्त होकर रहेगा। इसलिए हम सार्वजनिक संस्थाओंसे प्रार्थना करते हैं कि वे अपने प्रभावका उपयोग करें, ताकि ये निवेदन ऐसे हों जिनका वांछित परिणाम हो सके। मैं एक उदाहरण दे दूँ। मालाबोक-युद्ध[2]के समय जब ब्रिटिश प्रजाजनोंको भरती किया जा रहा था, बहुत-से लोगोंने विरोध किया था और ब्रिटेनकी सरकारसे हस्तक्षेप करनेकी माँग की थी। पहले-पहल जो उत्तर दिया गया वह इस आशयका था कि ब्रिटेनकी सरकार गणराज्यके कामोंमें हस्तक्षेप नहीं कर सकती। इसपर समाचार-पत्र बौखला उठे और फिरसे जोरदार शब्दोंमें प्रार्थनापत्र भेजे गये। आखिरकार ट्रान्सवाल-सरकारके पास यह अनुरोध-पत्र पहुँचा कि ब्रिटिश प्रजाजनोंको भरती न किया जाये। यह हस्तक्षेप नहीं था, फिर भी अनुरोधको माने बिना रहा नहीं जा सकता था और ब्रिटिश प्रजाजनोंकी भरती रोक दी गई। क्या हम आशा करें कि हमारे विषयमें भी ऐसा ही सफल अनुरोध किया जायेगा? हमारा निवेदन है कि हमारा समाज भले ही भरती-विरोधी आन्दोलनसे सम्बन्ध रखनेवाले समाजके बराबर महत्त्व न रखता हो, फिर भी हमारी शिकायतें उसकी शिकायतोंसे बहुत ज्यादा महत्त्वपूर्ण हैं।

ऐसा कोई अनुरोध किया जाये या न किया जाये, पंचके निर्णयसे ऐसे प्रश्न उठेंगे, जिनपर श्री चेम्बरलेनको ध्यान देना ही होगा। ट्रान्सवालके सैकड़ों भारतीय वस्तु-भंडारोंका क्या किया जायेगा? क्या वे सब बन्द कर दिये जायेंगे? क्या उन सब लोगोंको पृथक् बस्तियोंमें रहनेको बाध्य किया जायेगा, और अगर हाँ, तो कौन-सी बस्तियोंमें? दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यकी राजधानी प्रिटोरियामें रहनेवाले मलायी लोगोंको हटानेके सिलसिलेमें ब्रिटिश एजेंटने ट्रान्सवालकी बस्तियोंका वर्णन इस प्रकार किया है:

१. देखिए खण्ड १, पृष्ठ १८९–२११।

२. उत्तरी ट्रान्सवालकी मालाबोक नामक जातिके साथ बोअर लोगोंका युद्ध।

जिस स्थानका उपयोग कूड़ा-करकट इकट्ठा करनेके लिए होता है और जहाँ शहर और बस्तीके बीचके नालेमें झिर-झिरकर जानेवाले पानीके सिवा दूसरा पानी है ही नहीं, उसपर बसी हुई छोटी-सी बस्तीमें लोगोंको ठूँस देनेका अनिवार्य परिणाम यह होगा कि उनके बीच भयानक किस्मके बुखार और दूसरे रोग फैल जायेंगे। इससे उनके प्राण और शहरमें रहनेवाले लोगोंका स्वास्थ्य भी खतरेमें पड़ जायेगा। (सरकारी रिपोर्ट — 'ग्रीन बुक', संख्या २, १८९३, पृष्ठ ७२)।

अगर उन्हें अपने वस्तु-भंडार बेचनेके लिए बाध्य किया गया, तो कोई मुआवजा दिया जायेगा या नहीं? फिर, कानून स्वयं दुविधाजनक है। पंचसे उसकी व्याख्या करनेको कहा गया था। उसने अब यह काम ट्रान्सवाल के उच्च न्यायालयपर छोड़ दिया है। हमारा दावा है कि उस कानूनके द्वारा सरकार हमें बस्तियोंमें निवास करने मात्रके लिए बाध्य कर सकती है। परन्तु सरकार दावा करती है कि निवासमें दूकानें भी शामिल हैं और इसलिए उस कानूनके अन्तर्गत हम निर्दिष्ट बस्तियोंके बाहर व्यापार भी नहीं कर सकते। कहा जाता है कि उच्च न्यायालय सरकारी व्याख्याके पक्षमें है।

ट्रान्सवालमें यही शिकायतें बस नहीं हैं। ये तो केवल वे शिकायतें हैं, जिनपर पंचका निर्णय प्राप्त किया गया था। परन्तु एक कानून ऐसा है जो रेलवे अधिकारियोंको रोकता है कि वे रेलकी पहले और दूसरे दर्जेकी टिकटें न दें। आदिवासी और अन्य "गैर-गोरे" लोगोंके लिए एक टीनका डिब्बा सुरक्षित रखा जाता है। उसमें हमारी पोशाक, हमारे बरताव या हमारी स्थितिकी परवाह किये बिना हमें अक्षरश: भेड़ोंके समान धाँध दिया जाता है। नेटालमें ऐसा कोई कानून तो नहीं है, मगर छोटे-छोटे कर्मचारी परेशान करते रहते हैं। कठिनाई मामूली नहीं है। डेलागोआ-बेमें अधिकारी भारतीयोंका इतना आदर करते हैं कि वे उनको तीसरे दर्जेमें सफर करने ही नहीं देते। बात यहाँ तक है कि अगर कोई गरीब भारतीय दूसरे दर्जेमें सफर करनेमें समर्थ न हो तो उसे तीसरे दर्जेकी टिकटसे दूसरे दर्जेमें सफर करने दिया जाता है। वही भारतीय जब ट्रान्सवालकी सीमापर पहुँचता है तब अपने मान-सम्मानको समेट लेनेके लिए बाध्य कर दिया जाता है। उससे परवाना बतानेको कहा जाता है और फिर, चाहे उसके पास पहले

दर्जेका टिकट हो, चाहे दूसरे दर्जेका, उसे तीसरे दर्जेके डिब्बेमें ठूँस दिया जाता है। उस तकलीफदेह जगहमें छोटी यात्रा भी महीने-भरकी यात्राके समान लम्बी मालूम होती है। यही बात नेटालकी सीमामें भी है। चार माह पूर्व डर्बनमें एक भारतीय सज्जनने प्रिटोरियाके लिए दूसरे दर्जेका टिकट खरीदा। उन्हें आश्वासन दिया गया था कि वे सकुशल यात्रा कर सकेंगे। फिर भी जब वे ट्रान्सवालकी सीमाके एक स्टेशन फ़ोक्सरस्ट पहुँचे तो उन्हें जबरन डिब्बेसे उतार दिया गया। इतना ही बस नहीं था, उस दिन वे उस गाड़ीसे यात्रा कर ही नहीं सके, क्योंकि उसमें तीसरे दर्जेका डिब्बा था ही नहीं। इन कानूनोंसे हमारे व्यापारमें भी गम्भीर बाधा पड़ती है। बहुत-से लोग तो जबतक अनिवार्य नहीं हो जाता, एक जगहसे दूसरी जगह जाते ही नहीं।

फिर, ट्रान्सवालमें, दक्षिण आफ्रिकी आदिवासियोंकी तरह, भारतीयोंको अपने साथ यात्राका परवाना रखना पड़ता है, जिसका मूल्य एक शिलिंग होता है। यह उनका यात्रा करनेका अनुमति-पत्र होता है। मेरा खयाल है कि यह सिर्फ एक-तरफा सफरके लिए मिलता है। इसका एक उदाहरण यह है कि श्री हाजी मोहम्मद हाजी दादाको डाककी गाड़ीसे उतार दिया गया था और उन्हें परवाना लेनेके लिए, संगीनका काम देनेवाले पुलिसके शंबोक[1] के इशारेपर, तीन मील पैदल चलना पड़ा था। परवाना देनेवाला अधिकारी उन्हें जानता था, इसलिए उसने उनको परवाना देना गैर-जरूरी माना। फिर भी वे घोड़ागाड़ी तो चूक ही गये और उन्हें फ़ोक्सरस्टसे चार्ल्सटाउन तक पैदल जाना पड़ा।

प्रिटोरिया और जोहानिसबर्गमें भारतीय अधिकारपूर्वक पैदल पटरियों-पर नहीं चल सकते। मैं 'अधिकारपूर्वक' शब्दका प्रयोग सोच-समझकर कर रहा हूँ, क्योंकि साधारणतः व्यापारियोंके साथ छेड़छाड़ नहीं की जाती। जोहानिसबर्गमें तो सफाई-बोर्डका ऐसा एक उपनियम भी है। प्रिटोरियामें श्री पिल्लै नामके एक सज्जनको, जो मद्रास विश्वविद्यालयके स्नातक हैं, धक्के देकर पटरीसे बाहर कर दिया गया था। उन्होंने इस बारेमें अखबारोंमें लिखा। ब्रिटिश एजेंटका ध्यान भी इसकी ओर खींचा गया। परन्तु

१. गैंडेकी खालका कोड़ा। दक्षिण आफ्रिकी गोरे मालिक अपने भारतीय या देशी नौकरोंको पीटनेके लिए अक्सर 'शंबोक' का प्रयोग करते थे।

यद्यपि ब्रिटिश एजेंट भारतीयोंके प्रति सहानुभूति रखते थे, उन्होंने हस्तक्षेप करनेसे इनकार कर दिया।

जोहानिसबर्गके सोना-खान-कानूनोंके अनुसार भारतीय लोग खान चलानेके परवाने नहीं पा सकते। और उनका देशी सोना रखना या बेचना भी अपराध माना जाता है।

ब्रिटिश प्रजाको सैनिक भरतीसे मुक्त रखनेकी संधि ट्रान्सवाल-सरकारने इस शर्तपर स्वीकार की है कि उसमें 'ब्रिटिश प्रजा'का अर्थ केवल 'गोरे लोग' होगा। इस विषयपर अब श्री चेम्बरलेनको एक प्रार्थनापत्र[1] भेजा गया है। इस व्याख्याके अनुसार, सम्राज्ञीकी भारतीय प्रजापर जो निर्योग्यताएँ मढ़ी गई हैं उनके अलावा, जैसा कि लंदन *टाइम्स*ने कहा है, शायद हमें "ब्रिटिश भारतीय प्रजाजनोंकी सेनाको ट्रान्सवालकी संगीनोंमे ब्रिटिश सेनाकी संगीनोंपर खदेड़े जाते देखना होगा।"

आरेंज फ्री स्टेट

आरेंज फ्री स्टेटने, जैसा कि मैं एक अखबारसे उद्धृत कर चुका हूँ, ब्रिटिश भारतीयोंका वहाँ रहना असम्भव कर दिया है। हमें उस राज्यसे खदेड़ दिया गया है और इससे हमारा ९,००० पौंडका नुकसान हुआ है। हमारे वस्तु-भंडार बन्द कर दिये गये हैं और हमें उनका कोई मुआवजा नहीं दिया गया। इस मामलेसे विशेष सम्बद्ध भारतीय व्यापारियोंकी भावी उन्नतिकी आशाओंपर जो पाला पड़ गया उसकी तो बात ही अलग, परन्तु क्या श्री चेम्बरलेन हमारी इतनी शिकायत भी सच्ची मानेंगे और आरेंज फ्री स्टेटसे हमारे ९,००० पौंड दिला देंगे? मैं उन सब व्यापारियोंको जानता हूँ। उनमें से अधिकतर खदेड़े जानेके पहले धनिकतम व्यापारी माने जाते थे और वे फिरसे अपनी पहलेकी हालतमें पहुँच नहीं सके। जिस कानूनके अन्तर्गत भारतीयोंको खदेड़ा गया है उसे "एशियाई गैर-गोरोंकी बाढ़ रोकनेका कानून" कहा जाता है। उसके अनुसार कोई भी भारतीय आरेंज फ्री स्टेट-में दो महीनेसे ज्यादा नहीं रह सकता। अगर कोई ज्यादा रहना चाहता है तो उसके लिए गणराज्यके अध्यक्षकी अनुमति लेना जरूरी है। और उसकी

१. देखिए खण्ड १, पृष्ठ २५८–२६०।

अर्जीपर उसके दिये जानेकी तारीखसे ३० दिनके अन्दर, और अन्य औपचारिक कार्रवाइयाँ हो जानेके पहले, विचार नहीं किया जा सकता। इसपर भी, कोई भारतीय वहाँ अचल सम्पत्ति नहीं रख सकता और न कोई व्यापार या खेती ही कर सकता है।

अध्यक्षको अधिकार है कि वह वहाँ रहनेकी ऐसी खंडित अनुमति "परिस्थितियोंके अनुसार" दे या न दे। इसके अलावा, वहाँ रहनेवाले प्रत्येक भारतीयको १० पौंड वार्षिक कर देना पड़ता है। व्यापार या खेती-सम्बन्धी धाराके पहली बार भंग करनेकी सजा २५ पौंड जुर्माना या तीन महीनेकी सादी या कड़ी कैद है। बादमें सब अपराधोंके लिए सजा दूनी होती जाती है।

परन्तु सज्जनो, आपको हाल ही में नेटालके एजेंट-जनरल[1]ने बताया है कि नेटालमें भारतीयोंके साथ जितना अच्छा व्यवहार किया जाता है उससे ज्यादा अच्छा और कहीं नहीं होता; अधिकतर गिरमिटिया भारतीय वापसी-टिकटका फायदा नहीं उठाते, यही मेरी पुस्तिकाका सबसे अच्छा जवाब है; और, रेलवे तथा ट्रामगाड़ियोंके कर्मचारी भारतीयोंके साथ पशुओंके जैसा व्यवहार नहीं करते और न अदालतें ही उन्हें न्यायसे वंचित रखती हैं।

एजेंट-जनरलके प्रति अधिकतम सम्मानके साथ उनके पहले कथनके बारेमें मैं इतना कह सकता हूँ कि ९ बजे रातके बाद परवानेके बिना बाहर निकलनेपर जेलमें डाल दिया जाना, एक स्वतंत्र देशमें नागरिकताका नितान्त प्राथमिक अधिकार न दिया जाना, गुलामों या, ज्यादासे ज्यादा, स्वतंत्र गिरमिटियोंकी अपेक्षा ऊँची हैसियत देनेसे इनकार किया जाना और ऊपर बताये हुए अन्य प्रतिबन्धोंका लगाया जाना — ये सब अगर अच्छे

१. हरी पुस्तिकाके प्रकाशित होनेपर १४ सितम्बरको रायटरने उसका एक भ्रमोत्पादक सारांश अखबारोंको भेज दिया। गांधीजीने पुस्तिकामें भारतीयोंके प्रति दुर्व्यवहारके जो आरोप किये थे उनका नेटाल-स्थित एजेंट-जनरलने खण्डन करनेका प्रयत्न किया। मद्रासके भाषणमें गांधीजीने एजेंट-जनरलकी सफाईका प्रतिवाद किया था, जो यहाँ "परंतु, सज्जनो, ..." से लेकर "भारतीय समाजकी समृद्धिशीलता . . ." (पृष्ठ ४४) तकके अनुच्छेदोंमें उपलब्ध है। इस अंशको हरी पुस्तिकाकी दूसरी आवृत्तिमें शामिल कर लिया गया था और उसकी प्रस्तावनामें इसे 'परिशिष्ट' कहा गया था (देखिए पृष्ठ ११४–१२२; और इस विषयमें अखबारके नाम गांधीजीके पत्रके लिए देखिए पृष्ठ ९२–९६)।

व्यवहारके उदाहरण हैं तो 'अच्छे व्यवहार' के सम्बन्धमें एजेंट-जनरलकी धारणा बहुत विलक्षण होनी चाहिए। और अगर दुनिया-भरमें भारतीयोंके साथ किये जानेवाले व्यवहारमें यही सर्वोत्तम है तो, साधारण बुद्धिके अनुसार, दुनियाके दूसरे हिस्सोंमें और यहाँ भी भारतीयोंका भाग्य निस्सन्देह बहुत ही दुःखमय होना चाहिए। बात यह है कि एजेंट-जनरल श्री वाल्टर पीसको सरकारी चश्मेसे देखना पड़ता है और उन्हें प्रत्येक सरकारी चीज खुशनुमा दिखाई देना स्वाभाविक ही है। कानूनी निर्योग्यताएँ नेटाल-सरकारके कार्यकी निन्दक हैं, और एजेंट-जनरलसे अपने-आपकी निन्दा करनेकी तो अपेक्षा ही कैसे की जा सकती है? अगर वे या जिसके वे प्रतिनिधि हैं वह सरकार स्वीकार-भर कर लेती कि ऊपर बताई हुई कानूनी निर्योग्यताएँ ब्रिटिश संविधानके मूल सिद्धान्तोंके प्रतिकूल हैं, तो आज शामको मेरे आपके सामने खड़े होनेकी जरूरत ही न होती। मैं आदरपूर्वक निवेदन करता हूँ कि एजेंट-जनरलने जो मत व्यक्त किया है उसको अपने ही अपराधके बारेमें किसी अभियुक्तके कथनसे अधिक महत्त्व नहीं दिया जा सकता।

गिरमिटिया भारतीय आम तौरपर वापसी-टिकटका फायदा नहीं उठाते, इस वस्तुस्थितिका हम प्रतिवाद नहीं करते। परन्तु यह हमारी शिकायतोंका सर्वोत्तम उत्तर है, इसका तो खंडन हमें करना ही होगा। इस वस्तुस्थितिसे निर्योग्यताओंका अस्तित्व झूठा कैसे साबित हो सकता है? इससे तो यह सिद्ध हो सकता है कि जो भारतीय वापसी-टिकटका फायदा नहीं उठाते वे या तो निर्योग्यताओंकी परवाह नहीं करते या उनके बावजूद उपनिवेशमें बने रहते हैं। यदि पहली बात हो तो ज्यादा समझदार लोगोंका कर्तव्य है कि वे भारतीयोंको उनकी स्थिति महसूस करायें और उन्हें समझायें कि उन निर्योग्यताओंके सामने सिर झुकानेका अर्थ अपना अधःपतन होता है। अगर दूसरी बात हो तो यह भारतीय राष्ट्रके धैर्य और क्षमा-वृत्तिका, जिसे श्री चेम्बरलेनने ट्रान्सवाल पंच-फैसला-सम्बन्धी अपने खरीतेमें स्वीकार किया था, एक और उदाहरण है। वे निर्योग्यताओंको सहन करते हैं, यह कोई कारण नहीं कि निर्योग्यताओंको दूर न किया जाये, या उन्हें जितना सम्भव है उतने अच्छे व्यवहारकी द्योतक बताया जाये।

फिर, ये लोग हैं कौन, जो भारत लौटनेके बदले उस उपनिवेशमें बस जाते हैं? वे सबसे गरीब वर्गोंके और सबसे ज्यादा घनी आबादीवाले जिलोंके

ोग हैं, जो भारतमें शायद आधी भुखमरीकी हालतमें रहते थे। वे नेटाल गये , अगर सम्भव हो तो वहाँ बसनेके लिए; और अगर उनके परिवार थे तो न्हें भी साथ ले गये हैं। फिर क्या ताज्जुब कि ये अपने गिरमिटकी अवधि री करनेके बाद, जैसा कि श्री सांडर्सने कहा है, उसी आधी भुखमरीकी ालतमें लौटनेके बजाय एक ऐसे देशमें बस जाते हैं, जहाँकी आबहवा उत्कृष्ट और जहाँ वे अच्छी-भली जीविका उपार्जित कर सकते हैं? भूखों मरनेवाला ादमी रोटीके एक टुकड़ेके लिए कितना भी दुर्व्यवहार सह लेता है।

क्या ट्रान्सवालमें गोरे परदेशियों (एटलॉण्डर्स)[१] की शिकायतोंकी सूची ाफी लम्बी नहीं है? फिर भी, अपने साथ होनेवाले दुर्व्यवहारके बावजूद या वे हजारोंकी संख्यामें इसलिए ट्रान्सवालमें एकत्र नहीं होते कि वहाँ वे पने पुराने देशकी अपेक्षा ज्यादा सरलतासे जीविका उपार्जित कर सकते हैं? यह भी स्मरण रखना चाहिए कि श्री पीसने अपना वक्तव्य देते समय वतंत्र भारतीय व्यापारियोंकी कोई गणना नहीं की। ये व्यापारी स्वतंत्र ्पसे उस उपनिवेशमें जाते हैं और अपमान तथा निर्योग्यताओंको सबसे यादा महसूस करते हैं। अगर गोरे परदेशियोंसे यह नहीं कहा जा सकता क दुर्व्यवहार नहीं सह सकते तो ट्रान्सवाल न आओ, तो फिर उद्योगी ारतीयोंसे ऐसा कहना तो और भी निरर्थक है। हम शाही परिवारके सदस्य और उसी महिमामयी माँके बच्चे हैं — हो सकता है, गोद लिये बच्चे हों; ौर हमें उन्हीं अधिकारों और विशेषाधिकारोंका आश्वासन दिया गया है, ो यूरोपीय बच्चोंको प्राप्त हैं। यही विश्वास था जिसको लेकर हम टाल-उपनिवेशमें गये थे और हमें भरोसा है कि हमारे विश्वासका आधार जबूत था।

एजेंट-जनरलने मेरी पुस्तिकाके इस कथनका प्रतिवाद किया है क रेलवे और ट्रामगाड़ियोंके कर्मचारी भारतीयोंके साथ पशुओं जैसा यवहार करते हैं। अगर मेरी कही हुई बातें गलत भी हों तो इससे कानूनी र्योग्यताएँ गलत साबित नहीं होतीं। और हमने प्रार्थनापत्र तो केवल ानूनी निर्योग्यताओंके बारेमें ही भेजे हैं। उनको ही हटानेके लिए हम

१. जो गोरे दक्षिण आफ्रिकावासी डचों या बोअरोंके लिए परदेशी थे। अर्थात्, ासपासके देशोंसे वहाँ गये हुए गोरे और बादमें गये हुए अंग्रेज, जर्मन आदि।

ब्रिटेन और भारतकी सरकारोंके सीधे हस्तक्षेपकी प्रार्थना करते हैं। परन्तु मेरा तो दावा है कि एजेंट-जनरलको गलत जानकारी दी गई है। मैं दुहराकर कहता हूँ कि भारतीयोंके साथ रेलवे और ट्राम कर्मचारियोंका बरताव पशुओं जैसा ही है। मैंने पहले-पहल जब यह वक्तव्य दिया था उसे अब लगभग दो वर्ष हो गये हैं। वह ऐसे समाजमें दिया गया था, जहाँ तुरन्त उसका प्रतिवाद किया जा सकता था। मैंने नेटालकी स्थानिक संसदके सदस्योंके नाम एक *खुली चिट्ठी* लिखी थी। उपनिवेशमें उसका व्यापक रूपसे प्रचार हुआ था और दक्षिण आफ्रिकाके प्रायः प्रत्येक प्रमुख पत्रने उसका उल्लेख किया था। उस समय किसीने उसका खंडन नहीं किया। कुछ पत्रोंने तो उसे स्वीकार भी किया था। ऐसी परिस्थितियोंमें मैंने उसे अपनी यहाँ प्रकाशित पुस्तिका[1]में उद्धृत कर दिया। मेरा स्वभाव बातोंको अतिरंजित करनेका नहीं है और अपने ही पक्षमें प्रमाण पेश करना मुझे बहुत अप्रिय मालूम होता है। परन्तु मेरे वक्तव्यको और उसके द्वारा उस कार्यको जिसकी मैं हिमायत कर रहा हूँ, बदनाम करनेका प्रयत्न किया गया है। इसलिए उस कार्यके खयालसे आपको यह बता देना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ कि जिस *खुली चिट्ठी*में मैंने वह वक्तव्य दिया था उसके बारेमें दक्षिण आफ्रिकी पत्रोंके क्या विचार हैं।

जोहानिसबर्गके प्रमुख पत्र *स्टार*ने कहा है :

> **श्री गांधीने प्रभावोत्पादक ढंगसे, सौम्यताके साथ और अच्छा लिखा है। उन्होंने स्वयं उपनिवेशमें आनेके बाद कुछ अन्याय भोगा है। परन्तु उनकी भावनाएँ उससे प्रभावित हुई नहीं दीखतीं। और यह स्वीकार करना ही होगा कि "खुली चिट्ठी" की ध्वनिपर उचित रूपसे कोई आपत्ति नहीं की जा सकती। श्री गांधीने अपने उठाये हुए प्रश्नोंकी मीमांसा स्पष्ट संयमके साथ की है।**

नेटाल-सरकारका मुखपत्र *नेटाल मर्क्युरी* कहता है :

> **श्री गांधीने शान्ति और सौम्यताके साथ लिखा है। उनसे जितनी निष्पक्षताकी अपेक्षा की जा सकती है, उतनी निष्पक्षता उनमें है। और इस विचारसे तो कि, जब वे उपनिवेशमें आये थे उस समय**

१. हरी पुस्तिका।

वकील-मंडल (लॉ सोसाइटी)[१] ने उनके साथ बहुत न्याययुक्त व्यवहार नहीं किया था, वे अपेक्षासे कुछ ज्यादा ही निष्पक्ष हैं।

अगर मैंने निराधार बातें कही होतीं तो पत्रोंने *खुली चिट्ठी*को ऐसा प्रमाणपत्र न दिया होता।

लगभग दो वर्ष पूर्वकी बात है, एक भारतीयने नेटाल रेलवेका एक दूसरे दर्जेका टिकट खरीदा। उसे रात-भरकी यात्रामें तीन बार परेशान किया गया। यूरोपीय यात्रियोंको खुश करनेके लिए दो बार डिब्बा बदलनेको बाध्य किया गया। मामला अदालतके सामने गया और भारतीयको क्षतिपूर्तिके तौरपर १० पौंड प्राप्त हुए। मामलेमें वादीने यह बयान दिया था:

> **मैं डेढ़ बजे दुपहरको चार्ल्सटाउनसे रवाना होनेवाली गाड़ीके दूसरे दर्जेके डिब्बेमें बैठा। उस डिब्बेमें तीन अन्य भारतीय भी थे। वे न्यूकैसिलमें उतर गये। एक गोरेने डिब्बेका दरवाजा खोला और "बाहर निकल आ, सामी" कहते हुए मुझको इशारा किया। मैंने पूछा, "क्यों?" गोरेने जवाब दिया, "चूं-चपड़ मत कर, बाहर आ जा। मुझे किसी दूसरेको यहाँ बैठाना है।" मैंने कहा, "जब मैंने किराया दिया है तो यहाँसे बाहर क्यों निकलूँ?" इसपर गोरा चला गया और एक भारतीयको साथ लेकर वापस आया। मेरा खयाल है कि वह भारतीय रेलवे-कर्मचारी था। उससे कहा गया कि मुझसे बाहर निकल आनेको कहे। इसपर भारतीयने मुझसे कहा, "गोरा तुम्हें बाहर आनेका हुक्म दे रहा है; तुम्हें निकलना ही होगा।" बादमें भारतीय चला गया। मैंने गोरेसे कहा, "तुम मुझे क्यों हटाना चाहते हो? मैंने किराया दिया है और मुझे यहाँ बैठनेका अधिकार है।" गोरा इसपर क्रुद्ध हो उठा और बोला, "देख, अगर तू निकलता नहीं है तो मैं अभी तेरा कचूमर निकाल दूंगा।" वह डिब्बेके अन्दर आ गया और उसने मुझे पकड़कर बाहर खींचनेकी कोशिश की। मैंने कहा, "मुझे छोड़ दो; मैं निकल जाऊँगा।" मैं उस**

१. गांधीजीने सर्वोच्च न्यायालयमें वकालत करनेकी अनुमतिके लिए जो आवेदन-पत्र भेजा था उसका नेटालकी लॉ सोसाइटी (वकील-मंडल)ने विरोध किया था।

डिब्बेसे उतर गया। और गोरेने दूसरे दर्जेका एक दूसरा डिब्बा दिखाकर मुझे उसमें चले जानेको कहा। मैंने उसके बताये अनुसार किया। मुझे जो डिब्बा दिखाया गया वह खाली था। मेरा खयाल है कि जिस डिब्बेसे मुझे निकाला गया था उसमें वे कुछ लोग बैठाये गये, जो बैंड बजा रहे थे। वह गोरा न्यूकैसिलमें रेलवेका जिला-सुपरिटेंडेंट था। आगे — मैं बिना विघ्न-बाधाके मैरित्सबर्ग तक गया। मैं सो गया था और मैरित्सबर्गमें जब जागा तो मैंने अपने डिब्बेमें एक गोरे पुरुष, एक गोरी स्त्री और एक बच्चेको पाया। एक अन्य गोरा डिब्बेके पास आया और उसने मेरे डिब्बेके गोरेसे पूछा, "वह आपका 'बाय'[1] [नौकर] है?" मेरे सहयात्रीने अपने छोटे बच्चेकी ओर संकेत करके कहा, "हाँ [मेरा 'बाय'—लड़का—है]।" इसपर दूसरे गोरेने कहा, "नहीं, नहीं, मेरा मतलब उससे नहीं है; मैं तो उस कुलीके बारेमें पूछ रहा हूँ जो, मुआ, कोनेमें बैठा है!" यह छँटी हुई भाषा बोलनेवाला भलामानुस एक 'शंटर', यानी रेलवे-कर्मचारी था। डिब्बेमें बैठे गोरे व्यक्तिने कहा, "ओह! उसकी परवाह न कीजिए; उसे रहने दीजिए।" तब बाहरवाले गोरे (कर्मचारी)ने कहा, "मै कुलीको गोरे लोगोंके साथ डिब्बेमें नहीं बैठने दूँगा।" उसने मुझसे कहा, "सामी, बाहर आ!" मैंने कहा, "क्यों भला? न्यूकैसिलमें तो मुझे दूसरे डिब्बेसे हटाकर यहाँ बैठाया गया था!" गोरेने कहा, "हाँ-हाँ, तुझको निकलना होगा।" और वह डिब्बेमें घुसनेको हुआ। मैंने सोचा कि मेरी वही गति होगी, जो न्यूकैसिलमें हुई थी; इसलिए मैं बाहर निकल गया। गोरेने दूसरे दर्जेका दूसरा डिब्बा दिखाया। मैं उसमें चला गया। कुछ देरतक वह डिब्बा खाली रहा, मगर जब गाड़ी छूटनेवाली थी, एक गोरा उसमें आया। बादमें एक दूसरा गोरा—वही कर्मचारी—आया और उसने कहा, "अगर आपको उस गंधैले कुलीके साथ सफर करना पसन्द न हो तो मैं आपके लिए दूसरा डिब्बा देख दूँ।" *नेटाल एडवर्टाइज़र*; बुधवार, २२ नवम्बर, १८९३)।

१. बाय = लड़का। एशिया और आफ्रिकामें 'बाय' (छोकरा)—शब्द देशी नौकरके लिए भी प्रयुक्त होता है।

आपने देखा कि मैरित्सबर्गमें यद्यपि गोरे सहयात्रीने कोई आपत्ति नहीं की थी, फिर भी रेलवे-कर्मचारीने भारतीय यात्रीके साथ दुर्व्यवहार किया। अगर यह पाशविक व्यवहार नहीं है तो क्या है, मैं जानना चाहूँगा। और इस तरहकी सन्तापजनक घटनाएँ अक्सर होती रहती हैं।

मुकदमेके दौरानमें मालूम हुआ था कि सफाई-पक्षके एक गवाहको सिखाया-पढ़ाया गया था। वह उपर्युक्त रेलवे-कर्मचारियोंमें से एक था। अदालतके एक प्रश्नके उत्तरमें कि, क्या भारतीय यात्रियोंके साथ आदरका व्यवहार किया जाता है, उसने कहा—'हाँ।' कहते हैं, इसपर मुकदमा सुनने-वाले मजिस्ट्रेटने उससे कहा—"तो फिर, तुम्हारा मत मेरे मतसे भिन्न है; विचित्र बात है कि जो लोग रेलवेसे सम्बन्ध नहीं रखते वे तुमसे ज्यादा देख लेते हैं।"

इस मामलेपर डर्बनके एक यूरोपीय दैनिक पत्र *नेटाल एडवर्टाइज़र*ने निम्नलिखित विचार व्यक्त किये थे :

> **गवाहीसे निर्विवाद है कि उस अरबके साथ बुरा व्यवहार किया गया था। और यह देखते हुए कि इस तरहके भारतीयोंको दूसरे दर्जेके टिकट दिये जाते हैं, वादीको नाहक परेशान और अपमानित नहीं किया जाना चाहिए था।...यूरोपीय और गैर-यूरोपीय यात्रियोंके बीच संघर्षके खतरेको ज्यादासे ज्यादा घटा देनेके कोई निश्चित उपाय किये जाने चाहिए। उन उपायोंका प्रयोग काले या गोरे, किसी भी व्यक्तिको सन्तापजनक न हो।**

इसी मुकदमेके बारेमें *नेटाल मर्क्युरी*ने कहा है :

> **सारे दक्षिण आफ्रिकामें सभी भारतीयोंके साथ निरे कुलियोंका जैसा व्यवहार करनेकी वृत्ति फैली हुई है। इस बातकी कोई परवाह नहीं की जाती कि वे शिक्षित और स्वच्छतासे रहनेवाले हैं या नहीं।... हमने अनेक बार देखा है कि हमारी रेल-गाड़ियोंमें गैर-गोरे यात्रियोंके साथ सभ्यताका व्यवहार बिलकुल नहीं किया जाता। यद्यपि यह अपेक्षा करना उचित न होगा कि एन० जी० आर०[1] के गोरे कर्मचारी उनके साथ वैसा ही आदरका**

१. नेटाल गवर्नमेंट रेलवे।

व्यवहार करें, जैसा कि वे यूरोपीय यात्रियोंके साथ करते हैं, फिर भी हम समझते हैं, गैर-गोरे यात्रियोंके साथ व्यवहार करनेमें अगर वे जरा अधिक शिष्टतासे काम लें तो इससे उनकी शानमें बट्टा न लगेगा। (२४-११-१८९३)।

दक्षिण आफ्रिकाका एक प्रमुख पत्र *केप टाइम्स* कहता है:

नेटालने एक विचित्र नजारा उपस्थित कर रखा है। जिस वर्गके लोगोंके बिना उसका काम चलना ही कठिन है, उसीके प्रति वह चरम कोटिके तिरस्कारका पोषण करता है। उस देशसे भारतीय आबादीके निकल जानेपर व्यापारका बैठ जाना अनिवार्य है, और उस हालतकी कल्पना-मात्र की जा सकती है। फिर भी भारतीय वहाँ सबसे ज्यादा तिरस्कृत जीव हैं। रेलगाड़ीमें वे यूरोपीयोंके साथ एक ही डिब्बेमें यात्रा नहीं कर सकते, ट्रामगाड़ियोंमें बैठ नहीं सकते, होटलवाले उन्हें जगह और भोजन देनेसे इनकार करते हैं और सार्वजनिक स्नान-गृहोंका उपयोग करनेके अधिकारसे भी वे वंचित हैं! (५-७-१८९१)।

श्री ड्रमंड एक एंग्लो-इंडियन हैं। नेटालवासी भारतीयोंके साथ उनका घनिष्ठ सम्बन्ध है। उन्होंने *नेटाल मर्क्युरी* में अपनी राय इस तरह जाहिर की है:

मालूम होता है कि यहाँके बहुसंख्य लोग भूले हुए हैं कि भारतीय ब्रिटिश प्रजा हैं, हमारी रानी ही उनकी महारानी हैं। सिर्फ एक इसी कारणसे आशा की जा सकती है कि यहाँ उनके लिए जिस तिरस्कारपूर्ण शब्द "कुली"का प्रयोग होता है, वह न किया जाये। भारतमें केवल निचले दर्जेके गोरे ही वहाँके लोगोंको "निगर" [हब्शी] कहकर पुकारते हैं और उनके साथ ऐसा व्यवहार करते हैं, मानो वे किसी आदर-मानके योग्य हैं ही नहीं। यहाँके अनेक लोगोंके समान ही उनकी नजरमें भारतीयोंको भारी बोझ या यंत्रमात्र माना जाता है।...आम तौरपर अज्ञानी लोग भारतीयोंको "पृथ्वीका मल" आदि कहा करते हैं, और यह सुनना बड़ा दुःखदायी है। गोरे लोगोंसे उनको सराहना नहीं मिलती, केवल निन्दा ही प्राप्त होती है।

मैं समझता हूँ कि मैंने अपने इस वक्तव्यको साबित करनेके लिए काफी बाहरी प्रमाण दे दिये हैं कि रेलवे-कर्मचारी भारतीयोंके साथ पशुवत् व्यवहार करते हैं। ट्रामगाड़ियोंमें भारतीयोंको अक्सर अन्दर बैठने नहीं दिया जाता, बल्कि, वहाँ की भाषामें, 'अपस्टेयर्स' [अर्थात् छतपर] भेज दिया जाता है। उन्हें अक्सर एक बैठकसे दूसरी बैठकपर हटा दिया जाता है और आगेकी बेंचोंपर तो बैठने ही नहीं दिया जाता। मैं एक भारतीय अफसरको जानता हूँ, जिन्हें जगह खाली होनेपर भी ट्रामके पाँवदानपर खड़ा रखा गया था। वे एक तमिल सज्जन हैं और नयेसे नये यूरोपीय ढंगकी पोशाक पहनते थे।

जहाँतक इस कथनका सम्बन्ध है कि भारतीयोंको अदालतोंमें न्याय मिलता है, मेरा निवेदन है कि मैंने यह कभी नहीं कहा कि नहीं मिलता; न मैं यही माननेको तैयार हूँ कि हमेशा और सब अदालतोंमें मिलता ही है।[1]

भारतीय समाजकी समृद्धिशीलता साबित करनेके लिए आँकड़े देना जरूरी नहीं है। इससे तो इनकार नहीं किया गया कि जो भारतीय नेटाल जाते हैं वे अपनी जीविका उपार्जित करते ही हैं, और सो भी उत्पीड़नके बावजूद।

तो, यह स्थिति है दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंकी। केवल डेलागोआ-बे इसका अपवाद है। वहाँ भारतीयोंका बहुत आदर होता है और उन्हें किन्हीं खास निर्योग्यताओंके शिकार बनकर रहना नहीं पड़ता। उस नगरके मुख्य मार्गपर लगभग आधी स्थावर सम्पत्तिके मालिक भी वे हैं। उनमें से ज्यादातर व्यापारी हैं। कुछ सरकारी नौकरियोंमें भी हैं। दो पारसी सज्जन इंजीनियर हैं। एक पारसी सज्जन और भी हैं। "सेन्योर एडल" नामसे उन्हें डेलागोआ-बेका बच्चा-बच्चा जानता है। परन्तु व्यापारी लोग अधिकतर मुसलमान और बनिये हैं, जो पुर्तगीज़ भारतसे आये हैं।

इस दुर्दशाके कारण और उपायकी जाँच करना अभी बाकी है। यूरोपीयोंका कहना है कि भारतीयोंकी आदतें अस्वच्छ हैं, वे कुछ खर्च नहीं करते और झूठे तथा चरित्रहीन हैं। ये आपत्तियाँ नरमसे नरम विचारोंवाले पत्रोंकी हैं। दूसरे तो हमें सीधी-सीधी गालियाँ ही देते हैं। झूठेपन और अस्वच्छ आदतोंका आरोप आंशिक रूपमें सही है। अर्थात् दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंकी

१. यह अनुच्छेद मद्रासके भाषणका अंश है, किन्तु मालूम होता है भूलसे हरी पुस्तिकाके दूसरे संस्करणमें छूट गया था।

आदतें, कुल मिलाकर, ऊँचेसे ऊँचे खयालसे जैसी होनी चाहिए वैसी अच्छी नहीं हैं। परन्तु यूरोपीय समाजने हमपर जैसा आरोप लगाया है और उसका जिस तरह उपयोग किया गया है, उसको हम बिलकुल नामंजूर करते हैं। और हमने यह बतानेके लिए दक्षिण आफ्रिकाके डाक्टरोंका मत उद्धृत किया है कि "वर्गका विचार किया जाये तो, निम्नतम वर्गके भारतीय निम्नतम वर्गके यूरोपीयोंकी अपेक्षा ज्यादा अच्छी तरह और ज्यादा अच्छे मकानोंमें रहते हैं और वे स्वच्छताकी व्यवस्थाका ज्यादा खयाल रखते हैं।" डाक्टर वील, बी० ए०, एम० बी०, बी० एस० (कैंटब)ने भारतीयोंको "शारीरिक दृष्टिसे स्वच्छ और गन्दगी तथा लापरवाहीसे उत्पन्न होनेवाले रोगोंसे मुक्त" पाया है। उन्होंने यह भी देखा है कि "उनके मकान आम तौरपर साफ रहते हैं और सफाईका काम वे राजी-खुशीसे करते हैं।"[१] परन्तु हम यह नहीं कहते कि इस विषयमें हम सुधारके परे हैं। अगर सफाई-सम्बन्धी कानून न हों तो शायद हम पूरे सन्तोषजनक तरीकेसे न रहें। इस बारेमें, जैसा कि अखबारोंसे मालूम होगा, दोनों समाज बराबर गलती करते हैं। कुछ भी हो, यह तो हमपर मढ़ी जानेवाली तमाम गम्भीर निर्योग्यताओंका कोई कारण नहीं हो सकता। कारण अन्यत्र है, जैसा कि मैं आगे चलकर बताऊँगा। वे सफाईके कानूनोंको खूब कड़ाईके साथ अमलमें लायें। उससे हमें और भी लाभ होगा। हममें जो लोग आलसी हैं, वे अपने आलस्यसे जाग उठेंगे, और यह ठीक ही होगा। जहाँतक झूठेपनेकी बात है, यह आरोप गिरमिटिया भारतीयोंके बारेमें कुछ हद तक सही है; परन्तु व्यापारियोंके सम्बन्धमें हद दर्जेतक अतिरंजित है। फिर भी, मेरा दावा है कि गिरमिटिया भारतीय जिन परिस्थितियोंमें रखे गये हैं उनमें रहकर कोई भी दूसरा समाज जितना सच्चा रहता, उससे वे ज्यादा सच्चे रहे हैं। उपनिवेशी उनको नौकरोंके रूपमें पसन्द करते हैं और उन्हें 'उपयोगी तथा विश्वस्त' कहते हैं — यह हकीकत ही कह देती है कि उन्हें जैसे 'सुधारके परे झूठे' बताया जाता है वैसे वे नहीं हैं। तथापि, जैसे ही वे भारत छोड़ते हैं, अपनेको मर्यादाके पथपर रखनेवाले बन्धनोंसे मुक्त हो जाते हैं। दक्षिण आफ्रिकामें उन्हें धार्मिक शिक्षाकी बुरी तरह जरूरत है; परन्तु वे उससे बिलकुल वंचित रहते हैं। उन्हें अपने देशभाइयोंके लिए अपने मालिकोंके

१. देखिए खण्ड १, पृष्ठ २०६।

खिलाफ गवाही देनेको कहा जाता है। यह कर्तव्य वे अक्सर टालते हैं। इसलिए उनकी हर परिस्थितिमें सत्यपर दृढ़ रहनेकी शक्ति धीरे-धीरे विकृत होती जाती है और बादमें वे विवश हो जाते हैं। मेरा निवेदन है कि वे तिरस्कारके बजाय दयाके पात्र हैं। यह दृष्टि दो वर्ष पूर्व मैंने दक्षिण आफ्रिकाकी जनताके सामने पेश की थी। उसने इसपर कोई आपत्ति नहीं उठाई है। दक्षिण आफ्रिकाकी यूरोपीय पेढ़ियाँ सैकड़ों भारतीयोंको करीब-करीब उनकी बातके ही भरोसे बड़े-बड़े कर्ज दे देती हैं और इसके लिए उन्हें कभी पछताना नहीं पड़ता। बैंक भी भारतीयोंको लगभग असीमित उधारी दे देते हैं। इसके विपरीत, सेठ-साहूकार यूरोपीयोंपर उतना विश्वास नहीं करते। ये वास्तविकताएँ निर्णयात्मक रूपसे साबित करती है कि भारतीय व्यापारियोंको जितना बेईमान बताया जाता है उतने बेईमान वे हो नहीं सकते। तथापि, मेरे कहनेका अर्थ यह नहीं है कि यूरोपीय व्यापारी भारतीयोंको यूरोपीयोंसे अधिक सत्यनिष्ठ मानते हैं। पर मेरा यह नम्र खयाल तो है ही कि वे दोनोंपर शायद बराबर विश्वास करते हैं, और तब उनका भरोसा भारतीयोंकी कमखर्ची, उनके अपने साहूकारको बरबाद न करनेके संकल्प और उनकी संयमी आदतोंपर होता है। एक बैंक एक भारतीयको बड़े पैमानेपर कर्ज देता आ रहा है। उसी बैंकमे एक यूरोपीय सज्जनने, जो बैंकके परिचित और उस भारतीयके मित्र थे, सट्टेके लिए ३०० पौंडका कर्ज माँगा। बैंकने जमानतके बिना उन्हें कर्ज देनेसे इनकार कर दिया। भारतीय मित्रपर उस समय भी बैंकका बहुत कर्ज निकलता था; परन्तु उसने अपनी साखकी जमानत दे दी—और इतना ही काफी हुआ। बैंकने उसकी जमानत मंजूर कर ली। इसका फल यह हुआ कि वह यूरोपीय मित्र बैंकका ३०० पौंडका कर्ज नहीं पटा सका और फिलहाल भारतीय मित्रका उतना रुपया जब्त हो गया है। वह यूरोपीय, बेशक, ज्यादा अच्छे ढंगसे रहता है और उसे भोजनके साथ कुछ शराबकी भी जरूरत होती है; और हमारा भारतीय तो सिर्फ पानी ही पीता है। हम इन आरोपोंको बिलकुल अस्वीकार करते हैं कि हम कुछ खर्च नहीं करते और हमपर आरोप लगानेवालोंसे ज्यादा चरित्रहीन हैं। परन्तु सच्चा कारण है, पहले तो व्यापारिक ईर्ष्या और दूसरे, भारत और भारतीयोंके बारेमें अज्ञान।

भारतीयोंके विरुद्ध चीख-पुकार सबसे पहले व्यापारियोंने शुरू की थी। बादमें साधारण जनता भी उसमें शामिल हो गई और अन्ततः वह

उच्च-नीच सबमें व्याप्त हो गई। यह दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयों—सम्बन्धी कानूनोंसे स्पष्ट है। आरेंज फ्री स्टेटवालोंने तो साफ कहा है कि वे एशियाइयोंसे इसलिए द्वेष करते हैं कि वे सफल व्यापारी हैं। आन्दोलन, सबसे पहले, विभिन्न राज्योंके व्यापार-मंडलोंने शुरू किया था। वे यह कहते फिरते थे कि हम भारतीय लोग ईसाइयोंको अपना स्वाभाविक शिकार और अपनी स्त्रियोंको आत्मारहित मानते हैं और हम कोढ़, उपदंश आदि बीमारियाँ फैलानेवाले हैं। अब स्थिति यहाँतक पहुँच गई है कि किसी अच्छे ईसाईके लिए एशियाइयोंके उत्पीड़नमें कोई अन्याय न देखना वैसा ही स्वाभाविक बन गया है, जैसा कि पुराने जमानेके प्रामाणिक ईसाइयोंका गुलाम-प्रथामें कोई गलती या गैर-ईसाइयत न देखना था। श्री हेनरी बेल नेटाल विधान-सभाके एक सदस्य हैं। वे एक ठेठ अंग्रेज हैं। उन्हें "सदसद्विवेकी बेल" कहकर पुकारा जाता है, क्योंकि वे एक धर्मान्तरित ईसाई हैं और धार्मिक आन्दोलनोंमें प्रमुख भाग लेते तथा विधानसभामें अक्सर अपने अन्तरात्माकी दुहाई दिया करते हैं। फिर भी ये सज्जन भारतीयोंके अत्यन्त प्रबल और कट्टर विरोधी हैं। ये अपना प्रमाणमात्र देते हैं कि उन लोगोंपर, जो उप-निवेशके मुख्य अवलम्ब रहे हैं, तीन पौंड प्रति-जन वार्षिक कर लगाना और उन्हें अनिवार्य रूपसे वापस भेज देना न्यायपूर्ण और भूत-दयात्मक कार्य है।

दक्षिण आफ्रिकामें हमारा तरीका इस द्वेषको प्रेमसे जीतनेका है। कमसे कम हमारा लक्ष्य तो यह है ही। हम बहुधा इस आदर्शमें ओछे उत-रेंगे, परन्तु अगणित उदाहरणोंसे हम बता सकते हैं कि हमने आचरण इसी भावनासे किया है। हम व्यक्तियोंको दण्ड दिलानेका प्रयत्न नहीं करते। साधारणत: उनके अन्याय धैर्यपूर्वक सह लेते हैं। आम तौरपर हमारी प्रार्थनाएँ भूतकालकी क्षतियोंके मुआवजेके लिए नहीं होतीं, बल्कि इसलिए होती हैं कि भविष्यमें उनकी पुनरावृत्ति न होने दी जाये और उनके कारणोंको दूर कर दिया जाये। भारतीय जनताके सामने भी हमने अपनी शिकायतें उसी भावनासे रखी हैं। अगर हमने व्यक्तिगत कष्टोंके उदाहरण दिये हैं तो उसमें हमारा उद्देश्य मुआवजा माँगना नहीं, भारतीय जनताके सामने अपनी स्थितिको स्पष्ट रूपसे पेश कर देना है। हम कोशिश कर रहे हैं कि अगर इस तरहका व्यवहार सम्भव करनेवाले कोई कारण हमारे अन्दर हों तो उन्हें दूर कर दें। परन्तु हम भारतके लोकनिष्ठ व्यक्तियोंकी सहानुभूति तथा

सहायता और भारत तथा ब्रिटेनकी सरकारोंकी जोरदार लिखापढ़ीके बिना सफल नहीं हो सकते। दक्षिण आफ्रिकामें भारत-सम्बन्धी अज्ञान इतना बड़ा है कि अगर हम कहें, भारत जहाँ-तहाँ खड़ी हुई झोंपड़ियों मात्रका देश नहीं है तो हमारी इतनी बातपर भी कोई विश्वास नहीं करेगा। ब्रिटेनमें लंदन *टाइम्स*, कांग्रेसकी ब्रिटिश कमेटी[1] तथा श्री भावनगरीने और भारतमें *टाइम्स आफ़ इंडिया*ने हमारी ओरसे जो काम किया है, वह फलीभूत हो ही चुका है। अवश्य ही, भारतीयोंकी स्थितिका प्रश्न समस्त साम्राज्यसे सम्बन्ध रखनेवाला प्रश्न माना गया है और प्रत्येक राजनीतिज्ञने, जिसके पास भी हम गये, हमारे साथ पूरी सहानुभूति व्यक्त की है। ब्रिटिश लोकसभाके उदार और अनुदार दोनों दलोंके सदस्योंसे हमें सहानुभूतिके पत्र प्राप्त हुए हैं। *डेली टेलीग्राफ़*ने भी हमारा समर्थन किया है। जब पहली बार मताधिकार-विधेयक पास[2] किया गया था और उसका निषेध कर दिया जानेकी कुछ चर्चा थी, उस समय नेटालके लोक-परायण व्यक्तियों तथा अखबारोंने कहा था कि विधेयक तबतक बार-बार मंजूर किया जाता रहेगा जबतक कि सम्राज्ञीकी सरकार थक न जाये। उन्होंने "ब्रिटिश प्रजा" विषयक "ढकोसले" को ठुकरा दिया था और एक अखबारने तो यहाँतक कह डाला था कि अगर विधेयकका निषेध किया गया तो वे रानीकी अधीनताका परित्याग कर देंगे। मंत्रियोंने खुल्लमखुल्ला घोषित किया था कि यदि विधेयकका निषेध किया गया तो वे देशका शासन करनेसे इनकार कर देंगे। यह समय था जब कि लन्दन *टाइम्स*के *औपनिवेशिक कामकाज* के लेखकने नेटालके विधेयकका समर्थन किया। परन्तु *थंडरर* ['टाइम्स']ने इस विषयपर लिखते हुए अपनी ध्वनि खास तौरसे बदल दी थी। उपनिवेश-मंत्रीका रुख निर्णायक मालूम होता था और ट्रान्सवाल-पंचफैसला-सम्बन्धी खरीता ठीक समयपर पहुँच गया था। इससे नेटालके पत्रोंकी सारी ध्वनि ही बदल गई। उन्होंने विरोध तो किया, परन्तु ब्रिटिश साम्राज्यके अविलग अंगके रूपमें। *नेटाल एडवर्टाइज़र*ने, जिसने एक बार एशियाई-विरोधी गुट बनानेका प्रस्ताव किया था, २८ फरवरी, १८९५ के एक लेखमें भारतीयोंके प्रश्नपर नीचे

१. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा लंदनमें स्थापित। सर मंचरजी भावनगरी इसके एक प्रमुख सदस्य थे।

२. जुलाई ७, १८९४; देखिए खण्ड १, पृष्ठ ११६।

लिखे विचार व्यक्त किये। मताधिकार-विधेयकके निषेध और केप कालोनीमें हुई मेयरोंकी कांग्रेसके प्रस्तावका, जिसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है, उल्लेख करनेके बाद लेखमें कहा गया है:

इसलिए, समस्याको साम्राज्यिकसे लेकर शुद्ध स्थानिकतक सभी दृष्टि-कोणोंसे समग्र रूपमें देखा जाये तो वह बहुत बड़ी और जटिल है। परन्तु विभिन्न क्षेत्र इस विषयको केवल स्थानिक दृष्टिकोणसे देखनेको कितने भी उत्सुक क्यों न हों, जो लोग सब पहलुओंका खयाल रखते हुए इसका अध्ययन करना चाहते हैं (और यही एक तरीका है जिससे सही और लाभप्रद निर्णय किया जा सकता है), उन सबके सामने स्पष्ट होना चाहिए कि व्यापकतर अथवा साम्राज्य-सम्बन्धी बातोंका विचार करना भी जरूरी है। और फिर, जहाँतक मामलेके शुद्ध स्थानिक पहलूका सम्बन्ध है, यह जान लेना उतना ही जरूरी, और शायद उतना ही कठिन भी है कि, स्थितिपर व्यापक दृष्टिकोणसे विचार किया जा रहा है, या सिर्फ उन तथ्योंको ही स्वीकार करके किसी पक्षमें कच्चे मत बनाये जा रहे हैं, जो स्वार्थ अथवा द्वेषभावके कारण स्वीकार करने योग्य मालूम होते हैं। भारतीयोंके आगमनके सम्बन्धमें सारे दक्षिण आफ्रिकाका आम खयाल संक्षेपमें यह बताया जा सकता है कि "हमें उनकी जरूरत नहीं है।"

गुण-दोषोंकी छानबीन करनेके लिए पहला मुद्दा यह है कि ब्रिटिश साम्राज्यमें शामिल रहनेपर हमें इस सम्बन्धसे पैदा होनेवाली सब अच्छाइयों और बुराइयोंको मंजूर करना है। शर्त, बेशक, यह है कि वे अच्छाइयाँ-बुराइयाँ उस सम्बन्धसे अविच्छेद्य हों। अब, जहाँतक भारतीय आबादीके भविष्यकी बात है, यह माना जा सकता है कि साम्राज्यकी सरकार साम्राज्यके किसी भी देशमें ऐसा कोई कानून बनानेकी अनु-मति राजी-खुशीसे न देगी, जिसका उद्देश्य साम्राज्यके किसी भी भागसे भारतीयोंकी जायद आबादीको दूर रखना हो। दूसरे शब्दोंमें, अगर कोई खास राज्य इस सिद्धान्तका कोई कानून बनाना चाहे कि भारतकी शीघ्रतासे बढ़ती हुई कोटि-कोटि जनसंख्याको भारतमें ही रखा जाये और आखिर वहीं उसका दम घुटे, तो ब्रिटिश सरकार इसके लिए आसानीसे अनुमति न देगी। इसके विपरीत, ब्रिटिश सरकार चाहती है कि भारतमें

इस तरहकी भीड़की सम्भावनाको दूर किया जाये और भारतको ब्रिटिश साम्राज्यका एक खतरनाक तथा असन्तुष्ट भाग बनने देनेके बदले, उसे समृद्धिशाली और सुखी बनाया जाये। अगर भारतको साम्राज्यका एक लाभजनक भाग बनाये रखना है तो यह बिलकुल जरूरी है कि उसकी वर्तमान जनसंख्याके बहुत-से हिस्सेको कम करनेके उपाय खोजे जायें। इस दृष्टिसे हमें मान लेना चाहिए कि भारतीयोंको साम्राज्यके उन दूसरे देशोंमें, जिनमें मजदूरोंकी जरूरत है, जाने और उपजीविकाके नये मार्ग खोजनेमें प्रोत्साहित करना ब्रिटिश सरकारकी नीतिका अंग है, उन्हें हतोत्साह करना नहीं। इस तरह हम देखेंगे कि ब्रिटिश उपनिवेशोंमें कुलियोंके आगमनका प्रश्न भारतके सुधार और उद्धारकी गहराईतक पहुँचनेवाला है। उसपर इस महान सम्पदाके ब्रिटिश साम्राज्यमें रहने या न रहनेका प्रश्न भी अवलम्बित हो सकता है। यह उस प्रश्नका साम्राज्यगत पहलू है। इससे साम्राज्य-सरकारकी इस इच्छाका सीधा संकेत मिलता है कि साम्राज्यके दूसरे भागोंमें भारतीयोंके प्रवासपर लगाये गये प्रतिबन्धोंको बढ़ने न दिया जाये।

जहाँतक इस प्रश्नके स्थानिक पहलूका सम्बन्ध है, विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या साम्राज्य-सरकारकी यह नीति इस भागमें वांछित व्यवस्थाओंके प्रतिकूल पड़ती है, और अगर पड़ती है तो कहाँतक? कुछ लोग इस उपनिवेशमें भारतीयोंके आगमनकी निन्दा ही निन्दा करते हैं। परन्तु इसका असर क्या-क्या होगा, इसके सारे पहलुओंपर इन लोगोंने शायद ही विचार किया है। पहले तो, इन विरोधियोंको इस प्रश्नका उत्तर देना होगा कि भारतीयोंके न होनेपर इस उपनिवेशने उन उद्योग-विभागोंमें क्या किया होता, जिनमें भारतीय निश्चित रूपसे उपयोगी सिद्ध हुए हैं? कुलियोंमें बहुत-कुछ अवांछनीय है, इसमें कोई शंका ही नहीं। परन्तु इसके पहले कि यहाँ उनकी उपस्थितिको शुद्ध बुराई मानकर उसकी निन्दा की जाये, यह सिद्ध करना होगा कि अगर वे न आते तो उपनिवेशकी हालत बेहतर होती। हमारा खयाल है कि इसे सिद्ध करना जरा कठिन होगा। इसमें शंकाकी कोई गुंजाइश नहीं कि वर्तमान स्थानिक परिस्थितियोंमें उपनिवेशके खेतोंमें जैसे कामकी जरूरत है उसके लिए

कुली ही सबसे अधिक योग्य हैं। ऐसा काम इस आबहवामें गोरे लोग कभी नहीं कर सकते। आदिवासियोंमें वह वृत्ति या योग्यता है नहीं। इन हालतोंमें, कुलियोंके कृषि-मजदूरोंकी हैसियतसे यहाँ रहनेके कारण उच्छेद किसका होता है? किसीका नहीं। कामकी हालत तो यह है कि अगर कुली करें तो होगा, न करें तो वैसा ही पड़ा रहेगा। फिर, सरकार खास तौरसे रेलवेमें कुलियोंको बहुत बड़ी संख्यामें नियुक्त करती है। उनके वहाँ बने रहनेपर क्या आपत्ति है? कहा जा सकता है कि वे वहाँ गोरोंकी जगहें ले रहे हैं। परन्तु, क्या यह सही है? हो सकता है कि इक्के-दुक्के मामलोंमें सही हो। परन्तु यह तो एक क्षणके लिए भी माना नहीं जा सकता कि उपनिवेश-भरमें सारे भारतीयोंको सरकारी नौकरियोंसे हटाकर उनकी जगहोंपर गोरोंको बैठाया जा सकता है। इसके अलावा, नेटालके शहर शाक-सब्जीके लिए पूर्णतः कुलियोंपर ही अवलम्बित हैं, जो आसपासकी जमीनमें बागबानी करते हैं। इस क्षेत्रमें कुली किसके मार्गमें बाधक होते हैं? गोरोंके मार्गमें तो हर्गिज नहीं। हमारे किसानोंमें अबतक शाक-सब्जीकी खेतीकी इतनी रुचि पैदा नहीं हुई कि वे बाजारमें मालकी पूर्ति कर सकें। वे आदिवासियोंके भी आड़े नहीं आते। देशी लोग तो आलसके अवतार हैं, जो साधारणतः अपने लिए मकईके अलावा कुछ पैदा करते ही नहीं। सचमुच तो हमारे आदिवासियोंको ही हमारा मजदूर वर्ग होना चाहिए था; परन्तु इस वस्तुस्थितिका तो हमें सामना करना ही होगा कि इस मामलेमें वे बिलकुल बेकार सिद्ध हुए हैं। फलतः हमें किसी दूसरे स्थानसे ज्यादा परिश्रमी और विश्वसनीय काले मजदूर प्राप्त करने थे, और भारतने यह आवश्यक पूर्ति की। गोरोंपर इन गैर-गोरे मजदूरोंका यह ऋण है कि जिस मिश्र समाजके वे अंग हैं उसमें स्वयं सबसे निचली सीढ़ीपर रहते हुए, उन्होंने गोरे लोगोंको सम्पूर्ण सामाजिक क्षेत्रमें एक सीढ़ी ऊपर उठा दिया है। अगर टहल-चाकरीके काम गोरोंको करने होते तो निश्चय ही वे इस सीढ़ीपर न होते। उदाहरणके लिए, अगर काले मजदूर न होते तो आज जो गोरा कुलियोंकी टोलीपर हुक्म चलाता है उसे उस समय खुद मजदूरोंकी टोलीमें शामिल होना पड़ता। फिर, जो आदमी यूरोपमें किसी व्यापारीका मुकद्दम होता

है वह इस देशमें आकर स्वयं कुशल व्यापारी बन जाता है। इसी तरह काले मजदूरोंके आनेसे गोरोंको ऊँची बातोंमें ध्यान और शक्ति लगानेका अवसर मिला है। अगर उनमें से ज्यादातर लोगोंको निम्नतम कोटिके श्रममें लगना पड़ता तो वे ऐसा करनेमें असमर्थ होते। इसलिए, शायद अब भी देखा जा सकेगा कि भारतीयोंके ब्रिटिश उपनिवेशोंमें आनेसे आज जो कमियाँ आ गई हैं वे पृथक्करणकी पुराण-पंथी नीति स्वीकार करनेसे उतनी दूर नहीं होंगी, जितनी कि उनमें बसनेवाले भारतीयोंको राहत देनेवाले कानूनोंके उत्तरोत्तर और बुद्धिमत्तापूर्ण प्रयोगसे होंगी। भारतीयों के बारेमें की जानेवाली एक मुख्य आपत्ति यह है कि वे यूरोपीय नियमोंके अनुसार नहीं रहते। इसका उपाय यह है कि उन्हें ज्यादा अच्छे मकानोंमें रहनेके लिए बाध्य करके और उनमें नई-नई जरूरतें पैदा करके क्रमशः उनके रहन-सहनको ऊँचा उठाया जाये। ऐसे प्रवासियोंको पूरी तरह अलग करके उनको पुरानी अनुन्नत स्थितिमें बनाये रखनेका प्रयत्न करनेकी अपेक्षा शायद उनसे यह माँग करना ज्यादा आसान भी होगा कि वे अपनी नई हालतोंके अनुसार ऊपर उठें। कारण, यह मनुष्यजातिके महान प्रगति-आन्दोलनोंके अधिक अनुकूल है।

ऐसे लेख (और ये विभिन्न पत्रोंसे दर्जनोंकी संख्यामें उद्धृत किये जा सकते हैं) बताते हैं कि ब्रिटिश सरकारके पर्याप्त दबावसे उपनिवेशोंकी भारतीयों-सम्बन्धी नीतिमें अच्छा परिवर्तन हो सकता है। साथ ही, खराबसे ख़राब जगहोंमें भी ब्रिटिश-सहज न्याय और औचित्य-प्रेम जाग्रत किया जा सकता है। इन्हीं दो बातोंपर हमारी आशाका भवन स्थित है। हम भारतके बारेमें कितनी भी जानकारी फैलायें, जो दबाव अत्यन्त आवश्यक है उसका प्रयोग हुए बिना कोई लाभ होनेवाला नहीं है।

दक्षिण आफ्रिकाके एक अनुभवी पत्रकारकी कलमसे निकला हुआ निम्नलिखित लेख भी यह बताता है कि दक्षिण आफ्रिकामें ऐसे लोग मौजूद हैं, जो अपने चारों ओरके समाजसे ऊपर उठकर सच्चे ब्रिटिश चारित्र्यका परिचय दे सकते हैं:

जीवनमें कभी-कभी मनुष्यको न्याय और स्वार्थ दोनोंके बीच अन्तिम चुनाव करना पड़ता है। आत्मसम्मानी वृत्तिके लोगोंके लिए यह काम उन लोगोंकी अपेक्षा अवश्य ही बहुत कठिन होता है, जिनके अप्रिय जीवनके

आरम्भमें सद्-असद्-विवेककी वृत्ति भले ही रही हो, किन्तु वह बहुत पहले ही निकाली जा चुकी है। जो लोग ठीक बेचते समय सड़ी-गली कम्पनियोंको झूठी तौरपर अच्छी और बड़ी बनाकर दिखा देते हैं और जो दूसरे लोग इसी तरहके आचरणके होते हैं, उनसे यह अपेक्षा करना अवश्य ही असंगत होगा कि उनमें स्वार्थके अलावा कोई दूसरा भाव प्रबल हो। परन्तु औसत दर्जेके व्यापारीके सामने जब नीति-अनीतिका संघर्ष खड़ा होता है तब अक्सर न्यायकी ही विजय होती है। आम तौरसे समस्त दक्षिण आफ्रिकियों और खास तौरसे ट्रान्सवालवासियोंको ये संघर्ष जिस रूपमें झेलने पड़ते हैं, उसके कारणोंमें एक है 'कुली व्यापारियों'का प्रश्न — हमने अपने भारतीय और अरब भाइयोंको यही उपाधि तो दे रखी है। इन व्यापारियोंकी — और ये सचमुच व्यापारी ही हैं — स्थितिने ही इतना ध्यान जाग्रत किया है। और आजतक वह कम दिलचस्पी और विरोध-भाव पैदा नहीं कर रही है। और इनकी स्थितिका खयाल करके ही इनके व्यापारी प्रतिस्पर्धियोंने अपनी स्वार्थसिद्धिके लिए, सरकारके माध्यमसे, इन्हें वह दण्ड देनेका प्रयत्न किया है, जो प्रत्यक्ष रूपमें बहुत ज्यादा अन्याय जैसा दीखता है।

प्रातःकालीन पत्रोंमें जब-तब भारतीय तथा अरब व्यापारियोंके कार्योंके बारेमें कुछ अनुच्छेद प्रकाशित होते रहते हैं। उनसे वह चीख-पुकार मनमें ताजी होती रहती है, जो थोड़े ही दिन पहले ट्रान्सवालकी राजधानीमें कुली व्यापारियोंके बारेमें मची थी।

उन आदरास्पद और कठोर परिश्रम करनेवाले लोगोंको इतना गलत समझा गया है कि उनकी राष्ट्रीयताकी ही उपेक्षा हो गई है। उनपर एक ऐसा बुरा नाम जड़ दिया गया है, जिसके मानी उनको उनके सहजीवियोंकी दृष्टिमें नितान्त निम्न स्तरपर रख देनेके हैं। फिर, यदि उपर्युक्त याददेहानियोंके होते हुए कोई क्षण भरके लिए उनकी चर्चा छेड़ दे तो शायद वह क्षमा किया जानेकी न्यायपूर्वक अपेक्षा कर सकता है। उनकी आर्थिक प्रवृत्तियोंकी दृष्टिसे भी, जिनकी सफलतापर उनको बदनाम करनेवाले अनेक लोग ईर्ष्या करेंगे, वह आन्दोलन समझमें नहीं आता। वह आन्दोलन उक्त प्रवृत्तियाँ चलानेवालोंको अर्धसभ्य-

धर्मावलम्बी देशी लोगोंकी कोटिमें रख देगा, उन्हें बस्तियोंमें ही रहनेके लिए बाध्य कर देगा और ट्रान्सवालके काफिर लोगोंपर लागू किये गये कानूनोंसे भी सख्त कानूनोंके प्रतिबन्धमें रखेगा। ट्रान्सवाल और इस उपनिवेशमें यह धारणा फैली हुई है कि शान्त और नितान्त निर्दोष 'अरब' दूकानदार और उतने ही निर्दोष भारतीय, जो अपने बढ़िया मालके गट्ठर पीठपर लादे घर-घर घूमते हैं, "कुली" हैं। इसका कारण जिस जातिमें वे उत्पन्न हुए हैं उसके बारेमें हमारा आलस्यमय अज्ञान है। अगर कोई सोचे कि काव्यमय तथा रहस्यपूर्ण पुराणोंवाले ब्राह्मण धर्मकी कल्पनाने 'कुली व्यापारियों'की भूमिमें ही जन्म पाया था, चौबीस शताब्दियोंके पूर्व उसी भूमिमें देवतुल्य बुद्धने आत्मत्यागके महान सिद्धान्तका उपदेश और पालन किया था, और हम जो भाषा बोलते हैं उसके मौलिक तत्त्वोंकी खोजें उसी प्राचीन देशके पर्वतों और मैदानोंमें हुई थीं, तो वह अफसोस किये बिना नहीं रह सकता कि उस जातिके वंशजोंके साथ तत्त्वशून्य बर्बरों और बाह्य जगतके अज्ञानमें डूबे हुए लोगोंकी सन्तानोंके तुल्य बरताव किया जाता है। जिन लोगोंने भारतीय व्यापारियोंके साथ बातचीत करनेमें कुछ मिनट भी बिताये हैं, वे यह देखकर शायद आश्चर्यमें पड़े होंगे कि वे तो विद्वानों और सज्जनोंसे बातें कर रहे हैं। इन विनम्र व्यक्तियोंने बम्बई और मद्रासके स्कूलों, हिमालयके अंचलों तथा पंजाबके मैदानोंके ज्ञान-सरोवरोंसे छककर ज्ञान-पान किया है। हो सकता है कि वह ज्ञान हमारी जरूरतोंके अनुकूल न हो, हमारी रुचिसे मेल न खाता हो और हमारे व्यावहारिक जीवनमें उपयोगी होनेकी दृष्टिसे बहुत अधिक रहस्यपूर्ण हो। फिर भी वह ऐसा ज्ञान है, जिसकी सिद्धिके लिए उतनी ही लगन, उतनी ही साहित्यिक तत्परता और उससे भी बहुत अधिक सुकुमार और काव्यमय स्वभावकी आवश्यकता होती है, जितनी कि आक्सफ़ोर्ड और कॅम्ब्रिजके उच्चतम विद्यालयोंमें। अनेकानेक युगों और पीढ़ी-दर-पीढ़ी परम्पराओंके व्यतीत हो जानेसे भारतका जो तत्त्वज्ञान अब धूमिल पड़ गया है, वह उस समय आनन्दके साथ पढ़ाया जाता था जब कि श्रेष्ठतर बोअरों और श्रेष्ठतर अंग्रेजोंके पूर्वज अपने देशोंके दलदलों और जंगलोंमें भालओं तथा भेड़ियोंका शिकार करते घमनेमें सर्वोच्च आनन्द

प्राप्त करके सन्तुष्ट रहते थे। इन पूर्वजोंमें जब उच्चतर जीवनका कोई विचार उदित ही नहीं हुआ था, जब आत्म-संरक्षण ही उनका प्रथम कानून और अपने पड़ोसियोंके गांवका विध्वंस और उनकी पत्नियों और बच्चोंको पकड़ ले जाना ही उनका उत्कटतम आनन्दोत्सव था, उस समय भारतके तत्त्वज्ञानी जीवनकी समस्याओंके साथ हजार वर्षतक संघर्ष करके थक चुके थे। उसी ज्ञान-भूमिके बच्चोंको आज 'कुली' कहकर अपमानित किया जा रहा है और उनके साथ काफिरोंका-सा व्यवहार हो रहा है।

अब तो ऐसा समय आ गया है कि जो लोग भारतीय व्यापारियोंके विरुद्ध चीख-पुकार मचाते हैं, वे उन्हें बतायें कि वे कौन हैं और क्या हैं। उनके घोरतम निन्दकोंमें अनेक ब्रिटिश प्रजाजन हैं, जो एक शानदार समाजकी सदस्यताके अधिकारों तथा विशेषाधिकारोंका उपभोग कर रहे हैं। अन्यायसे घृणा और औचित्यसे प्रेम उनका जन्मसिद्ध गुण है और जब उनका मामला होता है तब, चाहे अपनी सरकारके प्रति हो, चाहे विदेशी सरकारके, वे अपने ही एक विशेष तरीकेसे अपने अधिकारों और स्वतंत्रताओंका आग्रह भी रखते हैं। शायद यह उन्हें कभी सूझा ही नहीं कि भारतीय व्यापारी भी ब्रिटिश प्रजाजन हैं और वे उतने ही न्यायके साथ उन्हीं स्वतंत्रताओं और अधिकारोंका दावा करते हैं। अगर पामर्स्टनके जमानेके एक वाक्यांशका प्रयोग किया जा सके, तो कमसे कम यह कहना होगा कि, जो अधिकार कोई दूसरेको देनेके लिए तैयार न हो, उनपर अपना दावा जताना ब्रिटिश स्वभावके बहुत विपरीत है। एलिज़ाबेथ-कालीन एकाधिकार जबसे मिटे तबसे सबको व्यापारका समान अधिकार प्राप्त हो गया है और यह ब्रिटिश संविधानका एक अंग-सा बन गया है। अगर कोई इस अधिकारमें हस्तक्षेप करे तो ब्रिटिश नागरिकताके विशेषाधिकार एकाएक उसके आड़े आ जायेंगे। भारतीय व्यापारी, स्पर्धामें अधिक सफल हैं और वे अंग्रेज व्यापारियोंकी अपेक्षा कममें गुजारा कर लेते हैं — यह तर्क सबसे कमजोर और सबसे अन्यायपूर्ण है। ब्रिटिश वाणिज्यकी नींव ही दूसरे देशोंके साथ अधिक सफलतापूर्वक स्पर्धा करनेकी शक्तिपर रखी गई है। जब अंग्रेज व्यापारी चाहते हैं

कि सरकार उनके प्रतिद्वन्द्वियोंके अधिक सफल व्यापारके खिलाफ हस्तक्षेप करके उन्हें संरक्षण प्रदान करे, तब तो सचमुच संरक्षण पागलपनकी हद-तक पहुँच जाता है। भारतीयोंके प्रति अन्याय इतना स्पष्ट है कि जब केवल इन लोगोंकी व्यापारिक सफलताके कारण हमारे देशवासी इनके साथ देशी लोगों जैसा व्यवहार कराना चाहते हैं तो उनपर शर्म-सी आती है। भारतीयोंको गिरे हुए स्तरसे उन्नत कर देनेके लिए तो स्वयं यह कारण ही काफी है कि वे प्रबल जातिके विरुद्ध इतने सफल हुए हैं। (*केप टाइम्स* १३-४-१८८९)।

लंदन *टाइम्स*के शब्दोंमें, प्रश्नका निचोड़ यह निकलता है: "क्या भारतीयोंको भारतसे रवाना होते समय कानूनकी दृष्टिसे वही हैसियत मिलनी चाहिए, जो दूसरे ब्रिटिश प्रजाजनोंको प्राप्त है? वे एक ब्रिटिश उपनिवेशसे दूसरेमें स्वतन्त्रतापूर्वक जा सकते हैं या नहीं? और वे सहयोगी ब्रिटिश उपनिवेशोंमें ब्रिटिश प्रजाके अधिकारोंका दावा कर सकते हैं या नहीं?" वही पत्र फिर कहता है:

भारत-सरकार और स्वयं भारतीय विश्वास करते है कि दक्षिण आफ्रिका ही वह स्थान है, जहाँ उनकी मान-मर्यादाके इस प्रश्नका निबटारा होना चाहिए। अगर वे दक्षिण आफ्रिकामें ब्रिटिश प्रजाकी मान-मर्यादा प्राप्त कर लेते है तो अन्यत्र उन्हें वह मान-मर्यादा देनेसे इनकार करना लगभग असम्भव हो जायेगा। अगर वे दक्षिण आफ्रिकामें वह स्थिति प्राप्त करनेमें असफल रहे, तो अन्यत्र उसे प्राप्त करना उनके लिए अत्यन्त कठिन होगा।

इस प्रकार इस प्रश्नके निर्णयका असर न केवल दक्षिण आफ्रिकामें बसे हुए वर्तमान भारतीयोंपर, वरन् भारतीयोंके सम्पूर्ण भावी देशान्तर-प्रवासपर पड़ेगा। ब्रिटिश साम्राज्यके अन्य भागों तथा सहयोगी उपनिवेशोंमें निवास करनेवाले प्रवासी भारतीयोंकी स्थितिपर भी असर पड़े बिना न रहेगा। आस्ट्रेलियामें भारतीयोंके प्रवासको रोकनेके लिए कानून बनानेके प्रयत्न किये जा रहे हैं। इस समय जो मामले दोनों सरकारोंके विचाराधीन हैं, उनमें नितान्त आवश्यक होनेपर अस्थायी और स्थानिक राहत दे देनेसे ही कोई लाभ न होगा। लाभ तब होगा, जब कि सारा प्रश्न एकबारगी हल कर दिया जाये, क्योंकि "सड़ा हुआ तो सारा शरीर ही है, सिर्फ उसके हिस्से

नहीं।" श्री भावनगरीने श्री चेम्बरलेनसे पूछा है कि "नेटाल और ब्रिटिश साम्राज्यके अन्य आफ्रिकी भागोंको इस प्रकारके कानून बनानेसे रोकने के लिए क्या वे तुरन्त कदम उठायेंगे? " यहाँ जिन कानूनों और नियमोंका उल्लेख किया गया है उनके अलावा कुछ और भी हो सकते हैं, जिनको शायद हम जानते न हों। इसलिए, जबतक पहले के बने हुए इस प्रकारके सब कानून रद नहीं कर दिये जाते और भविष्यमें नये कानूनोंका बनना रोक नहीं दिया जाता, तबतक हमारे सामने भविष्य बहुत मनहूस रहेगा, क्योंकि संघर्ष बहुत विषम है और हम कबतक उपनिवेश-मंत्रालय तथा भारत-सरकारको कष्ट देते रहेंगे? *टाइम्स आफ् इंडियाने* ऐसे समयपर हमारी पैरोकारी की है, जब कि हम लगभग बिना पैरोकारके थे। कांग्रेसकी ब्रिटिश कमेटीने हमेशा हमारा काम किया है। लन्दन *टाइम्स*की शक्तिशाली सहायताने अकेले ही हमें दक्षिण आफ्रिकियोंकी नजरोंमें एक सीढ़ी ऊपर उठा दिया है। श्री भावनगरी जबसे संसदमें प्रविष्ट हुए, लगातार हमारे लिए प्रयत्न कर रहे हैं। हम जानते हैं कि भारतकी सार्वजनिक संस्थाओंकी सहानुभूति हमारे साथ है। परन्तु हम भारतकी सब सार्वजनिक संस्थाओंकी सक्रिय सहानुभूति प्राप्त करना चाहते हैं। भारतीय जनताके सामने अपनी शिकायतें विशेष रूपसे पेश करनेमें हमारा उद्देश्य यही है। यही काम मेरे सुपुर्द किया गया है और हमारा ध्येय इतना महान और न्यायसंगत है कि मैं सन्तोषजनक परिणामके साथ नेटाल लौटूँगा, इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं।

मो० क० गांधी

राजकोट, काठियावाड़
१४ अगस्त, १८९६

पुनश्च: अगर कोई सज्जन दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंके प्रश्नका अधिक अध्ययन करनेको उत्सुक हों और वे इसमें उल्लिखित विभिन्न प्रार्थनापत्र देखना चाहें, तो उन्हें उनकी प्रतिलिपियाँ देनेका प्रयत्न किया जायेगा।

मो० क० गां०

प्राइस करेंट प्रेस, १६७, पॉपहैम्स, ब्राडवे, मद्रासमें छपी अंग्रेजी पुस्तिकाके दूसरे संस्करण (सन् १८९६)से।

गांधीजीका प्रमाणपत्र[1]

हम नीचे हस्ताक्षर करनेवाले, दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंके प्रतिनिधि, इस पत्र द्वारा डर्बनके एडवोकेट श्रीमान् मोहनदास करमचन्द गांधीको भारतके अधिकारियों, लोकपरायण व्यक्तियों और लोक-संस्थाओंको उन मुसीबतोंका परिचय देनेके लिए नियुक्त करते हैं, जो दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंको भोगनी पड़ रही हैं।

डर्बन, नेटाल: तारीख २६ मई, १८९६

अब्दुल करीम हाजी आदम
(दादा अब्दुल्ला ऐंड कम्पनी)
अब्दुल कादर
(मोहम्मद कासिम कमरुद्दीन)
पी० दावजी मोहम्मद
हुसेन कासिम
ए० सी० पिल्लै
पारसी रुस्तमजी
ए० एम० टिल्ली
हाजी मोहम्मद हाजी दादा
अमद मोहम्मद फारुख
आदमजी मियाँ खाँ
पीरन मोहम्मद
ए० एम० सालूजी
दाऊद मोहम्मद
अमद जीवा हुसेन मीरम
के० एस० पिल्लै ऐंड कम्पनी
*मुंशी अहमदजी दाउजी
(अहमदजी दाउजी मोगरारिया)
मूसा हाजी कासिम
जी० ए० बासा
मणिलाल चतुरभाई
एम० ई० कथराडा
डी० एम० टिमोल
*दावजी मोहम्मद शीदात
दावजी एम० शीदात
इस्माइल टिमोल
शेख फरीद ऐंड कम्पनी
शेखजी अमद
*मोहम्मद कासिम आंफ्रेजी
मोहम्मद कासिम हाफ़िज़जी
अमोद हुसेन

१, यह "हरी पुस्तिका"का अन्तिम पृष्ठ है। सम्भवतः इसका मसविदा गांधीजीका ही बनाया हुआ है। उन्होंने पुस्तिकाके पहले अनुच्छेद (पृष्ठ १) और बम्बई तथा मद्रासके भाषणोंमें इसका उल्लेख किया है। देखिए पृष्ठ ७७ और १०१।

* ये हस्ताक्षर मूल अंग्रेजी पुस्तिकामें गुजराती लिपिमें छपे हैं।

मोहम्मद अमोद बासा	एब्राहीम नूर मोहम्मद
वी० ए० ईसप	*मोहम्मद सुलेमान खोटा सही
*महमद सुलेमान	चूहरमल लछीराम
महमद सुलेमान	नारायण पाथर
दावजी ममद मुटाला	विजय राघवलू
सुलेमान वोराजी	सुलेमान दावजी

२. टिप्पणियाँ : दक्षिण आफ्रिकावासी ब्रिटिश भारतीयोंकी कष्ट-गाथापर

गांधीजीने ये *टिप्पणियाँ* नेटाल, केप कालोनी, ट्रान्सवाल, चार्टर्ड टेरिटरीज़ और आरेंज फ्री स्टेटकी वैधानिक पृष्ठभूमिका संक्षेपमें परिचय और भेदभाव-मूलक कानूनों तथा कानूनी बाधा-निषेधोंके विरुद्ध भारतीयोंकी शिकायतोंकी सार रूपमें कल्पना देनेके उद्देश्यसे लिखी थीं। उनका खयाल था कि ये *टिप्पणियाँ* "समग्र प्रश्नके समुचित अध्ययनके लिए आवश्यक" और "उन तमाम स्मरणपत्रों तथा पुस्तिकाओंके अध्ययनमें सहायक होंगी, जिनमें विभिन्न सूत्रोंसे एकत्रित मूल्यवान जानकारी दी गई है" (पृष्ठ ७५)। उक्त प्रार्थनापत्र और पुस्तिकाएँ इन टिप्पणियोंके साथ संलग्न थीं। उन्हें यहाँ नहीं दिया गया, क्योंकि अधिकतर संलग्न सामग्री पहले खण्डमें उचित तिथिक्रमसे प्रकाशित की जा चुकी है। टिप्पणियोंका पाठ नीचे दिया जा रहा है।

राजकोट
सितम्बर २२, १८९६

हमारे मतलबका दक्षिण आफ्रिका दो ब्रिटिश उपनिवेशों — केप आफ़ गुड होप और नेटाल, दो गणराज्यों — दक्षिण आफ्रिकी गणराज्य या ट्रान्सवाल और आरेंज फ्री स्टेट, सम्राज्ञीके शासनाधीन उपनिवेश — ज़ूलूलैंड, चार्टर्ड टेरिटरीज़, और पोर्तुगीज़ प्रदेश — डेलागोआ-बे या लोरेनज़ो मार्क्विस और बैराके योगसे बना है।

नेटाल

नेटाल एक स्वशासित ब्रिटिश उपनिवेश है। वह सन् १८९३ से उत्तरदायी शासनका उपभोग कर रहा है। सितम्बर, १८९३ के पहले नेटाल

* मूल हस्ताक्षर गुजराती लिपिमें।

उपनिवेश ताजके अधीन था। उसमें १२ चुने हुए और चार कार्यपालक सदस्योंकी एक विधानपरिषद होती थी। सम्राज्ञीके प्रतिनिधिके रूपमें एक गवर्नर होता था। विधानपरिषदकी रचना भारतीय परिषदोंकी रचनासे बहुत भिन्न नहीं थी। १८९३ में उत्तरदायी शासन दिया गया, जिसके द्वारा एक उच्च सदन और एक निम्न सदनका निर्माण हुआ। इनमें से उच्च सदनको विधानपरिषद (लेजिस्लेटिव कौंसिल) कहा जाता है। उसमें उपनिवेशके परमश्रेष्ठ गवर्नर द्वारा नामजद किये हुए ११ सदस्य होते हैं। निम्न सदन विधानसभा (लेजिस्लेटिव असेम्बली) कहलाता है। उसमें कानूनमें बताई हुई योग्यता रखनेवाले उपनिवेशियों द्वारा चुने ३७ सदस्य होते हैं। इस योग्यताका वर्णन आगे किया जायेगा। ब्रिटिश मंत्रिमंडलके नमूनेपर पाँच सदस्योंका एक परिवर्तनशील मंत्रिमंडल होता है। सर जान राबिन्सन वर्तमान प्रधानमंत्री और माननीय श्री हैरी एस्कंब, क्यू० सी० [क्वीन्स कौंसेल] महान्यायवादी हैं।

संविधान अधिनियम (कास्टिटयूशन ऐक्ट) में व्यवस्था है कि ऐसे किसी अधिनियमको जिसका लक्ष्य वर्गविशेषके लिए कानूनी व्यवस्था करना हो, और जो गैर-यूरोपीय ब्रिटिश प्रजाजनोंके अधिकारोंको कम करता हो, सम्राज्ञीकी स्वीकृतिके बिना कानूनकी शक्ति नहीं मिल सकेगी। गवर्नरके नाम सम्राज्ञीके निर्देशोंमें भी ऐसी प्रतिबन्धात्मक उपधाराएँ शामिल हैं।

नेटालका क्षेत्रफल २०,८५१ वर्गमील है। नई जनगणनाके अनुसार, उसमें यूरोपीयोंकी आबादी लगभग ५०,०००, देशी लोगोंकी लगभग ४,००,००० और भारतीयोंकी लगभग ५१,००० है। इन ५१,००० भारतीयोंमें ३०,००० स्वतंत्र भारतीय, १६,००० गिरमिटिया और ५,००० अपने खर्चसे आये हुए व्यापारी हैं। स्वतंत्र भारतीय वे हैं, जिन्होंने अपने गिरमिटकी अवधि पूरी कर ली है और अब घरेलू नौकरों, छोटे-छोटे किसानों, सब्जीके फेरीवालों, फल बेचनेवालों, सुनारों, कारीगरों, छोटे-छोटे दूकानदारों, शिक्षकों, फोटोग्राफरों, अटर्नियोंके मुंशियों आदिके विविध कार्यो द्वारा जीवन-निर्वाह करते हैं। गिरमिटिया अभी अपनी गिरमिटकी अवधि पूरी कर रहे हैं। स्वतंत्र रूपसे आये हुए लोग या तो व्यापारी हैं या दूकानदारोंके सहायक। ये व्यापारी दक्षिण आफ्रिकाके जिन मूल निवासियोंको जूलू या काफिर कहा जाता है उनके योग्य कपड़े आदिका और भारतीयोंके योग्य लोहे आदिके सामान, कपड़े और किरानेका व्यापार करते हैं। भारतीयोंके लिए कपड़ा और किराना

बम्बई, कलकत्ता तथा मद्राससे मँगाया जाता है। स्वतंत्र और गिरमिटिया भारतीय बम्बई, मद्रास और कलकत्तेसे आये हैं और वे संख्यामें लगभग बराबर-बराबर हैं। भारतीयोंका आगमन ऐसे समयमें फिरसे जारी हुआ, जब कि नेटालकी विधानसभाके एक सदस्य श्री गार्लैंडके कथनानुसार "उपनिवेशकी हस्ती डाँवाँडोल थी।" गिरमिटकी शर्तें संक्षेपमें ये हैं कि गिरमिटियाको पाँच वर्षतक अपने मालिकका काम करना होगा। उसकी पहले वर्षकी माहवार मजदूरी १० पौंड* होगी और बादके हर वर्ष उसमें १ पौंडकी* वृद्धि की जायेगी। इसके अलावा, गिरमिटकी अवधिमें भोजन, वस्त्र और रहनेका स्थान मुफ्त दिया जायेगा। नेटाल आनेका मार्ग-व्यय भी मालिकके जिम्मे होगा। अगर पहले पाँच वर्षोंके बाद कोई स्वतंत्र मजदूरके तौरपर उपनिवेशमें पाँच वर्ष और काम करे, तो वह अपने, अपनी पत्नीके और अगर बच्चे हों तो उनके लिए भी, भारत लौटनेका मुफ्त टिकट पानेका हकदार हो जायेगा। भारतीय मजदूरोंको गन्नेके खेतों और चायके बागोंमें काम करनेके लिए और काफिरोंकी जगह भरनेके लिए भारतसे लाया गया है। उपनिवेशियोंने काफिरोंको लापरवाह और अस्थिर प्रवृत्तिके पाया था। रेलवेमें और उपनिवेशकी सफाईके कामोंमें भी सरकार भारतीयोंको बड़ी संख्यामें नियुक्त करती है। उपनिवेशियोंने शुरू-शुरूमें भारतसे मजदूरोंको लानेके लिए १०,००० रुपयों [पौंड ?]की मदद मंजूर करके उपनिवेशके उद्योगोंको मदद पहुँचाई थी। उत्तरदायी शासनका लगभग पहला काम यह हुआ कि उसने इस अनुदानको बन्द कर दिया। उसका कहना था कि इन उद्योगोंको अब इस तरहकी सहायताकी जरूरत नहीं है।

नेटालमें पहली शिकायत : मताधिकार

जुलाई १५, १८५० के शाही फरमानमें व्यवस्था है कि कोई भी बालिग पुरुष, जो दक्षिण आफ्रिकाका मूल निवासी न हो, और जिसके पास ५० पौंड मूल्यकी जायदाद हो, या जो ऐसी जायदादका १० पौड सालाना किराया देता हो, मतदाता-सूचीमें शामिल किये जानेका अधिकारी होगा। देशी लोगोंके मताधिकारका नियन्त्रण करनेके लिए एक पृथक् कानून है। उसके अनुसार, और बातोंके अलावा, यह जरूरी है कि देशी व्यक्ति एक निर्वाचन-

* स्पष्टतः यह भूल है। यहाँ 'शिलिंग' होना चाहिए।

क्षेत्रमें लगातार १२ वर्षतक रहा हो और वह उपनिवेशके देशी लोगों सम्बन्धी कानूनसे मुक्त कर दिया गया हो।

उपनिवेशके आम मताधिकारके अन्तर्गत — अर्थात् उपर्युक्त शाही फरमानके अनुसार — ब्रिटिश प्रजाजनकी हैसियतसे भारतीय १८९३ के बादतक निर्वाचनके पूरे-पूरे अधिकारोंका उपभोग करते रहे। १८९४ में उत्तरदायी शासनकी दूसरी संसदमें एक कानून पास किया गया। वह था १८९४ का कानून नम्बर २५। उसके अनुसार एशियाई वंशके लोगोंको अपने नाम मतदाता-सूचीमें दर्ज करानेके अयोग्य ठहरा दिया गया। सिर्फ उन लोगोको इससे बाद रखा गया, जिनके नाम पहलेसे ही वाजिब तौरपर मतदाता-सूचीमें दर्ज थे। कानूनकी प्रस्तावनामें कहा गया कि ऐसे लोग मताधिकारके अभ्यस्त नहीं हैं।

ऐसा कानून पास करनेका सच्चा कारण भारतीयोंकी मान-मर्यादा गिराना और उन्हें धीरे-धीरे दक्षिण आफ्रिकी देशी लोगोंके स्तरपर उतार देना था, ताकि भविष्यमें किसी भी इज्जतदार भारतीयका उपनिवेशमें रहना असंभव हो जाये। इसपर विधानसभाको एक प्रार्थनापत्र दिया गया, जिसमें इस विचारका विरोध किया गया कि भारतीय प्रातिनिधिक संस्थाओंके अभ्यस्त नहीं हैं। उसमें यह माँग भी की गई कि विधेयकको वापस ले लिया जाये या इस बातकी जाँच कराई जाये कि भारतीय मताधिकारका प्रयोग करनेके योग्य हैं अथवा नहीं (सहपत्र १, परिशिष्ट — क)।[1]

प्रार्थनापत्र खारिज कर दिया गया। इसलिए जब विधेयक विधान-परिषदके सामने पहुँचा तो एक दूसरा प्रार्थनापत्र उसके नाम दिया गया। उसे भी खारिज कर दिया गया और विधेयक पास हो गया (सहपत्र १, परिशिष्ट — ख)।[2]

तथापि विधेयकके कार्यान्वित होनेके लिए सम्राज्ञीकी स्वीकृतिकी जरूरत थी। भारतीय समाजने सम्राज्ञीके मुख्य उपनिवेश-मंत्रीके नाम एक स्मरण-पत्र भेजकर विधेयकका विरोध किया और उनसे अनुरोध किया कि या तो विधेयकको रद कर दिया जाये, या ऊपर बताये हुए तरीकेकी जाँच

१. देखिए खण्ड १, पृष्ठ ९३–९८।
२. देखिए खण्ड १, पृष्ठ १०४–१०६।

कराई जाये। स्मरणपत्रपर लगभग ९,००० भारतीयोंने हस्ताक्षर किये थे (सहपत्र १)।[1]

सम्राज्ञीकी सरकार और नेटालके मंत्रिमंडलके बीच अच्छा-खासा पत्र-व्यवहार हुआ। फलत: इस वर्ष अप्रैलमें नेटाल-मंत्रिमंडलने मताधिकार-कानून को वापस ले लिया। उसके स्थानपर यह विधेयक पेश किया गया:

> **जो लोग (यूरोपीय वंशके न होते हुए) किन्हीं ऐसे देशोंके निवासी या उनकी पुरुष शाखाके वंशज हों, जिनमें अबतक संसदीय मताधिकारके आधार-पर स्थापित चुनावमूलक प्रातिनिधिक संस्थाएँ नहीं हैं, उन्हें मतदाता-सूचीमें अपने नाम दर्ज करानेके योग्य तबतक नहीं माना जायेगा, जबतक कि वे इस कानूनके अमलसे बरी किये जानेके लिए स-परिषद-गवर्नरका आदेश पहले प्राप्त न कर लें।**

इस कानूनके अमलसे उन लोगोंको भी बरी रखा गया है, जिनके नाम इस समय वाजिबी तौरसे मतदाता-सूचीमें दाखिल हैं।

इसपर विधानसभाके सामने एक प्रार्थनापत्र पेश किया गया, जिसमें बताया गया कि भारतमें उसकी विधानपरिषदोंके रूपमें "संसदीय मताधिकारके आधारपर स्थापित चुनावमूलक प्रातिनिधिक संस्थाएँ" मौजूद हैं, और इसलिए विधेयक एक त्रासदायक व्यवस्था है (सहपत्र २, परिशिष्ट क)।[2] यद्यपि लोक-प्रचलित अर्थमें हमारी संस्थाओंको उपर्युक्त कानूनकी आवश्यकताएँ पूर्ण करनेवाली नहीं कहा जा सकता, फिर भी, सादर निवेदन है कि, कानूनी दृष्टिसे वे वैसी जरूर हैं। और लंदन *टाइम्स*का, तथा नेटालके एक सुयोग्य न्यायशास्त्रीका भी, यही मत है (सहपत्र ३, पृष्ठ ११)[3]। स्वयं श्री चेम्बरलेनने अपने १२ सितम्बर, १८९५[4] के खरीतेमें उपर्युक्त प्रथम विधेयकको स्वीकार करनेकी असमर्थता प्रकट करते हुए और नेटालके मंत्रियोंकी दलीलोंका उत्तर देते हुए अन्य बातोंके साथ-साथ कहा है:

१. देखिए खण्ड १, पृष्ठ ११७–१२८।
२. देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३१९–३२८।
३. यह उल्लेख *हरी पुस्तिका*का है। देखिए पृष्ठ १८।
४. मूल फोटो-नकलमें १८८५ दिया है, जो स्पष्टत: छपाईकी भूल है।

मैं इस सत्यको भी स्वीकार करता हूँ कि भारतीयोंकी उनके अपने देशमें कोई प्रातिनिधिक संस्थाएँ नहीं हैं। और अपने इतिहासके उन जमानोंमें, जब कि वे यूरोपीय प्रभावसे मुक्त थे, स्वयं उन्होंने अपने यहाँ ऐसी कोई प्रणाली कभी स्थापित नहीं की है (सहपत्र ४)।

श्री चेम्बरलेनको एक प्रार्थनापत्र (सहपत्र २)[1] भेजा गया है, और लंदनसे खानगी तौरपर खबर मिली है कि वे उसपर विचार कर रहे हैं। श्री चेम्बरलेनने इस विधेयकके सिद्धान्तको पहले ही स्वीकार कर लिया है। मंत्रियोंने नेटालकी संसदमें पेश करनेके पहले यह विधेयक उनके पास भेज दिया था (सहपत्र ४)। तथापि, दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंका विश्वास है कि प्रार्थनापत्रमें जिन वस्तुस्थितियोंको स्पष्ट किया गया है, उनसे श्री चेम्बरलेनको अपने विचार बदल देनेकी प्रेरणा मिलेगी।

दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयों और भारतमें रहनेवाले भारतीयोंकी स्थितिकी तुलना नहीं की जा सकती। इस बातपर जितना जोर दिया जाये उतना थोड़ा ही है। भारतमें तो राजनीतिक उत्पीड़न होता है और वर्ग-भेदके कानून बहुत कम हैं। दक्षिण आफ्रिकामें सरासर वर्ग-भेदके कानून बनाये जाते हैं और भारतीयोंको अछूतोंकी कोटिमें गिराया जा रहा है।

उपर्युक्त पहले विधेयककी विवेचना करते हुए लंदन *टाइम्स*ने मताधिकारके प्रश्नको इस रूपमें पेश किया है:

इस समय श्री चेम्बरलेनके सामने जो प्रश्न है वह सैद्धान्तिक नहीं है। वह प्रश्न दलीलोंका नहीं, जातीय भावनाओंका है।... हम अपनी ही प्रजाओंके बीच जाति-युद्ध होने देकर लाभ नहीं उठा सकते। भारत-सरकारके लिए नेटालको मजदूर भेजना बन्द करके उसकी प्रगतिको एकाएक रोक देना उतना ही गलत होगा, जितना कि नेटालके लिए ब्रिटिश भारतीय प्रजाजनोंको नागरिक अधिकार देनेसे इनकार करना। ब्रिटिश भारतीयोंने तो वर्षोंकी कमखर्ची और अच्छे कामसे अपने-आपको नागरिकोंके वास्तविक दर्जे तक उठा ही लिया है। (लंदन *टाइम्स*, २७ जून, १८९६)।

इस लेखमें उपनिवेशियोंकी उन विविध दलीलोंकी विवेचना की गई है, जो उन्होंने भारतीयोंका मताधिकार छीननेके समर्थनमें पेश की हैं। इसमें

१. देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३३१–३५४।

यह भी बताया गया है कि यूरोपीय मतदाताओंके दबा दिये जानेका सवाल ही नहीं है, क्योंकि ताजीसे ताजी मतदाता-सूचीके अनुसार १०,००० मतदाताओंमें से भारतीय मतदाताओंकी संख्या केवल २५१ है। और उप-निवेशमें ऐसे भारतीय बहुत ही कम हैं, जिनके पास मतदाता बननेके लिए आवश्यक सम्पत्ति हो (देखिए, सहपत्र ५)।[1] वर्तमान विधेयकका हेतु भारतीय समाजको सताना और उसे अनन्त मुकदमेबाजीमें फँसा देना मात्र है (सहपत्र २)।

दूसरी शिकायत : भारतीय प्रवास

सन् १८९३ में नेटाल-सरकारकी ओरसे भारतको एक आयोग भेजा गया था। उसके सदस्य नेटाल-विधानसभाके सदस्य श्री बिन्स और नेटालके वर्तमान भारतीय प्रवासी-संरक्षक श्री मेसन थे। उस आयोगका मंशा भारत-सरकारको राजी करना था कि भारतीय मजदूर जो इकरारनामा लिखते थे—जिसका जिक्र ऊपर किया जा चुका है—उसकी शर्तोंमें निम्नलिखित परिवर्तन कर दिया जाये :

(१) गिरमिटकी अवधि पाँच वर्षसे बढ़ाकर अनिश्चित काल तककी कर दी जाये और जैसे-जैसे वह बढ़े उसके अनुसार मजदूरीको भी २० शिलिंग मासिकतक बढ़ा दिया जाये।

(२) अगर भारतीय अपने पाँच वर्षके पहले गिरमिटके खत्म होनेपर आगेके लिए भी इस तरहका इकरार करनेसे इनकार करें तो उन्हें उप-निवेशके खर्चपर भारत लौटनेके लिए बाध्य किया जाये।

वर्तमान वाइसरायने नेटालके गवर्नरके नाम अपने खरीतेमें कहा है कि नेटालके उपनिवेशी ऐसी कार्रवाईकी इच्छा करें, इसपर यद्यपि उन्हें व्यक्तिगत रूपसे अफसोस है, फिर भी यदि ब्रिटेन-स्थित सरकार इसे मंजूर करे तो वे इन परिवर्तनोंकी अनुमति देनेके लिए तैयार हैं। शर्त यह होगी कि अनिवार्य वापसीकी धाराके भंग किये जानेको कभी भी फौजदारी अपराधका रूप न दिया जाये (सहपत्र ५)[2]।

१. सहपत्र क्या था, यह स्पष्ट नहीं है। परन्तु, उसमें वाइसरायका खरीता शामिल जरूर था, जिसका उल्लेख आगे किया गया है।

२. देखिए पादटिप्पणी १।

भारत गये हुए आयोगकी रिपोर्टके अनुरूप, १८९५ में नेटाल-सरकारने भारतीय प्रवासी कानून संशोधन-विधेयक पेश किया। उसमें अन्य बातोंके साथ-साथ इकरारनामेकी अवधि अनिश्चित कालतक बढ़ा देने या प्रवासियोंको अनिवार्य रूपसे वापस भेज देनेका विधान किया गया है। उसमें यह भी कहा गया है कि जो प्रवासी इकरारनामा दुहरानेके लिए तैयार न हो और भारतको वापस भी न जाये, उसे हर वर्ष ३ पौंड सालाना शुल्कका परवाना लेना होगा। इस तरह स्पष्ट है कि यह विधेयक वाइस-रायके उपर्युक्त खरीतेमें बताई गई शर्तोंसे आगे बढ़ गया है। इस विधेयक-पर आपत्ति करते हुए नेटालके दोनों सदनोंको प्रार्थनापत्र भेजे गये, परन्तु उनका कोई लाभ नहीं हुआ (सहपत्र ५, परिशिष्ट क[1] तथा ख[2])। श्री चेम्बर-लेन तथा भारत-सरकारको भी एक प्रार्थनापत्र भेजा गया है। उसमें अनु-रोध किया गया है कि या तो विधेयकको नामंजूर कर दिया जाये या भविष्यमें नेटालको मजदूर भेजना बन्द कर दिया जाये (सहपत्र ६)[3]। लंदन *टाइम्स*ने ता० ३-५-९५ [९६?]के एक अग्रलेखमें इन प्रार्थनाओंका जोरदार समर्थन किया है।

दस वर्षसे अधिक हुए, नेटालके तत्कालीन गवर्नरने भारतीयोंके प्रवाससे सम्बद्ध विभिन्न विषयोंपर रिपोर्ट देनेके लिए एक आयोगकी नियुक्ति की थी। उसकी रिपोर्टसे प्रमाण देकर उक्त प्रार्थनापत्रमें बताया गया है कि उस समय आयुक्तों तथा तत्कालीन सबसे बड़े लोगोंका, जिनमें वर्तमान महान्यायवादी भी शामिल थे, खयाल यह था कि इस प्रकारका कोई भी कानून बनाना भारतीयोंके प्रति क्रूरतापूर्ण अन्याय और ब्रिटिश नामपर कलंक-रूप होगा।

प्रार्थनापत्र अब भी श्री चेम्बरलेन और भारत-सरकारके विचाराधीन है (सहपत्र ६)।

तीसरी शिकायत : कर्फ्यू

नेटालमें एक कानून है (१८६९ का कानून न० १५)। उसमें व्यवस्था है कि शहरोंमें कोई भी "गैर-गोरा व्यक्ति" ९ बजे रातके बाद तबतक घरसे बाहर नहीं निकल सकता, जबतक वह अपने बारेमें ठीक कैफियत न दे सके,

१. देखिए खण्ड १, पृष्ठ १७९–१८१।
२. देखिए खण्ड १, पृष्ठ २१५–२१७।
३. देखिए खण्ड १, पृष्ठ २१७–२३२ और २३२–२३५।

या अपने मालिकके पाससे प्राप्त परवाना न दिखा सके। शायद यह कानून पूरी तरह अनावश्यक नहीं है, परन्तु इसका अमल अक्सर बहुत अत्याचार-पूर्ण ढंगसे होता है। ऐसे अवसर अक्सर आये हैं, जब कि शिक्षकों तथा अन्य प्रतिष्ठित भारतीयोंको, किसी भी कामसे क्यों न हो, ९ बजे रातके बाद घरसे निकलनेपर भयानक कालकोठरियोंमें बन्द कर दिया गया है।

चौथी शिकायत : परवाना-कानून

इस कानूनमें व्यवस्था है कि प्रत्येक भारतीयसे परवाना दिखानेको कहा जा सकता है। इसका वास्तविक उद्देश्य काम छोड़कर भागे हुए भारतीयोंका पता लगाना है। परन्तु इसका उपयोग अक्सर भारतीय समाजके प्रति अत्याचारके यंत्रके तौरपर किया जाता है। नेटालके भारतीयोंने अबतक इन दोनों कानूनोंके विरुद्ध कोई कार्रवाई नहीं की। परन्तु ये सामान्य शिकायतोंमें शामिल हो सकते हैं। भारतीयोंके जीवनको जितना हो सके उतना कष्टमय बनानेकी उपनिवेशियोंकी मनोवृत्तिका दिग्दर्शन भी इनसे कराया जा सकता है। जहाँतक इन दोनों कानूनोंके अमल में लाये जानेका सम्बन्ध है, सहपत्र ३ के पृष्ठ ६ और ७[1] देखना चाहिए।

जूलूलैंड

यह उपनिवेश सम्राज्ञीके शासनाधीन है। इसका शासन सम्राज्ञीके नाम-पर नेटालके गवर्नर द्वारा होता है। नेटालके मंत्रिमंडलका, या नेटालके गवर्नर का — उसकी इस हैसियतसे — जूलूलैंडसे कोई वास्ता नहीं है। वहाँ थोड़ी-सी यूरोपीयोंकी और भारी संख्यामें देशियों (काफिरों)की आबादी है। कुछ नई बस्तियाँ भी बसाई गई हैं। मेलमॉथ नामकी बस्ती सबसे पहले बसाई गई थी। १८८८ में इस बस्तीमें भारतीयोंने लगभग २,००० पौंडकी मकान बनानेकी जमीन खरीदी थी। १८९१ में एशोवे और १८९६ में नोंदवेनी नामक बस्तियाँ बसानेकी घोषणा की गई। इन दोनों बस्तियोंमें मकानोंकी जमीन खरीदनेके नियम एक ही हैं। उनमें कहा गया है कि मकानोंकी उन जमीनों-पर सिर्फ यूरोपीय जन्म या वंशके लोगोंकी कब्जेदारी स्वीकार की जायेगी। (सहपत्र ७)[2]।

१. देखिए, पृष्ठ ९–१४।
२. यह उपलब्ध नहीं है।

इन नियमोंके विरुद्ध गत फरवरी मासमें जूलूलैंडके गवर्नरको एक प्रार्थनापत्र[1] दिया गया था। परन्तु उन्होंने हस्तक्षेप करनेसे इनकार कर दिया।

इसपर श्री चेम्बरलेनको एक प्रार्थनापत्र[2] भेजा गया। वह अभी उनके विचाराधीन है। स्पष्ट है कि स्वशासित उपनिवेशोंको जो कुछ करने दिया गया है, उससे ये नियम बहुत आगे बढ़ गये हैं। इनमें ऑरेंज फ्री स्टेटकी पूर्ण निष्कासनकी नीतिका अनुसरण किया गया है।

जूलूलैंडकी सोनेकी खानोंके कानूनोंके अनुसार भारतीय देशी सोना खरीद या रख नहीं सकते। यह उनके लिए दण्डनीय अपराध माना जाता है।

केप कालोनी

शुभाशा अन्तरीप (केप आफ़ गुडहोप) नेटालके समान उत्तरदायी शासन-वाला उपनिवेश है। वहाँका संविधान नेटालके संविधानका जैसा ही है। सिर्फ विधानसभा और विधानपरिषदमें सदस्योंकी संख्या ज्यादा है। और मताधिकार-योग्यता भिन्न है। अर्थात्, सम्पत्तिजन्य योग्यता यह है कि ७५ पौंडवाले मकानपर १२ मासतक कब्जा रहा हो। वेतनजन्य योग्यताके लिए ५० पौंड वार्षिक वेतन होना आवश्यक है। जो व्यक्ति मतदाता-सूचीमें नाम लिखानेका दावेदार हो उसे अपने हस्ताक्षर करना और अपना पता तथा पेशा लिखना आना चाहिए। यह कानून १८९२ में पास किया गया था। इसका सच्चा उद्देश्य भारतीय तथा मलायी मतदाताओंको रोकना था। नेटालमें यदि ऐसी शिक्षा-सम्बन्धी योग्यताएँ लगा दी जायें या सम्पत्तिजन्य योग्यताको बढ़ा दिया जाये तो भारतीय समाजको कोई आपत्ति नहीं होगी। केप कालोनी का क्षेत्रफल २,७६,३२० वर्गमील और कुल आबादी, १८,००,००० है। इस आबादीमें युरोपीयोंकी संख्या ४,००,००० से ज्यादा नहीं है। भारतीयोंकी संख्या मोटे तौरपर १०,००० होगी और ये छोटे व्यापारी, फेरीवाले और मजदूर हैं। ये मुख्यतः बन्दरगाहोंमें अर्थात् पोर्ट एलिजाबेथ, ईस्ट लंदन और केप टाउनमें — तथा किम्बर्लीके खान-क्षेत्रोंमें भी — पाये जाते हैं।

भारतीयोंपर जो निर्योग्यताएँ लादी गई हैं उनकी सब जानकारी उपलब्ध नहीं है। १८९४ में संसदने एक विधेयक मंजूर किया था, जिसके द्वारा ईस्ट

१. देखिए खण्ड १, पृष्ठ २९९–३०१।

२. देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३१०–३१४।

लंदनकी म्यूनिसिपैलिटीको अधिकार दिया गया था कि वह भारतीयोंको पैदल-पटरियोंपर चलनेसे रोकने और निर्दिष्ट बस्तियोंमें रहनेके लिए बाध्य करनेके उपनियम बना ले। इस विषयमें दक्षिण आफ्रिकासे श्री चेम्बरलेनके पास कोई विशेष प्रार्थनापत्र नहीं भेजा गया। परन्तु गत वर्ष भारतीयोंका जो शिष्टमंडल श्री चेम्बरलेनसे मिला था उसने इस विषयकी थोड़ी-सी चर्चा अवश्य कर दी थी।

केप कालोनीके विभिन्न भागों या जिलोंमें किसी भारतीयके लिए रोजगार करनेका परवाना प्राप्त करना अत्यन्त कठिन होता है। अनेक मामलोंमें तो मजिस्ट्रेट परवाने देनेसे एकदम इनकार कर देते हैं और इसके कारण भी नहीं बताते। कारण न बताना मजिस्ट्रेटोंके अधिकारकी बात है। परन्तु हमेशा ही देखा गया है कि जब भारतीयोंको परवाने नहीं दिये गये तब यूरोपीयोंको दे दिये गये हैं। ३ मार्च, १८९६ के *नेटाल मर्क्युरी* के अनुसार, कालोनीके एक जिले ईस्ट ग्रिक्वालैंडमें भारतीयोंकी स्थिति यह है :

> इस्माइल सुलेमान नामके एक अरबने ईस्ट ग्रिक्वालैंडमें एक वस्तु-भंडार बनवाया। उसने मालपर तट-कर अदा कर दिया और परवानेके लिए अर्जी दी, जिसे मजिस्ट्रेटने नामंजूर कर दिया। श्री अटर्नी फ्रान्सिसने उस अरबकी ओरसे (दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंको कभी-कभी 'अरब' कहा जाता है) केप-सरकारके सामने अपील की। परन्तु केप-सरकारने मजिस्ट्रेटका फैसला बहाल रखा और निर्देश दिया कि ईस्ट ग्रिक्वालैंडमें किसी अरब या कुलीको व्यापार करनेका परवाना न दिया जाये और जिन एक या दो लोगोंके पास परवाने हैं उनका कारबार बन्द करा दिया जाये।

यह तो ट्रान्सवालको भी मात दे देना हुआ!

चार्टर्ड टेरिटरीज़

इन प्रदेशोंमें माशोनालैंड और मेटाबेलेलैंड शामिल हैं। यहाँ लगभग १०० भारतीय हजूरिये (वेटर) और मजदूर बसे हैं। कुछ व्यापारी भी वहाँ बस गये हैं; परन्तु उन्हें पहले-पहल तो परवाना देनेसे इनकार कर दिया गया है। फिर भी कानून भारतीयोंके पक्षमें होनेके कारण एक उद्यमी भारतीय गत

वर्ष केपटाउनकी बड़ी अदालतसे व्यापारका परवाना प्राप्त करनेमें सफल हो गया है।

अब चार्टर्ड टेरिटरीज़के यूरोपीयोंने कानूनमें परिवर्तन करनेको अर्जी दी है, ताकि भविष्यमें भारतीयोंको यहाँ व्यापारके परवाने प्राप्त करनेसे रोका जा सके। दक्षिण आफ्रिकाके समाचारपत्रोंका कथन है कि केप-सरकार ऐसे परिवर्तनके अनुकूल है।

ट्रान्सवाल या दक्षिण आफ्रिकी गणराज्य

यह एक स्वतंत्र गणराज्य है, जिसका शासन डच या बोअर लोग करते हैं। इसमें दो सदनोंकी संसद है, जिसे 'फोक्सराट' (लोकसभा) कहा जाता है। इसके अलावा, कार्यपालक-मंडल है, जिसका प्रमुख अध्यक्ष होता है। इसका क्षेत्रफल १,१३,६४२ वर्गमील और गोरोंकी आबादी १,१९,२२८ है। काले लोगोंकी आबादी ६,५३,६६२ बताई जाती है। गणराज्यका मुख्य उद्योग ट्रान्सवालके सबसे बड़े शहर जोहानिसबर्गकी सोनेकी खानें हैं। कुल भारतीय आबादी मोटे तौरपर ५,००० बताई जा सकती है। वे व्यापारी, दूकानदारोंके सहायक, फेरीवाले, रसोइये, हजूरिये (वेटर) या मजदूर हैं। इनमें से अधिकतर जोहानिसबर्ग तथा गणराज्यकी राजधानी प्रिटोरियामें बसे हैं। व्यापारी लगभग २०० हैं, जिनकी बेबाक पूंजी लगभग एक लाख पौंड होगी। इन व्यापारियोंमें से कुछकी शाखाएँ दुनियाके दूसरे हिस्सोंमें भी हैं। उनका अस्तित्व मुख्यतः उनके ट्रान्सवालके रोजगारपर निर्भर करता है। सारे गणराज्यमें लगभग २,००० फेरीवाले हैं, जो माल खरीदते हैं और फेरी लगा-लगाकर बेचते हैं। लगभग १,५०० व्यक्ति यूरोपीयोंके मकानों या होटलोंमें सामान्य नौकरोंके तौरपर लगे हैं। यह अन्दाजा १८९४ में लगाया गया था। तबसे हर विभागमें संख्या बहुत बढ़ गई है।

ट्रान्सवालपर प्रभुसत्ता सम्राज्ञीकी है। इंग्लैंड और ट्रान्सवालकी सरकारोंके बीच दो समझौते (कानवेंशन) हैं।

सन् १८८४ के लंदन समझौते (कानवेंशन) की धारा १४ और १८८१ के प्रिटोरिया समझौतेकी धारा २६ में निम्नलिखित व्यवस्था है:

> **दक्षिण आफ्रिकाके देशी लोगोंके परे सब लोगोंको, जो ट्रान्सवाल राज्यके कानूनोंका पालन करते हैं, अपने परिवारोंके साथ ट्रान्सवाल राज्यके किसी भी भागमें प्रवेश करने, यात्रा करने या रहनेकी पूरी स्वतंत्रता होगी।**

उन्हें मकानों, कारखानों, गोदामों, दूकानों और अहातोंकी मिलकियत रखने या उन्हें किरायेपर लेनेका अधिकार होगा। वे स्वयं या जिन लोगोंको वे नियुक्त करना ठीक समझें उनके द्वारा अपना व्यापार-वाणिज्य कर सकेंगे। उनपर व्यक्ति या सम्पत्ति, व्यापार या उद्योगके नाते कोई ऐसा आम या स्थानिक कर नहीं लगाया जायेगा, जो ट्रान्सवालके नागरिकोंपर न लगा हो, या न लगाया जानेवाला हो।

इस तरह यह समझौता ब्रिटिश भारतीयोंके व्यापारिक तथा साम्पत्तिक अधिकारोंका पूर्ण संरक्षण करता है। जनवरी, १८८५ में ट्रान्सवाल-सरकारने समझौतेकी धारा १४ में आये हुए 'देशी' (नेटिव) शब्दका ऐसा अर्थ करना चाहा था कि उसके दायरेमें एशियाई लोग भी शामिल हो जायें। दक्षिण आफ्रिका-स्थित तत्कालीन उच्चायुक्त (हाई कमिश्नर) सर हरक्युलिस राबिन्सनने उपनिवेशके मुख्य न्यायाधीश सर हेनरी डी. विलियर्ससे सलाह करनेके बाद यह विचार व्यक्त किया था कि ट्रान्सवाल सरकारने 'देशी' शब्दका जो अर्थ किया है, उसे कायम नहीं रखा जा सकता। और, "एशियाई लोग देशी लोगोंसे भिन्न हैं।"

तब ट्रान्सवाल-सरकार और ब्रिटिश सरकारके बीच वार्ताएँ चलीं। उनका उद्देश्य यह था कि समझौतेमें परिवर्तन कर दिया जाये, जिससे कि "देशी लोगोंके परे सब लोगों" के लिए सुरक्षित विशेषाधिकारोंसे भारतीयोंको वंचित किया जा सके। सर हरक्युलिस राबिन्सनका रुख ट्रान्सवाल-सरकारके अनुकूल था। उन्हें अपने सुझावपर लार्ड डर्बीका १९ मार्च, १८८५ का यह उत्तर मिला :

समझौतेमें संशोधनके बारेमें मैंने आपके सुझावपर ध्यानसे विचार किया है। अगर आपकी राय यह है कि आपके सुझावके अनुसार कार्रवाई करना ही इष्ट है, और यह दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यके लिए अधिक सन्तोषजनक होगा, तो सम्राज्ञीकी सरकार सुझावके अनुसार संशोधन कर देनेको सहमत है। तथापि, एक बात विचार करने योग्य जँचती है। क्या फोक्सराट (लोकसभा)का सम्राज्ञी-सरकारके इस आश्वासनपर ही वांछित कानून बना लेना ज्यादा ठीक न होगा कि सम्राज्ञीकी सरकार समझौतेके शब्दोंके किसी ऐसे अर्थका आग्रह न रखेगी, जिससे वांछित दिशामें कानून बनानेमें बाधा पड़ती हो?

लार्ड डर्बीके सुझावके अनुसार ट्रान्सवालकी फोक्सराटने १८८५ का उपनियम ३ पास कर लिया। वह सब भारतीयों और गैर-गोरे लोगोंपर लागू होता है। उसमें विधान किया गया है कि इन लोगोंमें से कोई भी मताधिकार नहीं पा सकते, अचल सम्पत्तिके मालिक नहीं बन सकते, जो गैर-गोरे लोग व्यापारके उद्देश्यसे गणराज्यमें बसते हैं उन्हें अपने आगमनसे आठ दिनके अन्दर अपने नाम पंजीकृत (रजिस्टर) कराने होंगे और उन्हें २५ पौंड पंजीकरण (रजिस्ट्रेशन) शुल्क देना होगा। इस कानूनको भंग करनेवालेके लिए ३० पौंडसे लेकर १०० पौंड तक जुर्मानेकी, और जुर्माना न देनेपर १ मास से ६ मासतक कैदकी सजा निश्चित की गई है। इसमें यह विधान भी है कि सरकारको गैर-गोरे लोगोंके निवासके लिए गलियों, मुहल्लों और बस्तियोंका निर्देश करनेका अधिकार होगा। १८८६ में इस कानूनमें संशोधन करके २५ पौंड शुल्कको ३ पौंड कर दिया गया। शेष धाराएँ जैसीकी तैसी रखी गईं। ट्रान्सवालके भारतीयोंके लिए इस समय वही कानून अमलमें है। कानूनके पास होनेपर भारतीयोंने भारत और ब्रिटेनकी सरकारोंको तार द्वारा तथा अन्य रूपोंमें भी अर्जी भेजी। उसमें १८८५ के कानून ३ और उसके संशोधनके प्रति विरोध व्यक्त किया गया और बताया गया कि वे लंदन-समझौतेका सीधा भंग करनेवाले हैं। इसके फलस्वरूप लार्ड नट्सफ़ोर्डने भारतीयोंकी ओर से कुछ अभ्यावेदन (रिप्रेज़ेंटेशन) पेश किये। 'निवास' शब्दके अर्थके बारेमें दोनों सरकारोंके बीच भारी मात्रामें लिखा-पढ़ी हुई है। ब्रिटेनकी सरकारका आग्रह था कि 'निवास'का अर्थ केवल रहनेका स्थान होता है। ट्रान्सवाल-सरकारका कहना था कि उसमें केवल रहनेका स्थान नहीं, बल्कि व्यापारिक वस्तु-भंडार भी शामिल हैं। आखिरी नतीजा यह निकला कि सारी चीज 'गड़बड़-घोटालेसे महा गड़बड़-घोटाले' में परिणत हो गई और दोनों सरकारोंके बीच यह समझौता हुआ कि १८८५ के कानून ३ और उसके संशोधनकी वैधता तथा अर्थका निर्णय पंचके सुपुर्द किया जाये। आरेंज फ्री स्टेटके मुख्य न्यायाधीशको एकमात्र पंच चुना गया। उन्होंने गत वर्ष यह निर्णय दिया कि ट्रान्सवाल-सरकारका १८८५ का कानून ३ और उसका संशोधन पास करना जायज था। परन्तु उन्होंने उनके अर्थका प्रश्न अनिर्णीत छोड़ दिया और कहा कि अगर दोनों पक्ष किसी एक अर्थपर सहमत नहीं हो सकते तो इस प्रश्नका फैसला करनेके लिए ट्रान्सवालके न्यायालय ही उपयुक्त न्यायपीठ हैं (सहपत्र ८)[1]।

१. सम्भवतः यह पंचका फैसला था।

ट्रान्सवालके भारतीयोंने भारत-सरकार तथा ब्रिटेनकी सरकारको प्रार्थनापत्र[1] भेजे। श्री चेम्बरलेनने अपना फैसला देते हुए अनिच्छापूर्वक पंच-फैसला मंजूर कर लिया। परन्तु उन्होंने भारतीयोंके साथ सहानुभूति व्यक्त की है और उनका बखान इन शब्दोंमें किया है : "शान्तिप्रिय, कानूनका पालन करनेवाले, गुणी लोगोंका समुदाय," जिसे अपने काम-धंधे चलानेमें अब जिन बाधाओंका सामना करना पड़ सकता है, उन्हें पार करनेके लिए शायद अपनी असंदिग्ध उद्यमशीलता, बुद्धिमत्ता और अदम्य श्रमनिष्ठा ही पर्याप्त होगी। और, उन्होंने ट्रान्सवाल-सरकारके सामने, बादमें, मैत्रीभावसे भारतीयोंका मामला पेश करनेकी स्वतंत्रता अपने लिए सुरक्षित रखी है।

प्रश्न इस समय यहींपर है। यद्यपि पंच-फैसला स्वीकार कर लिया गया है, यह दिखलाई देगा कि अनेक प्रश्न अब भी अनिर्णीत पड़े हैं। अब ट्रान्सवालमें भारतीय कहाँ रहेंगे? क्या उनके वस्तु-भंडार बन्द कर दिये जायेंगे? अगर हाँ, तो २०० या ३०० व्यापारी अपने जीविकोपार्जनके लिए क्या करेंगे? क्या उन्हें व्यापार भी पृथक् बस्तियोंमें ही करना होगा? परन्तु ट्रान्सवालमें जो बाधाएँ हैं उनकी सूची इतनेसे पूरी नहीं हो जाती। अधिनियम २५ (जनवरी १०, १८९३)के खंड ३८ में कहा गया है कि :

> **देशी और दूसरे गैर-गोरे लोगोंको गोरोंके लिए निश्चित डिब्बोंमें, अर्थात् पहले और दूसरे दर्जेमें, यात्रा करनेकी इजाजत नहीं है।**

ट्रान्सवालकी रेलगाड़ियोंमें बिलकुल बेदाग कपड़े पहने हुए बहुत ही इज्जतदार भारतीय भी अधिकारपूर्वक पहले या दूसरे दर्जेमें यात्रा नहीं कर सकते। उन्हें हर तरहके और हर स्थितिके देशी लोगोंके साथ तीसरे दर्जेके डिब्बेमें ठेल दिया जाता है। इससे ट्रान्सवालके भारतीयोंको बहुत असुविधा होती है।

ट्रान्सवालमें परवानोंका एक नियम है। उसके अनुसार, देशी लोगोंके समान भारतीयोंके लिए भी यह जरूरी है कि वे एक स्थानसे दूसरे स्थान जानेके समय एक शिलिंगका एक परवाना ले लें।

सन् १८९५ में सम्राज्ञी-सरकार और ट्रान्सवाल-सरकारके बीच कमांडोज ट्रीटी [अनिवार्य सैनिक भरती-सम्बन्धी संधि] हुई थी। उसके अन्तर्गत

१. देखिए खण्ड १, पृष्ठ १८९–२११ और २१२–२१४।

ब्रिटिश प्रजाओंको अनिवार्य सैनिक सेवासे मुक्त कर दिया गया था। यह संधि उसी वर्ष ट्रान्सवालकी फोक्सराटके सामने पुष्टिके लिए पेश हुई थी।

फोक्सराटने संधिका पुष्टीकरण इस संशोधन या शर्तके साथ किया कि ब्रिटिश प्रजाका अर्थ केवल गोरे लोग होगा। भारतीयोंने तुरन्त ही श्री चेम्बर-लेनको तार दिया और उनके पास एक प्रार्थनापत्र भी भेजा (सहपत्र ९)।[1] वह प्रश्न इस समय श्री चेम्बरलेनके विचाराधीन है।

लंदन *टाइम्सने* इस विषयपर एक बड़ा सहानुभूतिपूर्ण और जोरदार अग्रलेख लिखा था (साप्ताहिक संस्करण: १०–१–'९६)।

जोहानिसबर्गके सोनेकी खानोंके कानूनोंमें भारतीयोंका देशी सोना रखना अपराध करार दिया गया है।

जहाँतक भारतीयोंका सम्बन्ध है, ट्रान्सवालमें कर्फ्यूका भी अमल होता है, जो बिलकुल गैर-जरूरी है।

परन्तु यहाँ यह कह देना उचित ही होगा कि जो लोग मेमन लोगोंकी पोशाक पहनते हैं उन्हें आम तौरपर इस कानूनके अन्तर्गत सताया नहीं जाता (सहपत्र ३, पृष्ठ ६)।

जोहानिसबर्गमें एक पैदल-पटरी-सम्बन्धी उपनियम है और प्रिटोरियामें पुलिसको निर्देश दिये गये हैं कि भारतीयोंको पैदल-पटरीपर चलने न दिया जाये। १८९४ में मद्रास विश्वविद्यालयके एक स्नातकको जोरोंसे ठोकर मारकर पैदल-पटरीसे ढकेल दिया गया था।

आरेंज फ्री स्टेट

यह एक स्वतंत्र डच गणराज्य है। इसपर सम्राज्ञीकी सर्वोच्च सत्ता नहीं है।

इसका संविधान ट्रान्सवालके संविधानसे बहुत मिलता-जुलता है। श्री स्टेन गणराज्यके अध्यक्ष हैं और ब्लूमफांटीन इसकी राजधानी है। इसका क्षेत्रफल ७२,००० वर्गमील और आबादी २,०७,५०३ है। आबादीमें यूरोपीयोंकी संख्या ७७,७१६ और गैर-गोरोंकी १,२९,७८७ है। यहाँ कुछ भारतीय साधारण नौकरोंके कामपर लगे हुए हैं। १८९० में यहाँ तीन भारतीय वस्तु-भंडार थे, जिनकी बेबाक पूंजी ९,००० पौंड थी। उन्हें खदेड़ दिया गया

१. देखिए खण्ड १, पृष्ठ २५८–२६०।

और उनके वस्तु-भंडारोंको बिना मुआवजा दिये बन्द कर दिया गया। उन्हें यहाँसे निकल जानेके लिए एक सालका समय दिया गया था। ब्रिटिश सरकारके पास मामले ले जाये गये थे, परन्तु उससे कोई लाभ नहीं हुआ।

सन् १८९० के कानूनका अध्याय ३३वाँ, जिसे एशियाई गैर-गोरे लोगोंकी बाढ़को रोकनेका कानून कहा जाता है, प्रत्येक भारतीयको दो माससे अधिक इस उपनिवेशमें रहनेसे रोकता है। यदि कोई इससे अधिक रहना चाहे तो उसके लिए गणराज्यके अध्यक्षकी इजाजत लेना जरूरी है। उधर, अर्जी दी जानेकी तारीखसे तीस दिनके पूर्व और जबतक दूसरी औपचारिक कार्रवाइयाँ पूरी न हो जायें, अर्जीपर विचार नहीं किया जा सकता। इसपर भी, अर्जदारको किसी भी स्थितिमें राज्यमें अचल सम्पत्ति रखने या व्यापार अथवा खेती करनेका अधिकार तो है ही नहीं। अध्यक्षको अधिकार है कि वह रहनेकी ऐसी आंशिक अनुमति परिस्थितियोंके अनुसार दे या न दे। इसके अलावा, हरएक भारतीय निवासीको १० पौंड वार्षिक व्यक्ति-कर देना पड़ता है। व्यापारिक या कृषि-सम्बन्धी नियमोंको भंग करनेके पहले अपराधके लिए २५ पौंड जुर्माने या तीन मासकी सादी या कड़ी कैदकी सजा निश्चित है। बादके सब अपराधोंके लिए हर बार दण्ड दूना होता जाता है (सहपत्र १०)[1]।

यहाँपर शिकायतोंकी सूची लगभग समाप्त हो जाती है।

इन टिप्पणियोंका इरादा विभिन्न सहपत्रोंकी एवज पूरी करना नहीं है। सादर निवेदन है कि ये समग्र प्रश्नके समुचित अध्ययनके लिए आवश्यक हैं। वास्तवमें ये टिप्पणियाँ उन तमाम स्मरणपत्रों और पुस्तिकाओंके अध्ययनमें सहायक होंगी, जिनमें विभिन्न सूत्रोंसे एकत्रित मूल्यवान जानकारी दी गई है।

सारे प्रश्नको लंदन *टाइम्स*ने इस प्रकार पेश किया है :

> **क्या ब्रिटिश भारतीयोंको, जब वे भारत छोड़ते हैं, कानूनके सामने वही दर्जा मिलना चाहिए, जिसका उपभोग अन्य ब्रिटिश प्रजाएँ करती हैं? वे एक ब्रिटिश प्रदेशसे दूसरेको स्वतंत्रतापूर्वक जा सकते हैं या नहीं, और सहयोगी राज्योंमें ब्रिटिश प्रजाके अधिकारोंका दावा कर सकते हैं या नहीं?**

१. सम्भवत: यह १८९० के कानूनका पाठ था।

फिर :

> **भारत-सरकार और स्वयं भारतीय विश्वास करते हैं कि दक्षिण आफ्रिका ही वह स्थान है, जहाँ उनकी मान-मर्यादाके इस प्रश्नका निबटारा होना चाहिए। अगर वे दक्षिण आफ्रिकामें ब्रिटिश प्रजाकी मान-मर्यादा प्राप्त कर लेते हैं तो अन्यत्र उन्हें वह मान-मर्यादा देनेसे इनकार करना लगभग असम्भव हो जायेगा। अगर वे दक्षिण आफ्रिकामें वह स्थिति प्राप्त करनेमें असफल रहे, तो अन्यत्र उसे प्राप्त करना उनके लिए कठिन होगा।**

इस प्रश्नका विवेचन साम्राज्यिक प्रश्नके तौरपर किया गया है और सब दलोंने बिना किसी भेदभावके दक्षिण आफ्रिकाके ब्रिटिश भारतीयोंका समर्थन किया है।

लंदन *टाइम्समें* इस प्रश्नपर प्रकाशित हुए लेखोंकी तारीखें निम्नलिखित हैं :

२८ जून, १८९५	(साप्ताहिक संस्करण)
३ अगस्त, १८९५	,, ,,
१३ सितम्बर, १८९५	,, ,,
६ सितम्बर, १८९५	,, ,,
१० जनवरी, १८९६	,, ,,
७ अप्रैल, १८९६	*टाइम्स*
२० मार्च, १८९६	(साप्ताहिक संस्करण)
२७ जनवरी, १८९६	*टाइम्स*

पोर्तुगीज़ प्रदेश — डेलागोआ-बेमें कोई शिकायतें नहीं हैं। वह एक अनुकूल फर्क बतानेवाला प्रदेश है। (सहपत्र ३)।

मो० क० गांधी

एक छपी हुई अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ११४५)से।

१. ये *टाइम्सके* संपादकीय लेख थे।

३. बम्बईका भाषण

गांधीजीने सितम्बर २६, १८९६ को बम्बईकी एक सार्वजनिक सभामें नीचे छपा हुआ भाषण दिया था। सभा बम्बई प्रेसिडेन्सी असोसिएशनके तत्त्वावधानमें फ्रामजी कावसजी इन्स्टिट्यूटमें हुई थी और उसके अध्यक्ष माननीय सर फीरोजशाह मेहता थे। भाषण पुस्तिकाके रूपमें छपा हुआ था। परन्तु छपी हुई पुस्तिका प्राप्त न होनेके कारण हमने *टाइम्स आफ़ इन्डिया*में प्रकाशित 'उद्धरणों' से और *बम्बई गज़ट*में प्रकाशित उक्त भाषणकी रिपोर्टसे अतिरिक्त सामग्री लेकर यह लिपि तैयार की है।

सितम्बर २६, १८९६

मैं आज आपके सामने इस प्रमाणपत्र[1]पर हस्ताक्षर करनेवालोंके प्रतिनिधिकी हैसियतसे खड़ा हूँ। हस्ताक्षरकर्ताओंका दावा है कि वे उस दक्षिण आफ्रिकामें रहनेवाले १,००,००० भारतीयोंका प्रतिनिधित्व करते हैं, जो जोहानिसबर्गकी सोनेकी विशाल खानों और डा० जेमिसनके विगत हमलेके कारण अकस्मात् प्रसिद्धि पा गया है। यही मेरी एकमात्र योग्यता है। मैं बहुत कम बोलनेवाला व्यक्ति हूँ। फिर भी, आपके सामने जिस विषयकी पैरोकारी इस सायंकाल मुझे करनी है, वह इतना बड़ा है कि मैं यह मान लेनेकी धृष्टता करता हूँ कि आप वक्ताके या, यों कहिये कि, इस निबन्ध-वाचकके दोषोंपर ध्यान न देंगे। एक लाख भारतीयोंके हित भारतके तीस करोड़ लोगोंके हितोंके साथ घनिष्ठतासे बँधे हुए हैं। दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंके दुखड़ोंका सवाल भारतवासी भारतीयोंके भावी कल्याण और भावी देशान्तर-प्रवासपर बुरा असर डालनेवाला है। इसलिए मैं नम्रतापूर्वक माननेका साहस करता हूँ कि अगर यह प्रश्न अबतक भारतके वर्तमान मुख्य प्रश्नोंमें से एक नहीं बन गया है, तो अब बन जाना चाहिए। इस प्रस्तावनाके साथ, अब मैं जितना हो सके उतने संक्षेपमें दक्षिण आफ्रिकाकी सारी परिस्थिति, जिस रूपमें वह वहाँके भारतीयोंपर असर करती है, आपके सामने पेश करूँगा।

हमारे वर्तमान प्रयोजनकी दृष्टिसे दक्षिण आफ्रिका इन राज्योंमें विभक्त है: शुभाशा अन्तरीप (केप आफ़ गुडहोप)का ब्रिटिश उपनिवेश, नेटालका ब्रिटिश उपनिवेश, जूलूलैंडका ब्रिटिश उपनिवेश, ट्रान्सवाल या दक्षिण आफ्रिकी

१. हरी *पुस्तिका*के अन्तमें देखिए; पृष्ठ ५८-५९।

गणराज्य, आरेंज फ्री स्टेट, रोडेशिया या चार्टर्ड टेरिटरीज और डेलागोआ-बे तथा बैराके पोर्तुगीज उपनिवेश।

पोर्तुगीज प्रदेशको छोड़कर दक्षिण आफ्रिकामें लगभग १,००,००० भारतीय निवास करते है। उनमें से अधिकतर मद्रास तथा बंगालके मजदूर वर्गके लोग हैं। वे क्रमशः तमिल या तेलुगु और हिन्दी बोलते हैं। थोड़ी संख्या व्यापारी वर्गकी भी है। वे मुख्यतः बम्बई प्रान्तसे गये हैं। भारतीयोंके प्रति सारे दक्षिण आफ्रिकामें आम भावना द्वेषकी है। उसे समाचारपत्र प्रोत्साहित करते हैं। कानून बनानेवाले उसे देखी-अनदेखी ही नहीं करते, बल्कि उसके प्रति अनुकूलता भी रखते है। आम यूरोपीय समाजकी दृष्टिमें प्रत्येक भारतीय निरपवाद रूपसे "कुली" है। वस्तु-भंडार मालिक "कुली वस्तु-भंडार मालिक" हैं। भारतीय मुंशी और शिक्षक "कुली मुंशी" और "कुली शिक्षक" हैं। स्वाभाविक है कि न तो व्यापारियोंके और न अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त भारतीयोंके साथ ही किसी भी अंशमे आदरका व्यवहार किया जाता है। उस देशमें किसी भी भारतीयकी सम्पत्ति और योग्यताओंकी इसके सिवा कोई कद्र नहीं कि उनका प्रयोजन यूरोपीय उपनिवेशियोंके हितमें काम आना है। हम हैं—"एशियाई गंदगी, दिल-भर कोसी जानेके लिए।" हम हैं—"झूठी जबानवाले घिनौने कुली।" हम है—"सच्चे घुन, जो समाजके कलेजेको ही खाये जा रहे हैं।" हम हैं—"परोपजीवी, अर्ध-बर्बर एशियाई।" हम "चावल खाकर जीनेवाले और नाकतक बुराइयोंसे भरे हुए" हैं। कानूनकी पुस्तकोंमें भारतीयोंका वर्णन "एशियाकी आदिवासी और अर्ध-बर्बर जातियों"के लोग कहकर किया गया है, जब कि सच बात यह है कि दक्षिण आफ्रिकामें आदिवासी वंशका शायद एक भी भारतीय न होगा। असमके संताल दक्षिण आफ्रिकामे उतने ही बेकार होंगे जितने कि खुद वहांके मूल निवासी। प्रिटोरियाके व्यापारी-संघका खयाल है कि हमारा "धर्म हमें सब स्त्रियोंको आत्मा-रहित और ईसाइयोंको स्वाभाविक शिकार मानना सिखाता है।" उसीके कथनानुसार, "दक्षिण आफ्रिकाका सारा समाज इन लोगोंकी गन्दी आदतों और अनैतिक आचारसे उत्पन्न खतरेमें पड़ गया है।" फिर भी, सच बात यह है कि, दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंमे कुष्ठ रोगका शिकार एक व्यक्ति भी नहीं हुआ। और प्रिटोरियाके डाक्टर वीलका खयाल है कि "निम्नतम वर्गके भारतीय निम्नतम वर्गके गोरोंकी अपेक्षा अधिक अच्छी तरह, अधिक अच्छे मकानोंमें और सफाईका अधिक खयाल करके रहते

हैं।" इससे आगे भी उन्होंने दर्ज किया है कि "जब कि हर राष्ट्रके लोगोंमें से एक या अधिक व्यक्ति किसी-न-किसी समयपर संक्रामक रोगोंके अस्पतालमें रहे हैं, तब भारतीय वहाँ एक भी नहीं रहा।"

दक्षिण आफ्रिकाके अधिकतर हिस्सोंमें, जबतक हमारे पास अपने मालिकोंसे प्राप्त परवाने न हों, हम ९ बजे रातके बाद अपने घरोंसे बाहर नही निकल सकते। हाँ, मेमन लोगोंकी पोशाक पहननेवाले भारतीयोंको अपवाद जरूर माना जाता है। होटलोंके दरवाजे हमारे लिए बन्द रखे जाते हैं। हम बिना छेड़छाड़ सहे ट्रामगाड़ियोंका उपयोग नहीं कर सकते। घोड़ागाड़ियाँ तो हमारे लिए हैं ही नहीं। ट्रान्सवालमें बार्बर्टन और प्रिटोरियाके बीच, और जब जोहानिसबर्ग तथा चार्ल्सटाउनके बीच रेल-सम्बन्ध नहीं था तब वहाँ भी, भारतीयोंको घोड़ागाड़ीके अन्दर बैठने नहीं दिया जाता था। अब भी नहीं बैठने दिया जाता। उन्हें गाड़ीवानके पास बैठनेके लिए बाध्य किया जाता था, जो अब भी होता है। ट्रान्सवालमें, जहाँ ठंड बहुत कड़ी पड़ती है, यह अनुभव घोर कसौटीका होता है। इसमें जो अपमान भरा है, सो तो है ही। घोड़ागाड़ीपर बहुत लम्बी-लम्बी यात्राएँ करनी पड़ती हैं और निश्चित मंजिलोंपर सवारियोंके लिए ठहरनेके स्थान और भोजनका प्रबन्ध किया जाता है। इन मंजिलोंमें किसी भारतीयको ठहरनेकी जगह नहीं मिलती, न भोजनकी मेजपर ही जगह दी जाती है। ज्यादासे ज्यादा इतना होता है कि वह रसोईघरके पीछेसे भोजन खरीद ले और अपने लिए जैसा अच्छा प्रबन्ध कर सके, करे। भारतीयोंको जो अवर्णनीय कष्ट सहने पड़ते हैं उनके उदाहरण सैकड़ोंकी संख्यामें दिये जा सकते हैं। सार्वजनिक स्नानघर भारतीयोंके लिए नहीं है। हाई स्कूलोंमें भारतीय भरती नहीं हो सकते। मेरे नेटाल छोड़नेके एक पखवारे पहले एक भारतीय विद्यार्थीने डर्बन हाई स्कूलमें प्रवेशके लिए अर्जी दी थी। उसकी अर्जी नामंजूर कर दी गई। प्राथमिक शालाएँतक भारतीयोंके लिए बिलकुल खुली नहीं हैं। नेटालके एक छोटे-से गाँव वेरुलममें एक भारतीय मिशनरी-स्कूल-शिक्षकको अंग्रेजोंके एक गिरजाघरसे खदेड़ दिया गया था। नेटालकी सरकार एक "कुली-मंत्रणापरिषद" करनेको व्याकुल है। उसने सरकारी तौरपर परिषदको यह नाम दिया है। परिषदका प्रयोजन सारे दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयों-सम्बन्धी कानूनोंको एक रूप देना और भारतीयोंकी ओरसे ब्रिटिश सरकारकी घुड़कियोंका संयुक्त रूपसे मुकाबला

करना है। यह है आम भावना दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंके विरुद्ध। अलबत्ता पोर्तुगीज़ प्रदेश इसके अपवाद हैं। वहाँ भारतीयोंका आदर किया जाता है और उन्हें साधारण जनतासे अलग कोई विशेष कष्ट नहीं हैं। आप आसानीसे कल्पना कर सकते हैं कि किसी शिष्ट भारतीयके लिए ऐसे देशमें रहना कितना कठिन होगा। सज्जनो, मुझे तो पक्का विश्वास है कि अगर हमारे अध्यक्ष दक्षिण आफ्रिका जायें तो उन्हें भी वहाँके होटलमें स्थान पाना, हमारे रोजमर्राके मुहावरेके अनुसार, "घोर कठिन" महसूस होगा। नेटालमें वे रेलगाड़ीके पहले दर्जेके डिब्बेमें बहुत आराम महसूस न करेंगे और फोक्सरस्ट पहुँचनेके बाद उन्हें बिना किसी शिष्टाचारके पहले दर्जेके डिब्बेसे उतार दिया जायेगा और एक टीनके डिब्बेमें बैठा दिया जायेगा, जिसमें काफिरोंको भेड़ोंकी तरह धाँध दिया जाता है। तथापि हम चाहते हैं कि हमारे बड़े लोग इन तकलीफके क्षेत्रोंमें जायें — भले सिर्फ यह देखने और समझनेके लिए ही क्यों न हो कि उनके देशभाई कैसी यातनाएँ भोग रहे हैं। और मैं विश्वास दिलाता हूँ कि अगर हमारे अध्यक्ष कभी वहाँ आयें तो हम उनका पूरा-पूरा राजसी स्वागत करके इन कठिनाइयोंका बदला चुका देंगे। कमसे कम हालमें तो हममें इतना ऐक्य, इतना उत्साह है ही। यूरोपीय हमें अवनतिके गर्तमें गिरा देना चाहते हैं। उस अधःपतनके विरुद्ध हम लगातार संघर्ष कर रहे हैं। यूरोपीय तो चाहते हैं कि हमें उन ठेठ काफिरोंके स्तरपर गिरा दें, जिनका पेशा शिकार है और जिनकी एकमात्र महत्त्वाकांक्षा पत्नी खरीदनेके लिए अमुक संख्यामें पशु इकट्ठे कर लेने और फिर आलस्य तथा नग्नावस्थामें जीवन बिता देनेकी है। पढ़नेमें आता है कि ईसाई सरकारोंका ध्येय यह है कि वे जिन लोगोंके सम्पर्कमें आयें या वे जिनका नियंत्रण करती हों उनको ऊपर उठायें। परन्तु दक्षिण आफ्रिकामें बात इससे उलटी है। वहाँ सोच-विचारकर प्रकट किया गया लक्ष्य यह है कि भारतीयोंको सभ्यताके मानदण्डमें ऊपर न उठने दिया जाये। बल्कि उन्हें काफिरोंके स्तरपर गिरा दिया जाये। नेटालके महान्यायवादीके शब्दोंमें वह लक्ष्य "उन्हें हमेशाके लिए लकड़हारा और पनिहारा बनाकर रखना" है; उन्हें "भावी दक्षिण आफ्रिकी राष्ट्रका, जिसका निर्माण किया जानेवाला है, अंग नहीं बनने देना है।" नेटालके एक अन्य विधान-मण्डल-सदस्यके शब्दोंमें, "भारतीयोंका जीवन नेटालकी अपेक्षा उनके अपने ही देशमें अधिक आरामदेह बनाना है।" इस प्रकारके अधःपतनके विरुद्ध

संघर्ष इतना विषम है कि हमारी सारी शक्ति विरोधमें ही खर्च हो रही है। फलतः अपने अन्दर सुधार करनेके लिए हमारे पास बहुत कम शक्ति बचती है।

अब मैं राज्य-विशेषोंको लेकर आपको बताऊँ कि किस तरह विभिन्न राज्योंकी सरकारोंने "ब्रिटिश भारतीयोंका रहना असम्भव कर देनेके लिए" जन-साधारणके साथ गठ-बन्धन कर रखा है। नेटाल एक विशाल स्वशासित ब्रिटिश उपनिवेश है। वहाँ मतदाताओं द्वारा निर्वाचित ३७ सदस्योंकी एक विधानसभा और गवर्नर द्वारा नामजद १२ सदस्योंकी एक विधानपरिषद है। गवर्नर सम्राज्ञीके प्रतिनिधिकी हैसियतसे इंग्लैण्डसे आता है। यूरोपीयोंकी आबादी ५०,०००, देशी या ज़ूलू लोगोंकी ४,००,००० और भारतीयोंकी ५१,००० है। भारतीयोंको लानेमें आर्थिक सहायता देनेका निश्चय १८६० में किया गया था, जब कि, नेटाल-विधानसभाके एक सदस्यके शब्दोंमें, "उपनिवेशकी उन्नति और लगभग उसका अस्तित्व ही डाँवाँडोल था" और जब ज़ूलू लोगोंको काम करनेमें अति आलसी पा लिया गया था। अब नेटालके मुख्य उद्योग और सारे उपनिवेशकी सफाई पूरी तरह भारतीय मजदूरों पर अवलम्बित है। भारतीयोंने नेटालको "दक्षिण आफ्रिकाका उद्यान" बना दिया है। एक अन्य प्रमुख नेटालीके शब्दोंमें, "भारतीयोंके आगमनसे समृद्धि आई, भाव बढ़ गये, लोग सस्ती चीजें पैदा करने या न-कुछ भावपर बेचनेसे संतुष्ट नहीं रहने लगे।" ५१,००० भारतीयोंमें से ३०,००० वे हैं, जिन्होंने अपने गिर-मिटकी अवधि काट ली है और जो अब मजदूरों, बागबानों, फेरीवालों, फल बेचनेवालों या छोटे-छोटे दूकानदारोंके भिन्न-भिन्न धंधोंमें लगे हैं। कुछ लोगोंने, परिस्थितियोंके विपरीत होते हुए भी, अपनी मिहनतसे पढ़-लिख कर शिक्षक, दुभाषिये और मुंशी बननेकी योग्यता प्राप्त कर ली है। १६,००० इस समय अपने गिरमिटकी अवधि काट रहे हैं और लगभग ५,००० दूकानदार या व्यापारी या उनके सहायक हैं, जो पहले-पहल अपने खर्चसे वहाँ आये थे। ये लोग बम्बई प्रान्तके रहनेवाले हैं और इनमें अधिकतर मेमन मुसलमान हैं। कुछ पारसी लोग भी हैं। उनमें डर्बनके रुस्तमजी विशेष उल्लेखनीय हैं। उनकी उदारता तो सर दिनशा[1] के लिए भी सम्मानास्पद होगी। उनके दरवाजेसे कोई गरीब दिलसे सन्तुष्ट हुए बिना नहीं लौटता; डर्बनमें उतरनेवाला

१. यह उल्लेख सर दिनशा एम० पेटिटका है।

कोई पारसी उनका आदर-सत्कार पाये बिना नहीं रहता। ऐसे ये सज्जन भी सताये जानेसे मुक्त नहीं हैं। ये भी "कुली" ही है। दो सज्जन जहाजों और बड़ी-बड़ी जमीन-जायदादोंके मालिक हैं। परन्तु वे "कुली जहाज-मालिक" है, और उनके जहाजोंको "कुली-जहाज" कहा जाता है।

आप देखेंगे, हर एक भारतीय हर दूसरे भारतीयके बारेमें जो साधारण दिलचस्पी रखता है उसके अलावा इस विषयमें तीन मुख्य प्रान्तों[1]की विशेष दिलचस्पी है। अगर बम्बई प्रान्तने उतनी ही बड़ी संख्यामें अपने पुत्रोंको दक्षिण आफ्रिका नहीं भेजा तो उसने इस कमीकी पूर्ति अपने पुत्रोंके अपेक्षाकृत अधिक प्रभाव और धनसे कर दी है। वास्तवमें वे अपने अन्य प्रदेशोंके कम सौभाग्यशाली भाइयोंके हितोंके संरक्षक बन गये हैं। और यह सम्भव है कि दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंको उनकी मुसीबतसे उबारनेके प्रयत्नों[2]में भारतमें भी बम्बई ही अग्रणी रहे।

सन् १८९४ के विधेयककी प्रस्तावनामें कहा गया था कि एशियाई लोग प्रातिनिधिक संस्थाओंके अभ्यस्त नहीं हैं। फिर भी, विधेयकका सच्चा उद्देश्य भारतीयोंके मताधिकारको इस कारणसे छीनना नहीं था कि वे योग्य नहीं हैं, बल्कि इस कारणसे छीनना था कि यूरोपीय उपनिवेशी भारतीयोंको नीचे गिराना और वर्ग-भेदके कानून बनानेका अधिकार जताना चाहते थे — भारतीयोंके साथ यूरोपीयोंके प्रति किये जानेवाले व्यवहारसे भिन्न व्यवहार करना चाहते थे। यह न सिर्फ विधेयकके दूसरे वाचनपर सदस्योंके भाषणोंसे, बल्कि समाचारपत्रोंसे भी स्पष्ट था। उन्होंने यह भी कहा था कि भारतीयोंके मत यूरोपीयोंके मतोंको निगल सकते हैं, इसलिए उनका मताधिकार छीन लेना ही ठीक होगा। परन्तु यह दलील भी लचर है, और थी। १८९१ में लगभग १०,००० यूरोपीय मतदाताओंके विरुद्ध भारतीय मतदाताओंकी संख्या केवल २५१ थी। अधिकतर भारतीय इतने गरीब हैं कि उन्हें सम्पत्तिके आधारपर मिलनेवाले मताधिकारका हक हो ही नहीं सकता। और नेटालके भारतीयोंने राजनीतिमें कभी हस्तक्षेप

१. बम्बई, मद्रास और बंगाल प्रदेश, जिन्हें 'प्रेसिडेंसी' कहा जाता था।

२. बम्बई प्रेसिडेंसी असोसिएशनने बादमें भारत-मन्त्रीके नाम एक प्रार्थना-पत्र भेजा था, जिसमें माँग की गई थी कि दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंकी शिकायतें दूर की जायें।

नहीं किया. न वे राजनीतिक सत्ता प्राप्त करनेकी इच्छा ही करते है। ये सब बातें *नेटाल मर्क्युरी*ने स्वीकार की हैं। वह नेटाल-सरकारका मुख-पत्र है। समर्थक उद्धरणोंके लिए आप मेरी भारतमें प्रकाशित छोटी-सी पुस्तिका[1] देख लें। हमने स्थानिक संसदको प्रार्थनापत्र देकर बताया था कि भारतीय प्रातिनिधिक संस्थाओंसे अपरिचित नहीं हैं। परन्तु हम अपने उद्देश्यमें असफल रहे। इसपर हमने तत्कालीन उपनिवेश-मन्त्री लार्ड रिपनको प्रार्थना-पत्र भेजा। दो वर्षकी लिखा-पढ़ीके बाद इस वर्ष १८९४का विधेयक वापस ले लिया गया। उसके बदलेमें एक दूसरा विधेयक तैयार कर दिया गया है। यह पहलेके विधेयकका जितना बुरा तो नहीं है, फिर भी काफी बुरा है। इसमें कहा गया है कि "जिन देशोंमें संसदीय मताधिकारपर आधारित प्रातिनिधिक संस्थाएँ अबतक नहीं है उनके निवासियों या उनकी पुरुष शाखाके वंशजोंको किसी मतदाता-सूचीमें तबतक शामिल नहीं किया जायेगा जबतक कि उन्होंने सपरिषद गवर्नरसे इस कानूनके अमलसे छूट प्राप्त न कर ली हो।" इसके अमलसे उन लोगोंको भी बरी रखा गया है, जिनके नाम पहलेसे ही वाजिबी तौरपर मतदाता-सूचीमें शामिल हैं। यह विधेयक विधानसभामें पेश किया जानेके पहले श्री चेम्बरलेनके पास मंजूरीके लिए भेजा गया था। जो कागजात प्रकाशित हुए हैं उनसे श्री चेम्बरलेनका मत यह दिखलाई पड़ता है कि भारतमें संसदीय मताधिकारपर आधारित चुनावमूलक प्रातिनिधिक संस्थाएँ नहीं हैं। चूँकि नेटाल संसदके सामने हम सफल नहीं हुए, इसलिए श्री चेम्बरलेनके इन विचारोंका अधिकतम आदर करते हुए हमने उन्हें एक स्मरणपत्र भेजकर बताया कि विधेयकका मंशा पूरा करनेके लिए, अर्थात् कानूनी तौरपर बात की जाये तो, भारतमें संसदीय मताधिकारपर आधारित चुनावमूलक प्रातिनिधिक संस्थाओंका अस्तित्व रहा है, और अब भी है। ऐसा मत लन्दन *टाइम्स*ने व्यक्त किया है, यही मत नेटालके समाचारपत्रोंका है और यही विधेयकके पक्षमें मत देनेवाले सदस्यों और नेटालके एक सुयोग्य न्यायशास्त्रीका भी है। हम यहाँके बड़े-बड़े न्यायशास्त्रियोंकी राय जाननेको बहुत उत्सुक हैं। ऐसा विधेयक मंजूर करनेका मंशा 'चित भी मेरी, पट भी मेरी'का खेल खेलना और इस तरह भारतीय समाजको तंग करना मात्र है। नेटाल विधानसभाके

१. "हरी पुस्तिका"।

अनेक सदस्योंका भी खयाल है कि विधेयकसे भारतीय समाज अनन्त मुकदमेबाजीमें फँस जायेगा और उसमें क्षोभ पैदा हो जायेगा। ये सदस्य अन्यथा भारतीयोंके विरोधी हैं।

सरकारी मुखपत्रका कथन सारांशतः यह है: "हम स्वीकार कर सकते हैं तो यही विधेयक, दूसरा कोई नहीं। अगर हम सफल हो गये, अर्थात् अगर भारतको ऐसा देश घोषित कर दिया गया जिसमें विधेयकमें उल्लिखित संस्थाएँ नहीं हैं, तो अच्छा ही है। अगर नहीं, तो भी हम कुछ खोते नहीं। हम दूसरे विधेयकका प्रयोग करेंगे — हम सम्पत्तिजन्य योग्यताका मान बढ़ा देंगे, शिक्षा-सम्बन्धी कसौटी जारी कर देंगे। अगर ऐसे विधेयकपर आपत्ति की जाये तो भी हमें डरनेकी जरूरत नहीं, क्योंकि डरनेका कारण ही कहाँ है? हम जानते हैं कि भारतीय कभी भी हमपर प्रबल नहीं हो सकते।" अगर मेरे पास समय होता तो मैं ठीक वही शब्द आपके सामने पेश कर देता। वे इनसे बहुत ज्यादा जोरदार हैं। जिनको विशेष दिलचस्पी हो वे उन्हें *हरी पुस्तिकामें* देख सकते हैं। तो, इस प्रकार हम नेटालके पास्टर [शल्य-चिकित्सक] के घातक चाकूसे चीरे-फाड़े जानेके लिए उपयुक्त पात्र माने गये हैं। फर्क सिर्फ इतना ही है कि पेरिसका पास्टर लाभ पहुँचानेके लिए ऐसा करता था। हमारा नेटालका पास्टर शुद्ध दुराग्रहके कारण, चीर-फाड़से मनोरंजनके लिए, ऐसा करता है। यह स्मरणपत्र इस समय श्री चेम्बरलेनके विचाराधीन है।

भारतकी स्थिति नेटालकी स्थितिसे बिलकुल भिन्न है। इस बातपर मैं जितना जोर दूँ उतना ही थोड़ा होगा। भारतमें बड़े-बड़े लोगोंने मुझसे यह प्रश्न पूछा है: "आपको भारतमें ही मताधिकार कहाँ प्राप्त है? अगर कुछ है भी तो वह केवल मिथ्या है। फिर आप नेटालमें मताधिकार क्यों चाहते हैं? हमारा नम्र जवाब यह है कि नेटालमें हम मताधिकार माँगते नहीं, यूरोपीय हमें उस अधिकारसे वंचित करना चाहते हैं, जिसका हम उपभोग कर रहे हैं। इससे बहुत बड़ा फर्क हो जाता है। मताधिकार छीननेका मतलब होगा हमारी गिरावट। भारतमें ऐसी कोई बात नहीं है। भारतकी प्रातिनिधिक संस्थाओंको धीरे-धीरे परन्तु निश्चयपूर्वक व्यापक बनाया जा रहा है। नेटालमें ऐसी संस्थाओंके द्वार उत्तरोत्तर हमारे लिए बन्द किये जा रहे हैं। फिर, जैसा कि लंदन *टाइम्सने* कहा है: "भारतमें भारतीयोंको ठीक वही मताधिकार प्राप्त है, जिसका उपभोग वहाँ अंग्रेज करते हैं।" नेटालमें ऐसा नहीं है।

नेटालमें जो बात एकके लिए इष्ट होती है वही बात उन्हीं परिस्थितियोंमें दूसरेके लिए इष्ट नहीं मानी जाती। इसके अलावा, मताधिकार छीनना कोई राजनीतिक कार्रवाई नहीं, केवल व्यापारिक नीति है, जो कि शिष्ट भारतीयोंके आगमनको रोकनेके लिए अंगीकार की गई है। ब्रिटिश प्रजा होनेके नाते उन्हें वही विशेषाधिकार माँगनेका हक होना चाहिए, जो किसी भी ब्रिटिश राज्य या उपनिवेशमें दूसरे ब्रिटिश प्रजाजनोंको प्राप्त हैं। जिस तरह इंग्लैण्ड जानेवाले किसी भी भारतीयको वहाँकी संस्थाओंका अंग्रेजोंके बराबर ही पूरा-पूरा लाभ उठानेका अधिकार होता है, ठीक वैसा ही अधिकार अन्य ब्रिटिश क्षेत्रोंमें भी भारतीयोंको होना चाहिए। तथापि, सच बात तो यह है कि भारतीय मतोंके यूरोपीय मतोंको निगल जानेका कोई डर है ही नहीं। यूरोपीय तो वर्ग-भेदके कानून चाहते हैं। मताधिकार सम्बन्धी वर्गगत कानून तो सिर्फ अँगूठा पकड़ कर पहुँचा पकड़नेकी तैयारी मात्र है। वे भारतीयोंको म्यूनिसिपल अधिकारोंसे भी वंचित करनेका विचार कर रहे हैं। महान्यायवादी ने इसी आशयका एक वक्तव्य भी दिया था। यह वक्तव्य पहला मताधिकार विधेयक पेश होनेपर एक सदस्यके इस सुझावके उत्तरमें दिया गया था कि भारतीयोंको म्यूनिसिपल मताधिकारसे भी वंचित कर दिया जाना चाहिए। एक अन्य सदस्यने सुझाया था कि जबतक हम भारतीयोंके प्रश्नका निबटारा करते हैं, तबतक उपनिवेशका और सरकारी नौकरियोंका दरवाजा भारतीयोंके लिए बन्द रखा जाये।

केप उपनिवेशमें भी, जहाँकी सरकार ठीक नेटालकी जैसी ही है, भारतीयोंकी हालत बदतर होती जा रही है। हालमें ही केपकी संसदने एक विधेयक मंजूर किया है। उससे ईस्ट लन्दन म्यूनिसिपैलिटीको अधिकार दिया गया है कि वह भारतीयोंको पैदल पटरियोंपर चलनेसे रोकने और विशेष स्थानोंमें रहनेके लिए बाध्य करनेके उपनियम बना सकती है। ये स्थान साधारणतः अस्वास्थ्यकारी दलदल हैं, और मनुष्योंके रहनेके अयोग्य हैं। व्यापारकी दृष्टिसे तो बेकार हैं ही। जूलूलैंड ताजका उपनिवेश है, इसलिए सीधे ब्रिटिश सरकारके शासनाधीन है। वहाँ नोंदवेनी और एशोवे बस्तियोंके सम्बन्धमें ऐसे नियम बनाये गये हैं कि उन बस्तियोंमें कोई भारतीय न तो जमीन खरीद सकता है, न हासिल कर सकता है, हालाँकि उसी देशकी मेलमॉथ नामक बस्तीमें भारतीय २,००० पौंडकी जायदादके मालिक हैं। ट्रान्सवाल एक डच गणराज्य है। वह जेमिसनके हमलेका

स्थान और पश्चिमी दुनियाके स्वर्ण-अन्वेषकोंका एलडोराडो [सोनेसे भरा हुआ कल्पित देश] है। वहाँ ५,००० से अधिक भारतीय हैं। उनमें से अनेक व्यापारी और वस्तु-भण्डार मालिक हैं। शेष फेरीवाले, हजूरिये (वेटर) और घरेलू नौकर हैं। ब्रिटिश सरकार और ट्रान्सवाल सरकारके बीच एक समझौता[1] है। उसके द्वारा "देशी लोगोंके अलावा सब व्यक्तियोंके" व्यापारिक तथा साम्पत्तिक अधिकार सुरक्षित हैं। उसके मातहत १८८५ तक भारतीय स्वतन्त्रतापूर्वक व्यापार भी करते रहे। परन्तु उस वर्ष ब्रिटिश सरकारके साथ कुछ पत्र-व्यवहार करनेके बाद ट्रान्सवालकी संसदने एक कानून बना लिया। उससे भारतीयोंका कुछ निर्दिष्ट बस्तियोंको छोड़कर शेष सब जगह व्यापार करने और जमीन-जायदाद खरीदनेका अधिकार छिन गया। साथ ही, उस उपनिवेशमें बसनेके इच्छुक हर भारतीयपर तीन पौंडका पंजीकरण (रजिस्ट्रेशन) शुल्क भी लाद दिया गया। इस विषयमें लम्बी लिखा-पढ़ी हुई। उसके फलस्वरूप प्रश्नको पंचके हाथों सौंप दिया गया। इसके सारे इतिहासके लिए मुझे फिर जिज्ञासुओंसे "हरी पुस्तिका" पढ़नेका अनुरोध करना होगा। पंचका फैसला वास्तविक दृष्टिसे भारतीयोंके विरुद्ध रहा। इसलिए परम माननीय उपनिवेश-मन्त्रीके पास एक प्रार्थनापत्र भेजा गया। परिणाम यह है कि पंचका फैसला मंजूर कर लिया गया है, हालाँकि भारतीय शिकायतका न्याय भी पूरा-पूरा मान्य किया गया है। ट्रान्सवालमें परवानोंकी प्रणाली बड़े क्रूर रूपमें प्रचलित है। दक्षिण आफ्रिकाके दूसरे हिस्सोंमें तो पहले और दूसरे दर्जेके यात्रियोंकी स्थिति असह्य बनानेवाले रेलवेके कर्मचारी ही हैं, किन्तु ट्रान्सवालमें लोग इससे एक कदम और आगे बढ़ गये हैं। वहाँ कानून ही भारतीयोंको पहले और दूसरे दर्जेमें यात्रा करनेसे वर्जित करता है। उन्हें उनकी हैसियतका खयाल किये बिना दक्षिण आफ्रिकाके आदिवासियोंके साथ एक ही डिब्बेमें धाँध दिया जाता है। सोनेकी खानोंके कानूनोंके अनुसार भारतीयोंका देशी सोना खरीदना अपराध करार दिया गया है। और यदि ट्रान्सवाल सरकारको स्वेच्छानुसार चलने दिया गया तो वह भारतीयोंके साथ केवल माल-असबाबका-सा व्यवहार करती हुई उन्हें सैनिक सेवाएँ करनेके लिए भी बाध्य कर देगी। बात स्पष्टतः दानवी है, क्योंकि, जैसा कि लन्दन *टाइम्स*ने कहा है, "हो सकता है, अब हम ब्रिटिश

१. सन् १८८४ का लंदन-समझौता।

भारतीयोंकी सेनाको ट्रान्सवालकी संगीनोंसे ब्रिटिश सेनाओंकी संगीनोंपर खदेड़े जाते देखें।" दक्षिण आफ्रिकाके दूसरे डच गणराज्य आरेंज फ्री स्टेटने तो भारतीयोंके प्रति द्वेष दिखानेमें शेष सभीको मात दे दी है। उसके प्रमुख पत्रके शब्दोंमें कहा जाये तो उसने "ब्रिटिश भारतीयोंको काफिरोंके वर्गमें रखकर उनका रहना ही असम्भव कर दिया है।" वह भारतीयोंको न केवल व्यापार तथा खेती करने और जमीन-जायदाद खरीदनेका अधिकार देनेसे इनकार करता है, बल्कि विशेष अपमानजनक परिस्थितियोंके परे वहां रहनेका अधिकार भी नही देता।

ऐसी है, बहुत संक्षेपमें, दक्षिण आफ्रिकाके विभिन्न राज्योंमें रहनेवाले भारतीयोंकी स्थिति। उपर्युक्त तमाम राज्योंमें जिन भारतीयोंसे इतना द्वेष किया जाता है उनको ही, नेटालसे सिर्फ ३०० मील दूर, अर्थात् डेलागोआ-बेमें, बहुत अधिक पसन्द किया जाता है और उनका बहुत आदर किया जाता है। इस सब द्वेष-भावका सच्चा कारण दक्षिण आफ्रिकाके प्रमुख पत्र *केप टाइम्स*के उस समयके शब्दोंमें, जब कि उसके सम्पादक दक्षिण आफ्रिकी पत्रकारोंके शिरोमणि हर सेंट लेजर थे, यह है:

> **जिस चीजसे आजतक भारी शत्रुता पैदा होती आ रही है, वह है इन व्यापारियोंकी स्थिति। और इनकी स्थितिका खयाल करके ही इनके व्यापारी प्रतिस्पर्धियोंने, अपनी स्वार्थ-सिद्धिके लिए, सरकारके माध्यमसे, इन्हें वह दण्ड देनेका प्रयत्न किया है, जो प्रत्यक्ष रूपमें बहुत ज्यादा अन्याय जैसा दीखता है।** उसी पत्रने आगे लिखा है: **भारतीयोंके प्रति अन्याय इतना स्पष्ट है कि जब केवल इन लोगोंकी व्यापारिक सफलताके कारण हमारे देशवासी इनके साथ देशी (अर्थात्, दक्षिण आफ्रिकाके) लोगों जैसा व्यवहार करना चाहते हैं तो उनपर शर्म-सी आती है। भारतीयोंको उस मानहानिकारी स्तरसे उन्नत कर देनेके लिए तो स्वयं यह कारण ही काफी है कि वे प्रबल जातिके विरुद्ध इतने सफल हुए हैं।**

अगर यह १८८९ में सही था, जबकि यह लिखा गया था, तो आज दूना सही है, क्योंकि दक्षिण आफ्रिकाके विधानमंडलने सम्राज्ञीके भारतीय प्रजा-जनोंकी स्वतन्त्रतापर प्रतिबंध लगानेवाले कानून पास करनेमें चतुर्मुखी प्रवृत्ति दिखाई है।

अपने प्रति विरोधके इस ज्वारको रोकनेके लिए हमने छोटे-से पैमानेपर एक संस्था[1] बनाई है, ताकि हम अपने कष्टोंको दूर करानेके लिए आवश्यक कार्रवाई कर सकें। हमारा विश्वास है कि दुर्भावनाओंके एक बड़े अंशका कारण भारतमें रहनेवाले भारतीयोंके विषयमें उचित ज्ञानका अभाव है। इसलिए, जहाँतक जन-साधारणका सम्बन्ध है, हम आवश्यक जानकारी देकर लोकमतको शिक्षित करनेका प्रयत्न करते हैं। कानूनी बाधा-निषेधोंके बारेमें हमने इंग्लैंडवासी अंग्रेजोंके लोकमतको और यहाँके लोकमतको, उसके सामने अपनी स्थिति पेश करके, प्रभावित करनेका प्रयत्न किया है। जैसा कि आप जानते हैं, इंग्लैंडमें अनुदार और उदार दोनों दलोंने बिना भेदभावके हमारा समर्थन किया है। लन्दन *टाइम्सने* हमारे पक्षमें बहुत सहानुभूतिके साथ आठ अग्रलेख[2] प्रकाशित किये हैं। केवल इतनेसे ही हम दक्षिण आफ्रिकाके यूरोपीयोंकी नजरोंमें एक सीढ़ी ऊपर उठ गये हैं और वहाँके समाचारपत्रोंकी ध्वनि बहुत-कुछ बदल गई है।

हमारी माँगोंके बारेमें मैं स्थितिको थोड़ा और स्पष्ट कर दूँ। हम जानते हैं कि जन-साधारणके हाथों हमें जो अपमान और तिरस्कार सहना पड़ता है वह ब्रिटिश सरकारके सीधे हस्तक्षेपसे दूर नहीं हो सकता। हम उससे ऐसे किसी हस्तक्षेपका अनुरोध करते भी नहीं। हम उन बातोंको जनताकी नजरमें लाते हैं, ताकि तमाम समाजोंके न्यायशील व्यक्ति और समाचारपत्र अपनी नापसन्दगी व्यक्त करके उनकी कठोरताको अधिकसे अधिक घटा दें और हो सके तो अन्ततः उन्हें निर्मूल कर दें। परन्तु हम ब्रिटिश सरकारसे यह अनुरोध तो निश्चय ही करते हैं कि ऐसी दुर्भावनाओंका कानूनमें उतारा जाना रोका जाये। और हमें आशा है कि हमारा यह अनुरोध व्यर्थ नहीं होगा। हम ब्रिटिश सरकारसे यह प्रार्थना अवश्य करते हैं कि उपनिवेशके विधानमंडल हमारी स्वतन्त्रताको किसी भी रूपमें सीमित करनेके लिए जो भी कानून बनायें उनका निषेध किया जाये।

इससे मैं अन्तिम प्रश्नपर आता हूँ। वह प्रश्न यह है कि ब्रिटिश सरकार उपनिवेशों और सहयोगी राज्योंकी इस तरहकी कार्रवाइयोंमें कहाँतक हस्तक्षेप कर सकती है? जहाँतक जूलूलैंडका सम्बन्ध है वहाँतक तो कोई प्रश्न है ही

१. नेटाल भारतीय कांग्रेस।

२. देखिए, पृष्ठ ७६।

नहीं, क्योंकि वह ताजका उपनिवेश है और उसका शासन गवर्नरके जरिये सीधे १० डार्उनिंग स्ट्रीट [ब्रिटिश मन्त्रालय] से होता है। नेटाल और शुभाशा अन्तरीप (केप आफ गुड होप) के समान वह स्वशासित या उत्तरदायी शासनवाला उपनिवेश नहीं है। नेटाल और शुभाशा अन्तरीपके बारेमें नेटालके संविधान अधिनियम (कान्स्टिट्यूशन ऐक्ट) की सातवीं उपधारामें व्यवस्था है कि यदि स्थानीय संसदके किसी अधिनियमको गवर्नरकी अनुमति प्राप्त हो जाये और इस तरह वह कानून बन जाये, तो भी सम्राज्ञी-सरकार दो वर्षके अन्दर कभी भी उसका निषेध कर सकती है। उपनिवेशोंके उत्पीड़क कानूनोंके खिलाफ यह एक संरक्षण है। गवर्नरके नाम सम्राज्ञीके निर्देशोंमें अमुक विधेयक गिना दिये गये हैं, जिन्हें सम्राज्ञी-सरकारकी पूर्व-स्वीकृति प्राप्त किये बिना गवर्नर अनुमति नहीं दे सकता। ऐसे विधेयकोंमें वर्ग-भेदके लक्ष्यवाले विधेयक शामिल हैं। मैं एक उदाहरण देनेकी धृष्टता करूँगा। ऊपर बताये हुए प्रवासी कानून संशोधन विधेयकको गवर्नरने अनुमति प्रदान कर दी है। परन्तु वह तभी अमलमें आ सकता है, जबकि सम्राज्ञी उसे स्वीकृति दे दें। अबतक उसे स्वीकृति नहीं दी गई। इस तरह, आप देखेंगे कि सम्राज्ञीका हस्तक्षेप सीधा और स्पष्ट है। यह तो सत्य है कि ब्रिटिश सरकार उपनिवेश-विधानमण्डलोंके कानूनोंमें हस्तक्षेप बहुत मन्दतासे करती है, फिर भी ऐसे उदाहरण मौजूद हैं जब कि उसने इससे कम जरूरी प्रसंगोंपर भी दृढ़तासे काम लेनेमें संकोच नहीं किया। जैसा कि आप जानते हैं, पहला मताधिकार विधेयक ऐसे ही लाभप्रद हस्तक्षेपसे रद हुआ था। इसके अलावा, उपनिवेश सदैव ऐसे हस्तक्षेपके बारेमें डरते रहते हैं। और इंग्लैंडमें व्यक्त की गई सहानुभूतिसे तथा कुछ महीने पूर्व जो शिष्टमण्डल श्री चेम्बरलेनसे मिला था उसको श्री चेम्बरलेनके सहानुभूतिपूर्ण उत्तरसे दक्षिण आफ्रिकाके अधिकतर पत्रोंने—कमसे कम नेटालके पत्रोंने तो अवश्य ही—अपना रुख बदल दिया है। अब वे सोचने लगे हैं कि प्रवासी-विधेयक तथा इसी प्रकारके अन्य विधेयकोंको सम्भवतः सम्राज्ञीकी अनुमति प्राप्त न होगी। जहाँतक ट्रान्सवालका सम्बन्ध है, समझौता मौजूद है ही। जहाँतक आरेंज फ्री स्टेटकी बात है, मैं इतना ही कह सकता हूँ कि एक मित्र-राज्यका सम्राज्ञीकी प्रजाके किसी भी अंगके लिए अपने द्वार बन्द करना एक अमैत्रीपूर्ण कार्य है। और ऐसी स्थितिमें, मेरा नम्र विचार है, उसे सफलताके साथ रोका जा सकता है।

सज्जनो, दक्षिण आफ्रिकाके सबसे ताजे समाचारोंसे मालूम होता है कि वहाँके यूरोपीय लोग भारतीयोंको बरबाद कर देनेके लिए लोगोंको समझाने-बुझानेमें जुटे हुए हैं। वे भारतीय कारीगरोंके लाये जानेके विरुद्ध हर तरहका आंदोलन कर रहे हैं।[१] इस सबसे हमें चेतावनी और गति प्राप्त करनी चाहिए। हम दक्षिण आफ्रिकामें चारों ओरसे घिरे हुए हैं। अभी हम शैशवावस्थामें हैं। हमें आपसे संरक्षणके लिए प्रार्थना करनेका अधिकार है। हम अपनी स्थिति आपके सामने रख रहे हैं और अब अगर हमारे कन्धोंसे उत्पीड़नकी जुआड़ी न हटी तो बहुत हदतक जिम्मेदारी आपके सिर होगी। उस जुआड़ीमें जुते होनेके कारण हम पीड़ासे केवल कराह सकते हैं। उसे हटाना आपका —हमारे बड़े और अधिक स्वतन्त्र भाइयोंका काम है। मुझे विश्वास है, हमारी पुकार व्यर्थ न होगी।

[अंग्रेजीसे]

टाइम्स आफ़ इंडिया, २७-९-१८९६
बाम्बे गज़ट, २७-९-१८९६

१. यूरोपीयोंने डर्बनमें सार्वजनिक सभाएँ करके भारतीय प्रवासी न्यास निकाय (इंडियन इमिग्रेशन ट्रस्ट बोर्ड)के इस निर्णयका विरोध किया था कि नेटालकी टोंगाट शकर जायदादोंमें काम करनेके लिए भारतीय कारीगरोंको लाने दिया जाये। भारतीयोंके आनेको 'एशियाइयोंका हमला' बताया गया था और उसे रोकनेके लिए एक 'यूरोपीय रक्षा संघ' (यूरोपियन प्रोटेक्शन असोसिएशन) और एक 'औपनिवेशिक देशभक्त संघ' (कलोनियल पैट्रिऑटिक यूनियन)का संगठन किया गया था।

४. पत्र : फर्दुनजी सोराबजी तलेयारखाँको

मारफ़त : श्री रेवाशंकर
जगजीवनराम ऐंड कं०
चम्पागली
बम्बई
अक्टूबर १०, १८९६[1]

प्रिय श्री तलेयारखाँ,[2]

मैं आपको इससे जल्द नहीं लिख सका और न दक्षिण आफ्रिकाके मुख्य लोगोंके नाम ही भेज सका। मुझे भरोसा है कि आप कृपाकर मेरी इस असमर्थताके लिए मुझे क्षमा करेंगे। इसका कारण यह है कि मैं अपने घरेलू कामोंमें बहुत व्यस्त रहा हूँ। यह पत्र मैं आधी रातको लिख रहा हूँ।

मैं कल (रविवारको) शामकी डाकगाड़ीसे मद्रासके लिए रवाना हो रहा हूँ। वहाँ एक पखवारेसे ज्यादा रहनेकी आशा नहीं करता। अगर मैं वहाँ सफल हुआ तो वहींसे कलकत्ता जाऊँगा और आजसे एक महीनेके अन्दर बम्बई लौट आऊँगा। बादमें पहले जहाजसे नेटालके लिए रवाना हो जाऊँगा।

नेटालसे प्राप्त ताजेसे ताजे अखबारोंसे मालूम होता है कि अभी बहुत लड़ाई बाकी है। और अगर लक्ष्यको पूरी तरह निभाना है तो सिर्फ यही आपके जैसे काम करनेवाले दो व्यक्तियोंका ध्यान खपा लेनेके लिए काफी

१. मूल पत्रमें १०–८–१८९६ तारीख पड़ी है। मालूम होता है कि यह भूल है और इसकी जगह ता० १०–१०–१८९६ होनी चाहिए थी। गांधीजीके 'भारतमें प्रतिनिधित्वके खर्चका हिसाब' की एक मदसे (पृष्ठ १५४) मालूम होता है कि वे दूसरे दिन, अर्थात् ११ अक्टूबरको, मद्रासके लिए रवाना हुए थे। इससे उपर्युक्त मतकी पुष्टि होती है। इसके अलावा, ११ अगस्तको मंगलवार था, रविवार नहीं; जब कि ११ अक्टूबरको रविवार था, जिसका पत्रके 'कल (रविवारको) शामकी डाकगाड़ीसे' शब्दोंके साथ पूरा-पूरा मेल बैठता है।

२. गांधीजीने अंग्रेजीमें इस नामके जो हिज्जे किये हैं उनका यही उच्चारण होता है, किन्तु आजकल जो हिज्जे किये जाते हैं उनसे 'तलयारखाँ' पढ़ना होगा।

है। मुझे सच्ची आशा है कि आपको नेटाल[1] आकर मेरा साथ देनेमें कोई अड़चन नहीं होगी। मुझे निश्चय है कि लक्ष्य लड़ने लायक है।

अगर आप मुझे लिखना चाहें तो ऊपरके पते पर लिख सकते हैं। आपके पत्र मेरे पास मद्रास भेज दिये जायेंगे। मालूम नहीं, वहाँ मैं किस होटलमें ठहरूँगा। नेटालके होटलोंने मुझे बिलकुल डरा दिया है।

आपका सच्चा,

मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी पत्रसे। सौजन्य: श्री तलेयारखाँके पुत्र रुस्तमजी फर्दुनजी सोराबजी तलयारखाँ।

५. नेटाल-निवासी भारतीय

बम्बई
अक्तूबर १७, १८९६

सेवामें
सम्पादक
टाइम्स आफ़ इंडिया

महोदय,

अगर आप इसे अपने प्रभावशाली पत्रमें प्रकाशित करनेकी कृपा करें, तो मैं आभारी हूँगा।

मैंने दक्षिण आफ्रिकाके ब्रिटिश भारतीयोंकी शिकायतोंपर जो पुस्तिका लिखी है उसके उत्तरमें, जान पड़ता है, नेटालके एजेंट-जनरलने रायटरके प्रतिनिधिसे कहा है कि यह कहना सच नहीं है कि रेलवे तथा ट्रामके

१. मालूम होता है कि श्री तलेयारखाँके नेटाल जानेके बारेमें इसके पहले उनके और गांधीजीके बीच कुछ पत्र-व्यवहार हो चुका था।

अक्टूबर १, १८९५ को नेटाल भारतीय कांग्रेसके समक्ष भाषण करते हुए गांधीजीने कहा था कि मैं जनवरीमें भारत जानेवाला हूँ और अनेक अच्छे भारतीय बैरिस्टरोंको नेटाल आनेके लिए समझानेका प्रयत्न करूँगा। देखिए खण्ड १, पृष्ठ २५३–५४।

तलेयारखा और गांधीजी बैरिस्टर बननेके बाद एक ही जहाजमें भारत लौटे थे।

कर्मचारी भारतीयोंके साथ पशुओं जैसा व्यवहार करते हैं; भारतीय प्रवासी मुफ्त वापसी टिकटका लाभ नहीं उठाते, यही मेरी उक्त पुस्तिकाका सबसे अच्छा जवाब है; और, भारतीयोंको अदालतोंमें न्यायसे वंचित नहीं किया जाता। पहले तो, पुस्तिकामें सारे दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंकी शिकायतोंका वर्णन किया गया है। दूसरे, मैं इस बयानपर दृढ़ हूँ कि नेटालमें रेलवे और ट्रामके कर्मचारी भारतीयोंके साथ पशुओं जैसा व्यवहार करते हैं। इसमें अगर कोई अपवाद हों तो उनसे नियमका सबूत ही मिलता है। मैंने खुद ऐसे अनेक मामले देखे हैं। अगर यूरोपीय यात्रियोंकी सुविधाके लिए एक रातमें तीन बार एक डिब्बेसे दूसरेमें और दूसरेसे तीसरेमें हटाया जाना पशुवत् व्यवहार नहीं है तो क्या है? जो लोग देखनेमें ही शिष्ट जँचते हैं उन्हें स्टेशन मास्टर ठोकरें मारते हैं, धक्के देते हैं और कसमें खा-खाकर धमकियाँ देते हैं। रेलवे स्टेशनोंमें ऐसे दृश्य असाधारण नहीं होते। डर्बनके वेस्ट एंड स्टेशनका स्टेशनमास्टर तो इतनी नम्रता दिखाता है कि कुछ पूछिए ही मत। मगर भारतीय उस स्टेशनसे थर-थर काँपते हैं। और यही एकमात्र स्टेशन नहीं है जहाँ भारतीयोंको फुटबालके समान ठोकरें मार-मारकर एक स्थानसे दूसरे स्थानको भगाया जाता है। इसकी स्वतंत्र साक्षी मौजूद है। *नेटाल मर्क्युरी* (२४-११-'९३) ने लिखा है:

> **हमने एकाधिक बार देखा है कि हमारी रेलवे कुछ ऐसी नहीं है, जिसमें गोरे कर्मचारियोंके सभ्य व्यवहारसे गैर-गोरोंका दम घुटने लगता हो। और यद्यपि यह अपेक्षा करना उचित न होगा कि नेटाल गवर्नमेंट रेलवेके गोरे कर्मचारी उनके साथ वैसे ही आदरका व्यवहार करें जैसा कि वे यूरोपीय यात्रियोंके साथ करते हैं, फिर भी हम समझते हैं, गैर-गोरे यात्रियोंके साथ व्यवहार करनेमें अगर वे जरा अधिक शिष्टतासे काम लें तो उनकी शानमें बट्टा न लगेगा।**

ट्राम गाड़ियोंमें भी भारतीयोंको बेहतर तजुर्बे नहीं होते। यूरोपीय यात्रियोंके मनकी तरंग पूरी हो, इसलिए बेदाग, स्वच्छ कपड़े पहने शिष्ट भारतीयोंको भी एक जगहसे दूसरी जगह खदेड़ा गया है। सच तो यह है कि ट्रामगाड़ीके कर्मचारी "सामीको छतपर चले जानेके लिए" बाध्य करते हैं। कुछ लोग उन्हें सामनेकी बैठकों पर बैठने नहीं देते। आदर-मानका तो प्रश्न ही नहीं उठता। एक ट्राममें, बैठनेकी जगह काफी होनेपर भी, एक

भारतीय सरकारी कर्मचारीको पाँवदान पर खड़े रहनेको बाध्य किया गया था और उसे नेटालकी खास चोट पहुँचानेवाली ध्वनिमें "सामी" कहकर तो पुकारा गया ही था। मेरा वक्तव्य नेटालकी जनताके सामने गत दो वर्षोंसे है और उसका प्रतिवाद पहली बार अब एजेंट-जनरल द्वारा किया गया है। इतनी देरसे क्यों? अब रही भारतीयोंके मुफ्त वापसी टिकटका फायदा न उठानेकी बात। सो, मैं एजेंट-जनरलके प्रति उचित सम्मानके साथ कहता हूँ कि यह कथन पत्रोंमें इतनी बार दुहराया जा चुका है कि इससे मन ऊब गया है। इतना होनेके बाद अब इसे सरकारी तौरपर जो गौरव प्रदान किया गया है उससे यह अपनी शक्तिसे ज्यादा कुछ साबित नहीं कर सकेगा। ज्यादासे ज्यादा यह इतना सिद्ध कर सकता है कि गिरमिटिया भारतीयोंका भाग्य बहुत दुःखमय नहीं है और नेटाल ऐसे भारतीयोंके लिए जीविका कमानेका बहुत अच्छा स्थान है। मैं दोनों बातें माननेको तैयार हूँ। परन्तु इससे भारतीयोंकी स्वतन्त्रतापर अनेक प्रकारसे प्रतिबंध लगानेवाले औपनिवेशिक कानूनोंका अस्तित्व झूठा नहीं ठहरता। इससे भारतीयोंके प्रति उपनिवेशमें भयानक दुर्भावनाका अस्तित्व झूठा नहीं ठहरता। इतने पर भी अगर भारतीय नेटालमें बने हैं तो ऐसे व्यवहारके बावजूद। इससे उनका आश्चर्यजनक धैर्य ही साबित होता है। श्री चेम्बरलेनने, दक्षिण आफ्रिकी शब्दोंका उपयोग किया जाये तो, "कुलियोंके पंच-फैसले" सम्बन्धी अपने खरीतेमें इस धैर्यकी मुक्त कंठसे प्रशंसा की है।

दक्षिण आफ्रिकासे आये हुए ताजे अखबार, नेटाल-सरकारके दुर्भाग्यवश, मेरे इस कथनको और भी जोरदार बनाते हैं कि वहाँ भारतीयोंको क्रूरताके साथ उत्पीड़ित किया जाता है। गत अगस्तमें यूरोपीय कारीगरोंकी एक सभा हुई थी। उसका उद्देश्य भारतीय कारीगरोंको लानेके इरादेका विरोध करना था। उसमें जो भाषण दिये गये थे उन्हें पढ़ना नेटालके एजेंट-जनरलके लिए बड़ा दिलचस्प होगा। उसमें भारतीयोंको "काले घुन" कहकर पुकारा गया था। एक आवाज उठी थी: "हम बन्दरगाहपर जायेंगे और उन्हें रोक देंगे।" वन-भोजनके लिए गई यूरोपीय बच्चोंकी एक टुकड़ीने भारतीय और काफिर बच्चोंको चाँदमारीका निशाना बनाया था और उनके चेहरोंपर गोलियाँ दागी थीं, जिनसे अनेक निर्दोष बच्चे घायल हो गये थे। द्वेष इतने गहरे घुस गया है कि बच्चे सहज ही भारतीयोंको तिरस्कारकी नजरसे देखने लगे हैं। इसके अलावा, खयाल रखना चाहिए कि मुफ्त वापसी टिकटके

पँवाड़ेका व्यापारी-वर्गके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। वे अपने खर्चसे नेटाल जाते हैं और कठिनाइयाँ सबसे ज्यादा उन्हें ही महसूस होती हैं। बात यह है कि एक हकीकत विश्वास की हुई बातोंके सैकड़ों बयानोंसे ज्यादा जोरदार होती है। और मेरी पुस्तिकामें मेरा अपना कथन बहुत कम है। वह एजेंट-जनरल श्री पीसके बेसबूत बयानके खिलाफ मेरे कथनको सही साबित करनेके लिए तथ्योंसे भरी हुई है। और इन तथ्योंका संकलन खास तौरसे यूरोपीय सूत्रोंसे किया गया है। अगर पुस्तिकाके उत्तरमें कहने योग्य उतनी ही बातें हैं, जितनी श्री पीसके बयानमें कही गई हैं, तो फिर नेटालको भारतीयोंके लिए मामूली आरामकी जगह बनानेके लिए बहुत-कुछ करना बाकी है। जहाँतक भारतीयोंके अदालतमें न्याय प्राप्त करनेकी बात है, मैं ज्यादा कहना नहीं चाहता। मैंने यह कभी नहीं कहा कि भारतीयोंको अदालतमें न्याय नहीं मिलता। और मैं यह स्वीकार करनेको भी तैयार नहीं हूँ कि उन्हें सब अदालतोंमें हर मौकेपर न्याय मिलता ही है।

महोदय, मैं अतिशयोक्ति करनेका आदी नहीं हूँ। आपने सरकारी जाँचकी माँग की है; हमने भी वही किया है। और अगर नेटाल-सरकारको अप्रिय रहस्य प्रकट होनेका भय नहीं है तो इस तरहकी जाँच जितनी जल्दी हो सके, कराई जाये। मैं आश्वासन देता हूँ कि पुस्तिकामें जितना कहा गया है, जाँचमें उससे बहुत ज्यादा साबित हो जायेगा। मुझे लगता है कि यह आश्वासन मैं बिना किसी जोखिमके दे सकता हूँ। मैंने पुस्तिकामें सिर्फ वे उदाहरण दिये हैं, जिन्हें अत्यन्त सरलतासे प्रमाणित किया जा सकता है। महोदय, हमारी स्थिति बहुत चिन्ताजनक है। आप अबतक इतनी उदारताके साथ हमारा जो सक्रिय समर्थन करते आये हैं, उसकी भविष्यमें हमें लम्बे समय तक जरूरत रहेगी। जैसा कि इस सप्ताहके पत्रोंसे स्पष्ट है, गत वर्ष आपने और आपके सहयोगियोंने जिस प्रवासी कानून संशोधन विधेयक (इमिग्रेशन लॉ अमेंडमेंट बिल) की बहुत जोरदार शब्दोंमें निन्दा की थी, उसे सम्राज्ञीकी स्वीकृति प्राप्त हो गई है। मैं आपके पाठकोंको स्मरण करा दूँ कि विधेयक द्वारा गिरमिटकी अवधिको ५ वर्षसे बढ़ाकर अनिश्चित काल तककी कर दिया गया है। अगर कोई मजदूर पाँच वर्षकी पहली अवधि समाप्त करनेके बाद नया इकरार करनेको राजी न हो तो उसे अनिवार्य रूपसे भारत लौटना होगा। बेशक, उसका वापसी किराया मालिकके जिम्मे रहेगा। और जो इस शर्तको न पाले उसे तीन

पौंड वार्षिक व्यक्ति-कर देना पड़ेगा, जो कि गिरमिटकी अवधिकी एव वर्षकी कमाईका लगभग आधा होगा। यह विधेयक जिस समय स्वीकार किय गया था उस समय इसे एक मतसे अन्यायपूर्ण घोषित किया गया था नेटालके पत्रों तकको सन्देह था कि इसे सम्राज्ञीकी अनुमति प्राप्त होगी य नहीं। इतने पर भी वह ८ अगस्तसे अमलमें आ गया है।

हमारा सबसे अच्छा और शायद एकमात्र आयुध प्रचार ही है हमसे हमदर्दी रखनेवालोंमें एकका कथन है कि "हमारी शिकायतें इतनी गम्भीर हैं कि उनका निवारण करनेके लिए उन्हें जान लेना ही बस है।' अब हम आपसे और आपके समकालीन पत्रोंसे उपनिवेश-मंत्रीके इस कार्य पर अपना मत व्यक्त करनेकी विनती करते हैं। हम समझते रहे हैं वि उपनिवेश-मंत्रालय हमारा विश्वसनीय आश्रय-स्थल है। हो सकता है वि हमारा भ्रम अभी दूर होना बाकी हो। परन्तु हमने प्रार्थना की है कि अग विधेयकका निषेध न किया जा सके तो सरकारकी ओरसे और सरकारकी मददसे नेटालको मजदूर भेजना स्थगित कर दिया जाये।[1] जनताने इस प्रार्थनाका समर्थन किया था। क्या हम भरोसा करें कि हमारे उस प्रार्थनाको स्वीकार करानेके नये प्रयत्नोंमें जनता नई स्फूर्तिसे हमार समर्थन करेगी?

आपका, आदि
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
टाइम्स आफ़ इंडिया, २०–१०–१८९६

१. देखिए खण्ड १, पृष्ठ २३४–२३५।

Buckingham
Hotel
Madras
18-10-'96

Sir,

I promised to leave with [illegible] some further papers in connection with the Indian question in South Africa. I am sorry I forgot all about it. I beg now to send them per bookpost and trust they will be of some

use.

We very badly need a committee of active prominent workers in India for our cause. The question affects not only South African Indians but Indians in all parts of the world outside India. I have no doubt you have read the telegram about the Australian Colonies legislating to restrict

the influx of Indian immigrants to that part of the world. It is quite possible that that legislation might receive the royal sanction. I submit that our great men should without delay take up this question. Otherwise within a very short time there will be an end to Indian enterprise outside India. In my humble opinion

that telegram might be made the subject of a question in the Imperial Council at Calcutta as well as in the House of Commons. In fact some enquiry as to the intention of the Indian Government should be made immediately.

Seeing that you took very warm interest in my conversation I thought I would venture to write the above.

Professor Gokhale
Poona.

I remain yours
[illegible]

६. पत्र : गो० कृ० गोखलेको[1]

बकिंघम होटल
मद्रास
अक्टूबर १८, १८९६

प्रोफेसर गोखले
पूना

श्रीमन्,

मैंने दक्षिण आफ्रिकी भारतीयोंके प्रश्न-सम्बन्धी कुछ और कागजात श्री सोहोनीके पास छोड़ देनेका वचन दिया था। खेद है कि मैं उस बातको बिलकुल भूल गया। अब उन्हें बुकपोस्टसे भेज रहा हूँ। आशा करता हूँ कि वे कुछ काम आयेंगे।

हमें अपने कामके लिए भारतमें कर्मठ और प्रतिष्ठित कार्यकर्ताओंकी एक समितिकी सख्त जरूरत है। सवाल सिर्फ दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंसे नहीं, बल्कि भारतके बाहर दुनियाके सब हिस्सोंमें रहनेवाले भारतीयोंसे सम्बन्ध रखता है। आपने आस्ट्रेलियाई उपनिवेशों सम्बन्धी तार अवश्य ही पढ़ा होगा। वे दुनियाके उस हिस्सेमें भारतीयोंके प्रवासको रोकनेका कानून बना रहे हैं। बिलकुल सम्भव है कि उस कानूनको सम्राज्ञीकी अनुमति मिल जाये। मेरी विनती है कि हमारे बड़े लोगोको तुरन्त यह मामला अपने हाथोंमें ले लेना चाहिए। अन्यथा, बहुत थोड़े समयमें ही भारतीयोंका भारतके बाहर जाकर उद्योग करना खत्म हो जायेगा। मेरी नम्र रायसे, उस तारके विषयमें कलकत्तेकी शाही परिषद[2]में तथा ब्रिटेनकी लोकसभामें भी प्रश्न पूछना चाहिए। दरअसल, भारत-सरकारके इरादोंके बारेमें कुछ पूछ-ताछ तत्काल होनी चाहिए।

१. गांधीजी मद्रास जाते हुए पूनामें गोपाल कृष्ण गोखलेसे मिले थे; देखिए पृष्ठ १५४।

२. गोखले वाइसरायकी विधानपरिषदके सदस्य थे।

आपने मेरी बातोंमें बहुत हमदर्दीके साथ दिलचस्पी ली थी, इसीलिए मैंने सोचा कि मैं उपर्युक्त बातें आपको लिख दूं।

आपका आज्ञानुवर्ती,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३७१६)से।

७. पत्र : फर्दुनजी सोराबजी तलेयारखाँको

बकिंघम होटल
मद्रास
अक्टूबर १८, १८९६

प्रिय श्री तलेयारखाँ,

आपका महत्त्वपूर्ण पत्र मिला। उसके लिए धन्यवाद।

आपने जो पूछा वह सचमुच बहुत उचित है। और आप भरोसा रखें, मैं ज्यादासे ज्यादा स्पष्ट उत्तर दूंगा।

मैं यह मानकर चलता हूँ कि हम साझेमें काम करनेवाले हैं। आपके मामलेको एकदम अलग मानकर विचार करनेका तो प्रश्न ही नहीं है।

डर्बनमें मेरी तिजोरीमें लगभग ३०० पौंडकी चेकें[1] पड़ी हैं। वे १८९७ की ३१ जुलाई तक बँधे रहनेके शुल्क (रिटेनर) की हैं। उन्हें मैं यहाँकी देनदारी चुकाने और सम्भवतः अपने दफ्तरका वर्तमान खर्च पूरा करनेके लिए साझेदारीसे निकाल लेनेका विचार रखता हूँ। मैं 'सम्भवतः' इसलिए कहता हूँ कि शायद बची हुई रकमसे डर्बनका खर्च पूरा न होगा।

यदि पिछला अनुभव जरा भी मार्गदर्शक हो तो, मैं समझता हूँ, मेरा यह कहना ठीक ही होगा कि पहले ६ महीनोंकी संयुक्त आय ७० पौंड माहवारके हिसाबसे होगी। इसमें मैं संयुक्त खर्च—अर्थात्, हमारे एक ही घरमें मिलकर रहनेका खर्च—५० पौंड माहवार लगा लेता हूँ। इससे, छः मासके अन्तमें, हमारे बीच बराबर-बराबर बाँटनेके लिए १२० पौंडका साफ लाभ बचेगा। यह कमसे कम अनुमान है। इतना मैं अकेला कमा लेनेकी आशा कर

१. यह उल्लेख बैरिस्टरीके मिहनतानेका है, जो उन्हें भारतीय व्यापारियोंसे मिला था।

सकता हूँ। साथ-साथ भारतीयों सम्बन्धी काम भी करता रह सकूँगा। परन्तु अगर हम १५० पौंड मासिक कमा लें तो मुझे आश्चर्य नहीं होगा।

इतना मैं वादा कर सकता हूँ। नेटाल जानेका किराया आपके पास अपना होना चाहिए। वहाँ प्रवेशका खर्च दफ्तरसे दे दिया जायेगा। रहने और भोजनका खर्च भी दफ्तरकी आमदनीसे होगा। मतलब यह कि अगर छः महीनेके परीक्षण-कालमें कोई हानि हो तो उसे मैं बर्दाश्त करूँगा। दूसरी ओर, अगर कुछ भी लाभ हो तो उसमें आपका साझा होगा।

इस तरह अगर छः माहके अन्तमें आपको धनका लाभ न भी हो तो भारतमें जो अनुभव सम्भव है उससे भिन्न प्रकारके अनुभवका भारी लाभ तो होगा ही। आप दुनियाके उस हिस्सेमें अपने देशवासियोंकी हालत समझ सकेंगे और एक नया देश भी देख लेंगे। मुझे कोई सन्देह नहीं कि अगर आपको नेटालमें निराश भी होना पड़े तो भी बम्बईमें आपके सम्बन्ध ऐसे हैं कि छः महीनेकी गैरहाजिरीसे वहाँ आपका भावी जीवन बिगड़ेगा नहीं। मैंने ऊपर जो-कुछ कहा है उसके लिए बम्बई में छः माहका नुकसान उठाना पडेगा।

कुछ हो, यह तो मैं जितना स्पष्ट करूँ उतना थोडा ही होगा कि हमारी स्थितिके किसी व्यक्तिको धन इकट्ठा करनेके ख़यालसे दक्षिण आफ्रिका नहीं जाना चाहिए। आपको वहाँ स्वार्थ-त्यागकी भावनासे जाना चाहिए। लक्ष्मीसे हाथ-भर दूर ही रहना चाहिए। तब वह आपको रिझा सकती है। अगर आपने अपनी नजर उसपर डाली तो वह ऐसी नखरेबाज है कि आपका अनादर हुए बिना न रहेगा। यह मेरा दक्षिण आफ्रिकाका अनुभव है।

जहाँतक आर्थिक प्रश्नको छोड़ कर दूसरे कामका सम्बन्ध है, मैं आश्वासन दिलाता हूँ कि वहाँ आपकी प्रवृत्तियोंको चालू रखनेके लिए काफी से ज्यादा काम होगा—सो भी कानूनी काम।

साथ भोजन करनेमें थोड़ी-सी कठिनाई आ सकती है। अगर आप अन्नाहार पर गुजर कर सकते हैं तब तो मैं भारतीय और अंग्रेजी दोनों प्रकारोंके अत्यन्त स्वादिष्ठ पदार्थ मेजपर हाजिर कर सकता हूँ। परन्तु ऐसा सम्भव न हो तो हमें एक और बावर्ची रखना होगा। किसी भी हालतमें, यह हमारे लिए कोई अजेय कठिनाई नहीं हो सकती। मुझे विश्वास है कि मैंने स्थिति बिलकुल साफ-साफ बता दी है। अगर किसी

बातके स्पष्टीकरणकी जरूरत हो तो आपका कह देना भर काफी होगा। परन्तु इतनी आशा तो मुझे है ही कि आप आर्थिक विचारोंको अपने आड़े नहीं आने देंगे। मुझे निश्चय है कि आप दक्षिण आफ्रिकामें बहुत-कुछ कर सकेंगे। सचमुच तो जितने कामका मैं निमित्त हो सकता हूँ उससे ज्यादा आप कर सकेंगे।

मैं यहाँ बड़े-बड़े लोगोंसे मुलाकातें करता आ रहा हूँ। *मद्रास टाइम्सने* अपना पूरा समर्थन प्रदान किया है और गत शुक्रवारको उसमें एक बड़ा जोरदार और अच्छा लेख प्रकाशित हुआ था। *मेलने* समर्थन करनेका वचन दिया है। सभा[1] शुक्रवारको है। उसके बाद मैं कलकत्ता और फिर शायद पूना जाऊँगा। प्रोफेसर भांडारकरने अपनी पूरी सहायताका वचन दिया है। मुझे विश्वास है कि वे कुछ भलाई कर सकते हैं। मैं यहाँ आते हुए एक दिन पूनामें ठहरा था।

मेरा खयाल है, मैंने आपको लिखा था कि प्रवासी विधेयकको सम्राज्ञीकी अनुमति प्राप्त हो गई है। (घटनाएँ इतनी तेजीसे होती हैं कि मैं उन्हें जल्दी भूल जाता हूँ)। यह एक अनपेक्षित और आकस्मिक आघात है। अब मैं राज्यकी सहायतासे प्रवासियोंको भेजना स्थगित करनेकी प्रार्थना फिरसे दुहरानेवाला हूँ। नेटालके एजेंट-जनरलका कूटनीतिक प्रतिवाद आपने अखबारोंमें पढ़ा ही होगा। उससे दीख पड़ता है कि लन्दनमें भी आन्दोलन छेड़नेकी आवश्यकता है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि वहाँ आप मेरी अपेक्षा बहुत अधिक काम कर सकते हैं।

अगर आप मेरे साथ ही नेटाल चल सकें तो बड़ा अच्छा होगा। और मैं यह भी कह दूँ कि यदि उस समय तक "कूरलैंड" जहाज उपलब्ध रहा तो शायद मैं आपके लिए मुफ्त टिकट भी प्राप्त कर सकूँगा।

आपका सच्चा,

मो० क० गांधी

आपका पत्र आज सुबह ही मुझे मिला।

मूल अंग्रेजी प्रतिसे। सौजन्य : रुस्तमजी फर्दुनजी सोराबजी तलयारखाँ।

१. गांधीजीने २६ अक्टूबरको एक सार्वजनिक सभामें भाषण किया था; देखिए पृष्ठ १०१।

८. प्रेक्षक-पुस्तिकामें

गांधीजीने २६ अक्टूबर, १८९६ को मद्रासके हिन्दू थियोलॉजिकल हाई स्कूलका पर्यवेक्षण किया था। उन्होंने स्कूलकी प्रेक्षक-पुस्तिकामें निम्नलिखित विचार अंकित किये थे।

अक्टूबर २६, १८९६

मुझे इस उत्तम संस्थामें आनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसे देखकर हर्ष हुआ। स्वयं एक गुजराती हिन्दू होनेके कारण मैं यह जानकर अभिमान अनुभव करता हूँ कि इस संस्थाकी स्थापना गुजराती सज्जनोंने की है। मैं कामना करता हूँ कि संस्थाका भविष्य उज्ज्वल हो! मुझे निश्चय है कि वह इसके योग्य है। क्या ही अच्छा हो कि ऐसी संस्थाएँ सारे भारतमें खड़ी हो जायें और आर्यधर्मकी, उसके शुद्ध रूपमें, रक्षाका साधन बनें!

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २८-१०-१८९६

९. मद्रासका भाषण

गांधीजीने अक्टूबर २६, १८९६ को मद्रासकी एक भारी सभामें भाषण दिया था। विषय था: दक्षिण आफ्रिकावासी देशभाइयोंकी यातनाएँ। यह सभा महाजन सभाके तत्त्वावधानमें पचैयप्पा भवनमें हुई थी और भवन श्रोताओंसे ठसाठस भरा हुआ था। गांधीजीके भाषणकी प्रतिक्रिया बहुत हुई और सभा दक्षिण आफ्रिकाकी 'मुसीबतकी घटाओंमें एक उज्ज्वल किरण' बन गई।

अक्टूबर २६, १८९६

अध्यक्ष महोदय और सज्जनो, — आज मुझे आपके सामने सोनेके देश और जेमिसनके विगत हमलेके स्थान दक्षिण आफ्रिकामें निवास करनेवाले एक लाख भारतीयोंकी ओरसे पैरवी करनी है। यह पत्र[1] आपको बतायेगा कि इस कामकी जिम्मेदारी इसपर हस्ताक्षर करनेवालोंने मुझे सौंपी है। उनका दावा है कि वे एक लाख भारतीयोंका प्रतिनिधित्व करते हैं।

१. गांधीजीने पृष्ठ ५८-५९ पर दिया हुआ प्रमाणपत्र पढ़कर सुनाया।

इन एक लाख लोगोंमें बंगाल और मद्रासके लोगोंकी संख्या बहुत बड़ी है। इसलिए, भारतीय होनेके नाते उनके हिताहितमें आपकी जो दिलचस्पी है, उसके अलावा इस विषयसे आपका विशेष सम्बन्ध भी है।

हमारे मतलबके लिए दक्षिण आफ्रिकाको इन हिस्सोंमें बाँटा जा सकता है: दो स्व-शासित ब्रिटिश उपनिवेश—नेटाल तथा शुभाशा अन्तरीप (केप आफ़ गुड होप); सम्राज्ञीके शासनाधीन उपनिवेश—ज़ूलूलैंड; ट्रान्सवाल या दक्षिण आफ्रिकी गणराज्य; आरेंज फ्री स्टेट; चार्टर्ड टेरिटरीज़; और पोर्तुगीज़ प्रदेश—डेलागोआ-बे तथा बैरा।

दक्षिण आफ्रिकामें आज भारतीयोंकी जो आबादी पाई जाती है, उसके लिए वह देश नेटाल-उपनिवेशका ऋणी है। सन् १८६० में, जब कि, नेटालकी संसदके एक सदस्यके शब्दोंमें, "उपनिवेशका अस्तित्व डाँवाँडोल था," उसमें गिरमिटिया भारतीयोंको दाखिल किया गया था। इस प्रकारका प्रवास कानून द्वारा नियंत्रित है। इसकी अनुमति कुछ कृपापात्र राज्योंको ही दी गई है। उदाहरणके लिए मारीशस, फिजी, जमैका, स्ट्रेट्स सेटल्मेंट्स, डमराराको इस प्रकारके प्रवासी जा सकते हैं। इन्हें केवल कलकत्ता और मद्राससे जानेकी अनुमति है। एक अन्य प्रतिष्ठित नेटाली श्री सांडर्सके शब्दोंमें: "भारतीयोंके आगमनसे समृद्धिका आगमन हुआ। भाव बढ़ गये। अब लोग वस्तुएँ उपजाने और उपजको मिट्टी मोल बेच देने भरसे सन्तुष्ट नहीं रहने लगे। वे कुछ ज्यादा कमा सकते थे।" चीनी और चायके उद्योग, उपनिवेशकी सफाई और साग-सब्जी तथा मछलियोंकी आवश्यकता-पूर्ति पूरी तरहसे कलकत्ता और मद्राससे आये हुए गिरमिटिया भारतीयोंपर अवलम्बित है। लगभग सोलह वर्ष पूर्व गिरमिटिया भारतीयोंकी उपस्थितिसे स्वतंत्र भारतीय भी व्यापारियोंके रूपमें वहाँ खिंचे। पहले-पहल वे अपने ही बन्धु-बान्धवोंकी जरूरतें पूरी करनेके लिए वहाँ गये थे। परन्तु बादमें उन्होंने दक्षिण आफ्रिकाकी ज़ूलू या काफिर जातिके लोगोंको बड़े फायदेके ग्राहक पा लिया। ये व्यापारी मुख्यतः बम्बईके मेमन मुसलमान हैं। ये अपनी अपेक्षाकृत कम दुर्दैवी स्थितिके कारण वहाँकी सारी भारतीय आबादीके हितोंके संरक्षक बन गये हैं। इस तरह मुसीबत और स्वार्थोंकी एकताने तीनों प्रदेशोंसे आये भारतीयोंको एक ठोस समाजके रूपमें संगठित कर दिया है। अगर जरूरी ही हो जाये तब तो बात अलग है, नहीं तो वे अपने-आपको मद्रासी, बंगाली या गुजराती कहलानेके बजाय भारतीय कहलानेमें गौरव अनुभव करते हैं। मगर यह तो प्रसंगवश कह गया।

अब ये भारतीय सारे दक्षिण आफ्रिकामें फैल गये हैं। नेटालका शासन मतदाताओं द्वारा चुने हुए ३७ सदस्योंकी एक विधानसभा, सम्राज्ञीके प्रतिनिधि गवर्नर द्वारा नामजद किये हुए ११ सदस्योंकी विधानपरिषद और ५ सदस्योंके एक परिवर्तनशील मंत्रिमंडल द्वारा होता है। उसमें यूरोपीयोंकी आबादी ५०,०००, देशी लोगोंकी ४,००,००० और भारतीयोंकी ५१,००० है। इन ५१,००० भारतीयोंमें से लगभग १६,००० इस समय अपने गिरमिटकी अवधि पूरी कर रहे हैं। ३०,००० गिरमिटकी अवधि पूरी करके घरेलू नौकरों, बागबानों, फेरीवालों और छोटे-छोटे दूकानदारों आदिके कामोंमें लगे हैं। लगभग ५,००० ऐसे हैं जो अपने-आप वहाँ जाकर बसे हैं। वे या तो व्यापारी हैं, या दूकानदार हैं, या सहायकों अथवा फेरीवालोंका काम करते हैं। थोड़े-से लोग स्कूलोंमें शिक्षक, दुभाषिये और मुहर्रिर भी हैं।

शुभाशा अन्तरीप (केप आफ गुड होप) के स्व-शासित उपनिवेशमें, मेरा खयाल है, भारतीयोंकी संख्या १०,००० है। ये व्यापारी, फेरीवाले और मजदूर हैं। उपनिवेशकी कुल आबादी लगभग १८ लाख है। उसमें यूरोपीयोंकी संख्या ४ लाखसे अधिक नहीं है। शेष लोग उसी देशके और मलायाके निवासी हैं।

दक्षिण आफ्रिकी गणराज्य—ट्रान्सवालका शासन "फोक्सराट" [लोकसभा] कहलानेवाले दो निर्वाचित सदनों और कार्यकारिणी परिषद द्वारा होता है। कार्यकारिणीका प्रमुख गणराज्यका अध्यक्ष होता है। वहाँ भारतीयोंकी आबादी लगभग ५,००० है। इनमें २०० व्यापारी हैं, जिनकी चुकता पूँजी लगभग एक लाख पौंड है। शेष लोग फेरीवाले और हजूरिया (वेटर) या घरेलू नौकर हैं। घरेलू नौकर इसी मद्रास प्रान्तके लोग हैं। वहाँकी गोरी आबादी मोटे तौरपर १,२०,००० और काफिरोंकी आबादी मोटे तौर-पर ६,५०,००० है। इस गणराज्य पर प्रभुसत्ता सम्राज्ञीकी है। और ग्रेट ब्रिटेन तथा इस गणराज्यके बीच एक समझौता[1] है। उसके अनुसार दक्षिण आफ्रिकाके मूल निवासियोंको छोड़कर दूसरे सब लोगोंके सम्पत्ति, व्यापार तथा कृषिके अधिकार गणराज्यके नागरिकोंके जैसे ही सुरक्षित कर दिये गये हैं।

दूसरे राज्योंमें, कष्टों और बाधा-निषेधोंके कारण, भारतीय आबादी है ही नहीं, जिसके बारेमें कुछ कहा जाये। पोर्तुगीज़ प्रदेश इसके अपवाद हैं।

१. सन् १८८४ का लंदन-समझौता (लंदन कॉनवेंशन)।

उनमें भारतीयोंकी संख्या बहुत बड़ी है और वहाँ उनको कोई कष्ट नहीं दिया जाता।

दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंके कष्ट दो प्रकारके हैं। पहले तो वे जो भारतीयोंके खिलाफ जनताकी दुर्भावनाओंसे पैदा हुए हैं। दूसरे, उनपर लादी गई कानूनी बाधाएँ और निषेध। पहलेकी चर्चा की जाये तो दक्षिण आफ्रिकामें भारतीय सबसे ज्यादा द्वेष-पात्र जीव हैं। प्रत्येक भारतीयको, बिना फर्कके, तिरस्कारके साथ "कुली" कहा जाता है। उन्हें "सामी", "रामसामी" — वास्तवमें, "भारतीय" छोड़कर सब कुछ कहा जाता है। भारतीय शिक्षकोंको "कुली स्कूल मास्टर" कहा जाता है। भारतीय वस्तु-भंडार मालिक "कुली वस्तु-भंडार मालिक" हैं। बम्बईसे गये हुए दो भारतीय सज्जन — श्री दादा अब्दुल्ला और श्री मूसा हाजी कासिम जहाजोंके मालिक हैं। उनके जहाज "कुली जहाज" हैं।

वहाँ मद्रासके व्यापारियोंकी एक बड़ी प्रतिष्ठित पेढ़ी है। उसका नाम है — ए० कोलंडावेलु पिल्लै ऐंड कम्पनी। उन्होंने डर्बनमें बहुतसी इमारतोंका एक भारी कटरा बनाया है। इन इमारतोंको "कुली वस्तु-भंडार" और इनके मालिकोंको "कुली मालिक" कहा जाता है। और, सज्जनो, मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि इस पेढीके साझेदारों और "कुलियों" में उतना ही फर्क है, जितना कि इस सभाभवनमें बैठे हुए किसी भी व्यक्ति और कुली में है। सरकारी क्षेत्रोंमें जो प्रतिवाद किया गया है और जिसकी बादमें मैं चर्चा करूँगा, उसके बावजूद, मैं दुहरा कर कहता हूँ, रेलवे और ट्रामके कर्मचारी हमारे साथ पशुओं जैसा ही व्यवहार करते हैं। हम पैदल-पटरियोंपर सकुशल चल नहीं सकते। एक बिलकुल स्वच्छ वस्त्र पहननेवाले मद्रासी सज्जन डर्बनकी मुख्य सड़कोंकी पैदल-पटरियोंपर चलना हमेशा टालते हैं, क्योंकि उन्हें डर है कि कहीं अपमान न कर दिया जाये, या धक्के देकर हटा न दिया जाये।

हम "दिलसे कोसी जाने लायक एशियाई गन्दगी" हैं; हम "गले तक दुर्गुणोंसे भरे हुए" हैं और हम "चावल खाकर जीते" हैं; हम "गंधैले कुली" हैं, जो "तेलहे चिथड़ोंकी दुर्गन्धपर जिन्दगी बसर करते हैं;" हम "काले कीड़े" हैं; कानूनकी पुस्तकमें हमें "अर्धबर्बर एशियाई या एशियाकी असभ्य जातियों के लोग" बताया गया है। हम "खरहोंके समान बच्चे पैदा करते हैं" और हालमें डर्बनकी एक सभामें एक सज्जनने कहा था — "मुझे अफसोस है कि इन्हें खरहोंके समान गोलीसे मारा नहीं जा सकता।" ट्रान्सवालमें कुछ

स्थानोंके बीच घोड़ागाड़ियाँ चलती हैं। हम उनके अन्दर बैठ नहीं सकते। इसमें अपमान और अपमानका मंशा तो है ही; इसके अलावा, शीतकालके भयानक प्रभातमें — क्योंकि ट्रान्सवालमें बड़ी कड़ी सर्दी पड़ती है — या झुलसा देनेवाली धूपमें, हालाँकि हम भारतीय हैं, गाड़ियोंकी छतपर बैठना एक घोर परीक्षा है। होटलोंमें हमें जगह नहीं दी जाती। और सचमुच तो ये बातें यहाँतक गई हैं कि शिष्ट भारतीयोंको यूरोपीय स्थानोंमें नाश्ता पाना भी मुश्किल हुआ है। अभी हाल ही में नेटालके डंडी नामक गाँवमें यूरोपीयोंके एक गिरोहने एक भारतीय वस्तु-भंडारमें आग लगा दी थी ('धिक्कार! धिक्कार!' की आवाजें)। इससे वस्तु-भंडारको कुछ नुकसान पहुँचा था। एक दूसरे गिरोह ने डर्बनकी एक व्यापारिक गलीके एक भारतीय वस्तु-भंडारमें जलते हुए पटाखे फेंक दिये थे।

यह द्वेष-भावना दक्षिण आफ्रिकाके विभिन्न राज्योंके कानूनोंमें भी उतार दी गई है। उनके द्वारा तरह-तरहसे भारतीयोंकी स्वतन्त्रतापर बन्दिशें लगा दी गई हैं। पहले तो नेटालको ले लीजिए। भारतीयोंकी दृष्टिसे उसका महत्त्व सबसे अधिक है। वहाँ हालमें भारतीयों सम्बन्धी कानून बनानेकी ज्यादासे ज्यादा प्रवृत्ति दिखलाई गई है। सन् १८९४ तक भारतीयोंको उपनिवेशके सामान्य मताधिकार कानूनके अनुसार यूरोपीयोंके बराबर ही मताधिकार प्राप्त था। यह कानून प्रत्येक बालिग ब्रिटिश प्रजाजनको, जिसके पास ५० पौंडकी स्थावर सम्पत्ति हो या जो १० पौंड सालाना किराया देता हो, मतदाता-सूचीमें शामिल किये जानेका हक देता था। ज़ूलू लोगोंके लिए मताधिकारकी पात्रता भिन्न रखी गई थी। १८९४ में नेटाल विधानमंडलने एक कानून पास करके एशियाइयोंका मताधिकार, उनका नामोल्लेख करके, छीन लिया।[1] स्थानीय संसदमें हमने उसका विरोध किया। परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। तब हमने उपनिवेश-मंत्रीको प्रार्थनापत्र[2] भेजा। फलतः इस वर्ष वह कानून वापस ले लिया गया है और उसके बदले दूसरा विधेयक पेश किया गया है। नया विधेयक उतना बुरा तो नहीं है, जितना पहला था; फिर भी वह काफी बुरा है।[3] उसमें कहा गया है कि जिन देशोंमें अबतक संसदीय

१. देखिए पृष्ठ १५।
२. देखिए पृष्ठ १५।
३. देखिए पृष्ठ १६-१७।

मताधिकारके आधारपर स्थापित निर्वाचन-मूलक प्रातिनिधिक संस्थाएँ न हों, उनके निवासियोंको (बशर्ते कि वे यूरोपीय वंशके न हों), सपरिषद गवर्नरसे अग्रिम अनुमति प्राप्त किये बिना, मतदाता-सूचीमें शामिल नहीं किया जायेगा। इस विधेयकके अमलसे उन लोगोंको मुक्त रखा गया है, जो पहलेसे ही यथोचित रीतिसे मतदाता-सूचीमें शामिल हैं। पेश करनेके पहले इस विधेयकको श्री चेम्बरलेनके पास भेजा गया था और उन्होंने इसपर अपनी अनुमति दे दी है। हमने इसका इस बिनापर विरोध किया है कि हमारे भारतमें इस तरहकी संस्थाएँ मौजूद हैं और. इसलिए, अगर इस विधेयकका उद्देश्य एशियाइयोंका मताधिकार छीनना हो तो वह सफल तो होगा ही नहीं, सिर्फ एक परेशान करनेवाला कानून बनकर रह जायेगा, जिससे अदालती मुकदमेबाजी और खर्चका कोई अन्त न रहेगा। यह बात सभी लोगोंने स्वीकार की है। स्वयं उसके पक्षमें मत देनेवाले सदस्योंका भी यही खयाल था। नेटाल-सरकारके मुखपत्र[१]के कथनका सार यह है:

> **हम जानते हैं कि भारतमें ऐसी संस्थाएँ हैं और, इसलिए, यह विधेयक भारतीयोंपर लागू नहीं होगा। परन्तु हम स्वीकार कर सकते हैं तो यही विधेयक, दूसरा कर ही नहीं सकते। अगर इससे भारतीयोंका मताधिकार छिनता हो, तो ज्यादा अच्छा कुछ हो ही नहीं सकता। अगर न छिनता हो तो भी डरनेकी कोई बात नहीं! कारण, भारतीय कभी राजनीतिक प्रभुत्व प्राप्त नहीं कर सकते। और अगर जरूरी ही हुआ तो हम शिक्षा-सम्बन्धी कसौटी मढ़ सकते हैं या सम्पत्ति सम्बन्धी योग्यताको बढ़ा सकते हैं। इससे सारेके सारे भारतीयोंका मताधिकार तो छिन ही जायेगा, साथ ही एक भी यूरोपीयके मतदानमें बाधा न पड़ेगी।**

इस तरह नेटालका विधानमंडल भारतीयोंके साथ 'चित भी मेरी पट भी मेरी'का खेल खेल रहा है। नेटालके 'पास्टर' की प्राणघातक छुरियोंसे चीर-फाड़के लिए हम उपयुक्त पात्र समझे गये हैं। पेरिसके पास्टर और नेटालके पास्टरमें फर्क इतना ही है कि पहला तो मानवजातिको लाभ पहुँचानेके लिए चीर-फाड़ करता था, दूसरा शुद्ध दुराग्रहसे अपने मनोरंजनके लिए इसमें प्रवृत्त होता है। इस कानूनका ध्येय राजनीतिक नहीं है। वह तो भारतीयोंको केवल-मात्र

१. *नेटाल मर्क्युरी* ।

नीचे गिरानेका है। नेटाल-संसदके एक सदस्यके शब्दोंमें "भारतीयोंका जीवन नेटालकी अपेक्षा उनके अपने देशमें ही अधिक सुखकर बनाना" है। दूसरे एक प्रमुख नेटालीके शब्दोंमें "उन्हें हमेशाके लिए लकड़हारा और पनिहारा बनाये रखना" है। इस समय लगभग १०,००० यूरोपीय मतदाताओंके बीच केवल २५१ भारतीय मतदाता हैं। इससे स्पष्ट है कि भारतीय मतोंके यूरोपीय मतोंको निगल जानेका कोई खतरा नहीं है। इस विषयके अधिक विस्तृत इतिहासके लिए मैं आपको 'हरी पुस्तिका' (ग्रीन पैम्फलेट) पढ़नेकी सलाह दूँगा। लन्दन *टाइम्सने*, जिसने हमारी मुसीबतोंमें बराबर हमारा साथ दिया है, नेटालके मताधिकार-प्रश्नको लेकर इसी वर्षके २७ जूनके अंकमें इस प्रकार लिखा है:

> **इस समय श्री चेम्बरलेनके सामने जो प्रश्न है वह सैद्धान्तिक नहीं है। वह प्रश्न दलीलोंका नहीं, जातीय भावनाओंका है। . . . हम अपनी ही प्रजाओंके बीच जाति-युद्ध होने देकर लाभ नहीं उठा सकते। भारत सरकारके लिए नेटालको मजदूर भेजना बन्द करके उसकी प्रगतिको एकाएक रोक देना उतना ही गलत होगा, जितना कि नेटालके लिए ब्रिटिश भारतीय प्रजाजनोंको नागरिक अधिकार देनेसे इनकार करना। ब्रिटिश भारतीयोंने तो वर्षोंकी कमखर्ची और अच्छे कामसे अपने-आपको नागरिकोंके वास्तविक दर्जे तक उठा ही लिया है।**

अगर एशियाई मतोंके यूरोपीय मतोंको निगल जानेका कोई सच्चा खतरा मौजूद हो, तो हमें शिक्षाकी कसौटी जारी करने या सम्पत्ति-सम्बन्धी योग्यताको बढ़ा देनेपर कोई एतराज नहीं। हम जिस चीजपर आपत्ति करते हैं वह तो है वर्ग-विशेष सम्बन्धी कानून और उससे अवश्यंभावी गिरावट। हम विधेयकका विरोध करनेमें नये विशेषाधिकारके लिए नहीं लड़ रहे हैं। जिस सुविधाका हम उपभोग कर रहे हैं उससे वंचित किये जानेका विरोध कर रहे हैं।

पिछले वर्ष नेटाल-सरकारने भारतीय प्रवासी कानूनमें संशोधन करनेके लिए एक विधेयक पेश किया था। वह विधेयक नेटाल-सरकारकी भारतीयोंको निरे काफिरोंके स्तरपर गिरा देने और, नेटालके महान्यायवादीके शब्दोंमें, "भविष्यमें जो दक्षिण आफ्रिकी राष्ट्र बननेवाला है उसका अंग बननेसे उन्हें रोकने"की नीतिके ठीक अनुरूप है। मुझे अफसोसके साथ कहना पड़ता है कि हमारी आशाओंके विपरीत उसे सम्राज्ञी-सरकारकी अनुमति

प्राप्त हो गई है। यह समाचार बम्बईकी सभा[1]के बाद प्राप्त हुआ है। इसलिए जरूरी है कि मैं इसकी कुछ विस्तारसे चर्चा करूँ। इसलिए भी जरूरी है कि इस प्रश्नका इस प्रदेशसे अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध है और इसका अध्ययन यहाँ सबसे अच्छी तरह किया जा सकता है।

सन् १८९४ के १८ अगस्त तक गिरमिटिया भारतीय पाँच साल नौकरी करनेके इकरारपर जाया करते थे। उन्हें नेटाल जानेका खर्च, अपने और अपने परिवारोंके लिए मुफ्त भोजन तथा निवास और दस शिलिंग माहवार मजदूरी दी जाती थी। दस शिलिंग मजदूरीमें हर साल एक शिलिंग माहवारकी बढ़ती होती थी। अगर वे स्वतंत्र मजदूरोंके तौरपर पाँच साल और उपनिवेशमें रहें तो उन्हें भारत लौटनेका टिकट मुफ्त पानेका हक भी होता था। अब यह बदल दिया गया है। भविष्यमें, या तो प्रवासियोंको हमेशा गिरमिटिया बनकर उपनिवेशमें रहना होगा, जिस हालतमें ९ वर्षकी गिरमिटिया मजदूरीके बाद उनकी मजदूरी २० शिलिंग माहवार होगी; या भारतको लौट आना होगा; या फिर तीन पौंड सालाना व्यक्ति-कर देना होगा। गिरमिटियोंकी मजदूरीके हिसाबसे यह रकम लगभग आधे वर्षकी कमाई होती है। सन् १८९३ में नेटाल सरकारने दो व्यक्तियोंका एक आयोग (कमिशन) भारतको भेजा था। उसका काम व्यक्ति-करको छोड़कर ऊपरके शेष सब परिवर्तनोंके लिए भारत सरकारको राजी करना था। वर्तमान वाइसरायने अपनी अनिच्छा व्यक्त करते हुए भी ब्रिटिश सरकारके मंजूर करनेकी शर्तपर परिवर्तनोंकी अनुमति दे दी। परन्तु उन्होंने अनिवार्य भारत-वापसीकी उपधाराकी अवज्ञाको फौजदारी अपराध माननेकी अनुमति नहीं दी। नेटाल सरकारने व्यक्ति-करकी उपधारा जोड़कर उस कठिनाईको हल कर लिया।

महान्यायवादीने उस उपधाराकी चर्चा करते हुए कहा था कि किसी भारतीयको भारत लौटनेसे या व्यक्ति-कर देनेसे इनकार करनेपर जेल तो नहीं भेजा जा सकता, परन्तु उसकी झोंपड़ीमें कोई कामकी चीज हो तो उसे जब्त किया जा सकता है। हमने स्थानीय संसदमें उस विधेयकका जोरोंसे विरोध किया। वहाँ सफल न होनेपर हमने श्री चेम्बरलेनको एक

१. जो सितम्बर २६ को हुई थी; देखिए पृष्ठ ७७।

प्रार्थनापत्र भेजा, जिसमें विनती की गई थी कि या तो विधेयकका निषेध कर दिया जाये, या नेटालको मजदूर भेजना स्थगित कर दिया जाये।

उपर्युक्त प्रस्तावका मंडन दस वर्ष पूर्व किया गया था और नेटालके सबसे प्रतिष्ठित उपनिवेशियोंने उसका घोर विरोध किया था। इसपर भारतीयों-सम्बन्धी विविध प्रश्नोंकी जाँचके लिए आयोगकी नियुक्ति की गई। उसके एक आयुक्त श्री सांडर्सने अपनी अतिरिक्त रिपोर्टमें कहा है:

> **यद्यपि आयोगने ऐसा कानून बनानेकी कोई सिफारिश नहीं की कि अगर भारतीय अपने गिरमिटकी अवधि पूरी होनेके बाद नया इकरार करनेको तैयार न हों तो उन्हें भारत लौटनेके लिए बाध्य किया जाये, फिर भी मैं ऐसे किसी भी विचारकी जोरोंसे निन्दा करता हूँ। मेरा पक्का विश्वास है कि आज जो अनेक लोग इस योजनाकी पैरोकारी कर रहे हैं वे जब समझेंगे कि इसका अर्थ क्या होता है तब वे भी मेरे समान ही जोरोंसे इसे ठुकरा देंगे। भले ही भारतीयोंका आना रोक दीजिए और उसका फल भोगिए, परन्तु ऐसा-कुछ करनेकी कोशिश मत कीजिए जो, मैं साबित कर सकता हूँ, भारी अन्याय है।**
>
> **यह इसके सिवा क्या है कि हम अपने अच्छे और बुरे दोनों तरहके नौकरोंका ज्यादासे ज्यादा लाभ उठा लें और जब उनकी अच्छीसे अच्छी उम्र हमें फायदा पहुँचानेमें कट जाये तब — अगर हमारे वशमें हो तो, मगर है नहीं — उन्हें अपने देश लौट जानेके लिए बाध्य करें और इस प्रकार उन्हें अपने पुरस्कारका सुख भोगनेसे वंचित कर दें? और आप उन्हें भेजेंगे कहाँ? उन्हें उसी भुखमरीकी परिस्थितिको झेलनेके लिए फिर क्यों वापस भेजा जाये, जिससे अपनी जवानीके दिनोंमें भाग कर वे यहाँ आये थे? अगर हम शाइलाकके[1] समान एक पौंड मांस ही चाहते हैं तो, विश्वास रखिए, शाइलाकका ही प्रतिफल भी हमें भोगना होगा।**
>
> **उपनिवेश भारतीयोंके आगमनको जरूर रोक सकता है, और 'लोक-प्रियताके दीवाने' जितना चाहेंगे उससे कहीं अधिक सरलताके साथ और स्थायी रूपमें रोक सकता है। परन्तु सेवाके अन्तमें उन्हें जबरन निकाल**

१. परिचयके लिए देखिए खण्ड १, पृष्ठ २२६, पादटिप्पणी।

देना उसके वशकी बात नहीं है। और मैं उससे अनुरोध करता हूँ कि इसकी कोशिश करके वह एक अच्छे नामको कलंकित न करे।

जिस महान्यायवादीने विचाराधीन विधेयकको पेश किया था, उसने आयोगके सामने गवाही देते हुए ये विचार व्यक्त किये थे :

जहाँतक अवधि पूरी कर लेनेवाले भारतीयोंका सम्बन्ध है, मैं नहीं समझता कि किसी व्यक्तिको, जबतक वह अपराधी न हो और उस अपराधके लिए उसे देश-निकाला न दिया गया हो, दुनियाके किसी भी भागमें जानेके लिए बाध्य किया जाना चाहिए। मैंने इस प्रश्नके बारेमें बहुत-कुछ सुना है। मुझसे बार-बार अपना दृष्टिकोण बदलनेको कहा गया है, परन्तु मैं वैसा नहीं कर सका। एक आदमी यहाँ लाया जाता है। सिद्धान्ततः रजामंदीसे, व्यवहारतः बहुधा बिना रजामंदीके लाया जाता है। वह अपने जीवनके सर्वश्रेष्ठ पाँच वर्ष यहाँ खपा देता है। नये सम्बन्ध स्थापित करता है। शायद पुराने सम्बन्धोंको भुला देता है। यहाँ अपना घर बसा लेता है। ऐसी हालतमें मेरे न्याय और अन्यायके विचारसे, उसे वापिस नहीं भेजा जा सकता। भारतीयोंसे जो-कुछ काम आप ले सकते हैं वह लेकर उन्हें चले जानेका आदेश दें, इससे तो यह बहुत अच्छा होगा कि आप उनको यहाँ लाना ही बिलकुल बन्द कर दें। ऐसा दीखता है कि उपनिवेश या उपनिवेशका एक भाग भारतीयोंको बुलाना तो चाहता है, परन्तु उनके आगमनके परिणामोंसे बचना चाहता है। जहाँतक मैं जानता हूँ, भारतीय हानि पहुँचानेवाले लोग नहीं हैं। कुछ बाबतोंमें तो वे बहुत परोपकारी हैं। फिर, ऐसा कोई कारण तो मेरे सुननेमें कभी नहीं आया, जिससे किसी व्यक्तिको पाँच वर्ष तक चाल-चलन अच्छा रखनेपर भी देश-निकाला दे दिया जाये, और इस कार्यको उचित ठहराया जा सके।

और जो श्री बिन्स नेटाली आयोगके एक सदस्यके रूपमें भारत-सरकारको उपर्युक्त परिवर्तनोंके लिए राजी करने भारत आये थे, उन्होंने दस वर्ष पूर्व आयोगके सामने यह गवाही दी थी :

मैं समझता हूँ, जो यह बात उठाई गई है कि भारतीयोंको गिरमिटकी अवधि पूरी हो जानेके बाद भारत वापस जानेके लिए बाध्य किया

जायें, वह भारतीय आबादीके लिए अत्यन्त अन्यायपूर्ण है। भारत सरकार उसे कभी स्वीकार न करेगी। मेरे खयालसे स्वतन्त्र भारतीयोंकी आबादी समाजका एक अत्यन्त उपयोगी अंग है।

परन्तु बड़े लोग तो अपने विचार कपड़े बदलनेके समान जल्दी-जल्दी और बार-बार बदल सकते हैं। उन्हें उसका कोई दण्ड भी भोगना नहीं पड़ता, उलटे उससे फायदा हो सकता है। कहते हैं, उनमें ऐसे परिवर्तन सच्चे विश्वासके कारण होते हैं। तथापि, सहस्रशः दयाकी बात है कि बेचारे गिरमिटिया भारतीयोंके दुर्भाग्यसे उनका यह भय—नहीं, उनकी यह आशा कि भारत-सरकार कदापि उन परिवर्तनोंकी सम्मति न देगी, पूरी नहीं हुई।

लंदनके *स्टारने* विधेयकको पढ़कर इन शब्दोंमें अपने उद्‌गार व्यक्त किये थे :

यह विवरण ही ब्रिटिश भारतीय प्रजाजनोंपर ढाये जानेवाले घृणित अत्याचारोंपर प्रकाश डालनेके लिए काफी है। नया भारतीय प्रवासी कानून संशोधन विधेयक उन अत्याचारोंका एक नया उदाहरण है। उसका मंशा भारतीयोंको लगभग गुलामीकी स्थितिमें ढकेल देनेका है। वह एक राक्षसी अन्याय, ब्रिटिश प्रजाका अपमान, अपने निर्माताओंके लिए शर्मकी चीज और हमपर लांछन लगानेवाला है। प्रत्येक अंग्रेजका कर्तव्य है कि वह दक्षिण आफ्रिकी व्यापारियोंके लोभको उन लोगोंपर ऐसा घोर अन्याय ढानेसे रोके, जो घोषणा और संविधि (स्टैच्यूट) दोनोंके द्वारा कानूनकी दृष्टिमें हमारी बराबरीपर बैठाये गये हैं।

लंदन *टाइम्सने* भी हमारे प्रार्थनापत्रका समर्थन करते हुए लगातार शर्तबन्दीकी स्थितिकी तुलना "खतरनाक तौरपर गुलामीके नजदीक" की हालतसे की है। उसने यह भी कहा है :

भारत सरकारके पास एक आसान इलाज है। वह दक्षिण आफ्रिकाको गिरमिटिया भारतीयोंका भेजा जाना तबतकके लिए रोक सकती है जबतक उसे गिरमिटियोंके वर्तमान कल्याण और भविष्यत् मान-मर्यादाके बारेमें आवश्यक आश्वासन न मिल जाये। विदेशी उपनिवेशोंके बारेमें उसने ऐसा ही किया है। . . . यह मामला दोनों पक्षोंके लिए

> **बड़ी समझदारी और मेलजोलकी भावनासे काम करनेका है। . . . मगर हो सकता है कि भारतीय समाजका प्रत्येक वर्ग अब जो अधिक व्यापक दावा कर रहा है उसके बारेमें भारत सरकारको कार्रवाई करनेके लिए बाध्य होना पड़े। वह दावा है कि, भारतीय जातियोंको समस्त ब्रिटिश साम्राज्य और सहयोगी राज्योंमें ब्रिटिश प्रजाकी पूरी मान-मर्यादाके साथ व्यापार और मजदूरी करनेका अधिकार होना चाहिए। सम्राज्ञी-सरकार ब्रिटेनमें इसे स्पष्टतः स्वीकार कर चुकी है।**

इस विधेयकको सम्राज्ञी-सरकारकी अनुमति प्राप्त होनेकी सूचना देनेवाले जो पत्र नेटालसे मेरे पास आये हैं उनमें मुझसे कहा गया है कि मैं गिरमिटियोंका भेजना स्थगित करानेमें भारतीय जनतासे सहायताकी प्रार्थना करूँ। मैं भली भाँति जानता हूँ कि गिरमिटियोंका प्रवास स्थगित करानेकी कल्पनापर बड़ी बारीकीसे विचार करना आवश्यक है। फिर भी, मेरे विनम्र विचारसे, भारतीयोंके सर्व-साधारण हितकी दृष्टिसे और कोई निष्कर्ष निकालना सम्भव नहीं है। हम मानते हैं कि प्रवाससे घनी आबादीके जिलोंकी भीड़भाड़ कम होती है और प्रवासियोंको लाभ होता है। परन्तु अगर भारतीय व्यक्ति-कर देनेके बदले भारत लौट आयें तो भीड़भाड़में कोई फर्क नहीं पड़ेगा। और लौटे हुए भारतीय दूसरी बातोंकी अपेक्षा कठिनाईके ही मूल अधिक बनेंगे; क्योंकि, उनके लिए काम पाना लाजिमी तौरपर कठिन होगा और यह अपेक्षा तो की नहीं जा सकती कि वे इतना धन लेकर आयेंगे कि उसके सूदपर गुजर-बसर कर सकें। दूसरी ओर, प्रवासियोंको भी कोई लाभ न होगा, क्योंकि अगर सरकारका वश चला तो वह उन्हें कभी भी मजदूरोंके स्तरसे ऊपर उठने नहीं देगी। सच बात तो यह है कि उन्हें अधःपतनकी ओर जाने में सहारा दिया जा रहा है। ऐसी परिस्थितियोंमें मैं आपसे नम्रतापूर्वक अनुरोध करता हूँ कि अगर नया कानून बदला या रद किया न जा सके तो आप नेटालको गिरमिटिया मजदूर भेजना स्थगित करनेकी हमारी प्रार्थनाका समर्थन करें।

स्वाभाविक है, आप जाननेको उत्सुक होंगे कि भारतीयोंके साथ गिरमिटकी अवधि काटते समय व्यवहार कैसा किया जाता है। बेशक, वह जीवन किसी भी हालतमें शानदार तो हो नहीं सकता। परन्तु मैं नहीं समझता कि दुनियाके दूसरे भागोंमें इन्हीं परिस्थितियोंमें रहनेवाले भारतीयोंकी अपेक्षा

नेटालमें उनकी स्थिति ज्यादा खराब है। इसके साथ-साथ, उन्हें भी, निश्चय ही, भीषण रंग-द्वेषकी विपत्ति तो भोगनी ही पड़ती है। यहाँ मैं उसका संकेत-मात्र करके जिज्ञासुओंको "हरी पुस्तिका" (ग्रीन पैम्फलेट) पढ़नेकी सलाह ही दे सकता हूँ। उसमें इसकी अधिक विस्तृत चर्चा की गई है। नेटालकी कुछ जायदादोंमें आत्महत्यासे अनेक शोचनीय मृत्युएँ हुई हैं। वहाँ किसी भी गिरमिटिया भारतीयके लिए दुर्व्यवहारकी बिनापर अपना तबादला करा लेना बहुत कठिन है। प्रत्येक गिरमिटिया भारतीयको स्वतंत्र हो जानेपर एक मुफ्त रिहाईनामा दिया जाता है। जब कभी भी माँगा जाये, उसे यह रिहाईनामा दिखाना पड़ता है। इसका मंशा काम छोड़कर भागनेवाले गिरमिटियोंको पकड़ना है। इस प्रणालीका अमल गरीब स्वतन्त्र भारतीयोंके लिए बड़ा सन्तापकारक है और अक्सर शिष्ट भारतीयोंको बड़ी अप्रिय स्थितिमें डाल देनेवाला होता है। अगर बेतुकी द्वेष-भावना न होती तो सचमुच यह कानून कोई कष्ट न देता। प्रवासियोंका संरक्षक अगर तमिल, तेलुगु, और हिन्दुस्तानी जाननेवाला और गिरमिटियोंके साथ सहानुभूति रखनेवाला कोई प्रतिष्ठित सज्जन — सम्भवतः भारतीय — हो तो निश्चय ही उनके जीवनकी साधारण कठिनाइयाँ बहुत घट जायेंगी। अगर किसी भारतीय गिरमिटियाका रिहाईनामा खो जाये तो उसे उसकी नकलके लिए तीन पौंडकी रकम देनी पड़ती है। यह अनुचित रूपसे पैसा ऐंठनेकी प्रणालीके अलावा कुछ नहीं है।

नेटालमें ९ बजे रातके बाद घरसे निकलनेके लिए प्रत्येक भारतीयको अपने पास एक परवाना रखना पड़ता है। अगर यह परवाना न हो तो उसे पुलिसकी काल कोठरीमें बन्द रखा जाता है। यह नियम खास तौरसे मद्रास प्रदेशसे गये हुए सज्जनोंके लिए बहुत सन्तापजनक है। आपको जानकर हर्ष होगा कि अनेक गिरमिटिया भारतीयोंके बच्चे काफी अच्छी शिक्षा प्राप्त करते हैं और वे आम तौरपर यूरोपीयोंकी पोशाक पहनते हैं। उनका वर्ग बड़ा नाजुक-मिजाज है। फिर भी, दुर्भाग्यवश, ९ बजे रातके नियमके अन्तर्गत उस वर्गके लोगोंके ही गिरफ्तार होनेकी सबसे ज्यादा शक्यता होती है। नेटालमें यूरोपीय पोशाक पहननेसे किसी भारतीयकी लियाकत जाँच ली जाये और उसे सताया न जाये, सो बात नहीं है। बल्कि स्थिति इसकी उलटी है। मेमन लोगोंका ढीलाढाला चोगा उन्हें छेड़छाड़से बचा लेता है। "हरी पुस्तिका" में एक सुखद घटनाका वर्णन किया गया है। वह अनेक वर्ष पूर्व डर्बनमें

घटित हुई थी। उसके फलस्वरूप डर्बनकी पुलिसने वैसे कपड़े पहने हुए भारतीयोंको ९ बजे रातके बाद बाहर पानेपर गिरफ्तार करना बन्द कर दिया है। अभी कुछ ही महीने हुए, इस कानूनके अन्तर्गत एक तमिल शिक्षक, एक तमिल शिक्षिका और एक तमिल रविवासरी स्कूल शिक्षकको गिरफ्तार करके हवालातमें रखा गया था। अदालतमें उन सबको न्याय जरूर मिला, किन्तु यह तो बड़े अल्प समाधानकी बात थी। तिसपर भी उसका परिणाम यह हुआ है कि नेटालके नगर-निगम (कारपोरेशन) कानूनमें ऐसे परिवर्तनकी चीख-पुकार मचा रहे हैं, जिससे कि ऐसे भारतीयोंका अदालतोंसे बिलकुल निर्दोष निकल जाना असम्भव हो जाये।

डर्बनमें एक उपनियम है, जिसके अनुसार गैर-गोरे नौकरोंका नाम सरकारी रजिस्टरोंमें दर्ज कराना जरूरी है। यह नियम काफिरोंके लिए, जो काम करते ही नहीं, जरूरी हो सकता है; और शायद जरूरी है भी। भारतीयोंके लिए तो बिलकुल ही व्यर्थ है। मगर नीति यह है कि जहां भी हो सके, भारतीयोंको काफिरोंकी ही श्रेणीमें रखा जाये।

नेटालमें जो दुःख-दर्द है उसकी सूची यहीं पूरी नहीं हो जाती। अतएव, अधिक जानकारीके लिए मैं जिज्ञासुओंको "हरी पुस्तिका" पढ़नेकी सलाह दूंगा।

परन्तु, सज्जनो, आपको हाल ही में नेटालके एजेंट-जनरलने बताया है कि नेटालमें भारतीयोंके साथ जितना अच्छा व्यवहार किया जाता है उससे ज्यादा अच्छा और कहीं नहीं होता; अधिकतर गिरमिटिया भारतीय वापसी-टिकटका फायदा नहीं उठाते, यही मेरी [गांधीजीकी] पुस्तिकाका सबसे अच्छा जवाब है; और, रेलवे तथा ट्रामगाड़ियोंके कर्मचारी भारतीयोंके साथ पशुओंके जैसा व्यवहार नहीं करते और न अदालतें ही उन्हें न्यायसे वंचित रखती हैं।[१]

एजेंट-जनरलके प्रति अधिकतम सम्मान रखते हुए भी, उनके पहले कथनके बारेमें मैं इतना ही कह सकता हूँ कि ९ बजे रातके बाद परवानेके बिना बाहर निकलनेपर जेलमें डाल दिया जाना; एक स्वतंत्र देशमें नागरिकताका नितान्त प्राथमिक अधिकार न दिया जाना; गुलामोंकी या,

१. यह और इसके बाद "भारतीय समाजकी समृद्धिशीलता" से शुरू होनेवाले अनुच्छेदके अन्त तककी सामग्री (पृष्ठ १२२) एजेंट-जनरलके प्रतिवादके उत्तरके रूपमें है। देखिए 'हरी पुस्तिका' की प्रस्तावना, पृष्ठ १ और पृष्ठ ३६–४४ भी।

ज्यादासे ज्यादा, स्वतंत्र गिरमिटियोंकी अपेक्षा ऊँची हैसियत देनेसे इनकार किया जाना; और ऊपर बताये हुए अन्य प्रतिबन्धोंका लगाया जाना — ये सब अगर अच्छे व्यवहारके उदाहरण हैं तो 'अच्छे व्यवहार' के सम्बन्धमें एजेंट-जनरलकी धारणा बहुत विलक्षण होनी चाहिए। और अगर दुनिया भरमें भारतीयोंके साथ किये जानेवाले व्यवहारमें यही सर्वोत्तम है तो, साधारण बुद्धिके अनुसार, दुनियाके दूसरे हिस्सोंमें और यहाँ भारतीयोंका भाग्य निस्सन्देह बहुत ही दुःखमय होना चाहिए। बात यह है कि एजेंट-जनरल श्री वाल्टर पीसको सरकारी चश्मेसे देखना पड़ता है और उन्हें प्रत्येक सरकारी चीज खुशनुमा दिखाई देना स्वाभाविक ही है। कानूनी निर्योग्यताएँ नेटाल-सरकारके कार्यकी निन्दक है, और एजेंट-जनरलसे अपने-आपकी निन्दा करनेकी तो अपेक्षा ही कैसे की जा सकती है? अगर वे या जिसके वे प्रतिनिधि हैं वह सरकार स्वीकार भर कर लेती कि ऊपर बताई हुई कानूनी निर्योग्यताएँ ब्रिटिश संविधानके मूल सिद्धान्तोंके प्रतिकूल है, तो आज शामको मेरे आपके सामने खड़े होनेकी जरूरत ही न होती। मैं आदरपूर्वक निवेदन करता हूँ कि एजेंट-जनरलने जो मत व्यक्त किया है उसको अपने ही अपराधके बारेमें किसी अभियुक्तके कथनसे अधिक महत्त्व नहीं दिया जा सकता।

गिरमिटिया भारतीय आम तौरपर वापसी टिकटका फायदा नही उठाते, इस वस्तुस्थितिका हम प्रतिवाद नहीं करते। परन्तु यह हमारी शिकायतोंका सर्वोत्तम उत्तर है, इसका तो खंडन हमें करना ही होगा। इस वस्तुस्थितिसे निर्योग्यताओंका अस्तित्व झूठा कैसे साबित हो सकता है? इससे तो यह सिद्ध हो सकता है कि जो भारतीय वापसी टिकटका फायदा नही उठाते वे या तो निर्योग्यताओंकी परवाह नहीं करते ,या उनके बावजूद उपनिवेशमें बने रहते हैं। यदि पहली बात हो तो ज्यादा समझदार लोगोका कर्तव्य है कि वे भारतीयोंको उनकी स्थिति महसूस करायें और उन्हें समझाये कि उन निर्योग्यताओंके सामने सिर झुकानेका अर्थ अपना अधःपतन होता है। अगर दूसरी बात हो तो यह भारतीय राष्ट्रके धैर्य और क्षमावृत्तिका, जिसे श्री चेम्बरलेनने ट्रान्सवाल-पंच-फैसला सम्बन्धी अपने खरीतेमें स्वीकार किया था, एक और उदाहरण है। वे निर्योग्यताओंको सहन करते है, यह कोई कारण नहीं कि निर्योग्यताओंको दूर न किया जाये, या उन्हें जितना सम्भव है उतने अच्छेसे अच्छे व्यवहारकी द्योतक बताया जाये।

फिर, ये लोग हैं कौन, जो भारत लौटनेके बदले उस उपनिवेशमें बस जाते हैं? वे सबसे गरीब वर्गोंके और सबसे ज्यादा घनी आबादीवाले जिलोंके लोग हैं, जो भारतमें शायद आधी भुखमरीकी हालतमें रहते थे। वे नेटाल गये हैं, अगर सम्भव हो तो वहाँ बसनेके लिए; और अगर उनके परिवार थे तो उन्हें भी साथ ले गये हैं। फिर क्या ताज्जुब कि ये अपने गिरमिटकी अवधि पूरी करनेके बाद, जैसा कि श्री सांडर्सने कहा है, उसी आधी भुखमरीकी हालतमें लौटनेके बजाय एक ऐसे देशमें बस जाते हैं, जहाँकी आबहवा उत्कृष्ट है और जहाँ वे अच्छी-भली जीविका उपार्जित कर सकते हैं? भूखों मरनेवाला आदमी रोटीके एक टुकड़ेके लिए कितना भी दुर्व्यवहार सह लेता है।

क्या ट्रान्सवालमें गोरे विदेशियों (एटलॉण्डर्स) की शिकायतोंकी सूची काफी लम्बी नहीं है? फिर भी, अपने साथ होनेवाले दुर्व्यवहारके बावजूद, क्या वे हजारोंकी संख्यामें इसलिए ट्रान्सवालमें एकत्र नहीं होते कि वहाँ वे अपने पुराने देशकी अपेक्षा ज्यादा सरलतासे जीविका उपार्जित कर सकते हैं?

यह भी स्मरण रखना चाहिए कि श्री पीसने अपना वक्तव्य देते समय स्वतन्त्र भारतीय व्यापारियोंकी कोई गणना नहीं की। ये व्यापारी स्वतन्त्र रूपसे उस उपनिवेशमें जाते हैं और अपमान तथा निर्योग्यताओंको सबसे ज्यादा महसूस करते हैं। अगर गोरे विदेशियोंसे यह नहीं कहा जा सकता कि दुर्व्यवहार नहीं सह सकते तो ट्रान्सवाल न आओ, तो फिर उद्योगी भारतीयोंसे ऐसा कहना तो और भी निरर्थक है। हम शाही परिवारके सदस्य हैं और उसी महिमामयी माँके बच्चे हैं — हो सकता है, गोद लिये बच्चे हों — और हमें उन्हीं अधिकारों और विशेषाधिकारोंका आश्वासन दिया गया है, जो यूरोपीय बच्चोंको प्राप्त हैं। यही विश्वास था जिसको लेकर हम नेटाल-उपनिवेशमें गये थे और हमें भरोसा है कि हमारे विश्वासका आधार मजबूत था।

एजेंट-जनरलने हमारी पुस्तिकाके इस कथनका प्रतिवाद किया है कि रेलवे और ट्रामगाड़ियोंके कर्मचारी भारतीयोंके साथ पशुओं जैसा व्यवहार करते है। अगर मेरी कही हुई बातें गलत भी हों तो इससे कानूनी निर्योग्यताएँ गलत साबित नहीं होतीं। और हमने प्रार्थनापत्र तो केवल कानूनी निर्योग्यताओंके बारेमें ही भेजे हैं। उनको ही हटानेके लिए हम ब्रिटेन और भारतकी सरकारोंके सीधे हस्तक्षेपकी प्रार्थना करते हैं। परन्तु मेरा तो दावा

है कि एजेंट-जनरलको गलत जानकारी दी गई है। मैं दुहराकर कहता हूँ कि भारतीयोंके साथ रेलवे और ट्राम कर्मचारियोंका बरताव पशुओंके जैसा ही है। मैंने पहले-पहल जब यह वक्तव्य दिया था उसे अब लगभग दो वर्ष हो गये हैं। वह ऐसे समाजमें दिया गया था, जहाँ तुरन्त उसका प्रतिवाद किया जा सकता था। मैंने नेटालकी स्थानिक संसदके सदस्योंके नाम एक *खुली चिट्ठी* लिखी थी। उपनिवेशमें उसका व्यापक रूपसे प्रचार हुआ था और दक्षिण आफ्रिकाके प्रायः प्रत्येक प्रमुख पत्रने उसका उल्लेख किया था। उस समय किसीने उसका खंडन नहीं किया। कुछ पत्रोंने तो उसे स्वीकार भी किया था। ऐसी परिस्थितियोंमें मैंने उसे अपनी यहाँ प्रकाशित पुस्तिकामें उद्धृत कर दिया। मेरा स्वभाव बातोंको अतिरंजित करनेका नहीं है और अपने ही पक्षमें प्रमाण पेश करना मुझे बहुत अप्रिय मालूम होता है। परन्तु मेरे वक्तव्यको और उसके द्वारा उस कार्यको, जिसकी मैं हिमायत कर रहा हूँ, बदनाम करनेका प्रयत्न किया गया है, इसलिए उस कार्यके विचारसे आपको यह बता देना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ कि जिस खुली चिट्ठीमें मैंने वह वक्तव्य दिया था उसके बारेमें दक्षिण आफ्रिकी पत्रोंके क्या विचार हैं।

जोहानिसबर्गके प्रमुख पत्र *स्टारने* कहा है:

श्री गांधीने प्रभावोत्पादक ढंगसे, सौम्यताके साथ और अच्छा लिखा है। उन्होंने स्वयं उपनिवेशमें आनेके बाद कुछ अन्याय भोगा है। परन्तु उनकी भावनाएँ उससे प्रभावित हुई नहीं दीखतीं। और यह स्वीकार करना ही होगा कि 'खुली चिट्ठी'की ध्वनिपर उचित रूपसे कोई आपत्ति नहीं की जा सकती। श्री गांधीने अपने उठाये हुए प्रश्नोंकी मीमांसा स्पष्ट संयमके साथ की है।

नेटाल सरकारका मुखपत्र *नेटाल मर्क्युरी* कहता है:

श्री गांधीने शान्ति और सौम्यताके साथ लिखा है। उनसे जितनी निष्पक्षताकी अपेक्षा की जा सकती है, उतनी निष्पक्षता उनमें है। और इस विचारसे तो कि, जब वे उपनिवेशमें आये थे उस समय वकील-मंडल (लॉ सोसाइटी) ने उनके साथ बहुत न्याययुक्त व्यवहार नहीं किया था, वे अपेक्षासे कुछ ज्यादा ही निष्पक्ष हैं।

अगर मैंने निराधार बातें कही होतीं तो पत्रोंने *खुली चिट्ठी* को ऐसा *प्रमाणपत्र न दिया होता।*

लगभग दो वर्ष पूर्वकी बात है, एक भारतीयने नेटाल रेलवेका एक दूसरे दर्जेका टिकट खरीदा। उसे रात भरकी यात्रामें तीन बार परेशान किया गया। यूरोपीय यात्रियोंको खुश करनेके लिए दो बार डिब्बा बदलनेको बाध्य किया गया। मामला अदालतके सामने गया और भारतीयको क्षतिपूर्तिके तौरपर १० पौंड प्राप्त हुए। मामलेमें वादीने यह बयान दिया था :

> मैं डेढ़ बजे दुपहरको चार्ल्सटाउनसे रवाना होनेवाली गाड़ीके दूसरे दर्जेके डिब्बेमें बैठा। उस डिब्बेमें तीन अन्य भारतीय भी थे। वे न्यूकैसिलमें उतर गये। एक गोरेने डिब्बेका दरवाजा खोला और "बाहर निकल आ, सामी" कहते हुए मुझको इशारा किया। मैंने पूछा, "क्यों?" गोरेने जवाब दिया, "चूँ-चपड़ मत कर, बाहर आ जा। मुझे किसी दूसरेको यहाँ बैठाना है।" मैंने कहा, "जब मैंने किराया दिया है तो यहाँसे बाहर क्यों निकलूँ?"... इसपर गोरा चला गया और एक भारतीयको साथ लेकर वापस आया। मेरा खयाल है कि वह भारतीय रेलवे-कर्मचारी था। उससे कहा गया कि मुझसे बाहर निकल आनेको कहे। इसपर भारतीयने मुझसे कहा, "गोरा तुम्हें बाहर आनेका हुक्म दे रहा है; तुम्हें निकलना ही होगा।" बादमें भारतीय चला गया। मैंने गोरेसे कहा, "तुम मुझे क्यों हटाना चाहते हो? मैंने किराया दिया है और मुझे यहाँ बैठनेका अधिकार है।" गोरा इसपर क्रुद्ध हो उठा और बोला, "देख, अगर तू निकलता नहीं है तो मैं अभी तेरा कचूमर निकाल दूंगा।" वह डिब्बेके अन्दर आ गया और उसने मुझे पकड़कर बाहर खींचनेकी कोशिश की। मैंने कहा, "मुझे छोड़ दो; मैं निकल जाऊँगा।" मैं उस डिब्बेसे उतर गया और गोरेने दूसरे दर्जेका एक दूसरा डिब्बा दिखाकर मुझे उसमें चले जानेको कहा। मैंने उसके बताये अनुसार किया। मुझे जो डिब्बा दिखाया गया वह खाली था। मेरा खयाल है कि जिस डिब्बेसे मुझे निकाला गया था उसमें वे कुछ लोग बैठाये गये, जो बैंड बजा रहे थे। वह गोरा न्यूकैसिलमें रेलवेका जिला सुपरिंटेंडेंट था। आगे — मैं बिना विघ्न-बाधाके

मैरित्सबर्ग तक गया। मैं सो गया था और मैरित्सबर्गमें जब जागा तो मैंने अपने डिब्बेमें एक गोरे पुरुष, एक गोरी स्त्री और एक बच्चेको पाया। एक अन्य गोरा डिब्बेके पास आया और उसने मेरे डिब्बेके गोरेसे पूछा — "वह आपका 'बाय' [नौकर] है?" मेरे सहयात्रीने अपने छोटे बच्चेकी ओर संकेत करके कहा — "हाँ [मेरा 'बाय' — लड़का — है]।" इसपर दूसरे गोरेने कहा — "नहीं नहीं, मेरा मतलब उससे नहीं है; मैं तो उस कुलीके बारेमें पूछ रहा हूँ जो, मुआ, कोनेमें बैठा है।" यह छँटी हुई भाषा बोलनेवाला भलामानुस एक 'शंटर', यानी रेलवे-कर्मचारी था। डिब्बेमें बैठे गोरे व्यक्तिने कहा — "ओह! उसकी परवाह न कीजिए; उसे रहने दीजिए।" तब बाहरवाले गोरे (कर्मचारी) ने कहा — "मैं कुलीको गोरे लोगोंके साथ डिब्बेमें नहीं बैठने दूँगा।" उसने मुझसे कहा — "सामी, बाहर आ!" मैंने कहा — "क्यों भला? न्यूकैसिलमें तो मुझे दूसरे डिब्बेसे हटाकर यहाँ बैठाया गया था!" गोरेने कहा — "हाँ हाँ, तुझको निकलना होगा।" और वह डिब्बेमें घुसनेको हुआ। मैंने सोचा कि मेरी वही गति होगी, जो न्यूकैसिलमें हुई थी; इसलिए मैं बाहर निकल गया। गोरेने दूसरे दर्जेका दूसरा डिब्बा दिखाया। मैं उसमें चला गया। कुछ देरतक वह डिब्बा खाली रहा, मगर जब गाड़ी छूटनेवाली थी, एक गोरा उसमें आया। बादमें एक दूसरा गोरा — वही कर्मचारी — आया और उसने कहा — "अगर आपको उस गंधैले कुलीके साथ सफर करना पसन्द न हो तो मैं आपके लिए दूसरा डिब्बा देख दूँ।" (*नेटाल एडवर्टाइज़र*: बुधवार, २२ नवम्बर, १८९३)।

आपने देखा कि मैरित्सबर्गमें यद्यपि गोरे सहयात्रीने कोई आपत्ति नहीं की थी, फिर भी रेलवे-कर्मचारीने भारतीय यात्रीके साथ दुर्व्यवहार किया। अगर यह पाशविक व्यवहार नहीं है तो क्या है, मैं जानना चाहूँगा। और इस तरहकी सन्तापजनक घटनाएँ अक्सर होती रहती हैं।

मुकदमेके दौरानमें मालूम हुआ था कि सफाई-पक्षके एक गवाहको सिखाया-पढ़ाया गया था। वह उपर्युक्त रेलवे-कर्मचारियोंमें से था। अदालतके एक प्रश्नके उत्तरमें कि, क्या भारतीय यात्रियोंके साथ आदरका व्यवहार

किया जाता है, उसने कहा — "हाँ।" कहते हैं, इसपर मुकदमा सुननेवाले मजिस्ट्रेटने उससे कहा — "तो फिर, तुम्हारा मत मेरे मतसे भिन्न है। विचित्र बात है कि जो लोग रेलवेसे सम्बन्ध नहीं रखते वे तुमसे ज्यादा देख लेते हैं।"

इस मामलेपर डर्बनके एक यूरोपीय दैनिक पत्र *नेटाल एडवर्टाइज़र*ने निम्नलिखित विचार व्यक्त किये थे :

> गवाहीसे निर्विवाद है कि उस अरबके साथ बुरा व्यवहार किया गया था। और यह देखते हुए कि इस तरहके भारतीयोंको दूसरे दर्जेके टिकट दिये जाते हैं, वादीको नाहक परेशान और अपमानित नहीं किया जाना चाहिए था। . . . यूरोपीय और गैर-यूरोपीय यात्रियोंके बीच संघर्षके खतरेको ज्यादासे ज्यादा घटा देनेके कोई निश्चित उपाय किये जाने चाहिए। उन उपायोंका प्रयोग काले या गोरे, किसी भी व्यक्तिको सन्तापजनक न हो।

इसी मुकदमेके बारेमें *नेटाल मर्क्युरी*ने कहा है :

> सारे दक्षिण आफ्रिकामें सभी भारतीयोंके साथ निरे कुलियोंका जैसा व्यवहार करनेकी वृत्ति फैली हुई है। इस बातकी कोई परवाह नहीं की जाती कि वे शिक्षित और स्वच्छतासे रहनेवाले हैं या नहीं। . . . हमने अनेक बार देखा है कि हमारी रेल-गाड़ियोंमें गैर-गोरे यात्रियोंके साथ सभ्यताका व्यवहार बिलकुल नहीं किया जाता। यद्यपि यह अपेक्षा करना उचित न होगा कि एन० जी० आर० के गोरे कर्मचारी उनके साथ वैसा ही आदरका व्यवहार करें, जैसा कि वे यूरोपीय यात्रियोंके साथ करते हैं, फिर भी हम समझते हैं, गैर-गोरे यात्रियोंके साथ व्यवहार करनेमें अगर वे जरा अधिक शिष्टतासे काम लें तो इससे उनकी शानमें बट्टा न लगेगा (२४–११–१८९३)।

दक्षिण आफ्रिकाका एक प्रमुख पत्र *केप टाइम्स* कहता है :

> नेटालने एक विचित्र नजारा उपस्थित कर रखा है। जिस वर्गके लोगोंके बिना उसका काम चलना ही कठिन है, उसीके प्रति वह चरम कोटिके तिरस्कारका पोषण करता है। उस देशसे भारतीय आबादीके

निकल जानेपर व्यापारका बैठ जाना अनिवार्य है, और उस हालतकी कल्पना-मात्र की जा सकती है। फिर भी भारतीय वहाँ सबसे ज्यादा तिरस्कृत जीव हैं। रेलगाड़ीमें वे यूरोपीयोंके साथ एक ही डिब्बेमें यात्रा नहीं कर सकते, ट्रामगाड़ियोंमें बैठ नहीं सकते, होटलवाले उन्हें जगह और भोजन देनेसे इनकार करते हैं और सार्वजनिक स्नान-गृहोंका उपयोग करनेके अधिकारसे भी वे वंचित हैं! (५-७-१८९१)।

श्री ड्रमंड एक एंग्लो-इंडियन हैं। नेटालवासी भारतीयोंके साथ उनका घनिष्ठ सम्बन्ध है। उन्होंने *नेटाल मर्क्युरी*में लिखा है:

मालूम होता है कि यहाँके बहुसंख्य लोग भूले हुए हैं कि भारतीय ब्रिटिश प्रजा हैं, हमारी रानी ही उनकी महारानी हैं। सिर्फ एक इसी कारणसे आशा की जा सकती है कि यहाँ उनके लिए जिस तिरस्कार-पूर्ण शब्द 'कुली' का प्रयोग होता है, वह न किया जाये। भारतमें केवल निचले दर्जेके गोरे ही वहाँके लोगोंको 'निगर' [हबशी] कहकर पुकारते हैं और उनके साथ ऐसा व्यवहार करते हैं, मानो वे किसी आदर-मानके योग्य हैं ही नहीं। यहाँके अनेक लोगोंके समान ही उनकी नजरमें भारतीयोंको भारी बोझ या यंत्रमात्र माना जाता है। . . . आम तौरपर अज्ञानी लोग भारतीयोंको "पृथ्वीका मल" आदि कहा करते हैं, और यह सुनना बड़ा दुःखदायी है। गोरे लोगोंसे उनको सराहना नहीं मिलती, केवल निन्दा ही प्राप्त होती है।

मैं समझता हूँ कि मैंने अपने इस वक्तव्यको साबित करनेके लिए काफी बाहरी प्रमाण दे दिये हैं कि रेलवे-कर्मचारी भारतीयोंके साथ पशुवत् व्यवहार करते हैं। ट्रामगाड़ियोंमें भारतीयोंको अक्सर अन्दर बैठने नहीं दिया जाता, बल्कि, वहाँकी भाषामें, 'अपस्टेयर्स' [अर्थात् छतपर] भेज दिया जाता है। उन्हें अक्सर एक बैठकसे दूसरी बैठकपर हटा दिया जाता है और आगेकी बेंचोंपर बैठने ही नहीं दिया जाता। मैं एक भारतीय अफसरको जानता हूँ, जिन्हें जगह खाली होनेपर भी ट्रामके पाँवदानपर खड़ा रखा गया था। वे एक तमिल सज्जन हैं और नयेसे नये यूरोपीय ढंगकी पोशाक पहने थे।

जहाँतक इस कथनका सम्बन्ध है कि भारतीयोंको अदालतोंमें न्याय मिलता है, मेरा निवेदन है कि मैंने यह कभी नहीं कहा कि नहीं

मिलता; न मैं यही माननेको तैयार हूँ कि हमेशा और सब अदालतोंमें मिलता ही है।

भारतीय समाजकी समृद्धिशीलता साबित करनेके लिए आँकड़े देना जरूरी नहीं है। इससे तो इनकार नहीं किया गया कि जो भारतीय नेटाल जाते हैं वे अपनी जीविका उपार्जित करते ही हैं, और सो भी उत्पीड़नके बावजूद।

ट्रान्सवालमें हम जमीन-जायदाद नहीं रख सकते। निश्चित पृथक् बस्तियोंको छोड़कर, दूसरे स्थानोंमें रहना या वहाँ व्यापार करना भी सम्भव नहीं होता। इन पृथक् बस्तियोंका बखान ब्रिटिश एजेंटने इन शब्दोंमें किया है: "ऐसे स्थान, जिनका उपयोग कूड़ा-करकट इकट्ठा करनेके लिए होता है और जहाँ शहर और बस्तीके बीचके नालेमें झिरझिरकर जानेवाले गन्दे पानीके सिवा दूसरा पानी है ही नहीं।" हम जोहानिसबर्ग और प्रिटोरियामें अधिकारपूर्वक पैदल पटरियोंपर नहीं चल सकते। ९ बजे रातके बाद घरसे नहीं निकल सकते। बिना परवानोंके यात्रा नहीं कर सकते। रेलगाड़ियोंमें पहले या दूसरे दर्जेमें यात्रा करनेसे कानून हमें रोकता है। ट्रान्सवालमें बसनेके लिए हमें तीन पौंडका एक विशेष पंजीकरण (रजिस्ट्रेशन)-शुल्क देना पड़ता है। और यद्यपि हमारे साथ सिर्फ "चलते-फिरते माल-असबाब" जैसा व्यवहार किया जाता है, और हमें किसी प्रकारके कोई विशेषाधिकार प्राप्त नहीं हैं, फिर भी अगर श्री चेम्बरलेनने हमारे भेजे हुए प्रार्थनापत्रकी उपेक्षा कर दी तो हमें अनिवार्य सैनिक सेवा करनेका आदेश दिया जा सकेगा। ट्रान्सवालके भारतीयोंपर असर करनेवाले रूपमें सारे मामलेका इतिहास बड़ा मनोरंजक है। मुझे अफसोस इतना ही है कि समयके अभावसे अभी मैं उसका वर्णन नहीं कर सकता। फिर भी मैं आपसे यह प्रार्थना तो करूँगा ही कि आप "हरी पुस्तिका" से उसका अध्ययन जरूर करें। हाँ, मुझे यह बताना भी भूलना नहीं चाहिए कि भारतीयोंके लिए देशी सोना खरीदना अपराध है।

आरेंज फ्री स्टेटने, अपने प्रधान मुखपत्रके शब्दोंमें, "भारतीयोंका, उन्हें केवल काफिरोंकी कोटिमें रखकर ही, वहाँ रहना असम्भव कर दिया है।" उसने एक विशेष कानून भी मंजूर किया है। उसके द्वारा हमें किन्हीं भी हालतोंमें वहाँ व्यापार करने, खेती करने या जमीन-जायदादके मालिक बननेसे रोक दिया गया है। अगर हम इन अधःपतन करनेवाली शर्तोंके सामने सिर झुका दें तो कुछ अपमानजनक उपचारोंसे गुजरनेके बाद हमें वहाँ रहने

दिया जा सकता है। हमें राज्यसे खदेड़ दिया गया था और हमारे वस्तु-भंडार बन्द कर दिये गये थे। इससे हमें ९००० पौंडकी हानि हुई। हमारा यह दुखड़ा अबतक बिलकुल अनसुना पड़ा है।

केपकी संसदने एक विधेयक पास किया है। उसके द्वारा ईस्ट लंदन म्यूनिसिपैलिटीको अधिकार दिया गया है कि वह भारतीयोंको पैदल-पटरियोंपर चलनेसे रोकने और उन्हें पृथक् बस्तियोंमें बसनेको बाध्य करनेके लिए उपनियम बना ले। उसने ईस्ट ग्रिक्वालैंडके अधिकारियोंको भारतीयोंको व्यापारके परवाने न देनेका आदेश भेजा है। केप सरकार ब्रिटिश सरकारके साथ इस उद्देश्यसे पत्र-व्यवहार कर रही है कि उसे एशियाइयोंकी बाढ़को रोकनेका कानून बनानेकी अनुमति देनेके लिए राजी किया जा सके।

चार्टर्ड टेरिटरीज़के लोग एशियाई व्यापारियोंके लिए अपने देशका द्वार बन्द करनेके प्रयत्नोंमें लगे हैं।

सम्राज्ञी-सरकारके शासनाधीन ज़ूलूलैंडकी एशोवे तथा नोंदवेनी नामक बस्तियोंमें जमीन-जायदाद हम न तो खरीद सकते हैं और न अन्यथा प्राप्त कर सकते हैं। इस समय यह प्रश्न श्री चेम्बरलेनके सामने उनके विचाराधीन है। ट्रान्सवालके समान वहाँ भी भारतीयोंके लिए देशी सोना खरीदना अपराध है।

इस प्रकार, हम चारों ओर प्रतिबंधोंसे घिरे हुए हैं। और, अगर हमारे लिए यहाँ और इंग्लैंडमें कुछ नहीं किया गया तो, सिर्फ समयका सवाल है कि दक्षिण आफ्रिकासे शिष्ट भारतीयोंका नाम-निशान मिट जायेगा।

और, यह प्रश्न सिर्फ स्थानिक नहीं है। लन्दन *टाइम्स*के कथनानुसार, "यह प्रश्न भारतके बाहर ब्रिटिश भारतीयोंकी मान-मर्यादाका" है। थंडरर ['टाइम्स'] कहता है, "अगर वे दक्षिण आफ्रिकामें वह स्थिति (अर्थात्, समान मान-मर्यादाकी) प्राप्त करनेमें असफल रहे, तो दूसरे स्थानोंमें उसे प्राप्त करना उनके लिए कठिन होगा।" आपने अखबारोंमें पढ़ा ही होगा कि आस्ट्रेलियाई उपनिवेशोंने भारतीयोंको दुनियाके उस भागमें बसनेसे रोकनेका कानून स्वीकार किया है। ब्रिटिश सरकार इस प्रश्नको कैसे निबटाती है, यह जानना दिलचस्प होगा।

इस सारे द्वेषभावका सच्चा कारण दक्षिण आफ्रिकाके प्रमुख पत्र *केप-टाइम्स*के उस समयके शब्दोंमें व्यक्त किया जाये, जब कि उसके सम्पादक दक्षिण आफ्रिकी पत्रकारोंके सरताज श्री सेंट लेजर थे, तो वह है:

जिस चीजसे आजतक भारी शत्रुता पैदा होती आ रही है, वह है इन व्यापारियोंकी स्थिति। और इनकी स्थितिका खयाल करके ही इनके व्यापारी प्रतिस्पर्धियोंने, अपनी स्वार्थ-सिद्धिके लिए, सरकारके माध्यमसे, इन्हें वह दण्ड देनेका प्रयत्न किया है, जो प्रत्यक्ष रूपमें बहुत-कुछ अन्याय जैसा दीखता है।

वही पत्र आगे कहता है:

भारतीयोंके प्रति अन्याय इतना स्पष्ट है कि जब केवल इन लोगोंकी व्यापारिक सफलताके कारण हमारे देशवासी इनके साथ देशी (अर्थात्, दक्षिण आफ्रिकाके) लोगों जैसा व्यवहार कराना चाहते हैं तो उनपर शर्म-सी आती है। भारतीयोंको उस मानहानिकारी स्तरसे उन्नत कर देनेके लिए तो स्वयं यह कारण ही काफी है कि वे प्रबल जातिके विरुद्ध इतने सफल हुए हैं।

अगर यह १८८९ में सही था, जब कि उपर्युक्त शब्द लिखे गये थे, तो अब दूना सही है। कारण, दक्षिण आफ्रिकाकी विधान-निर्मात्री सभाओंने सम्राज्ञीके भारतीय प्रजाजनोंकी स्वतन्त्रतापर प्रतिबन्ध लगानेके कानून बनानेमें अद्‌भुत सरगरमी दिखाई है।

वहाँ हमारी उपस्थितिके बारेमें दूसरी आपत्तियाँ भी उठाई गई हैं। परन्तु वे कसौटीपर ठहर नहीं सकेंगी और "हरी पुस्तिका" में मैंने उनका वर्णन किया ही है। फिर भी मैं *नेटाल एडवर्टाइज़र*से एक उद्धरण देता हूँ। इस पत्रने एक आपत्तिका उल्लेख किया है और उसकी राजनीतिज्ञोचित औषधि भी सुझाई है। और जहाँतक आपत्ति सही है, हम इसके सुझावसे पूरी तरह सहमत हैं। इस पत्रकी व्यवस्था यूरोपीयोंके हाथमें है, और एक समय यह हमारा घोर विरोधी था। सारे प्रश्नकी चर्चा साम्राज्यिक दृष्टि-कोणसे करते हुए अन्तमें यह कहता है:

इसलिए, शायद अब भी देखा जा सकेगा कि भारतीयोंके ब्रिटिश उपनिवेशोंमें आनेसे आज जो कमियाँ आ गई हैं वे पृथक्करणकी पुराण-पंथी नीति स्वीकार करनेसे उतनी दूर नहीं होंगी, जितनी कि उनमें बसनेवाले भारतीयोंको राहत देनेवाले कानूनोंके उत्तरोत्तर और बुद्धिमत्तापूर्ण

प्रयोगसे होंगी। भारतीयोंके बारेमें की जानेवाली एक मुख्य आपत्ति यह है कि वे यूरोपीय नियमोंके अनुसार नहीं रहते। इसका उपाय यह है कि उन्हें ज्यादा अच्छे मकानोंमें रहनेके लिए बाध्य करके और उनमें नई-नई जरूरतें पैदा करके क्रमशः उनके रहन-सहनको ऊँचा उठाया जाये। ऐसे प्रवासियोंको पूरी तरह अलग करके उनको पुरानी अनुन्नत स्थितिमें बनाये रखनेका प्रयत्न करनेकी अपेक्षा शायद उनसे यह माँग करना ज्यादा आसान भी होगा कि वे अपनी नई हालतोंके अनुसार ऊपर उठें। कारण, यह मनुष्यजातिके महान प्रगति आन्दोलनोंके अधिक अनुरूप है।

हमारा विश्वास यह भी है कि बहुत-सी दुर्भावनाएँ इसलिए पैदा हुई हैं कि दक्षिण आफ्रिकाके लोगोंको भारतमें रहनेवाले भारतीयोंके बारेमें समुचित ज्ञान नहीं है। इसलिए हम आवश्यक जानकारी देकर दक्षिण आफ्रिकाके लोकमतको शिक्षित करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। कानूनी बाधाओं और निषेधोंके बारेमें हमने भारत और इंग्लैंड दोनों देशोंके लोकमतको अपने अनुकूल प्रभावित करनेका प्रयत्न किया है। आप जानते ही हैं कि इंग्लैंडमें उदार और अनुदार दोनों पक्षोंने बिना भेदभावके हमारा समर्थन किया है। लंदन टाइम्सने बड़ी सहानुभूतिके साथ हमारे ध्येयके पक्षमें आठ अग्रलेख लिखे हैं। केवल इतनेसे ही दक्षिण आफ्रिकाके यूरोपीयोंकी नजरोंमें हम एक कदम ऊँचे उठ गये हैं। वहाँके पत्रोंकी ध्वनि बहुत सुधर गई है। कांग्रेसकी ब्रिटिश समिति दीर्घकालसे हमारे लिए काम कर रही है। श्री भावनगरी जबसे संसदमें पहुँचे, बराबर हमारे ध्येयकी हिमायत करते आ रहे हैं। वे इसके लिए खास मौका ताकते नहीं बैठते। हमारे लंदनके एक सबसे बड़े हमदर्द कहते हैं:

अन्याय इतना गम्भीर है कि, मुझे आशा है, उसकी जानकारी होना ही उसे दूर करनेके लिए काफी होगा। मैं सब अवसरोंपर और सब उपयुक्त तरीकोंसे यह आग्रह करना अपना कर्तव्य समझता हूँ कि सम्पूर्ण ब्रिटिश साम्राज्यमें और सहयोगी राज्योंमें सम्राज्ञीकी भारतीय प्रजाको ब्रिटिश प्रजाकी पूरी मान-मर्यादा उपलब्ध होनी चाहिए। आपको और हमारे दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीय मित्रोंको यही रुख दृढ़ताके साथ

अख्तियार करना चाहिए। ऐसे प्रश्नपर समझौता हो ही नहीं सकता। कारण यह है कि कोई भी समझौता हो, उससे भारतीयोंका ब्रिटिश प्रजाकी पूरी मान-मर्यादा भोगनेका मूलभूत अधिकार खो जायेगा। यह अधिकार उन्होंने शान्ति-कालमें अपनी वफादारीसे और युद्धमें अपनी सेवाओंसे उपार्जित किया है। इस अधिकारका आश्वासन उन्हें गम्भीरताके साथ रानीकी १८५८ की घोषणा द्वारा दिया गया था और अब सम्राज्ञीकी सरकारने इसे स्पष्ट रूपसे मान्य कर लिया है।

वही सज्जन एक अन्य पत्रमें लिखते हैं :

मुझे प्रबल आशा है कि आखिरकार न्याय किया जायेगा। आपका ध्येय अच्छा है। . . . सफल होनेके लिए इतना ही जरूरी है कि आप अपने मोर्चेपर दृढ़ रहें। वह मोर्चा यह है कि दक्षिण आफ्रिकावासी ब्रिटिश भारतीय प्रजाजन हमारे अपने ही उपनिवेशों और स्वतन्त्र मित्र-राज्योंमें अपनी ब्रिटिश प्रजाकी मान-मर्यादासे, जिसका उन्हें सम्राज्ञी तथा ब्रिटिश संसद दोनोंने आश्वासन दिया है, एक समान वंचित किये जा रहे हैं।

लोकसभाके एक पूर्व उदारदलीय सदस्यका कथन है :

उपनिवेश-सरकारने आपके साथ कलुषित व्यवहार किया है। अगर ब्रिटिश सरकारने उपनिवेशोंको अपनी नीति बदलनेके लिए बाध्य नहीं किया तो आपके साथ उसका बरताव भी वैसा ही होगा।

एक अनुदारदलीय सदस्यका कथन है :

मैं भली भाँति जानता हूँ कि स्थिति अनेक कठिनाइयोंसे घिरी हुई है। परन्तु कुछ मुद्दे साफ दिखाई देते हैं और, जहाँतक मैं समझ सकता हूँ, यह सच है कि भारतमें जिन्हें दीवानी इकरारनामे माना जाता है उनका भंग दक्षिण आफ्रिकामें फौजदारी अपराधका जैसा दंडनीय है। यह निस्सन्देह भारतीय कानूनके सिद्धान्तोंके प्रतिकूल है और भारतवासी ब्रिटिश प्रजाको दिये गये विशेषाधिकारोंके आश्वासनका अतिक्रमण मालूम होता है। फिर, यह भी पूर्णतः स्पष्ट है कि बोअर गणराज्यमें, और

शायद नेटालमें भी, सरकारका सीधा और स्पष्ट इरादा भारतके निवासियोंको "खदेड़ना" और उन्हें अपना व्यापार अपमानजनक परिस्थितियोंमें करनेके लिए बाध्य करना है। ट्रान्सवालमें ब्रिटिश प्रजाकी स्वतन्त्रताओंको काटने-छाँटनेके जो बहाने पेश किये जाते हैं वे इतने लचर हैं कि उनपर क्षणभर ध्यान भी नहीं दिया जा सकता।

एक और अनुदारदलीय सदस्य भी कहता है:

आपकी प्रवृत्ति प्रशंसाके योग्य और माँगें न्यायपूर्ण हैं। इसलिए मैं अपनी शक्तिभर मदद करनेको तैयार हूँ।

इंग्लैंडमें ऐसी सहानुभूति जाग्रत हुई है। मैं जानता हूँ कि यहाँ भी हमें वही सहानुभूति प्राप्त है। परन्तु मैं अदबके साथ सोचता हूँ कि हमारे प्रयोजनपर आप और भी ज्यादा ध्यान दें।

भारतमें क्या करनेकी जरूरत है, यह *मुस्लिम क्रानिकल*ने अपने एक जोरदार अग्रलेखमें बड़ी अच्छी तरह बताया है:

यहाँ, अन्य बातोंके साथ-साथ, जोरदार और समझदार लोकमत है, और सरकार सदाशयी है। फलतः हमें जिन कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है वे उन कठिनाइयोंके सामने कुछ भी नहीं हैं, जो उस देशमें हमारे देशभाइयोंके हितोंमें बाधक हो रही हैं। इसलिए अब समय आ गया है कि तमाम सार्वजनिक संस्थाएँ तुरन्त अपना ध्यान इस महत्त्वपूर्ण विषयकी ओर मोड़ें और हमारे देशभाई जिन कष्टोंमें जीवन-यापन कर रहे हैं, उन्हें दूर करनेका आन्दोलन छेड़नेके लिए प्रबुद्ध लोकमतका निर्माण करें। वास्तवमें ये कष्ट इतने असह्य और सन्तापकारी हो गये हैं, और दिन प्रति दिन होते जाते हैं, कि आवश्यक आन्दोलन छेड़नेमें एक दिनका भी विलम्ब नहीं किया जा सकता।

हमारी स्थिति क्या है, मैं जरा ज्यादा साफ शब्दोंमें कह दूं। हम जानते हैं कि जनसाधारणके हाथों हमें जो अपमान और अनादर सहना पड़ता है उसे सीधे ब्रिटिश सरकारके हस्तक्षेपसे दूर नहीं किया जा सकता। हम उससे ऐसे किसी हस्तक्षेपकी प्रार्थना भी नही करते। हम उसे जनताकी नजरमें लाते हैं, ताकि सब समाजोंके न्यायप्रिय लोग और अखबार अपनी

नापसन्दगी व्यक्त करते रहें, उसकी उग्रता कम कर दें और सम्भव हो तो, आखिरकार उसका अन्त कर दें। परन्तु हम ब्रिटिश सरकारसे यह प्रार्थना जरूर करते हैं कि वह ऐसी दुर्भावनाओंके कानूनमें उतारे जानेके खिलाफ संरक्षण प्रदान करे, और हमें आशा है कि हमारी यह प्रार्थना व्यर्थ नहीं होगी। हम अवश्य ही ब्रिटिश सरकारसे प्रार्थना करते हैं कि उपनिवेशोंकी कानून बनानेवाली संस्थाओंके ऐसे सब कानूनोंका निषेध कर दिया जाये, जो किसी भी रूपमें हमारी स्वतन्त्रतापर प्रतिबन्ध लगानेवाले हों। और इससे मैं अन्तिम प्रश्नपर पहुँचता हूँ: उपनिवेशों और सहयोगी राज्योंकी इस तरहकी कार्रवाइयोंमें ब्रिटिश सरकार कहाँतक हस्तक्षेप कर सकती है? जूलूलैंड तो सम्राज्ञीके शासनाधीन उपनिवेश है। उसका शासन गवर्नरके द्वारा सीधे "डाउनिंग स्ट्रीट" [ब्रिटिश सरकार] द्वारा होता है। इसलिए उसके बारेमें कोई प्रश्न ही नहीं उठ सकता। नेटाल और केप आफ गुड होपके समान वह स्वायत्त शासन या उत्तरदायी शासनवाला उपनिवेश नहीं है। परन्तु जहाँतक उपर्युक्त दूसरे दो उपनिवेशोंका सवाल है, उनके संविधानमें यह शर्त मौजूद है कि सम्राज्ञीकी सरकार स्थानिक संसदोंके किसी भी अधिनियमका, गवर्नरकी स्वीकृति मिल जाने और कानून बन जानेके बाद भी, दो वर्ष तक निषेध कर सकती है। उपनिवेशोंके अत्याचारी कानूनोंसे रक्षाका यह एक उपाय है। सरकारके नाम सम्राज्ञी-सरकारकी सूचनाओंमें और संविधान कानूनमें भी कुछ विधेयक गिना दिये गये हैं, जिन्हें सम्राज्ञीकी अग्रिम अनुमतिके बिना गवर्नर स्वीकृति नहीं दे सकता। मताधिकार विधेयक या प्रवासी-विधेयक जैसे विधेयक, जिनका लक्ष्य वर्गगत कानून बनाना है, ऐसे विधेयकोंमें शामिल हैं। इस तरह सम्राज्ञीका हस्त-क्षेपका अधिकार सीधा और स्पष्ट है। बात सच है कि औपनिवेशिक विधानमंडलोंके कानूनोंमें ब्रिटिश सरकार बहुत धीरे-धीरे हस्तक्षेप करती है। फिर भी ऐसे उदाहरण मौजूद हैं जब कि उसने मौजूदा प्रसंगसे कम जरूरी प्रसंगोंपर दृढ़तासे काम लेनेमें पसोपेश नहीं किया। आप जानते ही हैं कि पहला मताधिकार विधेयक ऐसे ही फायदेमंद हस्तक्षेपके फलस्वरूप रद हुआ था। इसके अलावा, उपनिवेशी लोग सदा ऐसे हस्तक्षेपके बारेमें डरते रहते हैं। इंग्लैंडमें सहानुभूति व्यक्त की गई और कुछ माह पहले जो शिष्टमंडल श्री चेम्बरलेनसे मिला था, उसको श्री चेम्बरलेनने सहानुभूतियुक्त उत्तर दिया — इन दोनों बातोंके फलस्वरूप दक्षिण आफ्रिकाके अधिकतर पत्रोंने अपना

रुख बहुत कुछ बदल दिया है। कुछ हो, नेटालके अधिकतर पत्रोंने तो ऐसा किया ही है। जहाँतक ट्रान्सवालका सम्बन्ध है, समझौता मौजूद है ही। आरेंज फ्री स्टेटके बारेमें मैं इतना ही कह सकता हूँ कि एक मित्रराज्यका सम्राज्ञीकी प्रजाके किसी भी भागके लिए अपने देशके द्वार बन्द कर लेना अमित्रताका व्यवहार है। और इस स्थितिमें, मेरा नम्र खयाल है, उसे सफलतापूर्वक रोका जा सकता है।

यहाँ लंदन *टाइम्स*के लेखोंसे कुछ ऐसे उद्धरण दे देना असंगत न होगा, जिनका सम्बन्ध हस्तक्षेपके प्रश्नके साथ और सामान्यत: सारे प्रश्नके साथ है :

> सारे प्रश्नका निचोड़ यह है : क्या सम्राज्ञीकी भारतीय प्रजाके साथ एक मित्रराज्य द्वारा स्थानच्युत और बहिष्कृत जाति (रेस) के समान व्यवहार किया जायेगा? या उसे वही अधिकार और मान-मर्यादा प्राप्त होगी, जो अन्य प्रजाओंको प्राप्त है? क्या उन प्रमुख मुसलमान व्यापारियोंके साथ, जो बम्बईमें विधानपरिषदमें बैठ सकते हैं, दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यमें मान-हानि और अत्याचारका व्यवहार किया जायेगा? हम अपनी भारतीय प्रजासे लगातार कहते आ रहे हैं कि उनके देशका आर्थिक भविष्य उनके बाहर फैलने और विदेशोंमें अपना व्यापार बढ़ानेकी योग्यतापर निर्भर करता है। परन्तु अगर हमारी सरकार विदेशोंमें उन्हें वही संरक्षण दिलानेमें असमर्थ हो, जो सम्राज्ञीके अन्य अधीन राज्योंमें से प्रत्येककी प्रजाको प्राप्त है, तो वह उन्हें क्या जवाब दे सकती है?
>
> अगर हमारे भारतीय प्रजाजन भारत छोड़नेके क्षणसे ही अपने ब्रिटिश प्रजाके अधिकारोंको खो देते हैं और विदेशी सरकारें उनके साथ स्थानच्युत तथा बहिष्कृत जातियों जैसा व्यवहार कर सकती हैं, तो हमारा अपने भारतीय प्रजाबन्धुओंको यह समझाना एक मखौल मात्र होगा कि वे विदेशी व्यापारमें लगें।

एक अन्य लेखमें उसने कहा है :

> यह विषय तो सद्भावका और "मैत्रीपूर्ण वार्ताओं" के लिए प्रभाव काममें लानेका है। श्री चेम्बरलेनने ऐसी वार्ताओंकी व्यवस्था करनेका वादा किया है, हालाँकि उन्होंने शिष्टमंडलको चेतावनी दी है कि वार्ताएँ

उकता देनेवाली हो सकती हैं, और सरल तो वे होंगी ही नहीं। जहाँतक केप कालोनी और नेटालका सम्बन्ध है, चूँकि औपनिवेशिक कार्यालय उनके साथ ज्यादा अधिकारसे बातें कर सकता है, इसलिए सवाल कुछ हदतक आसान हो गया है।

यह मामला उनमें है जो सरकारके सीधे जवाब देनेके मामलोंमें सबसे व्यापक प्रश्न उठानेवाले होते हैं। हम एक विश्वव्यापी साम्राज्यके केन्द्राधिकारी हैं। और जमाना ऐसा है, जिसमें आवागमन सरल है, और दिन-दिन समय तथा व्यय दोनोंकी दृष्टिसे सरलतर होता जाता है। साम्राज्यके कुछ भाग घने हैं, दूसरे अपेक्षाकृत खाली हैं; और भीड़-भाड़के क्षेत्रोंसे कम आबादीके क्षेत्रोंमें लोग लगातार गमन कर रहे हैं। साम्राज्यके जो प्रजाजन हमसे या किसी खास क्षेत्रके लोगोंसे रंग, धर्म और आदतोंमें भिन्न हैं, वे अगर उस क्षेत्रमें अपनी जीविका उपार्जित करनेके लिए जायें तो क्या होगा? जाति-द्वेष और विरोध-भावनाओंको, व्यापारकी ईर्ष्याको, प्रतिद्वन्द्विताके भयको कैसे नियन्त्रित किया जायेगा? उत्तर निश्चय ही यह होगा कि औपनिवेशिक कार्यालयमें प्रबुद्ध नीतिका अवलम्बन करके।

भारतीयोंकी आवश्यकताएँ कम हैं। भारतकी आबादीमें लगातार वृद्धि हो रही है। इसलिए एक हदतक वहाँसे परदेश-प्रवास अनिवार्य है। और इस प्रवासमें वृद्धि भी होगी। हमारे आफ्रिकावासी गोरे बन्धु-प्रजाजनोंका यह समझ लेना बहुत जरूरी है कि इस भारतसे प्रवाहके आते रहनेकी तमाम सम्भावनाएँ मौजूद हैं, ब्रिटिश भारतीयोंको केपमें जाकर जीविका-निर्वाह करनेका पूरा अधिकार है, और जब वे यहाँ आयें तब सम्पूर्ण साम्राज्यके सामान्य हितकी दृष्टिसे उनके साथ अच्छा व्यवहार होना चाहिए। सचमुच यह भयकी बात है कि साधारण उपनिवेशी, वे कहीं भी बसे हों, अपनी रक्षा करनेवाले महान साम्राज्यके हितोंकी अपेक्षा अपने तात्कालिक हितोंकी चिन्ता बहुत अधिक करते हैं। और उन्हें हिन्दुओं या पारसियोंको अपना प्रजा-बन्धु स्वीकार करनेमें कुछ कठिनाई मालूम होती है। औपनिवेशिक कार्यालयका कर्तव्य उन्हें सम-

ज्ञाना और यह व्यवस्था करना है कि ब्रिटिश प्रजाके साथ, चाहे वह किसी भी रंगकी क्यों न हो, न्याययुक्त व्यवहार किया जाये।

और फिर :

भारतमें अंग्रेजों, हिन्दुओं और मुसलमानोंके सामने यह प्रश्न मुँह बाये खड़ा है कि जिन नई औद्योगिक प्रवृत्तियोंकी इतने दिनों और इतनी उत्सुकतासे प्रतीक्षा की जाती रही है, उनका आरम्भ होनेपर भारतीय व्यापारियों और मजदूरोंको कानूनकी नजरमें वही मान-मर्यादा मिलेगी या नहीं, जिसका उपभोग अन्य सब ब्रिटिश प्रजाएँ करती हैं? वे ब्रिटिश शासनाधीन एक देशसे ब्रिटिश शासनाधीन दूसरे देशमें स्वतन्त्रता-पूर्वक आ-जा सकते हैं और सहयोगी राज्योंमें ब्रिटिश प्रजाके अधिकारोंका दावा कर सकते हैं या नहीं? या, उनके साथ बहिष्कृत जातियोंके जैसा व्यवहार किया जायेगा और उनके साधारण व्यापारिक आवागमनपर अनुमति-पत्रों तथा परवानोंकी व्यवस्था लादी जायेगी और उन्हें अपने व्यापारकी स्थायी जगहोंमें किन्हीं पृथक् गन्दी बस्तियोंमें घेर दिया जायेगा, जैसा कि ट्रान्सवाल-सरकार करना चाहती है? ये सवाल उन सब भारतीयोंसे सम्बन्ध रखते हैं, जो भारतके बाहर जाकर अपनी आर्थिक हालत सुधारनेके इच्छुक हैं। श्री चेम्बरलेनके शब्दों और हर वर्गके भारतीय पत्रोंके दृढ़ रुखसे स्पष्ट है कि ऐसे प्रश्नोंका उत्तर केवल एक ही हो सकता है।

मैं उसी पत्रसे एक और उद्धरण देनेकी स्वतन्त्रता लूँगा :

श्री चेम्बरलेनके सामने जो प्रश्न निबटारेके लिए था उसकी निश्चित व्याख्या इतनी सरलतासे नहीं की जा सकती। एक ओर तो उन्होंने विदेशी राज्योंसे शिकायतें दूर करानेकी दृष्टिसे तमाम ब्रिटिश प्रजाओंके "समान अधिकारों" और समान विशेषाधिकारोंके सिद्धान्त स्पष्टतः निर्धारित कर दिये हैं। और सच बात तो यह है कि इस सिद्धान्तसे इनकार करना ही असम्भव होता, क्योंकि हमारी भारतीय प्रजा वफादारी और साहसके साथ आधी पुरानी दुनियामें ग्रेट ब्रिटेनकी लड़ाई लड़ती आ रही है और उसने अपनी वफादारी और साहससे तमाम ब्रिटिश

जनताकी प्रशंसा उपार्जित कर ली है। ग्रेट ब्रिटेनके पास भारतीय जातियोंके रूपमें जो योद्धा-शक्ति सुरक्षित है, उससे उसके राजनीतिक प्रभाव और प्रतिष्ठामें बहुत वृद्धि हुई है। इन जातियोंके रक्त तथा शौर्यका युद्धमें तो उपयोग कर लेना परन्तु शान्तिकालके उद्यमोंमें उन्हें ब्रिटिश नामके संरक्षणसे वंचित रखना ब्रिटिश न्याय-बुद्धिकी अवहेलना करना होगा। भारतीय मजदूर और व्यापारी मध्य एशियासे लेकर आस्ट्रेलियाई उपनिवेशोंतक और स्ट्रेट्स सेट्ल्मेंट्ससे लेकर कैनारी द्वीपों तक सारी पृथ्वीपर धीरे-धीरे फैल रहे हैं। वे जहाँ भी जाते हैं, समान रूपसे उपयोगी और अच्छा काम करनेवाले सिद्ध होते हैं। वे किसी भी सरकारके अधीन क्यों न रहें, कानूनका पालन करनेवाले, थोड़े-से में सन्तोष माननेवाले और परिश्रमशील रहते हैं। परन्तु वे मजदूरीके लिए जिस जगहका भी आश्रय लेते हैं वहीं, अपने इन्हीं सद्गुणोंके कारण, दूसरोंके भयानक प्रतिद्वन्द्वी बन बैठते हैं। यद्यपि इस समय प्रवासी भारतीय मजदूरों तथा छोटे-छोटे व्यापारियोंकी कुल संख्या लाखोंतक पहुँच गई है, वह इतनी तो हालमें ही दिखलाई पड़ी है कि उससे विदेशों या ब्रिटिश उपनिवेशोंमें उनके प्रति ईर्ष्या उत्पन्न हो, या उन्हें राजनीतिक अन्यायका शिकार बनाया जाये।

परन्तु हमने जिन तथ्योंको जूनमें प्रकाशित किया था, और जिन्हें गत सप्ताह भारतीयोंके एक शिष्टमंडलने श्री चेम्बरलेनके सामने पेश किया था, वे बताते हैं कि अब भारतीय मजदूरोंको ऐसी ईर्ष्यासे बचानेकी और उन्हें वही अधिकार प्राप्त करानेकी, जिनका उपभोग दूसरी ब्रिटिश प्रजाएँ करती हैं, जरूरत आ खड़ी हुई है।

सज्जनो, बम्बईकी जनताने अपना निर्णय निश्चित शब्दोंमें व्यक्त कर दिया है। हम अभी नौजवान और अनुभवहीन हैं। हमें आपसे — अपने बड़े और ज्यादा स्वतन्त्र भाइयोंसे — संरक्षणकी प्रार्थना करनेका अधिकार है।[1] अत्याचारोंकी जुआड़ीमें जकड़े हुए हम केवल दर्दसे कराह सकते हैं। आपने

१. सभाने बादमें एक प्रस्ताव पास किया, जिसमें दक्षिण आफ्रिकी भारतीयोंके प्रति दुर्व्यवहारका विरोध और उनके कष्ट मिटानेकी माँग की गई थी।

हमारी कराह सुन ली है। अब अगर जुआड़ी हमारे कंधोंसे हटाई नहीं जाती तो दोष आपके मत्थे होगा।[1]

प्राइस करेंट प्रेस, मद्रासमें १८९६ में छपी अंग्रेजी प्रति, दूसरे संस्करणसे।

१०. धन्यवादका संदेश

मद्रास
अक्टूबर २७, १८९६

सेवामें
सम्पादक, *हिन्दू*
मद्रास

महोदय,

कल शामको मद्रासकी जनता दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंके पक्षका समर्थन करनेके लिए जिस सराहनीय रूपमें एकत्र हुई, उसके लिए मैं उसे धन्यवाद न दूं तो मेरी कृतघ्नता होगी। वास्तवमें हर व्यक्ति सभाको खूब सफल करनेमें एक-दूसरेसे होड़ करता दीख रहा था। और स्पष्ट है कि वह वैसी सफल हुई भी। मैं आपको भी आन्दोलनका हार्दिक समर्थन करनेके लिए धन्यवाद देता हूँ। आपके समर्थनसे शायद हमारे पक्षकी धर्म-परता और हमारी शिकायतोंकी वास्तविकताका बोध होता है। मैं मद्रास महाजन सभाके शीलवान मंत्रियोंको खास तौरसे धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने अखण्ड उत्साहसे परिश्रम करके सभाका आयोजन किया और हमारे कार्यको अपना ही बना लिया। मैं यही आशा करता हूँ कि अबतक जो सहानुभूति और समर्थन प्रदान किया गया है वह जारी रहेगा और हमें न्याय प्राप्त करनेमें बहुत देरी न लगेगी। मैं आपको और जनताको विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि गत रात्रिकी सभाका समाचार जब दक्षिण आफ्रिका पहुँचेगा, वह वहाँके भारतीयोंके हृदयोंको हर्ष, उल्लास और धन्यवादकी भावनासे भर देगा। ऐसी सभाएँ हमारे ऊपर छाई हुई विपत्तिकी घटाओंमें आशाकी किरणें बनेंगी। चूंकि रातको बहुत देरी हो गई थी, मैं इन भावनाओंको व्यक्त नहीं कर सका। इसलिए यह पत्र लिख रहा हूँ।

१. इस भाषणकी छपी हुई प्रतियाँ गांधीजीने सभामें वितरित की थीं।

मेरी पुस्तिका[1]की नकलोंके लिए जो छीना-झपटी हुई, उसका दृश्य ऐसा था कि मैं उसे सरलतासे नहीं भूलूँगा। मैं पुस्तिकाका दूसरा संस्करण निकाल रहा हूँ। जैसे ही वह तैयार हुआ, उसकी नकलें सभाके उपकारशील मंत्रियोंसे मिल सकेंगी।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, २८–१०–१८९६

११. पत्र : फर्दुनजी सोराबजी तलेयारखाँको

ग्रेट ईस्टर्न होटल
कलकत्ता
नवम्बर ५, १८९६

प्रिय श्री तलेयारखाँ,

आपका पिछला पत्र मुझे यहाँ भेज दिया गया था। मैंने आपको मद्रासमे पत्र लिखकर कलकत्तेके पतेकी सूचना दे दी थी। यहाँ पहुँचनेपर भी लिखा था। आशा है, आपको दोनों पत्र मिल गये होंगे।

यह बिलकुल सही है कि नेटाल जानेमें आपको आर्थिक त्याग करना पड़ेगा। मगर मुझे निश्चय है कि कार्य इस त्यागके योग्य है।

मैं कूर्लैंड जहाज पकड़नेकी कोशिश करूँगा। वह इस माहकी २० तारीखके पहले रवाना होगा, ऐसी अपेक्षा है। काश, आप भी उस समय तक तैयार हो सकें!

क्या आप नेटालके नये मताधिकार कानून पर विचार करेंगे, और अगर बम्बईके प्रमुख वकील अपनी राय मुफ्त दें तो ले लेंगे? मताधिकार-प्रार्थनापत्रमें आपको विधेयकका पाठ मिल जायेगा। पुस्तिकामें उसपर एक कानूनी राय भी है। यहाँ प्राप्त की हुई कोई भी राय नेटालमें हमारे बहुत काम आयेगी।

१. 'हरी पुस्तिका'।

मेरा खयाल है कि यहाँ सभा शुक्रवारसे सप्ताहभरमें होगी। इसका आखिरी निर्णय कल किया जायेगा।

आपका, हृदयसे,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी पत्रसे। सौजन्य: रुस्तमजी फर्दुनजी सोराबजी तलयारखाँ।

१२. "स्टेट्समैन" के प्रतिनिधिकी भेंट

गांधीजीके कलकत्ता पहुँचनेके कुछ समय बाद *स्टेट्समैन*के प्रतिनिधिने उनसे भेंट की थी। नीचे दी हुई रिपोर्ट उसी भेंटकी है।

नवम्बर १०, १८९६

*स्टेट्समैन*के प्रतिनिधिने पूछा: "मिस्टर गांधी, दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंको क्या कष्ट है, यह आप मुझे थोड़े-से शब्दोंमें बतायेंगे?"

श्री गांधीने जवाब दिया: "दक्षिण आफ्रिकाके बहुतसे भागों — नेटाल, केप आफ गुड होप, दक्षिण आफ्रिकी गणराज्य तथा आरेंज फ्री स्टेटमें और अन्यत्र भारतीय बसे हुए हैं। और इन सब जगहोंमें वे नागरिकताके मामूली अधिकारोंसे कम-ज्यादा मात्रामें वंचित हैं। परन्तु मैं विशेष रूपसे नेटालके भारतीयोंका प्रतिनिधित्व करता हूँ, जिनकी संख्या वहाँकी लगभग पाँच लाखकी आबादीमें से कोई पचास हजार है। वहाँ जानेवाले सबसे पहले भारतीय तो अलबत्ता मजदूर ही थे, जो मद्रास और बंगालसे वहाँके विभिन्न बागोंमें काम करनेके लिए निश्चित अवधि और शर्तोंपर ले जाये गये थे। इनमें से अधिकांश हिन्दू और कुछ मुसलमान भी थे। शर्तकी अवधि उन्होंने पूरी की और उससे मुक्त होनेपर उन्होंने उसी देशमें बस जाना पसन्द किया। क्योंकि, उन्होंने देखा कि बाजारमें बिकनेवाले फलों और सब्जियोंके पैदा करनेमें तथा सब्जीके फेरीवालोंकी हैसियतसे वे तीनसे चार पौंड मासिक तक वहाँ पैदा कर सकते हैं। इस तरह, इस समय ऐसे स्वतंत्र भारतीयोंकी संख्या उपनिवेशमें कोई तीस हजारके करीब है। इनके अलावा कोई सोलह हजार शर्तबन्द मजदूर अपनी शर्तोंको पूरा कर रहे

हैं। फिर, बम्बईकी ओरसे आये हुए एक वर्गके भारतीय वहाँ और हैं, जिनकी संख्या लगभग पाँच हजार है। ये मुसलमान हैं और व्यापारके आकर्षणसे उस देशमें पहुँच गये हैं। इनमें से कुछ अच्छी हालतमें हैं। बहुत-सों के पास जमीन-जायदादें हैं और दो के पास जहाज भी हैं। भारतीयोंको वहाँ बसे बीस वर्ष और इससे अधिक भी हो गये हैं। और चूंकि काम-काज अच्छा चलता है इसलिए वे सुखी और सन्तुष्ट हैं।"

"तो फिर, मिस्टर गांधी, इस वर्तमान तकलीफका कारण क्या है?"

"सिर्फ व्यापार-सम्बन्धी ईर्ष्या। उपनिवेशकी इच्छा थी कि वह भारतीयोंके परिश्रमसे पूरा लाभ उठाये, क्योंकि वहाँके देशी आदमी खेतोंपर काम करना नहीं चाहते और यूरोपीय तो काम कर ही नहीं सकते। परन्तु ज्यों ही भारतीय लोग व्यापारी बनकर यूरोपीयोंसे होड़ करने लगे त्यों ही सुसंगठित अत्याचारकी पद्धतिसे उनके मार्गमें रुकावटें डाली जाने लगीं, उनका विरोध होने लगा और उनका तरह-तरहसे अपमान शुरू हुआ। और धीरे-धीरे द्वेष और अत्याचारकी यह भावना उपनिवेशके कानूनोंमें भी उतार दी गई है। वर्षों तक वहाँ भारतीय शान्तिपूर्वक मताधिकारका उपभोग करते रहे थे। बेशक, कुछ जायदाद-सम्बन्धी योग्यताकी शर्तें जरूर थीं। और सन् १८९४ में ९,३०९ यूरोपीय मतदाताओंकी तुलनामें मतदाता सूचीमें केवल २५१ भारतीयोंके नाम थे। परन्तु सरकारको एकाएक खयाल आया, या उसने ऐसा बहाना बनाया, कि एशियाई मतदाता संख्यामें यूरोपीय मतदाताओंको दबा देंगे — इसका भारी खतरा है। इसलिए जिनका नाम सही तौरपर मतदाता-सूचीमें दर्ज था उनको छोड़कर शेष सभी एशियाइयोंका मताधिकार छीन लेनेके बारेमें एक विधेयक वहाँकी विधान-सभामें पेश किया गया। इस विधेयकके विरोधमें भारतीयोंने विधानसभा और विधानपरिषद दोनोंको प्रार्थनापत्र दिये। परन्तु कोई सुनवाई नहीं हुई और विधेयक मंजूर होकर कानून बन गया। इसके बाद भारतीयोंने लार्ड रिपनको, जो उस समय औपनिवेशिक कार्यालयमें थे, स्मृतिपत्र भेजा। परिणाम-स्वरूप वह कानून रद कर दिया गया और उसके स्थानपर एक दूसरा कानून बना दिया गया, जिसमें लिखा है: 'जिन देशोंमें संसदीय पद्धतिकी प्रातिनिधिक संस्थायें नहीं हैं उन देशोंके निवासियों अथवा उनकी पुरुष-शाखाओंके वंशजोंके नाम मतदाता सूचीमें नहीं दर्ज किये जायेंगे, जबतक कि वे सपरिषद गवर्नरसे यह आज्ञा प्राप्त नहीं कर

लेंगे कि उनको इस कानूनके अमलसे मुक्त रखा जाये।' इस कानूनके अमलसे वे लोग भी बरी माने गये हैं जिनका नाम मतदाता सूचीमें सही तौरपर दर्ज है। यह विधेयक पहले श्री चेम्बरलेनके सामने पेश किया गया था और उन्होंने उसे अमली मानीमें मंजूर कर लिया था। किन्तु फिर भी हमने इसका विरोध करनेका ही निश्चय किया है। इसलिए इसे नामंजूर करवानेके हेतुसे हमने श्री चेम्बरलेनको अपना प्रार्थनापत्र भेजा है। हमें आशा है कि जिस प्रकार अभीतक हमें मदद मिली है उसी प्रकार इस बार भी मिलेगी।"

"नेटालके भारतीयोंमें अधिकांश तो मजदूर हैं। वे अगर अपने देशमें होते तो कभी सोच भी नहीं सकते थे कि वे ऐसी स्वतन्त्र संस्थाओंमें जा सकेंगे। फिर क्या हम यह समझें कि वे नेटालमें राजनीतिक सत्ता पानेके इच्छुक हैं?"

"जरा भी नहीं", श्री गांधीने जवाब दिया, "सरकारको और जनताको हमने जितनी भी दरखास्तें दी हैं उन सबमें हमने इस बातकी बड़ी सावधानी रखी है और पहलेसे ही साफ-साफ बता दिया है कि हमारे इस सारे आन्दोलनका हेतु केवल यही है कि चिढ़ानेवाली बन्दिशें हट जायें जिन्हें यूरोपीय आबादीकी तुलनामें हमें केवल अपमानित करनेके लिए हमपर लादा गया है। भारतीयोंको वहाँ बसनेसे निरुत्साहित करनेके लिए नेटालकी विधानसभाने एक और विधेयक मंजूर किया है। इसका मंशा है कि जितने भी समयके लिए मजदूर नेटालमें रहेंगे उस सारे समयके लिए वे उन्हीं शर्तोंमें बँधे रहेंगे। अगर वे इस तरह नये सिरेसे अपनेको बाँधनेसे इनकार करें तो उन्हें जबरदस्ती भारत भेज दिया जायेगा। और अगर भारत लौटनेसे भी वे इनकार करें तो उन्हें फी आदमी सालाना तीन पौंडका कर देना होगा। हमारे लिए दुर्भाग्यकी बात तो यह है कि १८९३ में जब यहाँ नेटालसे एक आयोग (कमिशन) आया तो केवल उसकी एकतरफा बात सुनकर भारत सरकारने मजदूरोंको जबर्दस्ती पुनः शर्तमें बाँधनेकी बातको अपनी मंजूरी दे दी। परन्तु इसके विरुद्ध हम फिर भारत सरकारको और इंग्लैंडकी सरकारको भी प्रार्थनापत्र भेज रहे हैं।"

"हमने बहुत सुना है कि नेटालके गोरे निवासी वहाँके भारतीयोंको रोज-बरोज तंग किया करते हैं। यह क्या बात है?"

"बेशक!" उन्होंने जवाब दिया, "और इस व्यवस्थित अत्याचारमें खुले अथवा छिपे तौरपर कानून उनकी मददपर है। कानून कहता है कि

भारतीय पैदल-पटरीपर नहीं चल सकते, उन्हें रास्तेके बीचसे चलना चाहिए। उन्हें रेलके पहले और दूसरे दर्जेमें सफर नहीं करना चाहिए। उन्हें रातके नौ बजेके बाद बगैर परवानेके अपने मकानसे बाहर नहीं निकलना चाहिए। अगर वे कहीं अपने जानवरोंको ले जायें तो उसका परवाना लें। इसी तरह और भी। इन विशेष कानूनोंमें कितना अत्याचार भरा है, इसकी जरा कल्पना कीजिए। इनपर अमल करते हुए ऐसे-ऐसे अत्यन्त प्रतिष्ठित भारतीयोंका रोजमर्रा अपमान किया जाता है, जो आपके साथ विधानसभाओंमें बैठनेकी योग्यता रखते हैं; उनपर हमला किया जाता है और पुलिसके साथ उन्हें सड़कोंपर घुमाया जाता है। इन कानूनी बन्दिशोंके अलावा सामाजिक बाधा-निषेध अलग हैं। ट्रामगाड़ियों, सार्वजनिक होटलों और सार्वजनिक स्नानघरोंमें किसी भारतीयको नहीं आने दिया जाता।"

"अच्छा, मि० गांधी, मान लीजिए कि कानूनी बन्दिशें हटवानेमें आप सफल हो गये। फिर भी, सामाजिक बाधा-निषेधोंका आप क्या करेंगे? विधानसभामें आप अपने किसी आदमीको नहीं भेज सकते इसकी अपेक्षा क्या वे निर्योग्यताएँ आपको सौ-गुनी अधिक नहीं अखरेंगी, नहीं चुभेंगी, और गुस्सा नहीं दिलायेंगी?"

श्री गांधीने विदाईका नमस्कार करते हुए कुछ शंकाभरे भाव से कहा: "हम आशा करते हैं कि जब कानूनी बन्दिशें हट जायेंगी तब धीरे-धीरे सामाजिक बाधा-निषेध भी दूर हो जायेंगे।"

[अंग्रेजीसे]

स्टेट्समैन, १२-११-१८९६

१३. दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय

कलकत्ता
नवम्बर १३, १८९६

सेवामें
संपादक, *इंग्लिशमैन*
कलकत्ता

महोदय,

"मोहनलाल (मेरे नामका पहला हिस्सा)[1] को भेजिए। रोड भारतीयोंको पृथक् बस्तियोंमें खदेड़ रहे हैं।" ये शब्द एक तारके हैं, जो कल नेटालसे दक्षिण आफ्रिकाकी एक प्रमुख व्यापारी पेढ़ी — दादा अब्दुल्ला ऐंड कम्पनीके बम्बईके एजेंटोंको मिला है। एजेंटोंने बड़ी मिहरबानी करके यह संदेश मुझे तारसे भेज दिया है। इससे मेरे लिए एकदम कलकत्तेसे रवाना हो जाना बिलकुल आवश्यक हो गया है।

"रोड" गलत है। मैं मानता हूँ कि इसका मतलब "रोड्स"[2] अर्थात् केपकी सरकार है। इसलिए, इस समाचारका अर्थ यह है कि केपकी सरकार भारतीयोंको पृथक् बस्तियोंमें जाकर बसनेके लिए बाध्य कर रही है। और यह अशक्य भी नहीं है। क्योंकि केप-सरकारने ईस्ट लंदन म्युनिसिपैलिटीको भारतीयोंको पृथक् बस्तियोंमें हटानेका अधिकार दे दिया है। फिर भी, यह देखते हुए कि भारतीयोंका पूरा मामला इस समय श्री चेम्बरलेनके विचाराधीन है, इस प्रकारकी प्रत्यक्ष कार्रवाइयाँ कुछ समयके लिए स्थगित रखी जा सकती थीं।

समाचारसे इस प्रश्नके भारी महत्त्वका और इस विषयमें दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय समाजकी जोरदार भावनाओंका पता चलता है। अगर उन्होंने तीव्र अपमान अनुभव न किया होता तो वे यह खर्चीला सन्देश न भेजते। पृथक् बस्तियोंमें हटाये जानेका परिणाम यह भी हो सकता है कि जिन व्यापारियों-पर इसका असर पड़े वे बिलकुल बरबाद हो जायें। परन्तु दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंके भलेकी परवाह किसे है?

१. मूलका शाब्दिक अर्थ है — 'मेरा बपतिस्मेका नाम।'

२. गांधीजीको बादमें मालूम हुआ कि यह शब्द वास्तवमें 'राट' था, जो डच भाषामें विधानसभाका पर्याय है। देखिए, *इंग्लिशमैन*के नाम उनका दिसम्बर ३०, १८९६का पत्र, पृष्ठ १४९–५०।

लन्दन टाइम्सने कहा है:

> **भारतमें अंग्रेजों, हिन्दुओं और मुसलमानोंके सामने यह प्रश्न मुंह बाये खड़ा है कि जिन नई औद्योगिक प्रवृत्तियोंकी इतने दिनों और इतनी उत्सुकतासे प्रतीक्षा की जाती रही है, उनका आरम्भ होनेपर भारतीय व्यापारियों और मजदूरोंको कानूनकी नजरमें वही मान-मर्यादा मिलेगी या नहीं, जिसका उपभोग अन्य सब ब्रिटिश प्रजाएँ करती हैं? वे ब्रिटिश शासनाधीन एक देशसे ब्रिटिश शासनाधीन दूसरे देशमें स्वतंत्रतापूर्वक आ-जा सकते हैं और सहयोगी राज्योंमें ब्रिटिश प्रजाके अधिकारोंका दावा कर सकते हैं या नहीं? या, उनके साथ बहिष्कृत जातियों जैसा व्यवहार किया जायेगा और उनके साधारण व्यापारिक आवागमनपर अनुमति-पत्रों तथा परवानोंकी व्यवस्था लादी जायेगी, और उन्हें अपने व्यापारकी स्थायी जगहोंमें किन्हीं पृथक् गन्दी बस्तियोंमें घेर दिया जायेगा, जैसा कि ट्रान्सवाल-सरकार करना चाहती है? ये सवाल उन सब भारतीयोंसे सम्बन्ध रखते हैं, जो भारतके बाहर जाकर अपनी आर्थिक हालत सुधारनेके इच्छुक हैं। श्री चेम्बरलेनके शब्दों और हर वर्गके भारतीय पत्रोंके दृढ़ रुखसे स्पष्ट है कि ऐसे प्रश्नोंका उत्तर केवल एक ही हो सकता है।**

इसलिए, स्पष्ट है कि यह सवाल सिर्फ उन भारतीयोंपर असर करने-वाला नहीं है, जो इस समय दक्षिण आफ्रिकामें रहते हैं; बल्कि उन सबपर असर करनेवाला है, जो भविष्यमें भारतके बाहर जाकर धनोपार्जन करना चाहते हों। यह भी स्पष्ट है कि इसका सिर्फ एक ही जवाब हो सकता है। मुझे आशा है कि जवाब होगा भी सिर्फ एक ही।

उस देशमें भारतीयोंपर जो तमाम निर्योग्यताएँ लादी जा रही हैं उनका सारे भारतीय और आंग्ल-भारतीय संघ विरोध करें, और अगर उस दुर्व्यवहारका विरोध करनेके लिए भारतके एक-एक शहरमें सभा की जाये तो भी, मेरा खयाल है, ज्यादा न होगा।

यहाँकी जनताको मालूम होना जरूरी है कि दक्षिण आफ्रिकाकी विभिन्न सरकारें कैसे जोरोंसे कार्रवाइयाँ कर रही हैं और औपनिवेशिक कार्यालय-पर उनकी दृष्टिसे प्रश्नोंको हल करनेके लिए कितना दबाव डाला जा रहा है। सारे देशमें सार्वजनिक सभाएँ कर-करके सरकारसे माँग की जा रही

है कि वह "कुलियों" के आगमनको रोके। भिन्न-भिन्न शहरोंके मेयर अपनी कांग्रेसमें इकट्ठे होकर एशियाइयोंके आगमनपर प्रतिबन्ध लगानेकी माँगें कर रहे हैं। केपकालोनीके प्रधानमंत्री सर गार्डन स्प्रिग इस विषयमें औपनिवेशिक कार्यालयके साथ लिखा-पढ़ी करनेमें लगे हैं और उन्हें आशा है कि नतीजा संतोषजनक होगा। नेटालके एक प्रमुख राजनीतिज्ञ अपनी सभाओंमें कहते घूम रहे हैं कि उपनिवेशके इंग्लैण्डवासी मित्र श्री चेम्बरलेनके सामने उपनिवेशका दृष्टिकोण जोरदार तरीकेसे पेश करनेकी सारी कोशिशें कर रहे हैं। नेटालके प्रधानमंत्री सर जान राबिन्सन अपना स्वास्थ्य सुधारने और श्री चेम्बरलेनके साथ राज्यके महत्त्वपूर्ण मामलोंपर चर्चा करनेके लिए इंग्लैण्ड गये हैं। दक्षिण आफ्रिकाके लगभग सब समाचार-पत्र उपनिवेशियोंके दृष्टिकोणसे इस विषयपर तर्क-वितर्क कर रहे हैं। हमारे विरुद्ध काम करनेवाली शक्तियोंमें से ये सिर्फ थोड़ी-सी हैं। जैसा कि ब्रिटिश संसदके एक भूतपूर्व सदस्यने अपने एक सहानुभूतिके पत्रमें लिखा है, "सारा संघर्ष" असम है। परन्तु "न्याय हमारे पक्षमें है।" अगर हमारा हेतु न्यायपूर्ण और धर्मसंगत न होता तो बहुत दिन पहले ही उसका अन्त हो गया होता।

एक बात और। इस विषयपर अविलम्ब ध्यान देनेकी जरूरत है। अभी प्रश्न विचाराधीन है। वह बहुत दिनों तक लटका नहीं रह सकता। और अगर उसका फैसला भारतीयोंके प्रतिकूल हो गया तो उसपर फिरसे विचार कराना कठिन होगा। इसलिए भारतीय और आंग्ल-भारतीय जनताके लिए हमारी ओरसे काम करनेका समय या तो यह है, या कभी नहीं। एक सम्मान्य उदारदलीय सज्जनने कहा है: "अन्याय इतना गम्भीर है कि, मुझे आशा है, उसका निवारण करनेके लिए उसे जान लेना ही काफी है।"

हाँ, महोदय, मैं आंग्ल-भारतीय जनतासे भी प्रार्थना करता हूँ कि वह सक्रिय रूपसे हमारी सहायता करे। हमने किसी एक समाज या एक संघ तक ही अपनी प्रार्थनाएँ सीमित नहीं रखीं। हमने सबके पास जानेका साहस किया है और अबतक हमें सभीसे सहानुभूति प्राप्त हुई है। *लन्दन टाइम्स* और *टाइम्स आफ़ इंडिया* बहुत दिनोंसे हमारे लक्ष्यकी हिमायत करते आ रहे हैं। मद्रासके सब पत्रोंने हमारा पूरा समर्थन किया है। आपने बिना गिलाके हमें मदद की है और हमें अत्यन्त आभारी बना लिया है। कांग्रेसकी ब्रिटिश समितिने हमें अमूल्य सहायता दी है। श्री भावनगरी जबसे ब्रिटिश संसदमें पहुँचे, सदा हमारे विषयमें जागरूक रहे हैं। वे हमारी

शिकायतोंको हर मौकेपर व्यक्त करते रहे हैं। लोकसभाके और भी कई सदस्योंने हमें सहायता दी है। इसलिए हम आंग्ल-भारतीय जनतासे जो अनुरोध कर रहे हैं वह सिर्फ रस्म अदा करना नहीं है। मैं आपके सब सहयोगियोंसे निवेदन करता हूँ कि वे इस पत्रको उद्धृत करें। अगर मुझसे हो सकता तो मैं इसकी नकल सब पत्रोंको भेज देता।[1]

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
इंग्लिशमैन, १४-११-१८९६

१४. "इंग्लिशमैन" के प्रतिनिधिकी मुलाकात

जब गांधीजी कलकत्तेमें ठहरे हुए थे, उस समय *इंग्लिशमैन*के प्रतिनिधिने उनसे मुलाकात की थी। उसने पूछा था कि भारतीयोंके प्रति दक्षिण आफ्रिकी गोरोंका विरोधभाव पहले-पहल कब प्रकट होने लगा था? उसने और भी अनेक प्रश्न पूछे थे। उसके सब प्रश्नोंका उत्तर नीचे दिया जाता है।

[नवम्बर १३, १८९६]

"सच तो यह है कि जबसे भारतीयोंने दक्षिण आफ्रिकामें पहले-पहल कदम रखा तभीसे उनके प्रति सदा एक प्रकारका विरोध-भाव वहाँ रहा है। परन्तु यह विरोध स्पष्ट रूपसे तब प्रकट होने लगा जब हमारे लोगोंने व्यापारमें प्रवेश किया। और तभीसे इस विरोधने तरह-तरहकी कानूनी बन्दिशोंका रूप धारण करना शुरू किया।"

"तो आपने जिन कष्टोंके बारेमें कहा वे सब व्यापारी ईर्ष्याका परिणाम हैं और स्वार्थके कारण हैं?"

"बिलकुल यही। सारी बातकी जड़ यही है। उपनिवेशवासी हमको निकलवा देना चाहते हैं, क्योंकि उन्हें हमारे व्यापारियोंका उनकी होड़में खड़ा रहना सहन नहीं होता।"

"क्या यह होड़ उचित है? मेरा मतलब यह है कि क्या यह होड़ खुली है और न्यायके आधारपर हो रही है?"

१. गांधीजी नवम्बर १३ को कलकत्तेसे बम्बईके लिए रवाना हो गये थे; देखिए पृष्ठ १६२।

"हाँ, यह होड़ बिलकुल खुली है और भारतीयोंके द्वारा सम्पूर्णतया न्यायपूर्वक और उचित रीतिसे हो रही है। अगर व्यापारकी सामान्य पद्धतिके बारेमें मैं एक दो शब्द कह दूँ तो शायद बात अधिक साफ हो जायेगी। अधिकतर भारतीय, जो इस व्यापारमें लगे हुए हैं, अपना माल थोक व्यापार करनेवाली यूरोपीय पेढ़ियोंसे खरीदते हैं। और फिर देहातोंमें फेरी लगा-लगाकर बेचनेके लिए निकल जाते हैं। बल्कि मैं तो खास तौरसे नेटालके बारेमें प्रत्यक्ष अनुभव और निजी जानकारीके आधारपर बता सकता हूँ कि नेटालका सम्पूर्ण उपनिवेश अपनी जरूरतोंके लिए लगभग पूर्णतया इन्हीं फेरीवाले व्यापारियोंपर निर्भर करता है। जैसा कि आप जानते हैं, उस भागमें दूकानें बहुत थोड़ी हैं — कमसे कम शहरोंसे तो दूर हैं ही। और इस कमीकी पूर्ति करके भारतीय अपनी ईमानकी रोजी कमा लेते हैं। कहा जाता है कि ये भारतीय छोटे यूरोपीय व्यापारियोंकी जड़ें उखाड़ रहे हैं। कुछ हदतक यह सच है। परन्तु इसमें दोष तो खुद यूरोपीय व्यापारियोंका ही है। वे अपनी दूकानपर ही बैठे रहते हैं और ग्राहकोंको उनके पास जाना पड़ता है। इसलिए अगर कोई भारतीय अपने ग्राहकोंकी जरूरतकी चीजें लेकर ठेठ उनके पास पहुँच जाता है — और इसमें उसे कम तकलीफ नहीं उठानी पड़ती — तो उसकी चीजें तुरन्त बिक जाती हैं। इसमें आश्चर्यकी क्या बात है? फिर यूरोपीय व्यापारी कभी जरा भी फेरीके लिए निकलना पसन्द नहीं करते। भारतीयोंकी व्यापार सम्बन्धी योग्यता और सामान्य रूपसे कहें तो उनकी ईमानदारीका भी सबसे बड़ा प्रमाण तो शायद यही है कि ये बड़ी-बडी पेढियाँ उनको यह सारा माल उधारीपर दे देती हैं। वास्तवमें उनका अधिकांश व्यापार इन घूमनेवाले भारतीय व्यापारियोंकी मार्फत होता है। यह कोई छिपी हुई बात भी नहीं है कि भारतीयोंके प्रति यह विरोध केवल कुछ ही भागका है। यूरोपीय समाजके एक बड़े हिस्सेका प्रतिनिधित्व वह नही करता।"

"संक्षेपमें, नेटालके भारतीय निवासियोंपर लगी कानूनी और अन्य बन्दिशें कौन-कौन-सी हैं?"

"सबसे पहले तो 'कर्फ्यू' का कानून है, जो तमाम रंगीन जातियोंपर लागू है। इसके अनुसार कोई रंगीन जातिका आदमी — अगर वह शर्तबन्द मजदूर है तो — अपने मालिककी लेखी इजाजत साथ लिये बगैर रातके

नौ बजेके बाद अपने मकानसे बाहर नहीं निकल सकता। अगर वह ऐसा मजदूर नहीं है तो उसे इसके लिए कोई माकूल कारण बताना पड़ता है। इसमें शिकायतका सबसे बड़ा कारण तो यह है कि पुलिसके हाथोंमें लोगोंको तंग करनेके लिए यह एक बहुत बड़ा हथियार बन सकता है। अच्छे कपड़े पहने हुए प्रतिष्ठित भारतीयोंको भी कभी-कभी पुलिसके हाथों अपमानित होना पड़ता है। उन्हें गिरफ्तार कर लिया जाता है। थानेपर ले जाया जाता है। रात-रातभर बन्द रखा जाता है और दूसरे दिन सुबह मजिस्ट्रेटके सामने पेश किया जाता है और निर्दोष साबित होनेपर, खेदका एक शब्द भी कहे बगैर, घर चले जानेके लिए कह दिया जाता है। ऐसी घटनाएँ कम नहीं होतीं। दूसरी बात मताधिकार छीना जानेकी है, जिसका उल्लेख आपने जो लेख प्रकाशित किया है उसमें आ चुका है। वास्तविकता यह है कि गोरे उपनिवेशवासी नहीं चाहते कि भारतीय दक्षिण आफ्रिकी राष्ट्रका अंग बन जायें। इसीलिए उनका मताधिकार छीन लिया गया है। वहाँ एक नीच नौकरके रूपमें भारतीयको बरदाश्त किया जा सकता है, परन्तु नागरिकके रूपमें कभी नही।"

"एक पराये देशमें राजनीतिक अधिकारके उपभोगके बारेमें भारतीयोंका रुख क्या रहा है?"

"केवल यही कि जो आदमी उस देशके निवासी नहीं हैं और फिर भी जिन अधिकारोंको पानेका दावा करते हैं और स्वतंत्रतापूर्वक उनका उपभोग भी करते है, वही भारतीयोंको भी मिलें। राजनीतिक दृष्टिसे कहें तो भारतीय अपने लिए मताधिकार पानेके इच्छुक नहीं हैं। वे तो मताधिकार छीना जानेके अपमानसे रुष्ट होनेके कारण चाहते हैं कि वह फिरसे उन्हें मिल जाये। दूसरे, सारे भारतीयोंको एक वर्गमें डाल दिया गया है और अधिक योग्य वर्गके भारतीयोंको उचित मान्यता नहीं दी जा रही हैं। ये बातें भारी अन्यायके रूपमें हमें शूलकी तरह चुभ रही हैं। हम यह भी सुझाते आ रहे हैं कि मताधिकारमें जायदाद सम्बन्धी शर्तको हटाकर कोई शैक्षणिक योग्यताकी शर्त डाल दी जाये। यह प्रत्येक भारतीय मतदाताकी योग्यताकी अच्छी कसौटीका काम दे सकेगी। परन्तु यह सूचना भी तिरस्कारपूर्वक ठुकरा दी गई है। इस सबसे यही सिद्ध होता है कि उनका एकमात्र उद्देश्य भारतीयोंका अपमान करना और उन्हें हर प्रकारके राज-

नीतिक अधिकारसे वंचित रखना है, ताकि वे हमेशाके लिए गुलाम और लाचार बने रहें। इसके बाद वह तीन पौंडवाला कमरतोड़ कर है जो अपनी शर्तकी अवधि पूरी करनेके बाद उपनिवेशमें रहनेवाले हर छोटे-बड़े भारतीयपर लाद दिया गया है। फिर, समाजमें किसी भारतीयकी कोई मान-मर्यादा नहीं है। सचमुच तो उसे एक सामाजिक कोढ़ी — अछूतकी तरह सदा दूर रखा जाता है। उसे हर तरहसे अपमानित और तिरस्कृत किया जाता है। चाहे उसका दरजा कुछ भी हो, सारे दक्षिण आफ्रिकामें भारतीय एक कुली ही माना जाता है और उसके प्रति ऐसा ही व्यवहार होता है। रेलोंमें केवल एक ही वर्गमें उसे सफर करनी पड़ती है और यद्यपि नेटालमें तो उसे सड़ककी पटरीपर चलनेकी इजाजत है, परन्तु दूसरे राज्योंमें यह भी नहीं है।"

"इन दूसरे राज्योंमें भारतीयोंके साथ कैसा व्यवहार होता है यह आप बतायेंगे ?

"जूलूलैंडकी नोंदवेनी और एशोवे नामक बस्तियोंमें कोई भारतीय जमीन नहीं खरीद सकता।"

"यह मनाही क्यों की गई ?"

"सुनिए। जूलूलैंडमें सबसे पहले मेलमॉथ शहर बसाया गया था। वहाँ ऐसे कोई नियम नहीं थे। अतः जमीन खरीदनेके अधिकारका लाभ उठाकर वहाँ भारतीयोंने कोई २,००० पौंड कीमतकी जमीन खरीद ली। इसके बाद मनाही करनेवाला कानून बना और उसे बादमें स्थापित शहरोंपर लागू किया गया। यह भी विशुद्ध व्यापार-सम्बन्धी ईर्ष्या ही थी। गोरोंको यह भय हो गया कि नेटालकी भाँति भारतीय जूलूलैंडमें भी व्यापारके लिए घुस जायेंगे।

"आरेंज रिवर फ्री स्टेटमें तो उन्हें काफिर जातिके साथ जोड़ कर उनका रहना ही असम्भव कर दिया गया है। वहाँ कोई भारतीय अचल सम्पत्ति नहीं रख सकता। और प्रत्येक भारतीय निवासीको सालाना दस शिलिंग कर देना होता है। इन मनमाने कानूनोंमें कितना अन्याय भरा पड़ा है इसकी कल्पना इसीसे आपको हो जायेगी कि जब ये कानून जारी हुए तब सारे भारतीयोंको — जिनमें अधिकांश व्यापारी थे — राज्यसे जबरदस्ती बाहर निकाल दिया गया, और उन्हें कुछ भी मुआवजा नहीं दिया गया, जिसके फलस्वरूप उन्हें कोई ९,००० पौंडकी हानि उठानी पड़ी। ट्रान्सवालकी हालत शायद ही इससे अच्छी कही जायेगी। वहाँ ऐसे कानून बन गये हैं जो भारतीयोंको उनके लिए

बनी बस्तियोंको छोड़कर अन्यत्र कहीं भी रहने और व्यापार करनेसे मना करते हैं। परन्तु इस दूसरे मुद्देपर अभी अदालतोंमें मामले चल रहे हैं। एक ७ पौंडका पंजीकरण (रजिस्ट्रेशन)-शुल्क देना पड़ता है। रातके नौ बजेवाला कानून है ही। सड़ककी पटरीपर चलना (कमसे कम जोहानिसबर्गमें तो) मना है। रेलके पहले और दूसरे दर्जेमें सफर नहीं कर सकते। तो, आप देखेंगे कि ट्रान्सवालमें भी भारतीयोंको कोई चैन नहीं लेने दे रहा है। इतनी सब बन्दिशों—नहीं, अकारण अपमानोंके बावजूद भी भारतीयोंसे, अगर श्री चेम्बरलेन बीचमें हस्तक्षेप नहीं करेंगे तो, फौजकी अनिवार्य नौकरी ली जा सकेगी। फौजी काम सम्बन्धी सुलहके अनुसार सारे ब्रिटिश प्रजाजनोंको इस नौकरीसे बरी रखा गया है। परन्तु जब ट्रान्सवालकी विधानसभामें इस प्रश्नपर विचार हो रहा था, उस समय इस आशयका एक प्रस्ताव जोड़ दिया गया कि वहाँ ब्रिटिश प्रजाजनोंका अर्थ केवल 'गोरे' होगा। फिर भी, भारतीयोंने इंग्लैण्डकी सरकारको इस मुद्देपर अपना प्रार्थनापत्र भेजा है। केप कालोनी भी उसी राह पर जा रही है। उसने हाल ही में ईस्ट लंदनकी म्यूनिसिपैलिटीको यह सत्ता दी है कि वह भारतीयोंको व्यापार करनेसे मना कर दे, उन्हें सड़ककी पटरियोंपर नहीं चलने दे और निश्चित बस्तियोंके अन्दर ही उन्हें बसनेके लिए मजबूर करे। इस तरह आप देखेंगे कि दक्षिण आफ्रिकामें प्राय. सभी जगह भारतीयोंपर चारों ओरसे धावा बोला जा रहा है। और याद रहे, हम अपने लिए कोई विशेष अधिकार नहीं माँग रहे हैं। हम तो केवल उन्हीं अधिकारोंका दावा कर रहे हैं जो बिलकुल वाजिब हैं। राजनीतिक सत्ताकी महत्त्वाकांक्षा हमें नहीं है। हम तो केवल इतना ही चाहते हैं कि हमें अपना व्यापार सुखसे करने दिया जाये, जिसके लिए एक राष्ट्रकी हैसियतसे हम बहुत योग्य हैं। हमारा खयाल है कि हमारी यह माँग बिलकुल वाजिब है।"

"यह तो दुखड़ोंकी बात हुई। मालूम होता है कि सारे दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंको ये तकलीफें हैं। अब, मिस्टर गांधी, यह बताइए कि वहाँकी अदालतोंमें भारतीय बैरिस्टरोंपर कैसी गुजरती है?"

"हाँ, यह बात! अदालतोंमें किसी जातिके एडवोकेटों और अटर्नियोंमें कोई भेद नहीं होता। वहाँ तो योग्यता ही काम करती है। उपनिवेशमें वकील तो बहुत हैं। परन्तु वकालती बुद्धि-कौशलकी दृष्टिसे वहाँका यह वर्ग बहुत ऊँचे दरजेका नहीं है। यूरोपीय वकील वहाँ बहुत-से हैं और यह कहनेकी जरूरत

नहीं होनी चाहिए कि जिन्होंने इंग्लैंडमें शिक्षण, प्रशिक्षण और पदवी पाई है सारा काम उन्हींके हाथोंमें है। परन्तु (श्री गांधीने मुस्कराते हुए कहा) मैं मानता हूँ कि यह अंग्रेजी पदवी ही है — जिन्होंने भी उसे प्राप्त किया है — जो हमें समानताके धरातलपर लानेका काम करती है। जिनके पास केवल भारतकी पदवी है उनके लिए वहाँ कोई स्थान नहीं है। हाँ, मैं समझता हूँ कि भारतीय वकीलोंके लिए उन सब लोगोंके पास अवश्य गुंजाइश है जिनके दिलमें अपने देशभाइयोंके लिए प्रेम है।"

दक्षिण आफ्रिकाके राजनीतिक मामलोंके बारेमें श्री गांधीने कुछ न कहना ही उचित समझा।

[अंग्रेजीसे]

इंग्लिशमैन, १४-११-१८९६

१५. पूनामें भाषण

गांधीजीने १६ नवम्बर १८९६को दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंके दुःख-दर्द-पर पूनाके नागरिकोंकी एक सभामें भाषण दिया था। सभा जोशी-भवनमें डा० रामकृष्ण गोपाल भांडारकरकी अध्यक्षतामें हुई थी। गांधीजीके भाषणके बाद लोकमान्य बाल गंगाधर तिलकका एक प्रस्ताव मंजूर किया गया था, जिसके द्वारा दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंके प्रति सहानुभूति व्यक्त की गई थी और एक समिति बना कर उसे उनपर लादे गये प्रतिबन्धोंके बारेमें भारत-सरकारको स्मरण-पत्र भेजनेका अधिकार दिया गया था। समितिके सदस्य डा० रामकृष्ण गोपाल भांडारकर, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, प्रोफेसर गोपाल कृष्ण गोखले और छः अन्य सज्जन नियुक्त किये गये थे। गांधीजीके उस भाषणकी रिपोर्ट साधारण जरियोंमे उपलब्ध नहीं हुई। उसके संक्षिप्त उल्लेखका जो विवरण नीचे दिया जा रहा है, वह भारत-सरकारके गृह-विभागके लिए पूनामें तैयार की गई ३० नवम्बर, १८९६ की गुप्त रिपोर्टसे लिया गया है।

नवम्बर १६, १८९६

"भाषणमें मुख्यतः विषयसे सम्बन्ध रखनेवाली एक पुस्तिका[1]के अंश पढ़े गये। पढ़नेके साथ-साथ बीच-बीचमें टीका-टिप्पणी की जाती रही। पुस्तिकामें

१. *हरी पुस्तिका।*

वर्णन किया गया है कि दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंके साथ कैसा-कैसा सलूक किया जाता है। उसके अन्तमें कुछ लोगोंके नाम दिये गये हैं। बताया गया है कि वे दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंके प्रतिनिधि हैं और उन्होंने ही सरकारी अधिकारियों और आम जनताके सामने उनके दुखड़े पेश करनेके लिए श्री गांधीको नियुक्त किया है।

"भाषणकर्ताने अपने श्रोताओंसे अनुरोध किया कि वे सरकारको परिस्थितियोंका परिचय कराकर और अर्जियाँ देकर दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंकी हालत सुधारनेके लिए जो-कुछ भी कर सकते हों, सब करें।"

[अंग्रेजीसे]

१६. तार: वाइसरायके नाम[1]

नवम्बर ३०, १८९६

मुझे दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंका तार मिला है। उसमें कहा गया है कि ट्रान्सवाल सरकार भारतीयोंको पृथक् बस्तियोंमें चले जानेके लिए बाध्य कर रही है। स्पष्ट है कि श्री चेम्बरलेनने परीक्षणात्मक मुकदमा हो जाने तक कार्रवाई स्थगित रखनेका जो अनुरोध किया है उसके बावजूद यह कार्य किया जा रहा है। मैं मानता हूँ कि ट्रान्सवाल सरकारका यह कार्य अगर ज्यादा नहीं तो अन्तर्राष्ट्रीय शिष्टाचारका भंग करनेवाला तो है ही। प्रार्थना है कि पृथक् बस्तियोंमें हटाया जाना रोकनेके लिए अविलम्ब कार्रवाई करें। सैकड़ों ब्रिटिश भारतीयोंका अस्तित्व दाँवपर है।

[अंग्रेजीसे]

बंगाली, १–१२–१८९६

१. वाइसरायके नाम गांधीजीके तारकी इस प्रतिका आधार १–१२–१८९६ के *बंगाली*में प्रकाशित पूरी नकल है। उस कालकी सम्बद्ध फाइल भारत-सरकारके उन पुराने कागज-पत्रोंके साथ नष्ट हो चुकी है, जिन्हें भारत-सरकारने सुरक्षित रखने योग्य नहीं समझा और देशकी स्वतन्त्रताके पूर्व, अपने साधारण नियमोंके अनुसार, नष्ट कर दिया था। फलतः वाइसरायको प्राप्त मूल तार उपलब्ध नहीं है। गांधीजीने तारकी एक नकल *टाइम्स आफ़ इंडिया*को भी भेजी थी। उसने उसका सम्पादन करके और अन्तिम वाक्य छोड़कर उसे अपने ३०–११–१८९६ के अंकमें प्रकाशित किया था।

१७. दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय

बम्बई
नवम्बर ३०, १८९६

सेवामें
सम्पादक, *इंग्लिशमैन*
कलकत्ता

महोदय,

दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंकी शिकायतोंके बारेमें मैंने गत १३ तारीखको आपको जो पत्र लिखा था, उसके सिलसिलेमें अब मुझे दक्षिण आफ्रिकासे प्राप्त असली तार देखनेका मौका मिला है। कलकत्तेमें मुझे मिले संवादमें "रोड" शब्द था। असली तारमें उसके स्थानपर "राट"[1] है। इससे अब अर्थ बिलकुल स्पष्ट हो गया है। वह अर्थ यह है कि ट्रान्सवाल सरकार भारतीयोंको पृथक् बस्तियोंमें खदेड़ रही है। इससे स्थिति सम्भवतः और भी गम्भीर हो जाती है।

दक्षिण आफ्रिका-स्थित उच्चायुक्त (हाई कमिश्नर) ने इस गणराज्यके भारतीय प्रश्नके सम्बन्धमें पंचके फैसलेको मंजूर करते हुए अपने २४ जून, १८९५ के तारमें लिखा है:

> **उपनिवेश-मंत्रीको भारतीयोंके पाससे एक तार मिला है। उसमें कहा गया है कि उन्हें बस्तियोंमें हट जानेकी सूचना प्राप्त हुई है। यह प्रार्थना भी की गई है कि इस कार्रवाईको रुकवाया जाये। इसलिए मैं आपकी सरकारसे अनुरोध करता हूँ कि जबतक १८९३ का प्रस्ताव और परिपत्र रद न कर दिया जाये और कानूनको पंच-फैसलेके अनुरूप न ढाल दिया जाये—जिससे कि दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यकी अदालतोंमें परीक्षणात्मक मुकदमा चल सके—तबतक कार्रवाई स्थगित रखी जाये।**

उक्त प्रस्ताव और परिपत्रको तो रद कर दिया गया है, परन्तु जहाँतक मैं जानता हूँ परीक्षणात्मक मुकदमा नहीं चलाया गया — और मुझे यहाँ दक्षिण आफ्रिकी अखबार तो बराबर मिलते ही रहते हैं। इसलिए स्पष्ट है कि ट्रान्सवाल सरकारकी कार्रवाई असामयिक है। और मैं मानता हूँ कि अगर ज्यादा नहीं तो वह अन्तर्राष्ट्रीय शिष्टाचारका भंग करनेवाली तो है ही। मैं आपको

१. फोक्सराट: ट्रान्सवालकी लोकसभा या संसद।

याद दिलानेकी इजाजत लेता हूँ कि ट्रान्सवालमें भारतीयोंकी १,००,००० पौंड से ज्यादाकी पूँजी लगी हुई है। पृथक् बस्तियोंमें हटाये जानेसे भारतीय व्यापारी असली मानीमें बरबाद हो जायेंगे। इस तरह इस प्रश्नके तात्कालिक पहलूके साथ सम्राज्ञीके सैकड़ों प्रजाजनोंका अस्तित्व ही जुड़ा हुआ है। उन प्रजाजनोंका एकमात्र अपराध यह है कि वे शराबसे परहेज करनेवाले, मितव्ययी और उद्योगी हैं।

मेरा निवेदन है कि यह विषय भारतकी समस्त जनतासे जरूरी और अविलम्ब कार्रवाईकी माँग करता है।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

इंग्लिशमैन, ८-१२-१८९६

१८. भारतमें प्रतिनिधित्व : वास्तविक खर्चका हिसाब

भारतमें दौरा करनेके सम्बन्धमें गांधीजीको यात्रा, छपाई तथा अन्य वास्तविक खर्चके लिए ७५ पौंडका ड्राफ्ट दिया गया था। उन्होंने सारे खर्चका जो सविस्तर हिसाब रखा और भारतसे लौटनेके बाद नेटाल भारतीय कांग्रेसके सामने पेश किया वह नीचे दिया जाता है। संयोगवश यह उनके व्यक्तित्वके कुछ पहलुओंपर प्रकाश डालता है, जो उस छोटी उम्रमें भी उनमें सुव्यक्त थे।

*नेटाल भारतीय कांग्रेस*के नामे

मो० क० गांधीका पावना

दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंके कष्टोंके सम्बन्धमें भारतमें आन्दोलनका वास्तविक खर्च :

जुलाई ५ (१८९६)

	[रु०आ०पा०]
इलाहाबादमें सम्पादकों आदिसे मिलनेके लिए सुबहसे तीसरे पहर तकका और पिछली शामका घोड़ा-गाड़ी खर्च	६—०—०
होटल	५—८—०
अखबार	२—१२—०
इनाम	०—८—०

[अगस्त . . . ?]	
असबाब-पुस्तिकाएं आदि	४—८—०
बम्बईसे राजकोटकी आधे कियायेवाली वापसी टिकट	२०—१—६
अगस्त १७	
वढवाणमें पानी	०—२—०
कुली	०—४—०
गरीबको	०—१—०
तार लानेवालेको	०—१—०
स्टेशनका चपरासी	०—४—०
अगस्त १९	
जी० [ग्रैंट] रोडको घोड़ागाड़ी	०—५—०
जी० रोडसे बान्द्रा और वापस	०—१२—०
जी० रोडसे पायधूनी	०—४—०
अगस्त २०	
घोड़ागाड़ी : घरसे फोर्ट	०—५—०
फोर्टसे जी० बी० के० रोड	०—१०—०
घरसे अपोलो बन्दर	०—१२—०
अपोलो बन्दरसे मार्केट	०—१—०
मार्केटसे घर	०—२—०
अगस्त २१	
घोड़ागाड़ी	०—५—०
डाक-टिकट	१—०—०
अगस्त २२	
घोड़ागाड़ी	१—७—०
फल	२—०—०
अगस्त २४	
घोड़ागाड़ी	०—४—०
अगस्त २५	
घोड़ागाड़ी	०—४—०

अगस्त २७

घोड़ागाड़ी	०—१—०
लालू—इनाम	१—०—०

अगस्त ३१

जूतेकी पालिश	०—१—०

सितम्बर १

ट्राम किराया	०—४—०

सितम्बर ३

स्याही	०—४—०
धोबी	०—८—०
अखबार	०—२—०

सितम्बर ४

डाक-टिकट	१—०—०

सितम्बर ११

कार्ड	१—४—०
घोड़ागाड़ी	०—१२—०
छोकरा	०—२—०
स्टेशनको घोड़ागाड़ी	०—६—०
कांग्रेसकी कार्यवाही	१—०—०
टिकट—राजकोटको और वापस	४८—३—३
पास	०—२—०
रसोइये और नौकरको इनाम	२—०—०
पेन्सिल	०—३—०
अखबार	१—०—०
तार	१—०—०
फल	०—१०—६
घोड़ागाड़ी	०—४—०

सितम्बर १३

वढवाणमें कुलीको	१—०—०

सितम्बर २४

ड्राइवरको इनाम	०—८—०
डाक-टिकट	१—०—०
अखबार	०—१४—०
असबाब	१३—८—०
कुली	०—१२—०
पानी और चपरासी	०—६—०
पुस्तिकाओंके लिए डाक-टिकट	३०—०—०
पानी	०—०—६
तार	१—०—०

सितम्बर २५

घोड़ागाड़ी—स्टेशनसे घर	१—४—०
घोड़ागाड़ी और ट्राम	०—९—०

सितम्बर २६

घोड़ागाड़ी व ट्राम	०—४—०

सितम्बर २७

घोड़ागाड़ी व ट्राम	०—८—०

सितम्बर २८

अखबार	१—४—०
प्लेटफार्म टिकट	०—०—६
घोड़ागाड़ी	०—५—०

सितम्बर ३०

घोड़ागाड़ी	०—१०—०

अक्टूबर १

घोड़ागाड़ी	०—४—०
घोडागाड़ी और अखबार	०—८—६
चैम्पियन	०—४—०
फोटोग्राफ	०—१५—०

अक्टूबर १०

टाइम्स	०—८—०
ट्राम	०—२—०
साबुन	०—१—०

अक्टूबर ११

मद्रासका रेल-किराया	४९–११—०
गाइड	०—१—०
श्री सोहोनी[1]को तार	२—०—०
असबाब किराया	५—८—०
साबुन	०—४—०
घोड़ागाड़ी	०—४—०
कुली	०—४—०
पास	०—२—०

अक्टूबर १२

पूनामें घोड़ागाड़ी	१—०—०
कुली	०—४—०
दान	०—८—०
घोड़ागाड़ी (पूरा दिन)	४—८—०
कुलियोंको	१—०—०
श्री सोहोनीके लड़केको	१—०—०
काफी	०—६—०
अखबार	०—२—०
छोकरा	०—२—०

अक्टूबर १३

नाश्ता	०–१४—०
भोजन	१–१४—०
ब्याल्	२—२—०

१. गोखलेके साथी। देखिए 'पत्र: गोखलेको'। पृष्ठ ९७–९८।

फल	०—२—०
पानी	०—१—०
अक्टूबर १४	
रेलवे स्टेशन, मद्रास	०—४—०
गाइड	०—४—०
कुली	०—२—०
घोड़ागाड़ी (पूरा दिन)	४—२—३
बाजीगर	०—०—६
अखबार व लिफाफे	२—१०—०
स्टेशनको घोड़ागाड़ी	१—८—०
अक्टूबर १५	
घोड़ागाड़ी	४—६—०
पत्र-वाहक	०—१०—०
अखबार	०—४—०
ट्राम	०—१—०
अक्टूबर १६	
डाक-टिकट	१—०—०
घोड़ागाड़ी	२—३—०
अखबार	०—८—०
धोबी	१—०—०
अक्टूबर १७	
अखबार	०—१४—०
घोड़ागाड़ी (पूरा दिन)	४—३—०
अक्टूबर १८	
घोड़ागाड़ी (आधा दिन)	२—३—०
एंड्रूजको चन्दा	७—०—०
गंधकका मरहम	०—२—०
अक्टूबर १९	
ट्राम किराया	०—१—०

वाछा[1] को तार	१—६—०
अखबार	१—०—०
अक्टूबर २०	
धोबी	०—४—०
अखबार	०—१२—०
पंखा-कुली	०—२—०
अक्टूबर २१	
पत्र लिखनेका कागज	०—१४—०
स्याही और आल्पीनें	०—३—०
फीता	०—१—०
बाजीगर	०—८—०
अखबार	०—१०—०
जूतेके बन्द	०—१—०
अक्टूबर २२	
घोड़ागाड़ी	२—४—०
मिठाई	०—५—३
फ़ोटोग्राफ़	०—६—०
अखबार	०—१२—०
ट्राम	०—१३—०
अक्टूबर २३	
घोड़ागाड़ी	५—०—०
ट्राम	०—१०—०
डाक-टिकट	०—८—०
अक्टूबर २४	
स्कूलके लड़के	०—१३—०
घोड़ागाड़ी	२—१०—०
एंड्रूज	०—८—०

१. दिनशा वाछा : एक बड़े भारतीय नेता।

ट्राम	०—१—०
पत्र-वाहक	०—४—०
अखबार	०—१०—०
धोबी	०—१२—०
ईस्ट इंडियन आसाम कुलीज[1]	१—०—०
ले. कौन्सिल्स	०—६—०
लोकल गवर्नमेंट रिटर्न	५—०—०
कौन्सिल्स ऐक्ट	०—६—०
विदेशी रिपोर्टें	२—०—०
दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यके पत्र [बाबत] शिकायतें	०—८—०
स्टेटमेंट [ऑन] मॉरल ऐंड [मटीरियल] प्रोग्रेस[2]	१—१२—०
मद्रास डिस्ट्रिक्ट [म्यूनिसिपल] ऐक्ट	१—०—०
मद्रास लोकल बोर्ड्स [ऐक्ट]	०—१०—०
तमिल पुस्तकें	४—१२—६
पुस्तकोंके लिए एंड्रूजको	१—९—०

अक्टूबर २६

चुनी हुई तमिल पुस्तकें	७—०—०
घोड़ागाड़ी	०—८—०
ट्राम किराया	०—४—०
अखबार	०—८—०
घोड़ागाड़ी	२—४—०

१. स्थानिक कानूनोंकी किताबें खरीदनेसे मालूम होता है कि गांधीजी दक्षिण आफ्रिकामें उपयोगके लिए भारतमें प्रचलित मताधिकार तथा प्रातिनिधिक शासन और आसामी चाय-बागानके गिरमिटिया मजदूरोंकी परिस्थितियों और इसी तरहके अन्य विषयोंकी अधिकसे अधिक जानकारी एकत्र करना चाहते थे। इसी तरह हिन्दी, उर्दू और बंगालीकी पुस्तकें खरीदनेसे पता चलता है कि वे अपने दक्षिण आफ्रिका-वासी देशभाइयोंकी भाषाएँ सीखनेको कितने उत्सुक थे।

२. भारतकी आर्थिक और नैतिक प्रगति सम्बन्धी वक्तव्य, *स्टेटमेंट एक्जिबिटिंग दि मॉरल ऐंड मटीरियल प्रोग्रेस ऐंड कंडीशन ऑफ इंडिया ड्यूरिंग दि इयर,* जो सरकार ब्रिटिश संसदके सामने पेश करनेके लिए प्रतिवर्ष प्रकाशित किया करती थी।

अक्टूबर २७

घोड़ागाड़ी	३—४—०
अन्तर्देशीय तारोंका महसूल	१८—१२—०
मद्रास स्टैंडर्ड खाता—तार और अभिभाषण	३०—०—०
खानसामाको इनाम	१—०—०
हजूरिया (वेटर)	१—०—०
भंगी	०—८—०
रसोइया	१—०—०
माली	०—२—०
चौकीदार	०—२—०
असबाब—कलकत्तेको	३—०—०
एंड्रूज	५—०—०
होटल	७४—४—०
अखबार	०—१०—०
धोबी	०—१२—०
पंखाकुली—१४ दिन	३—४—०
कलकत्तेको रेल-किराया	१२२—७—०
गाइड	०—२—०
डाक-टिकट	०—४—०
ब्यालू—आरकोनम्में	१—०—०

अक्टूबर २८

नाश्ता	१—६—०
भोजन	१—१३—०
अखबार	०—१०—०
पानी	०—०—६
पहरेदार	०—८—०
ब्यालू	२—८—६
कुली	०—२—०

अक्टूबर २९

नाश्ता	१—१०—०
काफी	०—४—०

कुली — मनमाड़[1]में	०—३—०
कुली — भुसावल[1]में	०—३—०
पायोनियर	०—४—०
भोजन	०—११—०
ब्यालू	२—६—०
कुली — नागपुरमें	०—४—०

अक्टूबर ३०

घोड़ागाड़ी — नागपुरमें	१—८—०
होटल	३—६—०
कुली, हज़ूरिया आदि	१—१५—०
दुपहरका जलपान	०—६—०
ब्यालू	१—११—०
अखबार	०—६—०

अगस्त १ से ७

पुस्तिकाओंके लिए डाक-टिकट[2]	४१—८—०

अगस्त १७

तार—बम्बई	१—४—०
ठाकरसी — पुरस्कार, पुस्तिकाके कामके लिए	१३—०—०
५०० पुस्तकोंको बाँधने और पार्सल करनेका खर्च	३—१०—०
चिट्ठीका कागज	२—१२—०
पिकविक निबें	०—६—०
पेन्सिलें	०—३—०
पुस्तिकाएँ भेजनेके लिए एक रीम कागज	२—०—०

अगस्त ७

थैकरकी डायरेक्टरी	२५—०—०

१. बम्बई और नागपुरके बीचमें एक रेलवे स्टेशन।

२. इस मदमे और इसी तरहकी दूसरी मदोंसे मालूम होता है कि गांधीजी दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंके हितमें कितनी जोरदार परचेबाज़ी किया करते थे।

अक्टूबर ३१

कलकत्तेके रास्तेमें चाय और डबल रोटी	०—९—०
नाश्ता	१–१५—०
दुपहरका जलपान	०—७—०
अखबार	०—२—०
स्टेशनपर कुली	०—६—०
आसन्सोलमें कुली	०—२—०
होटलमें कुली	०—४—०
होटलको घोड़ागाड़ी	१—०—०
घोड़ागाड़ी और नाटक	४–१२—०

नवम्बर १

धोबी	०–१०—६
जूतेकी पालिश, भूरा चमड़ा, दंत-फेन, ब्रश	१—९—६
घोड़ागाड़ी	३—०—०
डाक-टिकट — रजिस्टर्ड पत्र	०—५—०
स्टैंडर्ड तार	०—८—०

नवम्बर २

घोड़ागाड़ी	३—०—०
डाक-टिकट	०—४—०
बम्बईको पुस्तकोंकी पार्सल	४–१२—०
पत्र-वाहक	०—४—०

नवम्बर ३

घोड़ागाड़ी	३—८—०
बाल और दाढ़ी बनवाई	०–१०—०
डाक-टिकट	०—८—०
पार्सलवालेको	०—२—०
दान	०—०—६

नवम्बर ४

धोबी	०—८—०
छुरेमें सान चढ़वाई	०—८—०

स्टैंडर्ड तार	०—८—०
घोड़ागाड़ी	१–१०—०
नवम्बर ५	
घोड़ागाड़ी	२—०—०
धोबी	०—४—०
खानसामा	४—०—०
नवम्बर ६	
घोड़ागाड़ी	५—४—०
नवम्बर ७	
नाटक	४—०—०
घोड़ागाड़ी	१—४—६
नवम्बर ८	
धोबी	०—४—०
नवम्बर ९	
हिन्दी और उर्दू किताबें	०–१२—६
उर्दू और बंगला किताबें	४—८—०
सरकारी रिपोर्टें (ब्लू बुक्स)	२—८—०
घोड़ागाड़ी	१—२—०
डाक-टिकट	०—८—०
तार—पी० एन० मुकर्जी	२—६—०
धोबी	०—४—०
नवम्बर १०	
सरकारी रिपोर्टें (ब्लू बुक्स)—बंगाल सेक्रेटरियट	११–१२—०
घोड़ागाड़ी	१–१३—६
नवम्बर ११	
अखबार	०—५—०
पत्र-वाहक	०—४—०

म्यूनिसिपल कानून	०–१२—०
कुली	०—१—०
घोड़ागाड़ी	१—०—०

नवम्बर १०

तार — स्टैंडर्ड, अब्दुल्ला कम्पनी	४–१४—०
धोबी	०—३—०
पत्रवाहक	०—४—०
अखबार	०—१—०
घोड़ागाड़ी	१—०—०

नवम्बर १३

टिकट — बम्बईको	९१–११—०
तिलक[1]को तार	२—०—०
बंगाली	११–१०—०
घोड़ागाड़ी	२—२—०
कुली	०–१०—०
पानीका बर्तन, पानी	०—४—०
खानसामा	६—०—०
रसोइया — इनाम	१—०—०
द्वार-रक्षकोंको	१—४—०
भंगी	०—४—०
स्नान-घरका आदमी	०–१२—०
डाक-टिकट	०–१२—०
अब्बा मियाँ — पार्सलके लिए	३—०—०
होटल	१००–१४—०

नवम्बर १४

नाश्ता और इनाम	१–१०—०
भोजन	२—०—०
काफी	०—५—०

१. महान भारतीय नेता : लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक; देखिए पृष्ठ १४८ ।

ब्यालू	२—२—०
तागा	०—४—०
सेब	०—२—०
गाड़ीवान मूसा हुसेन	१—०—०
धोबी	०—८—०
तार — तिलक	१—२—०
नवम्बर १५	
नाश्ता	१–१०—०
भोजन	१—२—०
तार — अब्बा मियाँ	०—८—०
तारवाला	०—०—९
ब्यालू	२—६—०
डाक-टिकट	०—२—०
नवम्बर १६	
रेल किराया — बम्बईसे पूना	१४–१४—०
कुली	०—४—०
घोड़ागाड़ी	१—८—०
घोड़ागाड़ी — पूनामें	१–१०—०
लेमनेड	०—६—०
तार — पूनाको	१—०—०
नवम्बर १७	
कुली	०—३—०
घोड़ागाड़ी	०—४—०
नवम्बर १८	
डाक-टिकट	१—०—०
नवम्बर १९	
घोड़ागाड़ी	०–१०—०
नाई	०—४—०
नवम्बर २०	
ट्राम	०—१—०

नवम्बर २१

घोड़ागाड़ी	०—९—०

नवम्बर २७

डाक-टिकट	०—२—०
अखबार	१—८—०

नवम्बर २८

घोड़ागाड़ी	०—१—६
चैम्पियन, चन्दा	६—०—०
बाम्बे गज़ट	१—०—०
बम्बई जिला बोर्ड ऐक्ट	२—०—०
गाड़ी	०—८—०
रसोइयेको इनाम	५—०—०

नवम्बर ३०

घाटीको इनाम	२—०—०
नौकर लालूको	१०—०—०
डाक-टिकट — २० पत्र भेजने और रजिस्ट्री करनेके लिए	२—०—०
लिफाफे	०—४—०
निबें	०—३—०
पुस्तिकाके लिए कागज — बिलके अनुसार	८४—०—०

सितम्बर २३

जूलूलैंड-सम्बन्धी प्रार्थनापत्र[1]	१५—७—०
प्रवासी प्रार्थनापत्र[2]	४२—४—०
कष्टगाथा-सम्बन्धी टिप्पणियाँ[3]	२०—०—०

सितम्बर १७

पुस्तिकाकी ६,००० प्रतियोंकी छपाई	११०—०—०

१. देखिए खंड १, पृष्ठ २९९–३०१ और ३१०–३१४।
२. देखिए खंड १, पृष्ठ २१७–२३५ ।
३. देखिए पृष्ठ ५९–७६ ।

सितम्बर ८

बम्बईका भाषण १२० प्रतियाँ	५०—०—०

सितम्बर ८

रजिस्टर्ड ३०० रु०के लिए — मद्रासको	०—३—९
पुस्तकें कलकत्ता भेजनेके लिए पैकेज	०—४—०
रजिस्ट्रेशन कलकत्ता २०० रु०	०—३—३

सितम्बर

टाइम्स आफ् इंडिया डायरेक्टरी	१०—१५—०

अक्टूबर

मनीआर्डरसे १०० रु० भेजनेका खर्च	२—१—०
तार मद्रास	२—०—०

नवम्बर

पत्र लिखनेका कागज	०—३—३

नवम्बर ३०

वाइसरायके सचिवको तार[1]	५—४—०

सितम्बर २७

तार — डर्बनको	९९—६—०

सितम्बर २१

तार — सर डबल्यू० डबल्यू० हंटर[2]को	११३—२—०
भीमभाई — नकल, मदद आदि करनेके लिए	२०—०—०
फल	२—६—०
निबें	०—४—०
डाक-टिकट	०—८—०
मजदूर — पुस्तकें इंस्टिट्यूट ले जानेके लिए	०—१—३

नवम्बर २८

कांग्रेसकी मुहर	१—८—०

१. देखिए पृष्ठ १४८ ।

२. यह उपलब्ध नहीं है ।

अगस्त १७

राजकोटसे वढवाण	४—१३—०
तार — बम्बई	१—४—०
योग :	१६६६—६—१

नवम्बर २१

*मद्रास स्टैंडर्ड*को दिये — पुस्तिकाके खाते	१००—०—०
	१७६६—६—१[1]
पुस्तिकाओंकी चुंगी दी	०—६—६

साबरमती-संग्रहालयमें सुरक्षित एक हस्तलिखित अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १३१०) से ।

१९. "कूरलैंड" जहाजपर मुलाकात

तार द्वारा दक्षिण आफ्रिका वापस बुलाये जानेपर गांधीजी *कूरलैंड* जहाजसे दिसम्बर १८, १८९६को डर्बन पहुँचे । *नादरी* नामका एक अन्य जहाज भी ४०० भारतीय मुसाफिरोंको लेकर उसी समय वहाँ पहुँचा । परन्तु इन दोनों जहाजोंको बाहरी लंगर-स्थानसे आगे नहीं जाने दिया गया । इसका जो कारण बताया गया वह यह था कि बम्बईमें, जहाँसे ये जहाज चले थे, प्लेगकी बीमारी फैली हुई है । इन्हें अवधि बढ़ा-बढ़ाकर तीन सप्ताहसे अधिकतक संक्रामक रोग सम्बन्धी सूतक (क्वारंटीन) में रखा गया । तटपर यूरोपीय लोग भारतीयोंको उतरनेसे रोकनेके लिए जोरदार आन्दोलन छेड़े हुए थे और भारतीयोंके आगमनको अतिरंजित करके बड़े पैमानेपर "एशियाइयोंका हमला" बताया जा रहा था । जनवरी १३, १८९७को *नेटाल एडवर्टाइज़र*के एक प्रतिनिधिने *कूरलैंड* जहाजपर गांधीजीसे मुलाकात की थी । उस मुलाकातकी रिपोर्ट निम्नलिखित है :

१. मूल प्रतिमें प्रत्येक पृष्ठपर योग किया गया है और वह योग दूसरे पृष्ठपर ले जाया गया है । ये आँकड़े यहाँ छोड़ दिये गये हैं और सिर्फ आखिरी योग बताया गया है ।

जनवरी [१३][1], १८९७

इष्ट उत्तरवाला सबसे पहला प्रश्न उनसे यह किया गया कि, "प्रदर्शन-समिति[2]के कार्यके बारेमें आपके क्या विचार हैं?"

"मेरा निश्चित खयाल है कि प्रदर्शन बहुत ही अविचारसे किया गया, खास तौरसे तब, जब कि उसे करनेवाले कई ऐसे उपनिवेशी हैं, जो अपने-आपको ब्रिटिश ताजके प्रति वफादार बताते हैं। और मेरी यह कल्पना भी कभी नहीं थी कि मामला इस हदतक पहुँच जायेगा। अपने प्रदर्शनसे वे गैर-वफादारीकी अत्यन्त निश्चित भावना प्रकट कर रहे हैं और इसका असर न सिर्फ सारे उपनिवेशमें, बल्कि सारे ब्रिटिश साम्राज्यमें — भारतमें तो और भी खास तौरसे — महसूस किया जायेगा।"

"किस प्रकार?"

"यहाँ आये हुए भारतीयोंको जिस बातसे दुःख होगा वह निश्चय ही भारतके सारे निवासियोंके लिए दुःखदायी होगी।"

"आपका मतलब यही है न कि भारतमें इस देशके प्रति दुर्भाव फैल जायेगा?"

"हाँ। और उससे भारतीयोंमें ऐसा दुर्भाव पैदा होगा जो आसानीसे दूर नहीं किया जा सकेगा। इसके अलावा भारतके विरुद्ध दूसरे ब्रिटिश उपनिवेशोंमें भी पारस्परिक दुर्भाव पैदा हो जायेगा। मेरा मतलब यह नहीं है कि आज भारतीयों और उपनिवेशियोंके बीच आम तौरपर कोई बहुत भारी दुर्भाव है। परन्तु मुझे यह निश्चित रूपसे लगता है कि उपनिवेशी यहाँ जो कुछ कर रहे हैं उससे भारतमें यही अनुमान किया जायेगा कि हरएक दूसरे ब्रिटिश उपनिवेशमें भी ऐसा ही होगा। और अभी जिस हदतक स्थिति पहुँच गई है, उससे इस अनुमानकी पुष्टि ही होती है। कमसे कम अखबारोंमें

१. स्पष्टतः मुलाकातकी तारीख यही थी। इसका एक प्रमाण *आत्मकथा* (गुजराती, पृष्ठ १९३)में गांधीजीका यह कथन है कि "जहाजसे उतरनेके दिन, जैसे ही पीला झंडा नीचा किया गया, *नेटाल एडवर्टाइज़र*का एक प्रतिनिधि मुझसे मुलाकात करनेके लिए आया।" दूसरा प्रमाण पत्र-प्रतिनिधिका अपनी रिपोर्टमें, जो १४ जनवरीके अंकमें छपी थी, यह उल्लेख है कि उसने गांधीजीसे "कल सुबह" मुलाकात की थी।

२. यूरोपीयोंकी बनाई हुई एक कमेटी, जिसका उद्देश्य भारतीय यात्रियोंके उतरनेके विरुद्ध बन्दरगाहपर प्रदर्शन संगठित करना था।

जो समाचार और तार प्रकाशित होते हैं उनसे तो दक्षिण आफ्रिकाकी स्थिति ऐसी ही दिखाई देती है।"

'ब्रिटिश प्रजाजन'वाली दलील

"निश्चय ही, आपका तो यह दृढ़ विचार होगा कि नेटालको भारतीयोंके आनेपर रोक लगानेका कोई अधिकार नहीं है?"

"जी। निश्चय, मेरा यही खयाल है।"

"किस आधारपर?"

"इस आधारपर कि वे ब्रिटिश प्रजाजन हैं। और यह भी कि उपनिवेश एक वर्गके भारतीयोंको तो ला रहा है, किन्तु दूसरे वर्गको नहीं चाहता[1]।"

"हाँ।"

"यह बड़ी बेमेल बात है। यह साझेदारी तो भेड़ और भेड़ियेकी दोस्ती जैसी लगती है। भारतीयोंसे जितना लाभ मिल सकता है वह तो वे उठा लेना चाहते हैं। परन्तु यह नहीं चाहते कि भारतीयोंको तिल भर भी लाभ हो।"

"इस प्रश्नपर भारत-सरकारका रुख क्या होगा?"

"यह मैं नहीं बता सकता। अभीतक मुझे पता नहीं है कि भारत-सरकारकी भावना क्या है। परन्तु हाँ, भारतीयोंके प्रति उदासीनताकी भावना तो हो नहीं सकती। सहानुभूति ही होगी। किन्तु वह इसपर क्या कदम उठायेगी, यह तो कई परिस्थितियोंपर निर्भर करता है। इसलिए वह क्या करेगी यह अनुमान लगाना बहुत मुश्किल है।"

"क्या इसका परिणाम यह हो सकता है कि अगर यहाँ स्वतन्त्र भारतीयोंके प्रवेशपर रोक लगा दी गई तो भारत सरकार शर्तबन्द भारतीयोंको भेजना बन्द कर दे?"

"हाँ, मुझे तो ऐसी ही आशा है[2]। परन्तु भारत-सरकार ऐसा करेगी या नहीं, यह दूसरी बात है।"

१. यह उल्लेख स्वतन्त्र भारतीयों — व्यापारियों और कारीगरों — का है, गिरमिटिया मजदूरोंका नहीं, जिन्हें आनेकी इजाजत थी।

२. वास्तवमें दक्षिण आफ्रिकी भारतीयोंने ब्रिटेन और भारत दोनोंकी सरकारोंको प्रार्थनापत्र भेजे थे कि अगर गिरमिटकी अवधि पूरी कर लेनेवाले मजदूरोंपर लगाये गये प्रतिबन्ध हटाये न जायें तो और अधिक मजदूरोंको लानेकी अनुमति न दी जाये। देखिए खण्ड १, पृष्ठ २३१ और २३४–३५।

प्रदर्शनवाले प्रश्नपर फिर लौटते हुए श्री गांधीने कहा: "मुझे सबसे अधिक खयाल तो इसी बातका आ रहा है कि प्रदर्शनकारियोंने प्रश्नके साम्राज्य-सम्बन्धी पहलूको एकदम भुला दिया। यह तो मानी हुई बात है कि भारत ब्रिटिश मुकुटका सबसे अधिक मूल्यवान रत्न है। संयुक्त राज्यका अधिकांश व्यापार भारतके साथ ही होता है। इसके अलावा संसारके प्राय: सभी हिस्सोंमें ग्रेट ब्रिटेनकी तरफसे लड़नेवाले शूरसे शूर सिपाही भारत ही देता है।"

प्रश्नकर्त्ताने बताया कि वे ईजिप्ट [मिस्र] से आगे तो कभी नहीं गये। और श्री गांधीने मौनपूर्वक यह भूल-सुधार स्वीकार कर लिया।

उन्होंने आगे कहा: "साम्राज्य-सरकारकी नीति हमेशा मिला-जुलाकर काम करनेकी — भारतीयोंको जोर-जबरदस्तीसे नहीं, प्रेमसे जीतनेकी रही है। हर ब्रिटिश व्यक्ति मानता है कि ब्रिटिश साम्राज्यका वैभव तभीतक है जबतक उसमें भारतीय साम्राज्य शामिल है। खुद नेटाल भी अपने वैभवके लिए भारतीयोंका कम ऋणी नहीं है। ऐसी सूरतमें नेटालके उपनिवेशवासियोंका स्वतन्त्र भारतीयोंके प्रवेशका इतना दुराग्रहके साथ विरोध करना स्पष्ट ही कोई देशभक्तिका काम नहीं कहा जा सकता। किसीको भी दूर रखनेकी नीति अब पुरानी और निकम्मी हो चुकी है और उपनिवेशियोंको चाहिए कि वे भारतीयोंको मताधिकार प्रदान करें। साथ ही, अगर किन्हीं बातोंमें वे कम सभ्य दिखाई दें तो अधिक सभ्य बननेमें उनकी मदद करें। मैं तो कहता हूँ कि अगर साम्राज्यके सभी अंगोंको प्रेमके साथ हिल-मिलकर रहना है तो सभी उपनिवेशोंमें इसी नीतिसे काम लिया जाना चाहिए।"

"क्या अभी ब्रिटिश साम्राज्यके तमाम हिस्सोंमें भारतीयोंको आने दिया जाता है?"

"आस्ट्रेलियामें अभी-अभी यह प्रयत्न शुरू हुआ है कि भारतीयोंको आने न दिया जाये। परन्तु विधानपरिषदने इस विषयके सरकारी विधेयकको नामंजूर कर दिया है। परन्तु क्षणभर मान लें कि आस्ट्रेलियामें यह नीति स्वीकृत भी हो जाती है, तो भी इंग्लैंडकी सरकार इसे कहाँतक मंजूरी देगी यह देखनेकी बात है। और फिर यदि आस्ट्रेलिया इसमें सफल हो जाये तो भी नेटालके लिए यह अच्छा नहीं होगा कि वह एक बुरी बातमें दूसरेका

अनुकरण करे। यह उसके लिए अन्तमें जाकर आत्मघातक ही साबित होगा।"

भारतमें श्री गांधीका मिशन

"भारत जानेमें आपका मुख्य हेतु क्या था?"

"स्वदेश जानेका मेरा हेतु तो अपने परिवार, पत्नी और बच्चोंसे मिलनेका था, जिनसे पिछले सात वर्षोंसे मैं प्रायः लगातार दूर ही रहा हूँ। मैंने यहाँके भारतीयोंसे कह दिया था कि मुझे कुछ समयके लिए स्वदेश जाना होगा। उन्हें लगा कि इस यात्रामें शायद मैं नेटाल-निवासी देशभाइयोंके लिए भी कुछ कर सकूँ। मुझे भी ऐसा ही लगा। और मैं आपको यहाँ थोड़ा-सा विषयान्तर करके बता दूँ कि नेटालमें हम मुख्यतः भारतीयोंकी स्थितिके बारेमें नहीं, किन्तु केवल एक सिद्धान्तके लिए लड़ रहे हैं। हमारा उद्देश्य यह नहीं है कि हम उपनिवेशको भारतीयोंसे भर दे या नेटालमें भारतीयोंकी स्थिति क्या है, इसका निश्चय हो जाये। हमारा असली उद्देश्य तो यह है कि ब्रिटिश भारतसे बाहर साम्राज्यमें भारतीयोंका स्थान क्या होगा इसका एकबारगी निश्चय हो जाये। हम इस साम्राज्य-सम्बन्धी प्रश्नका ही निर्णय करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। जिन कुछ भारतीय सज्जनोंको इस प्रश्नमें दिलचस्पी थी, उन्होंने डर्बनमें मुझसे चर्चा की थी कि भारत पहुँचनेपर इस बारेमें मुझे क्या करना चाहिए। और कार्यकी योजना सिर्फ यह रही कि मुझे भारतमें यात्रा करनेका खर्च नेटाल कांग्रेससे मिलेगा। जैसे ही मैं भारत पहुँचा मैंने वह पुस्तिका प्रकाशित कर दी।"[१]

"यह पुस्तिका आपने कहाँ तैयार की?"

"मैंने उसे नेटालमें नहीं लिखा। सारीकी सारी पुस्तिका भारत जाते हुए जहाजपर लिखी।"

"पुस्तिकामें जो जानकारी दी हुई है वह आपने कैसे प्राप्त की?"

"मैंने निश्चय कर लिया था कि दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंकी स्थितिके बारेमें सारी जानकारी मुझे होनी चाहिए। इस हेतुसे मैंने यह प्रबन्ध किया कि इस प्रश्नसे सम्बन्ध रखनेवाले ट्रान्सवालके कानूनोंका अनुवाद मुझे मिल जाये। इसी प्रकार केप-उपनिवेश और दक्षिण आफ्रिकाके दूसरे हिस्सोंमें

१. *हरी पुस्तिका।*

रहनेवाले मित्रोंसे भी मैंने कह रखा था कि उनके पास इस बारेमें जो जानकारी हो उसे वे मेरे पास भेज दें। इस तरह भारत जानेका निश्चय करनेसे पहले ही मेरे पास यह सारी सामग्री तैयार पड़ी थी। और मैंने उसे पढ़ लिया था। नेटालके भारतीयोंकी तरफसे इंग्लैण्डकी सरकारको जो स्मरण-पत्र[1] समय-समय पर भेजे गये उनमें साम्राज्यके दृष्टिकोणको हमेशा प्रमुखतापूर्वक सामने रखा गया था।"

"क्या ये स्मरण-पत्र मताधिकारके सम्बन्धमें थे?"

"केवल वही नहीं। उपनिवेशने बाहरके लोगोंके प्रवेशके बारेमें जो कानून मंजूर किये हैं, उनका तथा ट्रान्सवालके आन्दोलन[2] का भी उनमें उल्लेख था।"

"उस पुस्तिकाके प्रकाशनमें आपका हेतु क्या था?"

"मेरा हेतु यह था कि मैं भारतीय जनताके सामने ये सारी बातें रख दूँ कि दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंकी स्थिति क्या है। यहाँके लोगोंका खयाल है कि भारतमें जनताको ठीक-ठीक पता नहीं है कि कितने भारतीय विदेशोंमें हैं, तथा वहाँ उनकी स्थिति क्या है। इस विषयकी तरफ भारतीय जनताका ध्यान दिलाना ही उस पुस्तिकाके प्रकाशनका हेतु था।"

"किन्तु क्या इसके अलावा और कोई उद्देश्य आपका नहीं रहा?"

"दूसरा उद्देश्य यह था कि देशके बाहर भारतीयोंको वह प्रतिष्ठा मिले जिससे हमें संतोष हो। अर्थात्, सन् १८५८ की घोषणाके अनुसार।"

"क्या आप आशा करते हैं कि इसमें आप सफल हो सकेंगे?"

"निश्चय ही मुझे आशा है कि भारतकी जनताकी मददसे हम अपने उद्देश्यमें बहुत जल्दी सफल हो जायेंगे।"

"तो इसके लिए आप किन उपायोंका अवलम्बन करना चाहते हैं?"

"हम चाहते हैं कि वे इसके लिए भारतमें वैध आन्दोलन करें। वहाँ जितनी भी सभाएँ हुईं उनमें से प्रत्येकमें इस आशयके प्रस्ताव स्वीकृत किये गये कि सभाके अध्यक्ष भारत-सरकार और इंग्लैंडकी सरकारके नाम स्मरणपत्र

१. देखिए खण्ड १, पृष्ठ ११७–१२८, १८९–२११, २१७–२३२, २५८–२६० और ३३१–३५४।

२. यह आन्दोलन ट्रान्सवालके उस कानूनके खिलाफ था, जिसका मंशा भारतीयोंको निर्दिष्ट पृथक् बस्तियोंमें रहने और अपना व्यापार भी वहीं करनेके लिए बाध्य करना था। देखिए खण्ड १, पृष्ठ १८९–२१४।

रहनेवाले मित्रोंसे भी मैंने कह रखा था कि उनके पास इस बारेमें जो जानकारी हो उसे वे मेरे पास भेज दें। इस तरह भारत जानेका निश्चय करनेसे पहले ही मेरे पास यह सारी सामग्री तैयार पड़ी थी। और मैंने उसे पढ़ लिया था। नेटालके भारतीयोंकी तरफसे इंग्लैण्डकी सरकारको जो स्मरण-पत्र[1] समय-समय पर भेजे गये उनमें साम्राज्यके दृष्टिकोणको हमेशा प्रमुखतापूर्वक सामने रखा गया था।"

"क्या ये स्मरण-पत्र मताधिकारके सम्बन्धमें थे?"

"केवल वही नहीं। उपनिवेशने बाहरके लोगोंके प्रवेशके बारेमें जो कानून मंजूर किये हैं, उनका तथा ट्रान्सवालके आन्दोलन[2]का भी उनमें उल्लेख था।"

"उस पुस्तिकाके प्रकाशनमें आपका हेतु क्या था?"

"मेरा हेतु यह था कि मैं भारतीय जनताके सामने ये सारी बातें रख दूं कि दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंकी स्थिति क्या है। यहाँके लोगोंका खयाल है कि भारतमें जनताको ठीक-ठीक पता नहीं है कि कितने भारतीय विदेशोंमें हैं, तथा वहाँ उनकी स्थिति क्या है। इस विषयकी तरफ भारतीय जनताका ध्यान दिलाना ही उस पुस्तिकाके प्रकाशनका हेतु था।"

"किन्तु क्या इसके अलावा और कोई उद्देश्य आपका नहीं रहा?"

"दूसरा उद्देश्य यह था कि देशके बाहर भारतीयोंको वह प्रतिष्ठा मिले जिससे हमें संतोष हो। अर्थात्, सन् १८५८ की घोषणाके अनुसार।"

"क्या आप आशा करते हैं कि इसमें आप सफल हो सकेंगे?"

"निश्चय ही मुझे आशा है कि भारतकी जनताकी मददसे हम अपने उद्देश्यमें बहुत जल्दी सफल हो जायेंगे।"

"तो इसके लिए आप किन उपायोंका अवलम्बन करना चाहते हैं?"

"हम चाहते हैं कि वे इसके लिए भारतमें वैध आन्दोलन करें। वहाँ जितनी भी सभाएँ हुईं उनमें से प्रत्येकमें इस आशयके प्रस्ताव स्वीकृत किये गये कि सभाके अध्यक्ष भारत-सरकार और इंग्लैंडकी सरकारके नाम स्मरणपत्र

१. देखिए खण्ड १, पृष्ठ ११७–१२८, १८९–२११, २१७–२३२, २५८–२६० और ३३१–३५४।

२. यह आन्दोलन ट्रान्सवालके उस कानूनके खिलाफ था, जिसका मंशा भारतीयोंको निर्दिष्ट पृथक् बस्तियोंमें रहने और अपना व्यापार भी वहीं करनेके लिए बाध्य करना था। देखिए खण्ड १, पृष्ठ १८९–२१४।

चर्चा भी हुई। किन्तु किसीने मेरे कथनका प्रतिवाद नहीं किया। बल्कि सभी अखबारोंने लगभग एक स्वरसे यही कहा कि मेरा वर्णन अत्यन्त निष्पक्ष है। ऐसी सूरतमें मुझे लगा कि मैं अगर उस अंशको उद्धृत करता हूँ तो इसमें कुछ भी अनुचित नहीं है। मुझे पता है कि रायटरने उस पुस्तिकाका सार[1] तार द्वारा इंग्लैंड भेजा। यह सार मेरी उस खुली चिट्ठीसे मेल नहीं खाता था। और ज्यों ही आपको वह पुस्तिका मिली त्यों ही डर्बनके दोनों समाचारपत्रोंने लिखा कि रायटरका सन्देश बहुत अतिरंजित है।[2] रायटरने क्या कहा है और उसका क्या अभिप्राय है, इसके लिए मैं जिम्मेवार नहीं हो सकता। मेरा तो खयाल है कि प्रदर्शनकारी दलके लोगोंने अभी तक न तो मेरी वह 'खुली चिट्ठी' पढ़ी है और न वह पुस्तिका। उन्होंने तो यह समझ लिया है कि रायटरका भेजा तार पुस्तिकाका सही संक्षेप है और, इसलिए, वे इस प्रकारकी कार्रवाइयाँ कर रहे हैं। अगर मेरा यह खयाल साधार है तो मैं कहता हूँ कि यहाँके नेता भारतीयों और उपनिवेशवासियोंके साथ भी अन्याय कर रहे हैं। मैं तो निश्चयपूर्वक कहता हूँ कि जो बातें मैंने यहाँ प्रत्यक्ष कही हैं उनसे अधिक भारतमें कुछ भी नहीं कहा है। और मैंने जो इस मामलेको वहाँ पेश किया उससे इसमें कोई बिगाड़ नहीं हुआ है।"

गिरमिटिया मजदूरोंका प्रश्न

"अपनी इस भारतीय मुहिममें शर्तबन्द भारतीय मजदूरोंके प्रश्नके बारेमें आपका रुख क्या रहा?"

"अपनी पुस्तिकामें मैंने साफ-साफ लिख दिया है कि संसारके दूसरे हिस्सोंमें भारतीयोंके साथ जैसा व्यवहार हो रहा है, नेटालमें न तो उससे भला है और न बुरा। मैंने कहीं यह बतानेका प्रयत्न नहीं किया है कि उनके साथ क्रूरता हो रही है। सामान्य रूपसे कहें तो सवाल भारतीयोंके प्रति दुर्व्यवहारका नहीं, बल्कि उनपर लगाई गई कानूनी बन्दिशोंका है। पुस्तिकामें मैंने लिखा है कि मैंने जो उदाहरण पेश किये हैं वे प्रकट करते हैं कि इस दुर्व्यवहारकी जड़में उपनिवेशवासियोंके दिलमें भरा हुआ पूर्वग्रह है। और

१. देखिए पृष्ठ २००–२०१।
२. देखिए पृष्ठ २००–२०१।

मैंने प्रयास यह बतानेका किया है कि भारतीयोंकी आजादीपर बन्दिशें लगानेवाले कानूनोंका सम्बन्ध इस पूर्वग्रहसे है।"

भारतीयोंपर लगी कानूनी बन्दिशें

"मैंने आपको बताया कि यहाँके भारतीयोंने भारत-सरकार, भारतकी जनता और इंग्लैण्डकी सरकारसे यह अर्ज नहीं किया है कि उपनिवेशवासियोंके दिलोंमें उनके प्रति जो दुर्भाव भरा हुआ है उससे उन्हें छुट्टी दिलाई जाये। हाँ, मैंने यह तो अवश्य कहा है कि दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंको अधिकसे अधिक नफरतकी निगाहसे देखा जाता है और उनके साथ बुरा व्यवहार भी होता है। परन्तु इस सबके बावजूद, हमारी माँग इनसे छुट्टी पानेकी नहीं, बल्कि उनपर जो कानूनी बन्दिशें लगी हुई हैं उन्हें हटानेके लिए है। हमारा विरोध तो दुर्भावके आधारपर बने कानूनोंके प्रति है और हम राहत इन कानूनोंसे चाहते हैं। सो, यह तो भारतीयोंके लिए केवल सहिष्णुता रखनेका प्रश्न है। उपनिवेशवासियों और विशेषकर प्रदर्शन-समितिने जो रुख धारण कर रखा है वह तो असहिष्णुताका है। अखबारोंमें लिखा गया है कि भारतीय इस प्रयत्नमें हैं कि उपनिवेशको भारतीयोंसे भर दिया जाये,[1] और इसका अगुआ मैं हूँ। यह कथन एकदम झूठा है। इन मुसाफिरोंको जानेकी प्रेरणा देनेमें मेरा उतना ही हाथ है, जितना यूरोपसे मुसाफिरोंको आनेकी प्रेरणा देनेमें। मतलब यह कि ऐसा कोई प्रयत्न ही कभी नहीं किया गया।"

"मैं तो समझता हूँ कि आपके इस आन्दोलनका और उलटा असर पड़ा होगा।"

"सचमुच, यही हुआ। मैंने कुछ सज्जनोंसे यहाँ आनेके बारेमें बातचीत की। हेतु यह था कि मेरे चले जानेके बाद वे मेरे कामको सँभाल सकें। परन्तु मुझे जरा भी सफलता नहीं मिली। उन्होंने यहाँ आनेसे इनकार कर दिया।"[2]

मुसाफिरोंकी संख्या बढ़ाकर बताई गई

"*कूरलैंड* और *नादरी*पर आये हुए मुसाफिरोंकी संख्या भी बढ़ा-चढ़ाकर बताई गई है। जहाँतक मुझे पता है, इन दो जहाजोंपर ८०० मुसाफिर

१. देखिए पृष्ठ २२७–२८।
२. देखिए पृष्ठ ९२, ९८–१०० और १३४–३५।

नहीं हैं। उनकी कुल संख्या ६०० है। इनमें से नेटाल आनेवालोंकी संख्या केवल २०० है। और शेष मुसाफिर डेलागोआ-बे, मारीशस, बोरबन और ट्रान्सवाल जायेंगे। और नेटाल जानेवाले इन २०० में से भी केवल १०० नये हैं, जिनमें ४० महिलाएँ हैं। अतः अब केवल ६० नये आगन्तुकोंको प्रवेश देनेका सवाल है। ये साठ नये आगन्तुक दूकानदारोंके सहायक, अपने-आप आनेवाले व्यापारी और फेरीवाले हैं। दूसरे बन्दरगाहोंको जानेवाले जो मुसाफिर आये हैं उनको लानेमें भी मेरा कोई हाथ नहीं है। एक यह भी समाचार छपा है कि जहाजपर कोई छापनेका यन्त्र, ५० लुहार, और ३० कम्पोज़ीटर भी हैं। यह सब बिलकुल झूठ है। यह सब डर्बनके यूरोपीय कारीगरों और कर्मचारियोंको भड़कानेके लिए कहा गया है, हालाँकि ये सारी बातें एकदम निराधार हैं। हाँ, प्रदर्शन-समितिके नेता अथवा नेटालमें किसीका भी आन्दोलन करना उस हालतमें उचित होता जबकि नेटालको भारतीयोंसे, और इस प्रकारके भारतीयोंसे, भर देनेका सचमुच कोई सुसंगठित प्रयत्न होता। तब भी, याद रहे, केवल वैध आन्दोलन किया जा सकता था। परन्तु सच तो यह है कि जहाजपर एक भी कम्पोज़ीटर या लुहार नहीं है।"

कानूनी कार्रवाईकी धमकी

"यह भी कहा गया है कि जहाजोंपर आये हुए मुसाफिरोंको मैं सलाह दे रहा हूँ कि उन्हें कानूनके खिलाफ जो रोक रखा गया है उसपर वे नेटालकी सरकारके खिलाफ कानूनी कार्रवाई करें।[1] यह एक दूसरी निराधार बात है। मेरा उद्देश्य दो कौमोंके बीच झगड़ेके बीज बोना नहीं, बल्कि उनके बीच सद्भाव पैदा करनेमें मदद करना है। किन्तु इस शर्तपर कि सन् १८५८ की घोषणा उन्हें जो प्रतिष्ठा प्रदान करती है उसमें किसी प्रकार भी कमी स्वीकार करनेके लिए उनसे न कहा जाये। घोषणामें साफ कहा गया है कि सम्राज्ञीके समस्त भारतीय प्रजाजनोंके साथ समानताका व्यवहार होगा। चाहे वे किसी जाति, वर्ण या धर्मके हों, इनमें कोई भेदभाव नहीं बरता जायेगा। और मेरा निवेदन है कि प्रत्येक उपनिवेशवासीसे यह विनती करनेका

१. देखिए पृष्ठ २२८ और २३१।

मुझे हक है कि वह घोषणामें चाहे जितना भी असहमत क्यों न हो, उसे सहिष्णुताकी वृत्ति धारण करनी चाहिए। सच पूछिए तो भारतीयोंके प्रति किसीको कोई आपत्ति हो ही नहीं सकती। कलोनियल पैट्रिआटिक यूनियन [औपनिवेशिक देशभक्त संघ][1] ने वक्तव्य निकाले हैं कि कारीगर-वर्गमें बेचैनी पैदा हो गई है। किन्तु मैं तो कहता हूँ कि भारतीयों और यूरोपीयोंके बीच होड़ है ही नहीं।"

"यह सच है कि कभी-कभी कुछ भारतीय नेटाल आ जाते हैं। परन्तु नेटालमें उनकी जो संख्या है उसे बहुत बढ़ाकर बताया जा रहा है। और नये आने-वाले तो सचमुच बहुत कम हैं। फिर एक ऊँची कोटिके यूरोपीय और एक मामूली भारतीय कारीगरके बीच होड़ हो ही कैसे सकती है? मेरा मतलब यह नहीं है कि एक भारतीय कारीगर यूरोपीय कारीगरकी होड़में सफलताके साथ खड़ा ही नहीं रह सकता। परन्तु मैं फिर कहना चाहता हूँ कि ऐसे ऊँचे दर्जेके और सही प्रकारके कारीगर यहाँ आते ही नहीं। वे अगर आयें भी तो उनको यहाँ काम ही नहीं मिलेगा — जैसे कि दूसरे पेशेवालोंके लिए यहाँ कोई बहुत अधिक काम नहीं है।"

श्री गांधी वापस क्यों आये?

"वापस यहाँ आनेमें आपका क्या हेतु है?"

"मैं यहाँ कमाई करनेके लिए नहीं, बल्कि दो कौमोंके बीच सद्भाव पैदा करनेके नम्र उद्देश्यसे आया हूँ। इन कौमोंके बीच अभी बहुत अधिक गलत-खयाली है। अतः जबतक दोनों कौमें मेरी उपस्थितिपर एतराज नहीं करतीं, तबतक मैं यहाँ दोनोंके बीच सद्भाव फैलानेका यत्न करता रहूँगा।"

"आपने भारतमें जो-जो भी बातें कहीं और जो-जो भी किया उसे भारतीय कांग्रेस[2]ने पसन्द कर लिया?"

"मेरा खयाल तो बेशक यही है। मैंने जो-कुछ कहा, जनताके नामसे ही कहा।"

"इन जहाजोंपर कोई गिरमिटिया भारतीय नहीं है?"

१. डर्बनके यूरोपीयोंने नवम्बर १८९६ में स्वतन्त्र भारतीयोंके आगमनको रोकनेके लिए इस संघका संगठन किया था। देखिए पृष्ठ २०२–३।

२. यह उल्लेख नेटाल भारतीय कांग्रेसका है। देखिए खण्ड १, पृष्ठ १३०।

"नहीं। कुछ ऐसे लोग अवश्य हैं जो मामूली शर्तोंपर व्यापारियोंकी दूकानोंमें सहायकोंका काम करनेके लिए आये हैं। परन्तु वे गिरमिटिया मजदूर नहीं हैं। भारतीय प्रवासी कानून (इंडियन इमिग्रेशन लॉ)के अनुसार, किसी अनधिकृत व्यक्तिका किसीको घरेलू सेवाके लिए गिरमिटमें बाँधकर भारतसे बाहर ले जाना गैर-कानूनी है।"

प्रस्तावित भारतीय समाचारपत्र

"क्या भारतीय कांग्रेस नेटालमें कोई समाचारपत्र नहीं निकालना चाहती?"

"भारतीय कांग्रेस तो नहीं परन्तु हाँ, उससे सहानुभूति रखनेवाले कुछ कार्यकर्ता एक पत्र निकालना चाहते थे। किन्तु उस कल्पनाको छोड़ देना पड़ा — केवल इसलिए कि मैं दूसरे कामोंको करते हुए उसके लिए समय नहीं निकाल सकता था। मुझसे कहा गया था कि मैं टाइप और दूसरी सामग्री भारतमे अपने साथ लेता आऊँ। परन्तु मैंने देखा कि मैं यह काम नहीं कर सकूँगा। इसलिए मै यह कुछ नहीं लाया। मैं जिन सज्जनसे बातचीत कर रहा था उन्हें अगर यहाँ आनेके लिए राजी कर सकता तो मैं यह सब सामग्री ले आता। किन्तु मुझे उसमें सफलता नहीं मिली, इसलिए कुछ नहीं लाया।"

"उपनिवेशके इस आन्दोलनके सम्बन्धमें भारतीय कांग्रेसने क्या कदम उठाया है?"

"जहाँतक मुझे पता है, कांग्रेसने कुछ नहीं किया है।"

श्री गांधीकी योजनाएँ

"अपनी मुहिमके बारेमें आपकी क्या योजना है?"

"अपनी मुहिमके बारेमें मेरी योजना अब यह है कि अगर मुझे समय दिया गया तो मैं बताऊँ कि हमारे दोनों देशोंके हितोंमें कोई विरोध नहीं है। और यह कि उपनिवेशने जो रुख अख्तियार कर रखा है वह हर तरहसे अनुचित है। मैं उपनिवेशियोंको यह भी समझा देना चाहता हूँ कि मैंने जो काम हाथमें ले रखा है उसके लिए मैंने जो कुछ भी किया है वह उनके हितकी दृष्टिसे भी लाभदायक है। बेशक, उपनिवेशमें भारतीयोंके स्वतन्त्रतापूर्वक आनेमें रुकावट डालनेके लिए जो भी कानून बनाया जाये उसका विरोध तो हमें करना ही चाहिए। इस विषयमें भारत सरकारकी तरफसे पूरा समर्थन मिले, ऐसी स्वभावतः मेरी अपेक्षा रहेगी। उपनिवेशमें प्रवासी भारतीयोंकी भरमार हो जायेगी, यह खतरा तो बिलकुल है ही नहीं। कूर्लैंड एक बार अपनी

फेरियोंमें करीब सौ नये आगन्तुकोंको वापस भारत ले गया था। इसलिए मैं निवेदन करना चाहता हूँ कि नेतागण उपनिवेशके सामने कोई कठोर नीति पेश करें उससे पहले अपने तथ्योंकी जानकारी पक्की कर लें।[1] स्वतन्त्र भारतीयोंकी संख्यामें इधर कोई वृद्धि नहीं हुई है। उपनिवेशमें इन आने-जानेवालोंकी संख्याका नियन्त्रण पूर्ति और माँगका कानून ही कर रहा है।"

श्री गांधीने संवाददातासे अनुरोध किया कि वह *एडवर्टाइज़र*के सम्पादकको उनकी तरफसे धन्यवाद दे कि उन्होंने उनको [श्री गांधीको] अपने विचार प्रकट करनेका अवसर प्रदान किया।

श्री गांधीसे विदा लेते समय संवाददाता ने उन्हें बताया कि इस समय डर्बनकी जनतामें उनके प्रति क्षोभ है, इसलिए उनको अपनी सुरक्षाके लिए जहाजसे उतरनेके बारेमें बहुत ही सावधान रहना चाहिए — क्योंकि श्री गांधी उतरनेके बारेमें कृत-निश्चय थे।

[अंग्रेजीसे]

नेटाल एडवर्टाइज़र, १४-१-१८९७

२०. पत्र[2] : महान्यायवादीको

जनवरी १३, १८९७को *कूरलेंड* जहाजसे उतरनेपर डर्बनमें प्रदर्शनकारी भीड़के एक हिस्सेने गांधीजीपर हमला किया था। उस समय उनकी हत्या हो कर डाली गई होती; मगर पहले तो डर्बनके पुलिस सुपरिंटेंडेंटकी पत्नी, श्रीमती अलेक्जेंडरके वीरतापूर्ण हस्तक्षेपके कारण और बादमें, जब वह मकान घेर लिया गया, जिसमें गांधीजी रुके थे, स्वयं उस अफसरकी चतुराईसे उनके प्राणोंकी रक्षा हो गई। उपनिवेश-मन्त्री श्री चेम्बरलेनने नेटाल-सरकारको तार दिया कि जिन लोगोंने गांधीजीपर आक्रमण किया है उनपर मुकदमा चलाया जाये। परन्तु जब महान्यायवादी (अटर्नी-जनरल) श्री एस्कम्बने उनपर मुकदमा चलानेके लिए गांधीजीसे मदद माँगी, तब गांधीजीने यह इच्छा व्यक्त की कि उन लोगोंके खिलाफ कोई कार्रवाई न की जाये। महान्यायवादीने यह बात लिख देनेको कहा, तो गांधीजीने तुरन्त निम्नलिखित पत्र लिख दिया, जो बादमें श्री चेम्बरलेनके पास भेज दिया गया था।

१. यूरोपीयोंने, नवम्बर १८९६में, एक "कलोनियल पैट्रिऑटिक यूनियन" (औपनिवेशिक देशभक्त संघ) की स्थापना की थी, जिसका उद्देश्य "स्वतन्त्र एशियाइयोंकी और अधिक भरमारको रोकने" के उपाय करना था। देखिए पृष्ठ २०२।

२. इस पत्रका पाठ अखबारकी कतरन (एस० एन० २१५६) में भी उपलब्ध है।

बीच ग्रोव, डर्बन
जनवरी २०, १८९७

सेवामें
माननीय हैरी एस्कम्ब
महान्यायवादी
पीटरमैरित्सबर्ग

महोदय,

आपने मेरे बारेमें जो कृपापूर्ण पूछताछ की है और पिछले बुधवारकी घटनाके बाद सरकारी कर्मचारियोंने मेरे प्रति जो सहृदयता दिखाई थी, उसके लिए मैं आपको और सरकारको धन्यवाद देता हूँ।

मेरा निवेदन है कि मैं नहीं चाहता, पिछले बुधवारको कुछ लोगोंने मेरे साथ जो बरताव किया था उसका कोई खयाल किया जाये। उस बरतावका कारण मैंने एशियाइयोंके प्रश्नके सम्बन्धमें भारतमें जो-कुछ किया उसकी गलत-फहमी था, इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं है।

मेरा फर्ज है, मैं सरकारको बता दूँ कि समुद्री पुलिसने तो आपके आदेशोंके अनुसार मुझे गुपचुप रातको निकाल ले जानेका प्रस्ताव किया था, फिर भी मैं श्री लॉटन[1] के साथ तटपर चला गया। यह मैंने अपनी जिम्मेदारीपर किया और समुद्री पुलिसको इसकी सूचना नहीं दी।

आपका, आदि,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

मुख्य उपनिवेशमन्त्रीके नाम नेटालके गवर्नरके खरीता नं. ३२, ता० ३ मार्च, १८९७ का सहपत्र।

१. डर्बनके एक यूरोपीय एडवोकेट, जो गांधीजीके मित्र थे।

२१. डर्बनमें जहाजसे उतरनेपर[1]

प्रेषक [डर्बन, जनवरी २८, १८९७][2]

भारतीय

सेवामें

(१) इन्काज़[3]

(२) सर विलियम हंटर, मारफत *टाइम्स*

(३) भावनगरी, लंदन

दो भारतीय जहाज *कूरलैंड*, *नादरी* ३० नवम्बर[4]को बम्बईसे चले। १८ दिसम्बरको आये। सारी यात्रामें पूर्ण स्वस्थताका प्रमाणपत्र होनेपर भी ५ दिन सूतक (क्वारंटीन)में [रखे गये]। बम्बई रोग-संसर्गित बन्दरगाह घोषित दूसरे दिन। स्वास्थ्य-अधिकारी मुअत्तिल। दूसरा नियुक्त। वह २४ को जहाजमें आया। शोधन-सफाई, पुराने कपड़े, पट्टियाँ आदि जलानेका आदेश दिया। ११ दिनका सूतक जारी किया। जलाना आदि २५ को हुआ। २८ को पुलिस अफसर आया। फिर सफाई-शोधन किया। बिस्तर, बोरे, कपड़े आदि जलाये। २९ को स्वास्थ्य अधिकारी जहाजमें आया। सन्तोष प्रकट किया। फिर १२ दिनका सूतक जारी किया। प्रैटीक[5] १० जनवरीको मिलना था, ११ को

१. इस तारमें उल्लिखित तमाम घटनाओंका विवरण श्री चेम्बरलेनके नाम प्रार्थनापत्र (पृष्ठ १९७–३२०) में विस्तारके साथ दिया गया है।

२. इस तारकी दफ्तरी नकलमें तारीख नहीं है। यहाँ जो तारीख दी गई है उसका आधार सर विलियम विल्सन हंटरके नाम जनवरी २९, १८९७के पत्रमें इस तारका उल्लेख है (देखिए, पृष्ठ १८३)।

३. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी लंदन-समितिका तारका पता।

४. *कूरलैंड* नवम्बर २८को और *नादरी* नवम्बर ३०को रवाना हुआ था; देखिए पृष्ठ २०६।

५. प्रैटीक: संक्रामक रोग सम्बन्धी सूतक (क्वारंटीन) की अवधि समाप्त होने या पूर्ण स्वस्थताका प्रमाणपत्र पेश करनेपर जहाजको बन्दरगाहके साथ काम-काज चलानेकी अनुमति।

दिया गया। जहाजके पहुँचनेपर स्वयंसेवक अफसरों और दूसरोंने यात्रियोंको उतरनेसे जबरन रोकनेके लिए सभाएँ कीं। सभाओंके लिए नगरके सभाभवन (टाउनहाल) का उपयोग हुआ। व्याख्याताने घोषणा की—सरकारकी सहानुभूति है, रक्षामंत्रीने कहा है कि सरकार भीड़का विरोध नहीं करेगी। और कहा—दोनों जहाजोंमें नेटाल आनेवाले ८०० यात्री हैं, अधिकतर कारीगर और मजदूर हैं, भारतीयोंसे उपनिवेशको भर देनेकी योजना है, जहाजमें छापनेकी मशीन है, आदि। ऐसे कथनसे आन्दोलन बढ़ा, लोग भड़के। सच यह है—यात्री सिर्फ ६००, नेटाल आनेवाले २०० से ज्यादा नही, सो भी व्यापारी, उनके सहायक, रिश्तेदार, पुराने निवासियोंकी पत्नियाँ, बच्चे। उपनिवेशपर छा जानेकी कोई योजना नहीं। छपाईकी कोई मशीन नहीं। सरकार द्वारा नियुक्त सूतक-समितिके एक सदस्यने भीड़की छठी टुकड़ीका नेतृत्व किया। यात्रियोंको चेतावनी [दी गई कि] डर्बनके हजारों लोगोंका विरोध न सहना हो तो भारत लौट जाओ। कूरलैंडके यात्री गाधीको मुँहमें डामर पोत देने, खाल उधेड़ देने, पत्थरोंसे मार डालनेकी धमकी। जहाजके एजेंटोंने सूतक लगानेकी अवैधता बताकर सरकारसे यात्रियोंको राहत और संरक्षण देनेका अनुरोध किया। तेरह तारीखको प्रदर्शनके बादतक एजेंटोंके पत्रकी उपेक्षा की गई। सरकारी रेलवेके कर्मचारियों, स्वयंसेवकों, ३०० लट्ठबन्द काफिरों सहित हजारों लोग "जरूरत पड़े तो जबरदस्ती यात्रियोंको उतरनेसे रोकनेके लिए" जहाज-घाटपर इकट्ठे हुए थे। रक्षामंत्री जहाजको घाटपर लाये। उन्होंने भीड़के सामने भाषण किया। भीड़ बरखास्त हो गई। यात्रियोंको सुरक्षाका आश्वासन दिया गया। कुछ तीसरे पहर उतर गये। शेष दूसरे दिन उतरे। सरकारने गाधीको गुपचुप रातको उतार लेनेका प्रस्ताव किया। वे तीसरे पहर देरसे उतरे। साथमें एडवोकेट लॉटन थे। भीड़ने हाथापाई की, प्रहार किया। पुलिसने बचाया। अखबार प्रदर्शनकी निन्दा कर रहे हैं। मंजूर करते हैं कि आन्दोलनकारी झूठे बयानोंपर चले। गांधीको

सही बताते हैं। कुछ पत्र सरकार और आन्दोलनकारियोंमें गठबन्धनका शक करते हैं। यात्रियोंको भारी हानि पहुँची है। सरकार कोई ध्यान नहीं दे रही। सूतकके दिनों भारतीय सूतकवासी-सहायता निधिसे बिस्तर, भोजन आदि दिया गया। सरकार भारतीयोंके विरुद्ध कानून बनानेके लिए ब्रिटिश सरकारके साथ लिखा-पढ़ी कर रही है। कृपया चौकसी रखिए।

हस्तलिखित अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० १८८३)से।

२२. पत्र : ब्रिटिश एजेंटको

[सेंट्रल वेस्ट स्ट्रीट, डर्बन]
नेटाल
जनवरी २९, १८९७

सेवामें
श्रीमान् ब्रिटिश एजेंट
प्रिटोरिया

श्रीमन्,

चार्ल्स टाउनके रास्ते ट्रान्सवाल जानेवाले अनेक भारतीयोंको सीमा पार करनेमें कठिनाई होती है। कुछ दिन हुए सीमापर नियुक्त कर्मचारियोंने उन भारतीयोंको, जिनके पास २५ पौंडकी रकम थी, ट्रान्सवालमें अपने-अपने गन्तव्य स्थानको जाने दिया था। अब कहा जा रहा है कि पहले भले ही कुछ लोग चले गये हों, परन्तु अब सीमाके कर्मचारी किसी भी हालतमें भारतीयोंको सीमा पार नहीं जाने देंगे। मेरा निवेदन है कि क्या आप सम्राज्ञीके भारतीय प्रजाजनोंकी ओरसे निश्चित पता लगानेकी कृपा करेंगे कि उन्हें किन परिस्थितियोंमें सीमा पार करने दी जायेगी?

आपका, आदि,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

प्रिटोरिया आर्काइव्ज और कलोनियल आफ़िस रेकर्ड्स, साउथ आफ्रिका, जनरल, १८९७।

२३. पत्र : विलियम विल्सन हंटरको

डर्बन

जनवरी २९, १८९७

[सर विलियम हंटर
लंदन][1]

श्रीमन्,

मैं १८ दिसम्बरको नेटाल पहुँचा, परन्तु १३ जनवरीके पहले डर्बनमें उतर नहीं सका। यह देरी जिन परिस्थितियोंमें हुई वे बहुत दर्दभरी हैं। कल भारतीय समाजने आपको एक बहुत लम्बा तार[2] भेजा है। उसमें गत तीस दिनोंकी घटनाओंका विवरण दिया जा चुका है। मैं नीचे वे परिस्थितियाँ बतानेकी इजाजत लेता हूँ, जिनका अन्त डर्बनके ५,००० लोगोंके प्रदर्शनमें हुआ। प्रदर्शनका उद्देश्य *कूर्लैंड* और *नादरी* जहाजोंसे यात्रियोंके उतरनेका विरोध करना था। इन जहाजोंमें से पहला डर्बनकी दादा अब्दुल्ला ऐंड कम्पनीका है और दूसरा (बम्बईकी) पर्शियन स्टीम नैविगेशन कम्पनीका।

गत अगस्तके आरम्भके आसपास टोंगाट शकर कम्पनीने प्रवासी न्यास निकाय (इमिग्रेशन ट्रस्ट बोर्ड) को अर्जी दी थी कि गिरमिट प्रथाके अन्तर्गत ग्यारह भारतीय कारीगरोंको ला दिया जाये।[3] इससे आम भारतीयोंके खिलाफ यूरोपीय कारीगरोंके संगठित विरोधका सूत्रपात हो गया। डर्बन, मैरित्सबर्ग और अन्य शहरोंमें यूरोपीय कारीगरोंकी बड़ी-बड़ी सभाएँ हुईं और उनमें शकर कम्पनी द्वारा भारतीय कारीगरोंके बुलाये जानेका विरोध किया गया। कम्पनीने कारीगरोंकी आवाजके सामने घुटने टेक दिये और अपनी अर्जी वापस ले ली।[4] परन्तु आन्दोलन जारी रहा। नेताओंने कुछ बातें सच मान लीं

१. मूल पत्रकी नकलसे यह पता नहीं चलता कि यह किसे भेजा गया था। परन्तु सर विलियम विल्सन हंटरने अपने फरवरी २२, १८९७के पत्र (एस० एन० २०७४) में इसकी प्राप्ति स्वीकार की है। इससे स्पष्ट है कि यह उनको मिला था। सम्भव है कि दादाभाई नौरोजी और सर मंचरजी भावनगरीको भी, जिन्हें पिछले दिनका तार भेजा गया था, इसी प्रकारके पत्र भेजे गये हों।

२. देखिए पृष्ठ १८०–८२।

३. देखिए पृष्ठ १९९।

४. देखिए पृष्ठ १९९।

और आन्दोलनको, लगभग बिना भेदके, सारेके सारे भारतीयोंके खिलाफ बढ़ने-फैलने दिया। अखबारोंमें भारतीयोंके विरुद्ध आवेशपूर्ण पत्र छपते रहे। इनमें से अधिकतर बनावटी नामोंसे लिखे जाते थे। जब यह सब जारी ही था तब अखबारोंमें इस आशयके वक्तव्य प्रकाशित हुए कि भारतीयोंने उपनिवेशको स्वतंत्र भारतीयोंसे पूर देनेके लिए एक आयोजन किया है। इसीके आसपास मेरी पुस्तिकाके बारेमें रायटरका तार[1] प्रकाशित हुआ। उसने उपनिवेशियोंको आगबबूला बना दिया। तारमें बताया गया था कि मैंने कहा है, भारतीयोंको लूट लिया जाता है, मारा-पीटा जाता है, आदि। परन्तु जब पत्रोंको मेरी पुस्तिकाकी नकलें प्राप्त हुई तब उन्होंने मंजूर किया कि मैंने ऐसी कोई बात नही कही, जो नेटालमें पहले नहीं कही गई और जो सही नहीं मानी जा चुकी। परन्तु सामान्य जनताके, जिसने रायटरके तारसे अपनी राय कायम की थी, मनमें कड़वाहट बनी रही। इसके बाद बम्बई और मद्रासकी सभाओंके बारेमें तार आये।[2] ये गलत तो नहीं थे; परन्तु इन्हें रायटरके संक्षिप्त समाचारके साथ मिला कर पढ़ा गया और इनसे भावनाएँ और भी कटु हुईं।

इस बीच, भारी संख्यामें भारतीयोंको लेकर जहाजोंका आना जारी हो था। आनेवालोंके समाचार प्रमुख रूपसे और बढ़ा-चढ़ा कर छापे गये। उन्हीं जहाजोंसे जो लगभग उतने ही भारतीय वापस जाते थे उनकी ओर ध्यान नही दिया गया। और कारीगरोंको बिना किसी आधारके यह विश्वास करा दिया गया कि ये जहाज अधिकतर भारतीय कारीगरोंको ला रहे हैं। इससे भारतीय-विरोधी संघों[3]का संगठन हुआ। उनकी बैठकोंमें प्रस्ताव पास करके नेटाल सरकारसे माँग की गई कि वह स्वतत्र भारतीयोंकी बाढ़को रोके और भारतीयोंको जमीन-जायदाद आदि खरीदने न दे। इन संघोंको व्यापार-वाणिज्य करनेवाले लोगोंका बहुत बल प्राप्त नहीं है। इनमें मुख्यत: कारीगर और थोड़े-से निजी पेशे करनेवाले लोग शामिल हैं।

जब यह सब हो रहा था उस समय खबर आई कि **कूरलैंड** और *नादरी* नामके दो जहाज भारतीय यात्रियोंको लेकर नेटाल आ रहे हैं। मैं **कूरलैंड** द्वारा यात्रा

१. देखिए पृष्ठ २००।

२. देखिए पृष्ठ ७७, १०१।

३. यूरोपीय रक्षक संघ और औपनिवेशिक देशभक्त संघ; देखिए पृष्ठ २०२–३।

कर रहा था। मुझे जाना तो था एक 'ब्रिटिश इंडिया' जहाजसे, परन्तु डर्बनसे एक तार आ गया, जिसमें मुझसे तुरन्त लौटनेका[1] अनुरोध किया गया था; इसलिए मेरा कूरलैंडसे यात्रा करना जरूरी हो गया। जैसे ही यह समाचार लोगोंमें फैला, अखबारों और डर्बनकी नगर-परिषदने माँग की कि बम्बईको संक्रामक रोगग्रस्त बन्दरगाह घोषित कर दिया जाये। जहाज १८ तारीखको नेटाल पहुँचे और उनपर बम्बई छोड़नेके दिनसे[2] २३ दिनके लिए संक्रामक रोग सम्बन्धी सूतक (क्वारंटीन) जारी कर दिया गया। बम्बईको संक्रामक रोगसे ग्रस्त बतानेवाली घोषणापर १८ दिसम्बरकी तारीख पड़ी थी और वह १९ तारीखको, अर्थात् जहाजोंके आनेके एक दिन बाद, एक विशेष सरकारी गजटमें प्रकाशित हुई थी। जिस स्वास्थ्य-अधिकारीने जहाजोंके बम्बईसे रवाना होनेके दिनसे २३ दिन पूरे करनेके लिए पाँच दिनका सूतक जारी किया था उसे बरखास्त कर दिया गया और उसके स्थानपर दूसरे व्यक्तिको नियुक्त किया गया। नया व्यक्ति पहले सूतकके बीतनेके बाद जहाजोंमें गया और उसने उस दिनसे १२ दिनका सूतक जारी कर दिया। सरकारने यह रिपोर्ट देनेके लिए एक कमेटी नियुक्त की थी कि दोनों जहाजोंके बारेमें क्या कार्रवाई की जाये। उस कमेटीने यह रिपोर्ट दी कि धुआँ आदि देनेके बाद १२ दिनका सूतक जरूरी होगा। इस समय स्वास्थ्य-अधिकारीने धुआँ आदि देने और शोधन करनेकी सूचनाएँ दीं, जिन्हें पूरा कर दिया गया। इसके ६ दिन बाद दोनों जहाजोंमें एक-एक अफसरको धुआँ देने आदिका काम जाँचनेके लिए भेजा गया। बादमें स्वास्थ्य-अधिकारी फिरसे आया और उसने उस दिनसे १२ दिनका सूतक जारी किया। इस प्रकार यदि कमेटीकी रिपोर्ट उचित भी हो तो भी १२ दिनका सूतक शुरू होनेके पहले साफ ११ दिन बरबाद हुए।

जब कि जहाज इस तरह बाहरी लंगरस्थलमें पड़े हुए थे, श्री हैरी स्पार्क्स नामके एक स्थानिक कसाईने, जो कि स्वयंसेवक सेनाकी 'नेटाल माउंटेड राइफल्स' टुकड़ीका कप्तान है, अपने हस्ताक्षरोंमें एक सूचना प्रकाशित की। उसमें "११ तारीखको आयोजित एक आम सभामें शामिल होनेके लिए डर्बनके हरएक आदमीका" आह्वान किया गया था और बताया गया था कि

१. देखिए पृष्ठ १३९।
२. देखिए पादटिप्पणी ४, पृष्ठ १८०।

"सभाका उद्देश्य एक प्रदर्शनका आयोजन करना है, ताकि प्रदर्शनकारी बन्दरगाहपर जायें और एशियाइयोंके उतरनेका विरोध करें।"[1] इस सभामें बहुत बड़ी संख्यामें लोग शामिल हुए थे और यह डर्बनके नगर-भवनमें हुई थी। तथापि, इसकी यह शिकायत थी कि समाजके अपेक्षाकृत ज्यादा समझदार लोग आन्दोलनमें सक्रिय भाग लेनेसे दूर रहे। यह भी याद रखने लायक है कि पहले जिन संघोंका जिक्र किया जा चुका है उन्होंने भी इस आन्दोलनमें भाग नहीं लिया। ऊपर बताई हुई कमेटीके एक सदस्य तथा जहाजी कार्बाइनियरों[2]के कप्तान डा० मैकेंजी और एक स्थानिक सालिसिटर तथा डर्बन लाइट इनफैंट्रीके कप्तान श्री जे० एस० वाइली उसके मुख्य अगुवा थे। सभामें उत्तेजक भाषण दिये गये। निश्चय किया गया कि "सरकारसे माँग की जाये कि दोनों जहाजोंके यात्रियोंको उपनिवेशके खर्चपर भारत वापस भेज दिया जाये। और यह कि, इस सभामें हाजिर हर आदमी मंजूर करता है और प्रतिज्ञा करता है कि वह उपर्युक्त प्रस्तावको कार्यान्वित करनेमें सरकारको सहायता देनेकी दृष्टिसे देशकी जो-कुछ भी माँग होगी उसे पूर्ण करेगा; और इस दृष्टिसे, अगर जरूरत हुई तो, उससे जब कहा जायेगा वह बन्दरगाहपर हाजिर होगा।" सभाने यह सुझाव भी दिया कि सूतककी अवधि और बढ़ा दी जाये और अगर ऐसा करनेके लिए जरूरी हो तो संसदका एक विशेष अधिवेशन किया जाये। मेरे नम्र मतसे सभाने इस प्रकार साफ जाहिर कर दिया कि पहले जो सूतक जारी किया गया था उसका मंशा सिर्फ यह था कि भारतीयोंको इतना परेशान कर दिया जाये कि वे भारत वापस चले जायें।

सरकारने तार द्वारा प्रस्तावोंका उत्तर दिया। उसमें कहा गया कि "हमें सम्राज्ञीकी प्रजाके किसी वर्गको उपनिवेशमें उतरनेसे रोकनेका सूतक-कानूनोंसे प्राप्त अधिकारोंके अलावा और कोई अधिकार नहीं है।" उसमें उपर्युक्त दूसरे प्रस्तावमें सुझाई गई कार्रवाईकी निन्दा भी की गई। इसपर नगर-भवनमें दूसरी सभा की गई।[3] श्री वाइलीने उसमें यह प्रस्ताव किया कि सूतककी अवधि बढ़ानेके लिए संसदका एक विशेष अधिवेशन किया जाये। यह प्रस्ताव स्वीकृत हो गया। श्री वाइलीने जो भाषण दिया उसके कुछ अर्थगर्भित अंश

१. देखिए पृष्ठ २१०–११।
२. कार्बीन नामकी छोटी, हलकी राइफलसे लैस सैनिक।
३. देखिए पृष्ठ २१३–१८।

ये हैं : "कमेटीने कहा, अगर सरकारने कुछ नहीं किया तो डर्बनको स्वयं करना होगा और दल-बलके साथ बन्दरगाहपर जाकर देखना होगा कि क्या-कुछ किया जा सकता है।" और, सबसे ऊपर उन्होंने कहा : "हम मानते हैं कि आपको इस उपनिवेशकी सरकार और वैध सत्ताके प्रतिनिधिकी हैसियतमें हमें रोकनेके लिए सैन्यबल लाना होगा।" महान्यायवादी और रक्षामंत्री श्री एस्कम्बने कहा : "हम ऐसा कुछ नहीं करेंगे। हम आपके साथ हैं, और हम आपको रोकनेके लिए ऐसा कुछ भी करनेवाले नहीं हैं। परन्तु अगर आप हमें ऐसी स्थितिमें डाल देंगे तो शायद हमें उपनिवेशके गवर्नरके पास जाकर कह देना होगा कि अब हम शासन चलानेमें असमर्थ हैं, इसलिए आप उपनिवेशकी बागडोर खुद सँभालिए। आपको कोई दूसरे आदमी खोजने होंगे।" दूसरा प्रस्ताव यह था कि "भारतीयोंके आनेपर हम प्रदर्शन करते हुए बन्दरगाहपर जायेंगे; परन्तु हरएक व्यक्ति अपने नेताओंकी आज्ञा माननेकी प्रतिज्ञा करता है।" भाषणकर्ताओंने श्रोताओंको मेरे खिलाफ खास तौरसे उभाड़ा। लोगोंके हस्ताक्षरोंके लिए एक पर्चा निकाला गया था। उसका शीर्षक यह था : "धन्धा या पेशा-सहित सूची—उन सदस्योंके नामोंकी जो बन्दरगाहपर जाने और, जरूरत हो तो, बलपूर्वक एशियाइयोंके उतरनेका विरोध करने और नेता लोग जो भी आदेश दें उनका पालन करनेके लिए राजी हैं।" आन्दोलनका दूसरा कदम यह था कि प्रदर्शन-समितिने कूरलैंडके कप्तानको अन्तिम चेतावनी भेजी कि यात्री उपनिवेशके खर्चपर भारत लौट जायें, और अगर वे नहीं मानेंगे तो डर्बनके हजारों लोग उनके उतरनेका प्रतिरोध करेंगे। इसकी लगभग उपेक्षा कर दी गई।

जब आन्दोलन इस तरह बढ़ रहा था उस समय एजेंटोंने सरकारके साथ लिखा-पढ़ी की और यात्रियोंके संरक्षणकी माँग की। इसका कोई उत्तर १३ तारीख तक, जब कि जहाज बन्दरगाहपर लाया गया, नहीं दिया गया। जिस तार[1]की एक नकल इसके साथ नत्थी है, उसमें बहुत-कुछ जोड़नेको नहीं रहा। जहाँतक मुझपर हमलेकी बात है, उसका कारण मेरे बारेमें अखबारोंमें प्रकाशित गलतफहमियाँ थीं। प्रत्यक्ष आक्रमण गैर-जिम्मेदार लोगोंका काम था। और सिर्फ उसीको देखा जाये तो उसका बिलकुल खयाल करनेकी जरूरत नहीं है। बेशक, मैं अपनी हत्यासे बाल-बाल बच गया। अखबार

१. देखिए पृष्ठ १८०।

इस विषयमें एकमत हैं कि मैंने ऐसा कोई काम नहीं किया जो मेरी स्थितिमें होनेपर कोई दूसरा व्यक्ति न करता। मैं यह भी कह दूं कि हमलेके बाद सरकारी कर्मचारियोंने मेरे साथ बहुत सहृदयताका व्यवहार किया और मुझे संरक्षण प्रदान किया।

अब सरकार भारतीयोंकी बाढ़को रोकनेके लिए अगले मार्च महीनेमें कानून बनानेका इरादा कर रही है। नगर-परिषदें सरकारसे अधिकसे अधिक व्यापक अधिकारोंकी माँग कर रही हैं, ताकि वे भारतीयोंको व्यापारके परवाने पाने और जमीन-जायदाद खरीदने आदिसे रोक सकें। परिणाम क्या होगा, यह कहना कठिन है। हमारी आशा केवल आपमें और उन सज्जनोंमें निहित है जो हमारी ओरसे लंदनमें काम कर रहे हैं। किसी भी हालतमें अब समय आ गया है जब कि ब्रिटिश सरकारको भारतसे बाहर जानेवाले भारतीयोंके सम्बन्धमें अपनी नीतिकी कुछ घोषणा कर देनी चाहिए। वर्तमान परिस्थितियोंमें नेटालको सहायतायुक्त प्रवास जारी रखना बहुत असंगत मालूम होता है। एशियाइयोंके उपनिवेशमें छा जानेका खतरा बिलकुल है ही नहीं। भारतीय और यूरोपीय कारीगरोंके बीच कोई प्रतिद्वंद्विता नहीं है। यह कहना करीब-करीब ठीक ही होगा कि नेटाल आनेवाले हर भारतीयके पीछे एक भारतीय भारतको वापस चला जाता है। इस सारी बातपर श्री चेम्बरलेनके नाम एक प्रार्थनापत्र[1]में पूरी तरह प्रकाश डाला जायेगा। प्रार्थनापत्र तैयार किया जा रहा है। इसी बीच यह पत्र इसलिए भेजा जा रहा है कि आपको पिछली घटनाओंका सार-रूपमें परिचय हो जाये। हम जानते हैं कि आपका समय दूसरे कामोंमें काफी घिरा रहता है। परन्तु हम आपको कष्ट देनेके कितने भी अनिच्छुक हों, अगर हमें न्याय प्राप्त करना है तो हमारे पास इसके सिवा कोई चारा नहीं है।

नेटालके भारतीय समाजकी ओरसे सधन्यवाद,

आपका आज्ञाकारी सेवक,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी दफ्तरी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० १९६७) से।

१ देखिए पृष्ठ १९७।

२४. भारतमें अकाल

यह अपील, और दक्षिण आफ्रिकी जनताके विभिन्न वर्गोंके नाम इसके बादकी तीन अपीलें कलकत्तेकी केन्द्रीय अकाल-पीड़ित सहायता-समितिके अनुरोधपर निकाली गई थीं। समितिने ब्रिटिश उपनिवेशोंकी जनतासे भारतीय अकाल सहायता कोषमें चन्दा देनेकी अपील की थी। अकाल १८९६–९७ में पड़ा था।

डर्बन
फरवरी २, १८९७

सेवामें
सम्पादक
नेटाल मर्क्युरी

महोदय,

मैं भारतके अकालपर कुछ विचार व्यक्त करना चाहता हूँ। उसके सम्बन्धमें ब्रिटिश उपनिवेशोंसे धनकी अपील की गई है। शायद आम तौरसे लोग जानते नहीं हैं कि भारत अपने राजा-महाराजाओंकी सम्पत्तिके बढ़े-चढ़े बखानके बावजूद दुनियाका सबसे गरीब देश है। सबसे बड़े भारतीय अधिकारियोंका कहना है कि "शेष पाँचवाँ हिस्सा (अर्थात्, ब्रिटिश भारतकी आबादीका) या ४ करोड़ लोग पेट-भर भोजनके बिना सारी जिन्दगी बसर करते हैं।" यह ब्रिटिश भारतकी साधारण अवस्था है। साधारणतः हर चार वर्षमें वहाँ अकाल पड़ता है। ऐसे समयमें उस दरिद्रताके मारे देशके लोगोंकी हालत कैसी होगी, इसकी कल्पना करना कठिन नहीं होना चाहिए। बच्चे अपनी माताओंसे छिन रहे हैं, पत्नियाँ अपने पतियोंसे। हलकेके हलके नष्ट हो रहे हैं। और यह हालत है, एक अत्यन्त उदार सरकार द्वारा की गई पेशबन्दियोंके बावजूद। हालके अकालोंमें १८७७–७८ का अकाल सबसे उग्र था। उसमें मरे हुए लोगोंके बारेमें अकाल-आयुक्त (फैमिन कमिश्नर) की रिपोर्ट इस प्रकार है: "भारतके ब्रिटिश शासनाधीन प्रान्तोंकी कुल आबादी १९,७०,००,००० थी। अनुमान लगाया जाता है कि १८७७–७८ के अकालमें इसमें से ५२,५०,००० लोग मर गये। मौसम साधारणतः स्वास्थ्यकर होनेपर जो मृत्यु-संख्या होती वह इससे बाद कर दी गई है।" इस संकटमें हुआ कुल खर्च १ करोड़ पौंडसे ज्यादा है।

आसार ऐसे दीखते हैं कि उग्रतामे वर्तमान अकाल पहलेके सब अकालोंको मात देनेवाला होगा। संकट अभी ही उग्र हो चुका है। परन्तु गरमीका समय सबसे भीषण होगा और वह अभी आनेको है। मेरे खयालसे यह पहला ही मौका है कि भारतने ब्रिटिश उपनिवेशोंके सामने हाथ फैलाया है। आशा है कि इसका उत्तर उदारतापूर्वक दिया जायेगा। कलकत्तेकी केन्द्रीय अकाल-सहायता समितिने उपनिवेशोंमे प्रार्थना[1] करनेके पहले और तमाम साधनोंको बटोर ही लिया होगा। और अगर हमारा उत्तर प्रार्थनाकी आतुरताके अनुरूप न हुआ तो बड़ी दयनीय बात होगी।

बात सच है कि दक्षिण आफ्रिकामें भी परिस्थितियाँ कुछ विशेष सुखद नही हैं। फिर भी यह तो मानना ही होगा कि भारत और दक्षिण आफ्रिकाके संकटमें कोई तुलना नही हो सकती। और, इसलिए, मैं भरोसा करनेका साहस करता हूँ कि नेटालके धनिक भारतमे भूखसे मरते हुए अपने करोड़ों बन्धु-प्रजाजनोंकी सहायतामे अपने खीसे खाली कर देंगे। अगर उनके सामने दक्षिण आफ्रिकाके ही गरीबोंकी सहायताका सवाल हो तो भी उससे उनके इस दानमे कोई रुकावट नही आयेगी। मेरा विश्वास है, इंग्लैंडमें और उपनिवेशोंमे, सर्वत्र, ब्रिटिश परोपकार-भावना भी प्रबल हो उठेगी। पिछले अवसरोंपर जब-जब मानवजातिपर संकट आया है वह प्रबल होती रही है। इस बातका कोई खयाल नही हुआ कि संकट किस स्थानपर है और कितनी बार आया है।

आपका,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

नेटाल मर्क्युरी, ४–२–१८९७

१. देखिए पृष्ठ ३४९–५०।

२५. हिन्दुस्तानमें बड़ा दुकाळ

*नेटाल एडवर्टाइज़र*में भारतीय समाजके नाम अंग्रेजीमें निम्नाशयकी अपीलके साथ जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी उससे मालूम होता है कि जैसे ही डर्बनके मेयरने अकाल-पीड़ितोंकी सहायताके लिए चन्देकी माँग की वैसे ही, फरवरी ३ को, भारतीयोंकी एक सभा की गई। उसमें आरम्भिक रूपमें ७०० पौंड चन्दा एकत्र किया गया। मैरित्सबर्ग, न्यूकैसिल, लेडीस्मिथ, चार्ल्सटाउन, डंडी तथा अन्य केन्द्रोंमें भी चन्दा एकत्र करनेके लिए एक समिति बनाई गई। उस समितिकी बैठक फरवरी ४ को हुई और यह अपील अखबारोंको भेज दी गई।

नीचे जो पाठ दिया जा रहा है वह साबरमती संग्रहालयमें उपलब्ध हिन्दी प्रतिकी हू-ब-हू नकल है, जिसमें मात्राओं आदिका भी कोई फर्क नहीं किया गया।

[फरवरी ३, १८९७][1]

हिन्दी भाईबंद। अपने हमेश खापीके मझा करते है और हिन्दुस्थानमें लाखो आदमी भुखसे मरते है यह बारेमें अपनेकु ख्याल करना चाहीए. आपकु मालम होगा कि आजकाल हिन्दुस्थानमें दुकाळके लीए बडा कोप हुआ है और लाखो आदमी मरते है. उसकु मदद करनेके वास्तो राणी सरकारके सब मुलकमे अपने हिन्दुस्थानके वडे बडे आदमी अरजी करते है ऐसें लोककु अपने हिन्दुस्थानी लोकने मदद करना ओ बड़ी फरज है. कोई ऐसा नही केने सकते के हम तो कल दो तीन फालेमें पैसा दीया. कबी एक आदमी तुमारा दरवाजा पर भुखसे मरता तब तुम एसा वोलने सकते नही. और तुम एसा बी नही वोल सकते कि तुमारे देनेसे इतना बोत आदमीकु क्या मदद होगा. ऐसा सब आदमी बोलते तो हिन्दुस्थानमें वोह दुःखी लोकमेंसे कोईबी आदमी जीएगा नही. हम आप सबकु आजीजी करके बोलते है के आपसे जीतना बने इतना देना चाहीए.

१. स्पष्ट है कि भारतको अकाल-पीड़ित जनताके सहायतार्थ धनकी इस अपीलका मसविदा फरवरी ३ को तैयार किया गया होगा। वह या तो उसी दिन आम सभामें या ४ फरवरीको समितिकी बैठकमें स्वीकार हुआ होगा। साबरमती संग्रहालयमें इस अपीलकी दफ्तरी नकलें तीन अन्य भाषाओं — गुजराती, उर्दू और तमिलमें भी उपलब्ध हैं। उनसे, और सर फ्रान्सिस मैक्लीनके नाम अपने मई ७, १८९७के पत्रमें गांधीजीने इस विषयका जो उल्लेख किया है (पृष्ठ ३४९–५०) उसमे, स्पष्ट है कि यह अपील उक्त भाषाओंमें भी तैयार की गई थी।

ए पैसा जमा करनेके वास्ते एक जमात हुई है, और जो कोई आदमी कमती में कमती दश शीलींग देयगा उसका नाम हिन्दुस्थानके बड़े बड़े छापेमें आयगा. जमातमें, बाबु दादा अबदुला, बाबु महमद कासम कमरूदीन, बाबु आजम गुलाम हुसेन, बाबु मोहनलाल राय, बाबु सैयद महमद, बाबु सायमन वेडमुटु, बाबु आदमजी मीयाखान, बाबु रुस्तमजी, बाबु पी. दावजी महमद, बाबु मुसा हाजी कासम, बाबु दाउद महमद, बाबु डन, बाबु रायपन, बाबु लोरेन्स, बाबु गोडफ्रे, बाबु उसमान आमद, बाबु एन. वी. जोशी, बाबु जोस्युआ, बाबु गेब्रीअल, बाबु हाजी अब्दुला, बाबु हासम मुमार, बाबु पीरन महमद, बाबु मोगरारीआ, बाबु एम. के. गांधी और दुसरे बाबु लोक है.

कमतीमें कमती अपने लोकमें एक हजार पौंड होना चाहीए. और उससे जास्ती पण होना चाहीए. लेकीन कीतना होना वो तुमारी दीलसोजी उपर है. इंग्लीश और तामीलमें लीखेली रसीद याने पहोंच वीना कोइकु पैसा देना नहि। उसमें सही बाबु एम. के गांधी और जो बाबु पैसा लेनेकु जायगा उस्की होना चाहीए.

दादा अबदुलाकी कंपनी	एम० राय
महमद कासम कमरूदीन	सुलेमान दाउजी
आजम गुलाम हुसेन	सैयद महमद
पारसी रूस्तमजी	मोगरारीया
रेव० सीमन वेदमुटु	जोसफ रोयोपन
मुसा हाजी कासम	एम० ई० काथराटु
पी० दावजी महमद	बी० लोरेन्स
ए० सी० पीले	ए० जोस्युआ
आदमजी मीयाखान	जी० गोडफ्रे
हाजी अबदुला	जे० डन
दाउद महमद	गेब्रील ब्रधर्स
उसमान अहमद	पीरन महमद
हुसन कासम	हासम सुमार
मुसा हाजी आदम	एम० के० गांधी

साबरमती संग्रहालयमें सुरक्षित हिन्दी नकल (एस० एन० ३४७६)से।

२६. पत्र : जे० बी० राबिन्सन[1]को

वेस्ट स्ट्रीट, डर्बन
फरवरी ४, १८९७

सेवामें
जे० बी० राबिन्सन महोदय
जोहानिसबर्ग

श्रीमन्,

हम, नेटालवासी भारतीय समाजके प्रतिनिधियोंकी हैसियतसे, आपको जोहानिसबर्गके ब्रिटिश समाजका एक नेता मानकर, आपकी सेवामें आदरपूर्वक उपस्थित हो रहे हैं। हम जिस विषयमें निवेदन करना चाहते हैं उसे, हमारा दृढ़ विश्वास है, आपकी पूरी सहानुभूति और समर्थन प्राप्त है।

भारतके वर्तमान अकालने पिछले सब अकालोंको मात दे दी है और भुखमरी तथा उससे पैदा होनेवाली बुराइयोंके कारण जनता जिस भयानक स्थितिमें पड़ गई है वह भारतके अकालोंके इतिहासमें बेजोड़ है। यह उग्र संकट इतना व्यापक है [कि] सरकार और जनता दोनोंने भारतीयोंसे अधिकसे अधिक दान देनेकी प्रार्थना की है। भारतके सब हिस्सोंमें अकाल-पीड़ित सहायता कोष समितियाँ बना दी गई हैं; परन्तु वे संकटके बढ़ते हुए ज्वारको रोकनेमें पूरी-पूरी और हर तरहसे नाकाफी सिद्ध हुई हैं। लोग दिलोजानसे दीन, संकटग्रस्त मानव-समुदायोंको राहत पहुँचानेमें लगे हुए हैं। परन्तु उनके प्रयत्नोंके बावजूद जनता तेजीके साथ मौतके मुँहमें समाती जा रही है। भारतकी सरकार और जनता सफल रूपसे इस विभीषिकाका सामना करनेमें असमर्थ हैं और, कोई ताज्जुब नहीं कि, अंग्रेज जनताने भी अपना सदा-तत्पर सहायताका हाथ बढ़ा दिया है।

इंग्लैंडके पत्रोंने पूरी संजीदगीके साथ इस विषयको उठाया है। और, जैसा कि आपको मालूम है, "मैंशन हाउस[2] फंड" के नामसे एक सहायता-कोष

१. इस पत्रपर इसके पहले दी हुई अपीलमें निर्दिष्ट समिति के सदस्योंने हस्ताक्षर किये थे।

२. लंदनके मेयरका निवासस्थान।

जारी कर दिया गया है। कहा जाता है कि विदेशी राज्योंने भी सहायताका वचन दिया है।

सम्भवतः भारतके अकालोंके इतिहासमें यह पहला ही मौका है कि उपनिवेशोंसे सहायता-कोष खोलनेका अनुरोध किया गया है। और हमें कोई सन्देह नहीं है कि प्रत्येक वफादार ब्रिटिश प्रजाजन आर्थिक सहायता देनेके इस अवसरका खुशीसे लाभ उठायेगा और अपने करोड़ों भूखों मरते हुए प्रजा-बन्धुओंके भयानक कष्टोंको घटानेके लिए जो-कुछ भी आर्थिक सहायता दे सकता है, अवश्य देगा।

कलकत्तासे वहाँकी केन्द्रीय सहायता-समितिकी ओरसे बंगालके मुख्य न्यायाधीशके तारके फलस्वरूप मेयरने अपने उत्तरदायित्वको महसूस करके और अपने कर्तव्यको मान्य करके एक ऐसा कोष पहले ही खोल रखा है।[1] दुनियाके सब हिस्सोंमें रहनेवाले भारतीय इस विषयमें जोरदार प्रयत्न कर रहे हैं। और केवल डर्बनमें ही कल तक वे लगभग ७०० पौंड चन्दा जमा कर चुके हैं। दो पेढ़ियोंने सौ-सौ पौंडसे ज्यादा और एकने ७५ पौंड चन्दा दिया है। और यह आशा करनेके लिए काफी आधार मौजूद हैं कि यह चन्दा लगभग १,५०० पौंड तक पहुँच जायेगा।

महोदय, हमने आपकी सेवामें निवेदन करनेकी स्वतन्त्रता इसलिए ली है कि हमें पूरा भरोसा है, आपको हमारे ध्येय और उद्देश्यसे सहानुभूति होगी। अतः हम आपसे अनुरोध करते हैं कि आप एक सहायता-कोष जारी करें। निस्सन्देह आप, अपने अपार प्रभाव और कार्यशक्तिसे, अकालके प्रकोपके भीषण परिणामोंसे करोड़ों पीड़ितोंको बचानेके प्रयत्नोंमें भारतकी जनताको ठोस सहायता पहुँचा सकते हैं। और हमें निश्चय है कि दक्षिण आफ्रिकाके अन्य सब भाग मिलकर जो-कुछ कर सकते है उससे बहुत अधिक, इस दिशामें, अपनी अपार सम्पत्तिसे, अकेला जोहानिसबर्ग कर सकता है।

हम यहाँ कह देनेकी इजाजत चाहते हैं कि हमने दक्षिण आफ्रिकाके विभिन्न भागोंमें रहनेवाले भारतीयोंसे अपील की है कि इस विषयमें जितना भी कर सकें, सब करें।

१. देखिए पृष्ठ ३४९।

आशा है कि आप इसपर तुरन्त ध्यान देंगे।

आपके मूल्यवान समयमें दखल देनेके लिए क्षमा-याचनाके साथ,

आपके आज्ञानुवर्ती सेवक

गांधीजीके हस्ताक्षरोंमें एक अंग्रेजी दफ्तरी नकल (एस० एन० १९९६) से।

२७. धर्मोपदेशकोंसे अपील

बीचग्रोव, डर्बन
फरवरी ६, १८९७

सेवामें. . .

मैं आपको डर्बनके मेयर द्वारा जारी की गई भारतीय अकाल-पीड़ित सहायता निधिके बारेमें लिखना चाहता हूँ। कल मेयरने नगर-परिषद (टाउन कौंसिल) में कहा था कि अबतक केवल एक यूरोपीयने चन्दा दिया है। इसकी ओर मैं नम्रतापूर्वक आपका ध्यान आकर्षित करता हूँ।

शायद मुझे भारतके उन करोड़ों पीड़ितोंके कष्टोंका वर्णन करना न होगा, जिन्हें सिर्फ काफी खुराक न मिलनेके कारण मौतके मुहमें समाना पड़ सकता है। मेरा निवेदन है कि आप ३ तारीखके *मर्क्युरी*में प्रकाशित मेरा पत्र[1] पढ़ लें। उससे आपको कुछ कल्पना हो जायेगी कि भारतपर इस समय कितना भारी संकट छाया हुआ है।

मैं मानता हूँ कि [कल][2] गिरजा-पीठसे इस विषयकी चर्चा और श्रोताओंसे धनकी अपील करना भारतके करोड़ों पीड़ितोंके प्रति जनताकी दानशील सहानुभति जाग्रत करनेमें बहुत सहायक होगा।

आपका आज्ञानुवर्ती सेवक,

मो० क० गांधी

गांधीजीके हस्ताक्षरोंमें एक अंग्रेजी दफ्तरी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३६४३) से।

१. स्पष्टतः गांधीजीका संकेत अपने फरवरी २ के पत्रकी ओर है, जो उक्त समाचार-पत्रमें फरवरी ४ को प्रकाशित हुआ था। देखिए पृष्ठ १८९–९०।

२. मूल अंग्रेजी प्रतिमें इस स्थानके शब्दका कुछ अंश पढ़ा नहीं जाता। सम्भवतः वह 'टुमॉरो' (आगामी कल) है। फरवरी ७ को रविवार था।

२८. पत्र: श्री कैमेरॉनको

बीचग्रोव, डर्बन
फरवरी १५, १८९७

ए० एम० कैमेरॉन[1]
डाकघर
डार्गल रोड[2]

प्रियवर,

आपके १० तारीखके पत्र और मूल्यवान सुझावोंके लिए धन्यवाद। मुझे बहुत खुशी है कि आप डर्बन आनेके लिए कुछ दिन निकाल सकेंगे। इसके साथ तीन पौंडका चेक भेज रहा हूँ। अगर आप पहले दर्जेमें यात्रा करना चाहें तो कर सकते हैं। आपका और जो-कुछ खर्च होगा वह चुका दिया जायेगा।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

गांधीजीके हस्ताक्षर-युक्त एक अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३६४५) से।

१. श्री कैमेरॉन कुछ समय तक *टाइम्स आफ इंडिया*के नेटाल-संवाददाता रहे थे (देखिए पृष्ठ ४०९)। गांधीजीने दक्षिण आफ्रिकी भारतीयोंके पक्षका प्रतिपादन करनेके लिए एक पत्र निकालनेके बारेमें सलाह करनेके इरादेसे उन्हें डर्बन बुलाया था। तथापि, *इंडियन ओपिनियन* १९०३ के पहले नहीं निकाला जा सका।

२. पीटर मैरित्सबर्गसे लगभग २० मीलपर एक गाँव।

२९. प्रार्थनापत्र[1] : श्री चेम्बरलेनको

गांधीजी १३ जनवरी, १८९७को डर्बनमें उतरे थे। उसके बाद नेटाल और दक्षिण आफ्रिकाके अन्य स्थानोंमें घटनाचक्र जिस तरह चला, वह उनके लिए गम्भीर चिन्ताका विषय बन गया। उन्होंने ताड़ लिया कि उपनिवेशोंकी सरकारें भविष्यमें और अधिक भारतीयोंको दक्षिण आफ्रिकामें आकर बसनेसे रोकने और ऐसी परिस्थितियाँ पैदा करनेका दृढ़ प्रयत्न करेंगी, जिनसे कि वे भारत लौटनेके लिए बाध्य हो जायें। ब्रिटिश साम्राज्यके सह-प्रजाजनोंके रूपमें भारतीयोंकी मान-मर्यादा खतरेमें है और, उसके फलस्वरूप, साम्राज्यके अन्दरका मेल-जोल भी। अत: गांधीजीने महसूस किया कि ब्रिटिश सरकार तथा इंग्लैंड और भारतके नेताओंको १३ जनवरीके भारतीय-विरोधी प्रदर्शनका सच्चा अर्थ समझा देना जरूरी है। दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंकी स्थितिकी, और कुछ उपनिवेशोंकी सरकारें जिस भारतीय-विरोधी नीतिका अनुसरण कर रही थीं उसमें निहित अति महत्त्वपूर्ण प्रश्नोंकी, साफ तसवीर उनके सामने खींच देनेकी जरूरत भी उन्होंने महसूस की। इसलिए उन्होंने नेटालवासी भारतीयोंकी ओरसे परम माननीय जोजेफ़ चेम्बरलेनके नाम नीचे दिया हुआ प्रार्थनापत्र तैयार किया।

१. प्रार्थनापत्र यथासमय छपा लिया गया और निम्नांकित पत्रके साथ नेटालके गवर्नरको भेज दिया गया था :

डर्बन
अप्रैल ६, १८९७

सेवामें

महामहिम, माननीय
सर वाल्टर एफ० हेली-हचिन्सन, के० सी० एम० जी०, प्रधान सेनापति तथा वाइस एडमिरल, नेटाल; और देशी आबादीके सर्वोच्च प्रमुख

महानुभाव ध्यान देनेकी कृपा करें,

मैं हालके भारतीय-विरोधी 'प्रदर्शन'के बारेमें इसके साथ अपने और अन्य लोगोंके हस्ताक्षरसे सम्राज्ञीके मुख्य उपनिवेश-मन्त्रीके नाम अत्यन्त आदरपूर्वक एक प्रार्थनापत्र भेज रहा हूँ।

महानुभावसे नम्र निवेदन है कि इसे अपनी अनुकूल रायके साथ सम्राज्ञीके मुख्य उपनिवेश-मन्त्रीके पास भेज दें।

मैं इसके साथ उपर्युक्त प्रार्थनापत्रकी दो नकलें भी भेज रहा हूँ।

आपका, आदि

(ह०) अब्दुल करीम एच० आदम

मार्च १५, १८९७

सेवामें

परम माननीय जोज़ेफ़ चेम्बरलेन

मुख्य उपनिवेश-मन्त्री, सम्राज्ञी-सरकार

लंदन

नेटाल उपनिवेशवासी निम्न हस्ताक्षरकर्ता भारतीयोंका प्रार्थनापत्र

नम्र निवेदन है कि,

आपके प्रार्थी, आपकी सेवामें, नेटालके भारतीय समाजके प्रतिनिधियोंकी हैसियतसे, नेटालकी भारतीय समस्याके सम्बन्धमें यह प्रार्थनापत्र पेश करनेका साहस कर रहे हैं। १३ जनवरी १८९७ को *कूरलड* और *नादरी* नामक जहाजोंमें एशियाई लोगोंके उतरनेका विरोध करनेके लिए डर्बनमें जो प्रदर्शन हुआ था, उससे इस प्रार्थनापत्रका विशेष सम्बन्ध है। प्रदर्शनका नेतृत्व एक कमिशन-प्राप्त अफसर कप्तान स्पार्क्सने किया था। उपर्युक्त दोनों जहाजोंके मालिक भारतीय हैं। वे दोनों जहाज लगभग ६०० यात्री लेकर १८ दिसम्बर १८९६ को डर्बन पहुँचे थे। जब उनके यात्री तटपर उतरे उस समय उनके विरुद्ध संगठित किये गये प्रदर्शनका परिणाम यह हुआ कि प्रदर्शनकारियोंने एक यात्रीपर आक्रमण कर दिया। यदि डर्बन नगरकी पुलिस[1] चतुराईसे काम न लेती तो प्रदर्शनकारी उस यात्रीकी हत्या ही कर डालते।

नेटालका भारतीय समाज अरसेसे अनेक कानूनी निर्योग्यताओंसे पीड़ित है। इनमें से कुछके सम्बन्धमें सम्राज्ञी-सरकारको प्रार्थनापत्र[2] भी भेजे गये हैं। उनमें निवेदन किया जा चुका है, कि उपनिवेशियोंका अन्तिम लक्ष्य स्वतंत्र मनुष्योंके रूपमें भारतीयोंकी हस्ती मिटा देनेका है। यह भी बता दिया गया है कि भारतीयोंपर लगाई गई एक-एक कानूनी निर्योग्यता, बादको अनेक निर्योग्यताओंका कारण बन जाती है और वे लोग उपनिवेशमें भारतीयोंकी हालत इतनी बिगाड़ देना चाहते हैं कि वे अपने जीवन-भर (नेटालके महान्यायवादीके शब्दोंमें) "लकड़हारों और पनिहारों" के अलावा कुछ भी बनकर न रह सकें। इन तथा इसी प्रकारके अन्य आधारोंपर प्रार्थना की गई थी कि नेटालमें जो कानून भारतीयोंकी स्वतन्त्रतापर प्रतिबन्ध लगानेके लिए बनाये

१. देखिए पृष्ठ १७९, १८१, १८८, २२७ और ३२१।

२. देखिए खंड १, पृष्ठ ११७–२८, १८९–२११, २१७–३२, २५८–६०, ३१०–१४ और ३३१–३५४।

जायें उनपर सम्राज्ञी-सरकार अपनी स्वीकृति न दे। इन प्रार्थनापत्रोंके उद्देश्यके साथ सम्राज्ञीकी सरकारने सहानुभूति तो प्रकट की, परन्तु जिन विधेयकोंपर इनमें आपत्ति उठाई गई थी उनमें से अनेकपर सम्राज्ञीकी स्वीकृति रोक लेनेके लिए वह तैयार नहीं हुई। अपने अन्तिम लक्ष्यकी पूर्तिके लिए यूरोपीयोंने परीक्षणके रूपमें जो प्रथम प्रयत्न किये थे, उनके बहुत-कुछ सफल हो जानेका परिणाम यह निकला कि गत सात महीनोंमें उन्होंने अनेक भारतीय-विरोधी संस्थाएँ संगठित कर लीं, और इस समस्याने अति विकट रूप धारण कर लिया। इन परिस्थितियोंमें, नेटालके भारतीय समाजके हितकी रक्षाके लिए प्रार्थी अपना कर्तव्य समझते हैं कि गत सात महीनोंमें जो भारतीय-विरोधी आन्दोलन हुआ उसकी एक पर्यालोचना सम्राज्ञी-सरकारके सामने उपस्थित कर दें।

अप्रैल ७, १८९६ को, टोंगाट शकर कम्पनीने प्रवासी न्यास-निकाय (इमिग्रेशन ट्रस्ट बोर्ड) से प्रार्थना की कि उसे भारतसे निम्नलिखित एक-एक कारीगर ला दिया जाये : राज, रेलकी पटरी बिछानेवाला, पलस्तर करनेवाला, रंगसाज, गाड़ी बनानेवाला, पहिये चढ़ानेवाला, बढ़ई, लोहार, फिटर, खरादिया, ढलैया, और पीतलगर। न्यास-निकायने यह प्रार्थना स्वीकृत कर ली। यह सूचना समाचारपत्रोंमें प्रकाशित होते ही उपनिवेशमें प्रतिवादका तूफान-सा उठ खड़ा हुआ। स्थानीय पत्रोंमें विज्ञापन निकलने लगे कि पीटरमैरित्सबर्ग और डर्बनमें, इस स्वीकृतिका विरोध करनेके लिए, सभाएँ की जायेंगी। पहली सभा डर्बनमें ११ अगस्तको हुई और उसमें गरमागरम भाषण किये गये। कहा जाता है कि इस सभामें उपस्थिति अच्छी थी। इस आन्दोलनका फल यह हुआ कि टोंगाट शकर कम्पनीको अपना प्रार्थनापत्र यह कहकर वापस ले लेना पड़ा : "चूँकि हमारे प्रार्थनापत्रका इतना तीव्र और सर्वथा अकल्पित विरोध किया जा रहा है इसलिए हमने उसे वापस ले लेनेका निश्चय कर लिया है।" परन्तु आन्दोलन इस प्रार्थनापत्रकी वापसीके साथ शांत नहीं हुआ। सभाएँ होती रहीं, और उनमें वक्ता उनकी मर्यादाओंसे भी आगे बढ़कर भाषण करते रहे। प्रार्थियोंका नम्र विचार है कि जहाँतक कुशल मजदूरोंको सरकारी संरक्षणमें लानेका विचार किया गया था, वहाँ तक तो इस प्रार्थनापत्रका विरोध सर्वथा उचित था और यदि आन्दोलन उचित सीमामें रहता तो इसके बाद जो घटनाएँ घटीं वे न घटतीं। इन सभाओंमें कई वक्ताओंने जोर देकर कहा कि इस मामलेमें भारतीयोंको दोष

देना उचित नहीं, दोष सारा शकर कम्पनीका है। परन्तु इनमें से अधिकतर भाषणोंकी ध्वनि श्रोताओंकी भावनाओंको एकदम भड़का देनेवाली थी। समाचारपत्रोंमें प्रकाशित चिट्ठी-पत्रियोंका रुख भी बहुत कुछ ऐसा ही था। आन्दोलनकारियोंने हालतोंका बहुत बढ़ा-चढ़ाकर बयान किया, सारी भारतीय समस्याको बीचमें घसीट लिया और भारतीयोंकी जी भरकर निन्दा की। प्रार्थियोंका नम्र मत है कि इन सभाओंसे भारतीय समाजके इस दावेका समर्थन हो गया कि उपनिवेशमें सबसे अधिक घृणा और भ्रम भारतीयोंके ही विरुद्ध फैला हुआ है। उन्हें 'घिनौने कीड़े' बतलाया गया। मैरित्सबर्गकी एक सभामें एक वक्ता ने कहा: "कुली लोग तेलमें सने चिथड़ेकी बूपर ही जिन्दा रह सकते हैं।" एक श्रोताने आवाज लगाई: "कुली लोग यहाँ आकर चूहोंकी तरह बढ़ने लगते हैं।" एक औरने शिकायत की: "सबसे मुश्किल बात तो यह है कि हम उन्हें गोली मारकर खत्म भी नहीं कर सकते।" डर्बनकी एक सभामें एक श्रोताने उक्त प्रार्थनापत्रके विषयमें कहा कि "यदि भारतीय कारीगर आये तो हम बन्दरगाहपर जायेंगे और उन्हें उतरने नहीं देंगे।" इसी सभामें एक और आदमीने कहा: "कुली भी कहीं आदमी होते हैं!" इन बातोंसे प्रकट है कि गत जनवरीकी घटनाओंकी भूमिका अगस्त १८९६ में ही बाँधी जाने लगी थी। इस आन्दोलनकी एक और विशेषता यह थी कि मजदूर लोगोंको इसमें भाग लेनेके लिए उकसाया जा रहा था।

प्रवासी-न्यास-निकायकी कार्रवाईपर ठीक प्रकारसे विचार करनेका समय आया ही था कि १४ सितम्बर १८९६ को समाचारपत्रोंमें रायटर समाचार-एजेंसीका यह तार प्रकाशित हुआ:

> **भारतमें प्रकाशित हुई एक पुस्तिकामें कहा गया है कि नेटालमें भारतीयोंको लूटा और पीटा जाता है; उनके साथ पशुओंका-सा बरताव किया जाता है; और वे अपनी तकलीफोंको रफा करानेमें असमर्थ हैं। *टाइम्स आफ़ इंडिया*ने इन शिकायतोंकी जाँचकी हिमायत की है।**

इस तारसे स्वभावतः उपनिवेशकी जनता भड़क गई और इसने आगमें घीकी आहुतिका काम किया। यह पुस्तिका वस्तुतः श्री मो० क० गांधी द्वारा लिखित, दक्षिण आफ्रिकाके ब्रिटिश भारतीयोंकी कष्ट-गाथा थी। और दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय समाजके प्रतिनिधियोंने "भारतके अधिकारियों, लोकपरायण व्यक्तियों और लोक-संस्थाओंको उन मुसीबतोंका परिचय देनेके

लिए, जो दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंको भोगनी पड़ रही है", उनको नियुक्त किया था।

यहाँ प्रार्थियोंको आवश्यक जान पड़ता है कि प्रकरणसे तनिक हटकर स्थितिको स्पष्ट कर दिया जाये। प्रार्थियोंको यह कहनेमें संकोच नहीं कि उक्त तारमें जो कुछ लिखा था उसका उक्त पुस्तिकासे समर्थन नहीं होता था। जिस-जिसने दोनों वस्तुएँ पढ़ी थीं उस-उसने इस सचाईको माना था। *नेटाल मर्क्युरी*ने तार देखकर जो रुख अपनाया था उसे, पुस्तिका पढ़नेके पश्चात्, बदलकर ये शब्द लिखे थे :

> **गांधीने स्वयं, और अपने देशवासियोंकी ओरसे, ऐसा कुछ नहीं किया जिसे करनेका उन्हें अधिकार नहीं है; और जिस सिद्धान्तका वे प्रतिपादन कर रहे हैं वह उनकी दृष्टिसे उचित और आदरणीय है। वैसा करनेका उनका अधिकार है, और जबतक वे सीधे और ईमानदारीके रास्तेपर रहेंगे तबतक न तो उन्हें दोष दिया जा सकेगा और न उनके काममें रुकावट डाली जा सकेगी। जहाँतक हम जानते हैं, वे सदा इसी रास्तेपर चलते आये हैं; और हम ईमानदारीसे यह नहीं कह सकते कि उनकी पुस्तिकामें उनकी दृष्टिसे, स्थितिका चित्रण अनुचित किया गया है। रायटरके तारमें श्री गांधीका कथन बहुत बढ़ा-चढ़ाकर बताया गया है। उन्होंने सिर्फ कुछ शिकायतें गिनाई हैं, परन्तु उनके कारण किसीके लिए भी यह कहना उचित नहीं कि पुस्तिकामें कहा गया है कि नेटालमें भारतीयोंको लूटा और पीटा जाता है; उनके साथ पशुओंका-सा बरताव किया जाता है; और वे अपनी तकलीफें रफा करानेमें असमर्थ हैं। (१८ सितम्बर १८९६)**

उसी तारीखके *नेटाल एडवर्टाइज़र*ने लिखा था :

> **श्री गांधीकी जो पुस्तिका हालमें बम्बईमें प्रकाशित हुई है उसे पढ़कर यह परिणाम निकलता है कि रायटरके तारमें उसकी बातों और उद्देश्योंको बहुत बढ़ा-चढ़ा दिया गया था। यह ठीक है कि श्री गांधीने गिरमिटिया भारतीयोंके साथ कुछ दुर्व्यवहार होनेकी शिकायत की है, परन्तु उनकी पुस्तिकामें ऐसा कुछ नहीं है जिसके कारण यह कहा जा सके कि नेटालमें भारतीयोंको लूटा और पीटा जाता है; और उनके साथ पशुओंका-सा**

बरताव किया जाता है। उनकी तो वही पुरानी चिर-परिचित शिकायत है कि यूरोपीय लोग भारतीयोंके साथ ऐसा बरताव करते हैं जैसे कि वे किसी दूसरे वर्ग और जातिके हों, उन्हें वे लोग अपनेसे भिन्न जातिके समझते हैं। श्री गांधीकी दृष्टिसे यह बात बहुत शोचनीय है; और उनके तथा उनके देशवासियोंके साथ आसानीसे सहानुभूति रखी जा सकती है।

अब फिर मुख्य बात। यद्यपि थोड़े-से लोगोंने उक्त तारका ठीक अभिप्राय समझ लिया, परन्तु अधिकतर लोगोंका विचार भारतमें प्रकाशित पुस्तिकाके विषयमें वही रहा जो कि उक्त तारसे बन गया था। इस कारण समाचारपत्रोंमें यूरोपीयोंको भारतीयोंके विरुद्ध भड़कानेवाली चिट्ठी-पत्री प्रकाशित होती रही। १८ सितम्बर १८९६ को मैरित्सबर्गमें एक सभा करके "यूरोपीय रक्षक संघ" (यूरोपीयन प्रोटेक्शन असोसिएशन) नामक एक संस्थाका संगठन कर लिया गया। समाचारके अनुसार इस सभामें केवल ३० व्यक्ति उपस्थित थे। यद्यपि यह सभा ऊपर वर्णित न्यास-निकायकी कार्रवाईका विरोध करनेके लिए बुलाई गई थी, फिर भी 'रक्षक-संघ' का कार्यक्रम बड़ा लम्बा-चौड़ा है।

सितम्बर ८, १८९६ के *नेटाल विटनेस*के अनुसार :

रक्षक संघका मुख्य प्रयत्न उपनिवेशमें एशियाइयोंका प्रवेश नियंत्रित करनेवाले कानूनोंमें और भी सुधार करवानेका रहेगा; और वह ये काम करवानेपर विशेष ध्यान देगा : (क) भारतीयों तथा अन्य एशियाइयोंके आगमनसे सम्बन्ध रखनेवाले सब संगठनोंको सरकारी सहायता या प्रोत्साहन दिया जाना बन्द करवाना, (ख) संसदको ऐसे नियम तथा कानून बनानेकी आवश्यकताका निश्चय कराना जिनसे कि भारतीय लोग अपना गिरमिटिया-काल समाप्त होनेपर उपनिवेश छोड़ जानेके लिए सचमुच विवश हो जायें, (ग) ऐसे सब उपाय करना जो कि उपनिवेशमें लाये जानेवाले भारतीयोंकी संख्या सीमित करनेके लिए उचित जान पड़ें, और (घ) नेटालमें भी आस्ट्रेलियाके प्रवासियों-सम्बन्धी कानूनोंको लागू करवानेका प्रयत्न करना।

इसके पश्चात् नवम्बर २६, १८९६ को डर्बनमें "उपनिवेशके देशभक्तोंका संघ" (कोलोनियल पेट्रिऑटिक यूनियन) नामसे एक संस्था संगठित की गई।

इस संस्थाका लक्ष्य "देशमें स्वतंत्र एशियाइयोंका और अधिक आगमन रोकना" बतलाया गया है। उसके द्वारा प्रकाशित वक्तव्यमें निम्नलिखित अनुच्छेद उपलब्ध हैं :

> **उपनिवेशमें एशियाई जातियोंकी और भरमार रोककर यूरोपीयों, वतनियों और देशमें इस समय विद्यमान भारतीयोंके हितोंकी रक्षा की जायेगी। संघ गिरमिटिया मजदूरोंके आगमनमें हस्तक्षेप नहीं करेगा, बशर्ते कि उनको अपना गिरमिटिया-काल पूरा करनेके लिए, अपने बाल-बच्चोंके साथ, यदि कोई हों तो, भारत लौटाया जा सके।**

यह संघ सरकारके नाम निम्न प्रार्थनापत्रपर लोगोंके हस्ताक्षर करवानेका प्रयत्न कर रहा है :

> **हम नीचे हस्ताक्षर करनेवाले नेटाल उपनिवेशके निवासी सरकारसे सादर प्रार्थना करते हैं कि वह ऐसे उपाय करे कि इस उपनिवेशमें एशियाई जातियोंकी भरमार रुक जाये : (१) आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंडके ब्रिटिश उपनिवेश हमसे पुराने और अधिक सम्पन्न हैं। उन्होंने भी अनुभव कर लिया है कि प्रवासियोंका यह वर्ग वहाँके निवासियोंके वास्तविक हितोंका घातक है, और इसलिए उन्होंने ऐसे कानून पास कर दिये हैं जिनका लक्ष्य एशियाइयोंका आगमन सर्वथा रोक देनेका है। (२) इस उपनिवेशमें गोरी और काली जातियोंका अनुपात पहले ही इतना विषम है कि उसे और अधिक बढ़ाना अत्यन्त अनुचित जान पड़ता है। (३) एशियाई जातियोंको यहाँ आते रहने देनेसे इस उपनिवेशके वतनियोंकी भारी हानि हो जायेगी, क्योंकि जबतक सस्ते एशियाई मजदूर मिलते रहेंगे तबतक वतनियोंकी सभ्यताकी उन्नति रुकी रहेगी। उसकी उन्नति तभी हो सकती है जब कि वे गोरी जातियोंके साथ मिलते-जुलते रहें। (४) एशियाइयोंके हीन आचार और मैली आदतोंके कारण, यूरोपीय आबादीकी प्रगति और स्वास्थ्यपर सदा संकट छाया रहता है।**

संघके इस कार्यक्रमके साथ सरकारने अपनी पूर्ण सहानुभूतिकी घोषणा कर दी है। जब प्रवासी कानून संशोधन विधेयक[1] (इमिग्रेशन ला अमेंडमेंट बिल)

१. देखिए खण्ड १, पृष्ठ २१८।

पास हुआ था तब आपके प्रार्थियोंने भय प्रकट किया था कि प्रवासियोंके आगमनपर प्रतिबन्ध लगानेका यह एक नया उपाय है। दुर्भाग्य-वश इस विधेयकपर अब ब्रिटेनकी सरकार भी अपनी स्वीकृति दे चुकी है और आपके प्रार्थियोंका उक्त भय सत्य सिद्ध हो गया है। अब यह दूसरी बात है कि सरकार कोई ऐसा बिल पेश करेगी या नहीं जिसका लक्ष्य गिरमिटिया-कालकी पूर्ति भारतमें करवानेका हो। परन्तु प्रार्थियोंका नम्र निवेदन है कि यह एक सचाई है कि सम्राज्ञीकी सरकारके, यूरोपीय उपनिवेशियोंकी इस इच्छाके सामने झुक जानेका कि गिरमिटिया भारतीयोंको उनके ठेकेकी समाप्तिपर अनिवार्य-रूपसे भारत लौटा देनेका सिद्धान्त मान लिया जाये, परिणाम यह हुआ है कि उन्हें और भी नई माँगें पेश करनेके लिए बढ़ावा मिल गया है। अब भारतीय समाजसे आशा की जा रही है कि वह शेर और बकरी[1] जैसी साझेदारी कर ले जिसमें उसे देना तो सब-कुछ पड़े परन्तु पाना कहने लायक कुछ न हो। आपके प्रार्थियोंको हार्दिक आशा है कि वर्तमान स्थितिका अन्त चाहे कुछ भी हो, सम्राज्ञीकी सरकार इतनी प्रत्यक्ष अन्यायमय व्यवस्थासे सहमत कभी नहीं होगी, और सरकारी सहायतासे भारतीयोंका नेटाल भेजा जाना बन्द कर देगी।

संघके इस प्रार्थनापत्रसे, उसके पुरस्कर्ताओंका शोचनीय अज्ञान और भारी राग-द्वेष भी प्रकट होता है। प्रार्थियोंको यहाँ यह बतानेकी आवश्यकता नहीं कि जिन ब्रिटिश उपनिवेशोंका इस प्रार्थनापत्रमें जिक्र किया गया है उन्हें अबतक वैसा वर्ग-भेद-कारक कानून पास नहीं करने दिया गया जैसेका इसमें संकेत है। *नेटाल मर्क्युरी*ने भी अपने नवम्बर २८ के अग्रलेखमें संघको स्मरण करवाया था कि "सच बात यह है कि उन उपनिवेशोंमें जिन कानूनोंपर अमल हो रहा है वे प्रायः एकमात्र चीनियोंके विरुद्ध बनाये गये हैं।" और यदि कभी भविष्यमें ऐसे कानून बनाये भी जाने हों तो इस उपनिवेशमें और अन्य उपनिवेशोंमें कोई समानता नहीं है। नेटालका निर्वाह भारतीय मजदूरोंके बिना तो हो नहीं सकता; अन्य भारतीयोंके लिए वह अपने द्वार भले ही बन्द कर दे। परन्तु यह संगत किसी भी प्रकार नहीं होगा। इसके विपरीत, यह बात आस्ट्रेलियन उपनिवेशोंके पक्षमें जायेगी कि वे, यदि हो सके तो, अपने यहाँ बिना किसी भेदके सभी भारतीयोंका प्रवेश निषिद्ध करना चाहते हैं।

१. देखिए पृष्ठ १६८ ।

गोरी और काली जातियोंमें अनुपात अवश्य बहुत विषम है। परन्तु इसके लिए भारतीय किसी भी प्रकार जिम्मेवार नहीं ठहराये जा सकते, उनकी गिनती काली जातियोंमें ही क्यों न कर ली जाये। इस विषमताका कारण यह है कि दक्षिण आफ्रिकाके वतनियोंकी संख्या तो ४ लाख है, और उनके मुकाबलेमें यूरोपीयोंकी केवल ५० हजार। भारतीयोंकी संख्या लगभग ५१ हजार है। वह यदि बढ़कर १ लाख हो जाये तो भी उसका इस अनुपातपर बहुत असर नहीं पड़ सकता। प्रार्थनापत्रमें लिखा गया है कि "एशियाई जातियोंको यहाँ आते रहने देनेसे इस उपनिवेशके वतनियोंकी भारी हानि हो जायेगी," क्योंकि एशियाई मजदूर सस्ते पड़ते हैं। अब, वतनी तो अधिकसे अधिक गिरमिटिया भारतीयोंकी जगह ले सकते हैं परन्तु संघ गिरमिटिया भारतीयोंको तो रोकना चाहता ही नहीं। बल्कि सचाई यह है कि उच्चतम अधिकारियोंने बतलाया है कि वतनी लोग वह काम कर ही नही सकते — और करेंगे भी नहीं — जो कि गिरमिटिया भारतीय कर रहे हैं। सरकारके प्रवास-विभागकी रिपोर्टमें बतलाया गया है कि इस आन्दोलनके बावजूद गिरमिटिया भारतीयोंकी माँग पहले कभी नही थी इतनी बढ़ गई है। इससे प्रमाणित होता है कि वतनी लोग भारतीयोंका स्थान नहीं ले सकते। इस रिपोर्टमें यह भी बतलाया गया है कि स्वतंत्र भारतीयों और वतनियोंमें कोई मुकाबला नहीं है; और संघको आपत्ति स्वतन्त्र भारतीयोंके ही विरुद्ध है। भारतीयोंके विरुद्ध हीन आचार और मैली आदतोंकी जो शिकायत की गई है, उसके विषयमें प्रार्थियोंको कुछ कहनेकी आवश्यकता नही है। उससे तो सिर्फ यही पता लगता है कि इस प्रार्थनापत्रके पुरस्कर्ताओंको राग-द्वेषने कितना अन्धा कर दिया है। प्रार्थी सम्राज्ञीकी सरकारका ध्यान केवल डा० वीलके और इसी प्रकारके उन प्रमाणपत्रोंकी ओर खींचनेकी अनुमति चाहते हैं जो कि ट्रान्सवाल-भारतीयोंके पंच-फैसले सम्बन्धी प्रार्थनापत्रके साथ नत्थी किये गये थे। उन प्रमाणपत्रोंमें बतलाया गया है कि वर्गकी दृष्टिसे देखा जाये तो भारतीय लोग यूरोपीयोंकी अपेक्षा अधिक अच्छी तरह और अधिक अच्छे निवास-स्थानोंमें रहते हैं।[1] परन्तु यदि भारतीय यूरोपीयोंके बराबर सफाईका ध्यान नही रखते तो ऐसे कानून मौजूद हैं जिनसे उन्हें स्वच्छताके नियमों सम्बन्धी कर्तव्योंका पालन करनेके लिए विवश किया जा सकता है। कुछ हो, इन सभाओंने, इनके

१. देखिए खण्ड १, पृष्ठ २०६-२०७ और यह खण्ड, पृष्ठ ४५।

कारण समाचारपत्रोंमें चली हुई चिट्ठी-पत्रीने और सचाईकी कोई विशेष चिन्ता किये बिना इनमें कही गई बातोंने जनताकी उत्तेजना कायम रखी और उसे बढ़ावा दिया।

दिसम्बर १८ को दोनों अभागे जहाज कूरलैंड और *नादरी* यहाँ पहुँचे। इनमें से पहिलेकी मालिक तो एक स्थानीय भारतीय पेढ़ी है और दूसरेकी पर्शियन स्टीम नैविगेशन कम्पनी, बम्बई, जिसके भी एजेंट पहले जहाजके मालिक ही हैं। इन जहाजोंकी पहुँचके बादकी घटनाओंका जिक्र करनेमें प्रार्थियोंका इरादा कोई निजी शिकायत करनेका बिलकुल नहीं है। इस प्रश्नका इन दोनों जहाजोंकी मालिक और एजेंट दादा अब्दुल्ला ऐंड कम्पनीसे जो सम्बन्ध है, उसकी चर्चा करना प्रार्थी यथाशक्ति टालेंगे। उसका जिक्र वे केवल उतना करेंगे जितना समस्त भारतीय समाजके हितकी दृष्टिसे करना आवश्यक होगा। जब जहाज बम्बईसे चले तब उनको दिये गये स्वास्थ्य-सम्बन्धी कागजातमें केवल इतना लिखा था कि बम्बईके कुछ भागोंमें हलका गिल्टीवाला प्लेग फैला हुआ है। इसलिए वे खाड़ीमें संक्रामक रोग सम्बन्धी सूतक (क्वारंटीन) का झंडा चढ़ाये प्रविष्ट हुए; यद्यपि सारी यात्रामें एक भी व्यक्ति बीमार नहीं हुआ था (देखिए परिशिष्ट क और ख)। जहाज *नादरी* बम्बईके प्रिन्सेज जहाज-घाटसे २८ नवम्बर १८९६ को और कूरलैंड ३० को चला था। उनके यहाँ पहुँचनेपर, स्वास्थ्य-अधिकारीने उन्हें, "बम्बईसे चलनेके बाद २३ दिन पूरे होने तक" सूतकमें रहनेकी आज्ञा दी। १९ दिसम्बर १८९६ को एक "असाधारण सरकारी गजट" प्रकाशित करके उसमें बम्बईको रोग-ग्रस्त क्षेत्र घोषित कर दिया गया। उसी दिन जहाजोंके मालिकों और एजेंटोंने, एक समाचारपत्रमें प्रकाशित विवरणके आधारपर, स्वास्थ्य-अधिकारीको लिखकर पूछा कि जहाजोंको सूतकमें क्यों रखा जा रहा है? (परिशिष्ट ग)। इसका उन्हें कोई उत्तर नहीं मिला। उसी महीनेकी २१ तारीखको जहाजमालिकोंके सॉलिसिटर गुडरिक, लॉटन ऐंड कुकने नेटालके माननीय उपनिवेश-मन्त्रीको इस सम्बन्धमें एक तार दिया और पूछा कि क्या गवर्नर साहब मालिकोंके शिष्टमंडलसे मिलनेकी कृपा करेंगे? (परिशिष्ट घ)। उसका उत्तर मैरित्सबर्गसे २२ दिसम्बरको आया कि शिष्टमंडलकी कोई आवश्यकता नहीं है। इसके जो कारण बतलाये गये उनका उल्लेख परिशिष्ट ङ में किया गया है। परन्तु जब सॉलिसिटर तार भेज चुके तब उन्हें पता लगा कि गवर्नर साहब डर्बनमें ही हैं। इसपर उन्होंने उसी आशयका एक

पत्र माननीय हैरी एस्कम्बकी सेवामें लिखा (परिशिष्ट च)। उसका उत्तर मिला कि इस मामलेमें मन्त्रियोंसे सलाह की जायेगी, परन्तु यदि शिष्टमंडल चाहे तो गवर्नर साहब उससे २३ दिसम्बरको मिल लेंगे (परिशिष्ट छ)। २२ तारीखको *कूरलैंड*के मास्टरने संकेत द्वारा यह सन्देश भेजा: "हमारे दिन पूरे हो गये, क्या अब हम सूतकसे बाहर हैं? सूतक-अधिकारीसे पूछकर बतलाइए। हम सब अच्छे हैं। धन्यवाद" (परिशिष्ट क)। इसका उत्तर संकेत द्वारा इस आशयका दिया गया कि अभी तक सूतककी अवधिका निर्णय नहीं हुआ। *नादरी*से भी इसी आशयका सन्देश आया और उसका भी उत्तर इसी आशयका दिया गया। इस प्रसंगमें प्रार्थी पृथक् रूपसे यह बतला देना चाहते हैं कि जहाजोंके मालिकों और एजेंटों को यह सूचना बिलकुल नहीं दी गई थी कि जहाजोंके अफसरों और तटके अधिकारियोंमें क्या बातचीत चल रही है। दिसम्बर २३ को *नादरी*से मिले एक संकेत-सन्देशके उत्तरमें बतलाया गया: "सूतक-अधिकारीको अबतक भी कोई हिदायत नहीं मिली" (परिशिष्ट ख)। सॉलिसिटरोंके पत्र (परिशिष्ट त) से इतना पता अवश्य चलता है कि स्वास्थ्य-अधिकारीने क्योंकि यह आज्ञा दी थी कि जहाजोंको बम्बईसे रवाना होनेके पश्चात् २३ दिन बीत जाने तक सूतकमें रहना होगा, इसलिए उसे मुअत्तिल या बरखास्त कर दिया गया और उसके स्थानपर श्री बर्टवेलको नियुक्त कर दिया गया। २४ दिसम्बरको श्री बर्टवेल और समुद्री पुलिसके सुपरिंटेंडेंट जहाजोंपर गये। उन्होंने मल्लाहों और यात्रियोंसे बातचीत की, जहाजोंको औषधियों द्वारा शोधने व धुआँ लगानेकी, और मैले कपड़ों, सब पट्टियों, टोकरियों और बेकार चीजोंको छतकी भट्टीमें जला डालनेकी हिदायत दी, और *कूरलैंड* तथा *नादरी*को क्रमशः ११ और १२ दिन तक सूतकमें रहनेकी आज्ञा दे दी (परिशिष्ट क और ख)। उनकी हिदायतोंके अनुसार अधिकतर पुराने कपड़े और पट्टियाँ आदि जला डाली गईं और जहाजोंकी सफाई करके उन्हें धुआँ दे दिया गया। २८ दिसम्बरको एक ऐसा पुलिस अधिकारी जहाजोंपर गया जिसे कि उन्हें औषधियों द्वारा शोधनेकी कार्रवाईका निरीक्षण करनेकी आज्ञा दी गई थी। २९ तारीखको *कूरलैंड*से यह संकेत-सन्देश दिया गया: "शोधने और धुआँ देनेकी कार्रवाई ऐसी कर दी गई कि यहाँ मौजूद अधिकारीको उससे सन्तोष हो गया है।" इसी प्रकारका एक संकेत-सन्देश उसी दिन *नादरी*से भी भेजा गया। *कूरलैंड*ने फिर सन्देश भेजा, "हम तैयार हैं और सूतक-अधिकारीकी प्रतीक्षा

कर रहे हैं।" इसपर डा० बर्टवेलने जाकर जहाजोंको देखा और कहा कि मेरी आज्ञाओंका पालन जिस प्रकार किया गया है उससे मैं सन्तुष्ट हूँ; परन्तु फिर भी उन्होंने जहाजोंके उस तारीखसे १२ दिन तक और सूतकमें रखे जानेकी आज्ञा दी। तब कूरलैंडके मास्टरने सन्देश भेजा कि :

> **सरकारकी आज्ञासे सब यात्रियोंके बिछौने जलाये जा चुके हैं, इसलिए सरकारसे प्रार्थना है कि वह तुरन्त नये कपड़े भेजे। उनके बिना यात्रियोंके जीवनकी जोखिम है। मैं चाहता हूँ कि मुझे लिखकर हिदायत दी जाये कि सूतक कितने दिन चलेगा, क्योंकि जबानी आज्ञा जब-जब सूतक-अधिकारी आता है तब-तब बदल जाती है। इस बीच कोई भी यात्री बीमार नहीं हुआ। सरकारको इत्तला दीजिए कि हमारा जहाज बम्बईसे चलनेके बाद प्रतिदिन शोधा जाता रहा है।**

*नादरी*से ३० दिसम्बरको यह सन्देश भेजा गया :

> **सरकारसे कहिए कि उसने जो कपड़े जलवा दिये हैं उनकी जगह वह तुरन्त ही २५० कम्बल भेज दे। यात्री उनके बिना बहुत कष्टमें हैं। नहीं तो यात्रियोंको तुरन्त उतारा जाये। यात्री सर्दी और सीलसे पीड़ित हैं। भय है कि वस्त्रोंके बिना बीमारी न फैल जाये।**

इन सन्देशोंपर सरकारने कोई ध्यान नहीं दिया। परन्तु सौभाग्यवश, डर्बनके भारतीय नागरिकोंने एक सूतकवासी-सहायता-निधि खोल दी, और उसके द्वारा तुरन्त ही दोनों जहाजोंके सब यात्रियोंके लिए कम्बल तथा गरीब यात्रियोंके लिए मुफ्त खाद्य-पदार्थ भेजे गये। इस मदपर कमसे कम १२५ पौंडका व्यय हुआ।

जिस समय जहाजोंपर यह कार्रवाई चल रही थी, उसी समय उनके मालिक और एजेंट सूतकके, और उसके कुछ सनकी तरीकेके खिलाफ, क्योंकि वह बार-बार बदलकर लागू किया जा रहा था, प्रतिवाद करनेमें लगे हुए थे। उन्होंने गवर्नर साहबको एक प्रार्थनापत्र भेजा कि इसमें लिखे हुए कारणोंसे बन्दरगाहके चिकित्साधिकारीको "जहाजोंको यात्री उतारनेकी इजाजत दे देनेके लिए कह दिया जाये" (परिशिष्ट ज)। इस प्रार्थनापत्रके साथ डाक्टरोंके इस आशयके प्रमाणपत्र भी नत्थी कर दिये गये थे कि उनकी सम्मतिमें जो सूतक जारी करनेका इरादा किया गया था, और जो बादमें जारी कर दिया

गया, वह अनावश्यक था (परिशिष्ट ज के संलग्न पत्र $ज_क$ और $ज_ख$)। मालिकोंके सॉलिसिटरोंने तार भेजकर अनुरोध किया कि इस प्रार्थनापत्रका उत्तर शीघ्र दिया जाये (परिशिष्ट झ), परन्तु उत्तर कोई नही आया। २४ दिसम्बरको मालिकोंके सॉलिसिटरोंने स्थानापन्न स्वास्थ्य-अधिकारीको लिखा कि उनके पत्रमें लिखित कारणोंसे दोनों जहाजोंको यात्री उतारनेकी इजाजत दे देनी चाहिए (परिशिष्ट ञ)। इस अफसरने उसी दिन उत्तर दिया :

> **मैं, स्वास्थ्य-अधिकारीकी हैसियतसे, सब हितोंका उचित ध्यान रखते हुए अपना कर्तव्य पालन करनेका यत्न कर रहा हूँ। मै इस बातके लिए तैयार हूँ कि जितने भी आदमी उतारे जाने है उन सबको बन्दरगाहकी टेकरी (ब्लफ)[1] पर सूतकमें रखनेकी इजाजत दे दूँ। इसका खर्च जहाजोंके जिम्मे होगा। जब यह प्रबन्ध हो जायेगा तब, मेरी हिदायतोंपर अमल करनेके बाद, जहाजोंको यात्री उतारनेका अनुमतिपत्र दिया जा सकेगा (परिशिष्ट ट)।**

आपके प्रार्थी आपका ध्यान सादर इस बातकी ओर खींचना चाहते हैं कि स्वास्थ्य-अधिकारीने इस पत्रमें भी यह नहीं लिखा कि उसकी हिदायतें हैं क्या। २५ दिसम्बरको मालिकोंके सॉलिसिटरोंने स्थानापन्न स्वास्थ्य-अधिकारीको फिर लिखा कि आप हमारे २४ दिसम्बरके पत्रमें पूछे गये प्रश्नका उत्तर देनेकी कृपा करें (परिशिष्ट ठ)। स्वास्थ्य-अधिकारीने उसी दिन जवाब दिया कि मैंने जो शर्तें लगाई हैं उन्हें पूरा किये बिना मै जहाजोंको यात्री उतारनेकी इजाजत देना सुरक्षित नहीं समझता (परिशष्ट ड)। मालिकोंके सॉलिसिटरोंने उसी दिन फिर लिखा कि हमें आश्चर्य है कि आपके पत्रमें हमारे प्रश्नका उत्तर अब भी नहीं दिया गया, वह उत्तर देनेकी और यह ठीक-ठीक बतलानेकी कृपा करें कि आप जहाजोंको यात्री उतारनेकी इजाजत किन शर्तो पर दे सकते हैं (परिशिष्ट ढ)। इसका उत्तर स्वास्थ्य-अधिकारीने २६ दिसम्बरको निम्न शब्दोंमें दिया :

> **यदि यात्रियोंको सूतकके मकानोंमें उतारना स्वीकृत न हो तो जहाजोंको यात्री उतारनेकी इजाजत तभी दी जा सकती है जब कि उनको धुआँ दिये और**

१. यह डर्बन बन्दरगाहके पास झाड़ियोंसे छाई हुई एक टेकरी है, जिससे खाड़ीका दृश्य बड़ा सुहावना दिखलाई पड़ता है। यहाँ यात्रियोको सूतकमें रखनेके लिए घरोंकी व्यवस्था है।

प्रत्येक जहाजके कप्तानको कपड़ोंके विषयमें मेरे द्वारा दी गई हिदायतोंके अनुसार एहतियाती कार्रवाई किये हुए, अर्थात् उन्हें धोये व शोधित किये और फालतू चिथड़ों, पट्टियों, थैलों आदिको जलाये हुए, १२ दिन बीत जायें। यदि मालिक सूतकका खर्च उठानेको तैयार हों तो यात्रियोंको उतारनेसे पहले धूनी देने आदिकी एहतियाती कार्रवाइयाँ ऊपर लिखे अनुसार कर देनी चाहिए, और तब जहाजोंके लिए यहाँसे जानेकी सहूलियत कर दी जायेगी। परन्तु तटके साथ सम्पर्क उचित प्रतिबन्धोंके बिना नहीं किया जा सकेगा। यदि आप चाहते हों कि जहाज यहाँसे चले जायें तो उसका सबसे सुगम उपाय यही है कि मालिक, जहाजको धूनी लगा लेने आदिके पश्चात् १२ दिन तक, और यदि आवश्यकता हो तो अधिक समय तक यात्रियोंको ब्लफके सूतक-घरोंमें रखनेका खर्च उठानेके लिए तैयार हो जायें (परिशिष्ट ण)।

इसका उत्तर मालिकोंके सॉलिसिटरोंने उसी दिन दे दिया और उक्त अधिकारीका ध्यान, डा० प्रिन्स तथा डा० हैरिसन द्वारा दिये हुए ऊपर निर्दिष्ट प्रमाणपत्रोंकी ओर खींचकर, उसके द्वारा लगाई हुई शर्तोंके विरुद्ध प्रतिवाद किया। उन्होंने यह शिकायत भी की कि यद्यपि जहाजोंको यहाँ आये आठसे अधिक दिन बीत चुके हैं, फिर भी उन्हें आपकी प्रस्तावित विधिके अनुसार शोधनेके लिए अबतक कुछ नहीं किया गया। उन्होंने यह भी लिखा कि हमारे मुअक्किल, यात्रियोंको तटपर सूतकमें रखने आदिकी किसी भी कार्रवाईमें भाग लेनेको तैयार नहीं हैं, क्योंकि यात्रियोंको उतारनेकी इजाजत न देनेकी आपकी कार्रवाईको वे कानून-संगत नही मानते। उन्होंने यह भी बतलाया कि आपसे पहलेके स्वास्थ्य-अधिकारीने "अपना यह मत प्रकट किया था कि जहाजोंको यात्री उतारनेकी इजाजत बिना किसी खतरेके दी जा सकती है, और यदि उसे वैसा करने दिया जाये तो वह अनुमतिपत्र दे देगा; परन्तु इसपर उसे मुअत्तिल कर दिया गया।" और "पहले तो श्री एस्कम्बने इस विषयमें डा० मैकेंज़ी और डा० ड्यूमासे खानगी तौरपर बातचीत की और फिर श्री एस्कम्बकी ही सूचनासे आपने उन दोनोंको यात्री उतारनेकी अनुमति देनेसे इनकार करनेके विषयमे अपना अभिप्राय देनेके लिए बुलाया" (परिशिष्ट त)।

जब सरकार और मालिकोंके सॉलिसिटरोंमें सूतकके प्रश्नपर इस प्रकार पत्र-व्यवहार चल रहा था और जब दोनों जहाजोंके यात्रियोंको भारी कष्ट

और कठिनाइयोंका सामना करना पड़ रहा था, उसी समय सूतकमें पड़े हुए यात्रियोंको किनारेपर न उतरने देनेके लिए, डर्बनमें एक आन्दोलन खड़ा किया जा रहा था। ३० दिसम्बरको *नेटाल एडवर्टाइज़र*में, सम्राज्ञीके एक कमिशन-प्राप्त अधिकारी तथा "प्रारम्भिक सभाके अध्यक्ष हैरी स्पार्क्स"के हस्ताक्षरसे पहली बार यह विज्ञापन निकला :

आवश्यकता है, डर्बनके एक-एक मर्दकी, एक सभामें हाजिर होनेके लिए — सोमवार, ४ जनवरीको, सायंकाल ८ बजे विक्टोरिया काफेके बड़े कमरेमें। सभाका प्रयोजन : एक जुलूसका संगठन करना, जो जहाज-घाटपर जाये और एशियाइयोंके उतारे जानेके विरुद्ध आवाज बुलन्द करे।

यह सभा आखिर डर्बनके नगर-भवनमें हुई। उसमें उत्तेजनापूर्ण भाषण हुए, और कप्तान स्पार्क्सके अतिरिक्त भी कई कमिशन-प्राप्त अधिकारियोंने उसकी गरमागरम कार्रवाईमें भाग लिया। बतलाते हैं कि सभामें उपस्थिति लगभग २००० की थी, और उसमें अधिकतर लोग कारीगर थे। उसमें निम्न प्रस्ताव पास किये गये :

इस सभाका दृढ़ मत है कि अब समय आ गया है कि इस उपनिवेशमें, और अधिक स्वतन्त्र भारतीयों या एशियाइयोंको उतरनेसे रोक दिया जाये। इसलिए यह सभा सरकारको आदेश देती है कि इस समय "नादरी" और "कूरलैंड" जहाजोंपर जो एशियाई मौजूद हैं उन्हें वह उपनिवेशके खर्चपर भारत लौटा देनेके उपाय करे, और दूसरे भी जो-कोई स्वतन्त्र भारतीय या एशियाई डर्बनमें उतारे जायें उन्हें रोके।

सभामें उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति इस प्रस्तावसे सहमत है, और इसे क्रियान्वित करनेमें सरकारको सहायता देनेके लिए अपने आपको पाबन्द करता है कि उसका देश उससे जो चाहेगा सो वह करेगा। और इस दृष्टिसे, यदि आवश्यकता होगी तो उसे जब कभी कहा जायेगा, वह बन्दरगाहपर जानेको तैयार रहेगा।

दूसरा प्रस्ताव डा० मैकेंज़ीने पेश किया था। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है वे उन लोगोंमें से थे जिन्हें श्री एस्कम्बने सूतकका समय निश्चित करनेके लिए बुलाया था। उनके भाषणके कुछ अंश ये हैं :

श्री गांधी —(देर तक इश-इश और हो-होकी आवाजें)— वह भला आदमी नेटाल आया और डर्बन नगरमें बस गया। यहाँ उसका खुला और निःसंकोच स्वागत किया गया। जो भी अधिकार या लाभ इस उपनिवेशमें उसे मिल सकते थे वे उसे मिले। उसपर ऐसी कोई पाबन्दी या रोक-टोक नहीं लगाई गई जो कि आप लोगों या मुझपर लागू नहीं हैं। हमारा अतिथि होनेके सब अधिकार उसे मिले। इसके बदलेके रूपमें श्री गांधीने नेटालके उपनिवेशियोंपर आरोप लगाया कि वे भारतीयोंके साथ अन्याय और दुर्व्यवहार करते हैं और उन्हें लूटते और ठगते हैं। (एक आवाज—'कुलीको कोई नहीं ठग सकता')। मैं आपसे पूरी तरह सहमत हूँ। श्री गांधी लौटकर भारत गया और वहाँ उसने हमें नालियोंमें घसीटा और हमारी ऐसी काली और मैली तसवीर खींची कि जैसी उसकी अपनी खाल है (तालियाँ)। और इस व्यवहारको ये लोग, अपने भारतीय बोलचालमें, नेटाल द्वारा दिये हुए अधिकारोंका सम्मानपूर्ण तथा वीरोचित बदला चुकाना कहते हैं।... इन नरम और नाजुक जीवधारियोंका इरादा था कि ये उस एक चीजके भी मालिक बन बैठें जो कि उन्हे इस देशके शासकोंने नहीं दी थी — अर्थात् मताधिकार। इनका इरादा था कि संसदमें घुस जायें और यूरोपीयोंके लिए कानून बनाने लगें; खुद घरके प्रबन्धक बन बैठें, और यूरोपीयोंको रसोईके काम पर रखें। ...हमारे देशने फैसला किया है कि यहाँ अब एशियाई और भारतीय बहुतेरे आ चुके हैं, और यदि वे सीधे रहे तो हम उनके साथ उचित और अच्छा व्यवहार करेंगे; परन्तु यदि वे गांधी जैसे लोगोंका साथ देने लगे, हमारे आतिथ्यका दुरुपयोग करने लगे, वैसे ही काम करने लगे जैसे कि गांधीने किये हैं, तो उन्हें अपने साथ भी उसी व्यवहारकी आशा करनी चाहिए जो कि गांधीके साथ किया जानेवाला है (तालियाँ)। यह इन लोगोंका कितना ही बड़ा दुर्भाग्य क्यों न हो, मैं काले और गोरेमें भेदको मनसे नहीं निकाल सकता।— *नेटाल एडवर्टाइज़र*, ५ जनवरी।

इसपर कुछ भी कहनेकी आवश्यकता नहीं। अबसे पहले जो कुछ बताया गया है उससे स्पष्ट हो चुका है कि श्री गांधीके विषयमें जो कहा गया उसके लायक उन्होंने कुछ भी नहीं किया था। भारतीय लोग कानून बनानेका

अधिकार लेना चाहते और यूरोपीयोंको रसोईघरमें रखना चाहते हैं, यह केवल इस बहादुर डाक्टरके उर्वर मस्तिष्ककी उपज है। इन और ऐसे अन्य भाषणोंका यहाँ जिक्र तक न किया जाता, यदि जनताके मनपर उनका असर न पड़ गया होता। कप्तान स्पार्क्सने इस सभाके प्रस्ताव सरकारके पास तार द्वारा भेजे और सरकारने जवाबमें उसे निम्न तार दिया :

> **जवाबमें मैं बतलाना चाहता हूँ कि इस समय सरकारको, सम्राज्ञीकी प्रजाके किसी भी वर्गको उपनिवेशमें उतरनेसे रोकनेका, उसके अलावा और कोई अधिकार नहीं है जो कि उसे सूतकके कानूनों द्वारा मिल सकता है। परन्तु मैं बतला दूँ कि इस प्रश्नपर अधिकतम ध्यान दिया गया है, दिया जा रहा है और दिया जायेगा। सरकार पूरी तरह मानती है कि इसका महत्त्व बहुत ही अधिक है। सरकारकी इस उपनिवेशके लोकमतके इस रुखसे पूरी सहानुभूति है कि उपनिवेशमें एशियाइयोंकी भीड़-भाड़ नहीं होने देनी चाहिए। सरकार इस प्रश्नपर, भविष्यमें कानून बनानेकी दृष्टिसे, सावधानीके साथ विचार और चर्चा कर रही है। परन्तु मैं यहाँ बतला दूँ कि दूसरे प्रस्तावमें जैसी कार्रवाई या प्रदर्शन करनेका संकेत किया गया है वैसा कोई भी काम करनेसे सरकारके काममें सहायता होनेके बजाय रुकावट ही पड़ेगी।**

इससे प्रकट है कि सूतकका प्रयोजन, उपनिवेशमें गिल्टीवाले प्लेगका प्रवेश रोकनेकी अपेक्षा यात्रियोंको भारत लौट जानेके लिए तंग करना अधिक था। इसपर अध्यक्षने सरकारको यह तार दिया :

> **समितिने मुझे इस तारके लिए आपको धन्यवाद देने और अब सरकारसे यह प्रार्थना करनेको कहा है कि वह “नादरी” और “कूरलैंड” जहाजोंपर मौजूद एशियाइयोंको बतला दे कि यहाँकी जनता उनके उतरनेकी कितनी विरोधी है, और उन्हें सलाह दे कि वे उपनिवेशके खर्चपर भारत लौट जायें।**

कप्तान स्पार्क्सने एक और सभा ७ जनवरीको टाउन हालमें ही बुलाई, और उसमें निम्न प्रस्ताव पास किये गये :

> **यह सभा सरकारसे प्रार्थना करती है कि वह संसदका एक विशेष अधिवेशन बुलाये, जिससे कि जबतक उपनिवेशमें स्वतन्त्र भारतीयोंका**

आगमन रोकनेके अधिकार सरकारको देनेका कानून नहीं बन जाता तबतक वह ऐसा करनेके लिए अस्थायी उपाय कर सके। और यह कि, भारतीय यात्रियोंके बन्दरगाहपर उतरनेपर हम वहाँ प्रदर्शन करते-करते जायेंगे, परन्तु प्रत्येक व्यक्ति अपने नेताओंकी आज्ञाके अनुसार चलेगा।

इस सभामें जो भाषण किये गये उनसे स्पष्ट होता है कि सरकारकी इस सभाके उद्देश्योंके साथ पूर्ण सहानुभृति थी। और सूतक और कुछ नहीं, यात्रियोंको उतरनेसे रोकनेका साधन-मात्र था। और संसदका विशेष अधिवेशन इसलिए बुलाया जानेवाला था कि सूतककी अवधि अनिश्चित कालके लिए बढ़ानेका विधेयक पास किया जा सके। इस सभाके भाषणोंके निम्न अंशोंमे हमारी बातकी पुष्टि हो जाती है :

यदि सरकार हमारी सहायता न कर सके तो (एक आवाज —— हम अपनी मदद आप कर लेंगे) हमें अपनी सहायता आप करनी चाहिए (जोरकी तालियाँ)।

बताया जाता है कि कप्तान वाइलीने अपने भाषणमें कहा :

आपको यह सुनकर खुशी होगी कि आपने जो कार्रवाई की थी उसके विषयमें सरकारी अधिकारियोंने कहा है कि उससे लक्ष्यकी पूर्तिमें जितनी सहायता मिली है उतनी अबतक उपनिवेशमें हुई और किसी भी कार्रवाईसे नहीं मिली थी (तालियाँ)।

इस तरह शायद उन्होंने इस आन्दोलनके पुरस्कर्ताओंको अनजाने, किन्तु निश्चित रूपसे, और भी कार्रवाई करनेका बढ़ावा दिया।

परन्तु साथ ही आपको ध्यान रखना चाहिए कि आप यह कार्य करते हुए ऐसी कोई आवेशकी बात न करें जिससे कि आपके सामने उपस्थित लक्ष्य विफल हो जाये। आपको ध्यान रखना चाहिए कि आप आँख मीचकर घाटपर से कूद न जायें और उसे औरोंके उतरनेके लिए खाली न छोड़ दें (हँसी)।

डाक्टर मैकेंजीने पिछली सभामें कहा था :

उन भारतीय लोगोंके लिए उपयुक्त स्थान हिन्द महासागर ही है (हँसी)। उन्हें वह हासिल करने दीजिये। हम वहाँके पानीपर उनके

हकका विरोध नहीं करेंगे। परन्तु आपको ध्यान रखना चाहिए कि आप उन्हें उक्त महासागरके साथ लगी हुई जमीनपर दावा करनेका अधिकार न दें। श्री एस्कम्बने आज प्रातःकाल दो घंटे तक उचित और न्यायपूर्ण ढंगसे हमारी समितिके सदस्योंके साथ बातचीत की थी। उन्होंने कहा था कि सरकार आपके साथ है, और आपकी सहायता करना चाहती है और सब सम्भव उपायोंसे इस मामलेको शीघ्र सुलझाना चाहती है। परन्तु साथ ही आपको ध्यान रखना चाहिए कि आप ऐसा कोई काम न करें जिससे कि सरकारका हाथ रुक जाये।... उनके साथ चर्चा करते हुए समितिके सदस्योंने उन्हें बता दिया कि 'यदि आपने कुछ न किया तो हमें स्वयं कार्रवाई करनी पड़ेगी और यह देखनेके लिए बड़ी संख्यामें बन्दरगाहपर जाना पड़ेगा कि क्या-कुछ किया जा सकता है' (तालियाँ)। उन्होंने यह भी कहा कि हमें रोकनेके लिए उपनिवेश सरकारको फौज बुलानी पड़ेगी। श्री एस्कम्बने जवाब दिया कि "ऐसा कुछ न होगा (तालियाँ); सरकार आपके साथ है। परन्तु यदि आप सरकारको ऐसी किसी स्थितिमें डाल देंगे कि उसे गवर्नरके पास जाकर उससे कहना पड़े कि शासनका सूत्र आप अपने हाथमें ले लीजिये, तो आपको किसी और आदमीकी तलाश करनी पड़ेगी (गड़बड़ी)...।

(आपके प्रार्थी निवेदन करना चाहते हैं कि डा० मैकेंज़ीके इस बयानका आज तक खंडन नहीं किया गया और इससे सुगमतापूर्वक कल्पना की जा सकती है कि इससे आन्दोलनको कितना बढ़ावा मिला होगा।)

...कुछ सज्जनोंने कहा है कि सूतककी अवधि बढ़ा दो। ठीक यही काम संसद करनेवाली है (तालियाँ और 'जहाजको डुबा दो' की आवाजें)। कल रात मैंने एक समुद्री सैनिकको यह कहते सुना था कि जो कोई जहाजपर गोला छोड़ देगा उसे मैं एक महीनेकी तनख्वाह दूँगा। क्या यहाँ मौजूद हरएक व्यक्ति इस सभाके उद्देश्यकी पूर्तिके लिए एक-एक महीनेकी तनख्वाह देनेको तैयार है? (तालियाँ और 'हाँ हाँ' की आवाजें)। तो फिर सरकारको पता चल जायेगा कि हमारी पीठपर कितनी ताकत है। हमारी सभाका एक उद्देश्य सरकारको अपनी इस इच्छाकी सूचना दे देना

भी है कि हम सूतककी अवधि बढ़ानेके लिए संसदका विशेष अधिवेशन बुलाना चाहते हैं (तालियाँ)। स्मरण रखना चाहिए कि जल्दबाजीमें बनाया हुआ कानून अपने उद्देश्यकी पूर्ति बहुत कम कर पाता है। परन्तु ऐसा कानून बनाया जा सकता है जिससे कि हमें समय मिल जाये और जब हम उपयुक्त कानून बनवानेके लिए लड़ रहे हों उस बीच वह हमारी रक्षा करता रहे। हमने श्री एस्कम्बको सुझाया था, और वे हमसे सहमत हो गये, कि चूँकि सूतकके कानून सूतकको अनिश्चित काल तक बढ़ा देनेका अधिकार नहीं देते, इसलिए यदि आवश्यकता हो तो ऐसा कानून पास करनेके लिए एक, दो या तीन दिन तक संसदकी बैठक की जाये, जिससे कि हमें बम्बईको छूतका क्षेत्र घोषित करनेका अधिकार मिल जाये। हम उसे वैसा घोषित करते हैं; और जबतक यह घोषणा वापस नहीं ले ली जाती तबतक कोई भी भारतीय बम्बईसे यहाँ नहीं आ सकता।[1] (जोरकी तालियाँ)। मेरा खयाल है कि हमारे शिष्टमंडलकी आज प्रातःकाल श्री एस्कम्बके साथ जो बातचीत हुई उससे हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि यदि हमने अपना काम ठीक प्रकारसे किया और सरकारके मार्गमें बाधा डालनेकी कोई कार्रवाई न की तो हम संसदका अधिवेशन यथाशीघ्र बुलवा सकेंगे और जबतक कोई कानून सदाके लिए पास नहीं हो जाता तबतक और कुलियोंको उतरनेसे रोक सकेंगे। (तालियाँ)।

डा० मैकेंज़ी :

डर्बनके मर्द इस विषयमें सर्वथा एकमत हैं। (जल्दी संसदकी बैठक करनेके विषयमें)। मैंने कहा, "डर्बनके मर्द"––क्योंकि इस जगहके आसपास कुछ बूढ़ी स्त्रियाँ भी चक्कर काट रही हैं (हँसी और तालियाँ)। और, अखबारोंकी आड़में कलम थामकर बैठे हुए लोग कैसे हैं, यह तो हम अखबारोंके कुछ अग्रलेखोंकी ध्वनि और उनमें दिये हुए कुछ सतर्कता और चतुराईके उपदेशोंसे ही जान ले सकते हैं। ऐसे आदमी, जो इस तरहकी बातोंपर जोर देते हैं, यह मानते हैं कि नागरिकजन जानते ही नहीं, सही

१. वास्तवमें नेटालकी संसदने कुछ समय बाद एक विधेयक पास कर लिया था। देखिए पृष्ठ ३२५ और ३७८–७९।

क्या है।...बाहर खड़े जहाजोंपर मौजूद आदमियोंमें से, एकके सिवा और किसीको ऐसा सन्देह करनेका कारण नहीं है कि इस उपनिवेशमें प्रवासियोंके तौरपर, उनका स्वागत खुशीसे नहीं किया जायेगा। निःसन्देह एक आदमीको इस सम्बन्धमें सन्देह करनेका कुछ कारण हो सकता है। वह भलामानुस (गांधी) इनमें से एक जहाजपर है; और इस समय मैं जो-कुछ कह रहा हूँ उसमें मैं उसकी चर्चा नहीं कर रहा। हमें बन्दरगाहको बन्द करनेका अधिकार है, और हम उसको बन्द करनेका इरादा रखते हैं (तालियाँ)। हम लोगोंके साथ, इन जहाजोंके यात्रियोंके साथ उचित सलूक करेंगे, और एक हद तक उस खास व्यक्तिके साथ भी वैसा ही करेंगे। परन्तु मुझे आशा है कि हमारे सलूकमें साफ फर्क रहेगा। जब हम बन्दरगाहपर पहुँचेंगे तब हम अपने आपको अपने नेताके सुपुर्द कर देंगे और अगर उसने हमसे कुछ करनेको कहा तो हम ठीक वही करेंगे जो वह हमसे कहेगा (हँसी)।

प्रदर्शन-समितिने डर्बनके कर्मचारियोंमें एक पत्र घुमाया, जिसके ऊपर लिखा था :

उन सदस्योंके नामोंकी व्यापार या व्यवसाय-सह[1] सूची, जो बन्दरगाहपर जाने, यदि आवश्यकता हो तो एशियाइयोंको उतरनेसे जबरदस्ती रोकने और अपने नेताओंकी किन्हीं भी आज्ञाओंको माननेके लिए तैयार हैं।

तारीख ७की सभाके अन्तमें कप्तान स्पार्क्सने जो भाषण किया था उसके निम्न अंशसे इस बातका कुछ अन्दाजा लग सकता है कि समितिने प्रदर्शनमें शामिल होनेके लिए लोगोंकी भर्ती किस प्रकार की थी :

हम नगरके व्यापारियोंसे आग्रह करना चाहते हैं कि वे अपनी-अपनी दूकानें और दफ्तर बन्द कर दें, जिससे कि जो लोग प्रदर्शनमें भाग लेना चाहें वे वैसा कर सकें (तालियाँ)। इससे हमें पता लग जायेगा कि कौन-कौन हमारे साथ है। कई व्यापारी पहले ही हमें वचन दे चुके हैं कि

१. देखिए पृष्ठ २२३–२४।

उनसे जो हो सकेगा वह सब वे करेंगे। शेष सबकी हम असली कलई खोल देना चाहते हैं। ('उनका बहिष्कार करो' की आवाजें)।

यहाँ यह भी जान लेना उचित होगा कि यात्रियोंको शांतिपूर्वक उतरने देनेके लिए जहाजोंके मालिकों और सरकारके बीचमें क्या हो रहा था। प्रार्थी यहाँ बतलाना चाहते हैं कि जनवरीके प्रथम सप्ताहमें नगर पूर्णतया उत्तेजित अवस्थामें था। नगरके भारतीय निवासियोंके लिए यह समय भय और चिंताका था, और यह डर लग रहा था कि किसी भी क्षण दोनों समाजोंमें टक्कर हो सकती है। ८ जनवरी १८९७ को जहाजोंके मालिकों और एजेंटोंने सरकारकी सेवामें एक प्रार्थनापत्र भेजकर उसका ध्यान इस ओर दिलाया कि भारतीय यात्रियोंके उतरनेके विरुद्ध डर्बनकी जनताके भाव कैसे भड़के हुए हैं।" उन्होंने यह प्रार्थना भी की कि "सरकार यात्रियोंके जान-मालकी कानूनके खिलाफ कार्रवाई करनेवालोंसे—भले वे कोई भी क्यों न हों—रक्षा करे;" और सरकारको विश्वास दिलाया कि "यात्रियोंको चुपचाप, बिना किसीको मालूम हुए, उतारनेके लिए जो भी उपाय करने आवश्यक होंगे उन्हें करनेमें वे सरकारसे सहयोग करेंगे, ताकि सरकारको ऐसा कोई काम न करना पड़े जिससे जनताकी वर्तमान उत्तेजना और भी बढ़ जाये" (परिशिष्ट थ)। ९ जनवरीको एक पत्र भेजकर सरकारका ध्यान पुनः जनतामें घुमाये गये उस उपर्युक्त पत्रककी ओर खींचा गया जिसमें कि यात्रियोंको उतरनेसे जबरदस्ती रोकनेकी बात कही गई थी। सरकारका ध्यान इधर भी खीचा गया कि रेलवे-कर्मचारी सरकारके नौकर होते हुए भी इस प्रदर्शनमें भाग लेनेवाले हैं; और उससे यह आश्वासन देनेकी प्रार्थना की गई कि "सरकारी कर्म-चारियोंको इस प्रदर्शनमे भाग लेनेसे रोक दिया जाये" (परिशिष्ट द)। इस पत्रका उत्तर मुख्य उपसचिवने ११ जनवरीको यह दिया :

यात्रियोंको चुपचाप और बिना किसीको मालूम हुए उतारनेके आपके सुझावपर अमल करना असम्भव है। सरकारको पता चला है कि आपने बन्दरगाहके कप्तानसे अनुरोध किया है कि वह जहाजोंको, खास हिदायतोंके बिना, बन्दरगाहमें न लाये। आपकी इस कार्रवाई और आपके इन पत्रोंसे प्रकट होता है कि आप भारतीयोंके उतरनेके विरुद्ध उपनिवेशभरमें विद्यमान तीव्र भावनाओंसे भली-भाँति परिचित हैं, और

उनको इस भावनाओंके अस्तित्व और तीव्रताकी सूचना देनी ही चाहिए (परिशिष्ट घ)।

सरकारने इस पत्रके अन्तिम शब्द लिखे, इसपर यहाँ प्रार्थी खेद प्रकाशित किये बिना नही रह सकते। सरकारसे रक्षाका आश्वासन माँगा गया था, परन्तु उसने वह आश्वासन देनेके बजाय जहाजोंके मालिकोंको स्पष्ट शब्दोंमें सलाह दी कि वे यात्रियोंको लौट जानेके लिए प्रेरित करें। प्रार्थियोंकी नम्र सम्मतिमें अन्य किसी बातकी अपेक्षा इस पत्रसे यह अधिक स्पष्ट हो जाता है कि सरकारने आन्दोलनको परोक्ष रूपसे बढ़ावा दिया और अपनी निर्बलता प्रकट की। यदि वह दृढ़ सम्मति प्रकट कर देती तो शायद यह आन्दोलन दब जाता और भारतीय समाजको सम्राज्ञीकी प्रजाओंके निर्बाध प्रवेशकी नीतिका निश्चय हो जानेके अतिरिक्त, उसके न्यायपूर्ण इरादोंके विषयमें जनताके मनमें सेहतमन्द विश्वास पैदा हो जाता। १० जनवरीको माननीय श्री हैरी एस्कम्ब डर्बनमें ही थे। इसलिए मालिकोंके सॉलिसिटरोंकी फर्म मेसर्स गुडरिक, लॉटन ऐंड कुकके श्री लॉटनने इस अवसरका लाभ उठाकर उनसे भेंट की, और उन्हें एक पत्र भेजकर उसमें उनके साथ हुई अपनी बातचीतका सारांश लिख दिया (परिशिष्ट न)। इस पत्रसे प्रकट होता है कि श्री एस्कम्बने उस वक्तव्यका प्रतिवाद किया जो कि श्री वाइलीने उनका दिया हुआ बतलाया था और जिसका जिक्र ऊपर किया जा चुका है। इसपर से यह भी मालूम पड़ा है कि सरकार इन बातोंको मानती थी :

> **सूतककी शर्तें पूरी हो चुकनेपर "कूरलैंड" और "नादरी" जहाजोंको यात्री उतारनेकी इजाजत अवश्य दे दी जानी चाहिए। यह इजाजत मिल जानेपर जहाजोंको अधिकार होगा कि वे अपने यात्री व माल घाटपर उतार दें। ऐसा वे चाहे तो स्वयं घाटपर आकर करें और चाहे छोटी नावोंके द्वारा। यात्रियों और मालकी दंगाइयोंसे रक्षा करनेकी जिम्मेदारी सरकारकी है।**

जनवरी ११ के पत्र (परिशिष्ट प) के उत्तरमें कहा गया कि इसमें जिस भेंटकी चर्चा की गई है उसे आपसमें गुप्त ही रखनेका समझौता हो गया था, और श्री लॉटनके पत्रमें जो बातें माननीय श्री एस्कम्ब और श्री लॉटन द्वारा कही गई बतलाई गई है वे ठीक नहीं हैं। १२ जनवरीको इसके उत्तरमें मेसर्स गुडरिक, लॉटन ऐंड कुकने लिखा कि श्री लॉटनने उक्त

मुलाकातको निजी क्यों नहीं माना, और प्रार्थना की कि श्री लॉटनके विवरणमें जो भूलें रह गई हों उन्हें सुधार दिया जाये, जिससे कि परस्पर कोई भ्रम न रहे (परिशिष्ट फ)। जहाँतक आपके प्रार्थियोंको ज्ञात है इस पत्रका कोई उत्तर नहीं दिया गया। जहाजके मालिकोंने, उसी दिन, सरकारके मुख्य उपसचिवके ११ जनवरीके पत्रका उत्तर श्री एस्कम्बकी सेवामें भेजा (परिशिष्ट ध), और उसमें आश्चर्य प्रकट किया कि हमने सरकारका ध्यान जिन अनेक बातोंकी ओर खींचा था उनका उपसचिवके पत्रमें जिक्र तक नहीं किया गया। उस पत्रका एक अनुच्छेद यह था:

> **जहाजोंको बन्दरगाहसे परे लंगर डाले हुए आज २४ दिन हो गये। इसका खर्च हमपर १५० पौंड प्रतिदिन पड़ रहा है। इसलिए हमें विश्वास है कि आप हमें कल दुपहर तक पूरा उत्तर दे देनेका औचित्य समझेंगे। हम आपको यह सूचना दे देना भी उचित समझते हैं कि यदि हमें ऐसा कोई उत्तर न मिला, जिसमें कि यह आश्वासन दिया गया हो कि हमें गत रविवारसे लगाकर १५० पौंड प्रतिदिनके हिसाबसे हरजाना दिया जायेगा और हम यात्रियों तथा मालको उतार सकें इसलिए आप दंगाइयोंको दबानके उपाय कर रहे हैं, तो हम सरकारके संरक्षणका भरोसा करके जहाजोंको बन्दरगाहमें लानेकी तैयारियाँ एकदम शुरू कर देंगे। हमारा सादर निवेदन है कि सरकार हमें यह संरक्षण देनेके लिए बाध्य है (परिशिष्ट ब)।**

इस पत्रका उत्तर श्री एस्कम्बने १३ जनवरीके १०-४५ बजे, जहाज-घाटसे, निम्न प्रकार दिया:

> **बन्दरगाहके कप्तानने हिदायत दे दी है कि जहाज आज १२ बजे सीमा पार करके घाटपर आनेके लिए तैयार हो जायें। व्यवस्थाकी रक्षाके सम्बन्धमें सरकारको उसकी जिम्मेवारीकी याद दिलाई जानेकी जरूरत नहीं है (परिशिष्ट भ)।**

यात्रियोंकी रक्षाके सम्बन्धमें मालिकोंको सरकारकी ओरसे पहली बार यह आश्वासन दिया गया; और जैसा कि आगे चलकर बतलाया जायेगा, यह भी तब दिया गया जब कि यात्रियोंको भारत लौट जानेके लिए विवश करनेके, मार-पीटकी धमकी देने आदिके, सब साधन विफल हो गये।

अब जहाजोंकी बात सुनिए। ९ जनवरीको *नादरीने* यह संकेत-सन्देश दिया: "सूतक पूरा हो गया। बतलाइये मुझे यात्री उतारनेकी इजाजत कब मिलेगी?" इसी प्रकारका सन्देश कूरलैंडने १२ जनवरीको भेजा। परन्तु इजाजत ११ जनवरी १८९७के दुपहर बाद तक नहीं दी गई। उसी दिन कूरलैंडके मास्टरको ८ जनवरी १८९७का लिखा निम्न पत्र मिला, जिसपर 'हैरी स्पार्क्स, समितिका अध्यक्ष" के हस्ताक्षर थे :

> **शायद आपको पता न होगा, और न आपके यात्रियोंको ही होगा कि इधर कुछ समयसे एशियाइयोंके आगमनके विरुद्ध उपनिवेशकी भावनाएँ बहुत भड़की हुई हैं। आपके जहाज तथा "नादरी" के यहाँ आनेपर तो वे चरम सीमापर पहुँच गई हैं। उसके बाद डर्बनमें सार्वजनिक सभाएँ हुई हैं, और उनमें संलग्न प्रस्ताव उत्साहपूर्वक पास किये गये हैं। इन सभाओंमें उपस्थिति इतनी अधिक थी कि जो लोग इनमें सम्मिलित होना चाहते थे वे सब नगरके सभा-भवन (टाउन हाल) में प्रविष्ट नहीं हो सके। डर्बनके प्रायः प्रत्येक व्यक्तिने हस्ताक्षर करके अपना संकल्प प्रकट किया है कि वह आपके जहाज और "नादरी" के यात्रियोंको उपनिवेशमें नहीं उतरने देगा। हमारी प्रबल इच्छा है कि यदि सम्भव हो तो डर्बनके लोगों और आपके यात्रियोंमें टक्कर न हो। उन्होंने यहाँ उतरनेका यत्न किया तो बिलकुल निश्चय है कि यह टक्कर होकर रहेगी। आपके यात्री यहाँकी भावनाओंसे अनजान हैं और अनजानपनेमें ही यहाँ आ गये हैं, और हमें महान्यायवादीसे मालूम हुआ है कि यदि आपके आदमी भारत लौट जाना चाहेंगे तो उनका खर्च उपनिवेश दे देगा। इसलिए यदि जहाजके घाटपर लगनेसे पहले ही आपके पाससे यह उत्तर मिल जाये तो हमें खुशी होगी कि आपके यात्री उपनिवेशके खर्चपर भारत लौट जाना पसन्द करेंगे या, यहाँ जो हजारों आदमी उनके उतरनेका विरोध करनेका मौका देखते तैयार खड़े हैं, उनका सामना करके वे जबरदस्ती उतरनेका प्रयत्न करना चाहेंगे (परिशिष्ट कक)।**

जब दोनों जहाजोंके मास्टरोंको यह पता चला कि यात्रियोंके उतरनेके विरुद्ध भावनाएँ भड़की हुई हैं, सरकारकी भी इस आन्दोलनके साथ सहानुभूति है, वह यात्रियोंको रक्षाका प्रायः कोई आश्वासन नहीं दे सकी, और व्यवहारमें

प्रदर्शन-समिति ही सरकार बनी हुई है, तब स्वभावतः वे अपने यात्रियोंके विषयमें चिंतित हो गये और उन्होंने समितिके साथ बातचीत करना मंजूर कर लिया। (समिति ही असली तौरपर सरकारका प्रतिनिधित्व कर रही है, यह बात कूरलैंडके मास्टरके नाम लिखे हुए उसके पत्रसे तो स्पष्ट थी, साथ ही इससे भी स्पष्ट थी कि ११ जनवरीको यूनियन स्टीमशिप कम्पनीका *ग्रीक* नामक जो जहाज डेलागोआ-बे से कुछ भारतीय यात्री लेकर आया था उसके यात्रियोंको समितिवालोंने बिना किसी रोकटोकके तंग किया था; बन्दरगाहके अधिकारी उनके व्यवहारसे प्रायः सहमत थे; और यूनियन कम्पनीके प्रबन्धकर्ता भी समितिकी "आज्ञाओका पालन करने" को तैयार थे, आदि)। इसलिए ११ जनवरीकी शामको उन्होंने तटपर जाकर प्रदर्शन समितिके साथ बातचीत की, और समितिने एक कागज लिखकर मास्टरोंके हस्ताक्षरोंके लिए तैयार किया (परिशिष्ट ब$_{क}$)। परन्तु उन्होंने उसपर हस्ताक्षर नहीं किये और बातचीत बीचमें ही रह गई।

प्रदर्शनसे ठीक पहले समितिकी स्थिति क्या थी, यह भी देख लेना उचित होगा। समितिके एक प्रवक्ता डा० मैकेंज़ीने कहा: "हमारी स्थिति वही है जो पहले थी; अर्थात् हम एक भी भारतीयको यहाँ नहीं उतरने देंगे" (तालियाँ)। समितिके एक अन्य सदस्य कप्तान वाइलीने भाषण देते हुए "गांधी कहाँ है?" के जवाबमें कहा:

> **आपका खयाल क्या है, वह कहाँ होगा? हम (जहाजपर भेजा हुआ समितिका शिष्टमंडल) क्या 'उसे देख पाये?' नहीं। "कूरलैंड" का कप्तान गांधीसे भी वैसा ही बरताव करता था जैसा अन्य यात्रियोंसे (तालियाँ)। वह जानता था कि हमारी सम्मति उसके विषयमें क्या है। वह हमें बहुत अधिक कुछ नहीं बतला सका। 'आपके पास उसके लिए डामर (कोल्टार) तैयार है या नहीं? वह वापस तो नहीं लौट जायेगा?' हमें पूरी आशा है कि भारतीय लौट जायेंगे। वे नहीं लौटेंगे तो समितिको डर्बनके मर्दोंकी जरूरत होगी।**

नेटाल एडवर्टाईज़र (१६ जनवरी) का कथन है:

> **जब यह खबर लगी कि "कूरलैंड" और "नादरी" बन्दरगाहमें जानेकी हिम्मत कर रहे हैं और जब बुधवारके प्रातः १० बजेके कुछ बाद**

मार्च २७, १८९७ के प्रार्थनापत्र का अन्तिम पृष्ठ, जिससे भारतीयोंके भेजे प्रार्थनापत्रोंका प्रातिनिधिक स्वरूप प्रकट होता है

डर्बन बन्दरगाहका घाट: उन्नीसवीं सदी के अन्तिम दशकमें

बिगुलवाले डर्बनकी गलियोंमें छलाँगें भरने लगे, तब आम खयाल यही हुआ कि यदि भारतीय यात्रियोंने उतरनेका प्रयत्न किया तो बेचारोंकी बहुत दुर्गति होगी। और यदि वे उतरनेसे डरकर जहाजपर ही रहे तो भी लोगोंके चिढ़ाने, चिल्लाने और गुर्रानेसे वे बहरे और पागल हो जायेंगे। और आखिर अन्त वही होगा जो पहले सोचा गया था — "कुछ भी क्यों न हो, उन्हें उतरने नहीं दिया जायेगा।"

मालिकोंको जब यह बतलाया गया कि जहाजोंको बन्दरगाहमें आने दिया जायेगा, उससे बहुत पहले इसकी सूचना शहर-भरको मिल चुकी थी। लोगोंको इकट्ठा होनेकी सूचना प्रातः १०–३० बजे बिगुल बजाकर दी गई। तब दूकानदारोंने दूकानें बढ़ा दी और लोग जाकर जहाज-घाटपर इकट्ठे होने लगे। *नेटाल एडवर्टाइज़र*में वहाँ एकत्र हुए लोगोंकी निम्न सूची छपी थी :

१२ बजेसे कुछ पहले अलेग्ज़ेंड्रा स्क्वेयरमें हाजिरी पूरी हो गई। जहाँतक पता लगाया जा सका है हाजिर लोगोंके विभाग ये थे : रेलवे-कर्मचारी, ९०० से १००० तक; नेता : वाइली; सहायक : जी. व्हेलन, डब्ल्यू कोल्स, ग्रांट, अर्ल्समांट, डिक, ड्यूक, रसेल, कैल्डर, टिथरिज। याट-क्लब, पाइंट-क्लब और रोइंग-क्लब, १५०; नेता : मि. डैन टेलर; सहायक : सर्वश्री ऐंडर्टन, गोल्ड्सबरी, हटन, हार्पर, मरे स्मिथ, जांस्टन, वुड, पीटर्स, ऐंडर्सन, क्रास, प्लेफेयर, सीवार्ड। बढ़ई, ४५०; नेता : पुंटेन; सहायक : एच. डब्ल्यू. निकल्स, जैस. हुड, टी. जी. हार्पर। छापेखानेवाले, ८०; नेता : आर. डी. साइक्स; सहायक : डब्ल्यू. पी. प्लोमैन, ई. एडवर्ड्स, जे. शैकल्टन, ई. ट्राली, टी. आर्मस्ट्रांग। दूकान-कर्मचारी, लगभग ४००; नेता : ए. ए. गिब्सन और जे. मेंकिंटोश; सहायक : एच. पियर्सन, डब्ल्यू. एच. किन्समैन, जे. पार्डी, डासन, एस. ऐडम्स, ए. ममरी, जे. टाइज़ेक, जांस, जे. रैम्सन, बेनफील्ड, एथरिज, आस्टिन। दर्जी और काठी सीनेवाले, ७०; नेता : जे. सी. आर्मिटेज; सहायक : एच. मलहालैंड, जी. बुल, आर. गाडफ्रे, ई. मैंडर्सन, ए. रोज, जे. डब्ल्यू. डेंट, सी. डाउज। राज और पलस्तर करनेवाले, २००; नेता : डा० मैकेंजी; सहायक : हार्नर, कील, ब्राउन, जेन्किन्सन। घाट मजदूर, थोड़ेसे; नेता : जे. डिक; सहायक : गिम्बर, क्लैक्सटन, पायसन,

इलियट, पार। साधारण जनता, कोई १०००; नेता: टी. ऐडम्स; सहायक: फ्रैंकलिन, ए. एफ. गार्बेट, जी. डब्ल्यू. यंग, सोमर्स, पी. एफ. गार्बेट और डाउनार्ड। वतनी लोग, ५००। इनका संगठन जी. स्प्रेडब्रो और आर. सी. विन्सेंटने किया था और वे दोनों, प्रदर्शनके समय, इन्हें अलैग्जेंड्रा स्क्वेयरमें व्यवस्थित रखे रहे। उन्होंने इन्हें बतलाया कि तुम्हारा नेता एक बौने वतनीको बनाया गया है। वह इन्हें लाठियोंसे कुछ अभ्यास करवाता रहा, और जब वह इनके सामने नाचता, घूमता और चलता-फिरता था तो ये लोग खूब खुश होते थे। वतनी लोगोंको झगड़ेसे अलग रखनेके लिए यह मनोरंजन खासा रहा। बादमें सुपरिंटेंडेंट अलेक्जेंडर एक घोड़ेपर आया और उसने इन लोगोंको स्क्वेयरसे बाहर हटा दिया।

जहाज बन्दरगाहमें किस प्रकार लाये गये और बादको क्या हुआ, इस सबका हाल बतलानेके लिए, आपके प्रार्थी उसी पत्रके १४ जनवरीके अंकको उद्धृत कर देना सबसे अच्छा समझते हैं:

जहाजोंपर इस सम्बन्धमें बड़ी अधीरता फैली हुई थी कि प्रदर्शन क्या रूप धारण करेगा। "कूरलैंड" के कप्तान मिल्नेने दोनोंमें से अधिक साहसका परिचय दिया था। इस कारण "नादरी" से परे होते हुए भी उन्हें अपना जहाज किनारेपर पहले लगानेके लिए कहा गया। सरकार यात्रियोंकी सुरक्षाके लिए क्या करेगी, इस सम्बन्धमें उन्हें कोई आश्वासन नहीं मिला था। इस कारण उन्होंने निश्चय किया कि मुझे ही इसके लिए कुछ करना चाहिए। उन्होंने जहाजके अग्रभागमें तो यूनियन जैक [ब्रिटिश राज्यका झंडा] फहरवा दिया, और जहाजके मध्यमें झंडेके मुख्य स्तम्भपर तथा पीछेके भागमें, नाविक लोगोंका यूनियन जैकसे अंकित लाल झंडा प्रदर्शित करवा दिया। उन्होंने अपने कर्मचारियोंको हिदायत कर दी कि वे यथा-शक्ति किसी भी प्रदर्शनकर्ताको जहाजपर न आने दें, और यदि वे ऊपर चढ़ ही आयें तो यूनियन जैक उतारकर उन्हें सौंप दिया जाये। उनका खयाल था कि कोई भी अंग्रेज, इस प्रकार आत्मसमर्पण हो चुकनेपर, जहाजके यात्रियोंको सतानेका प्रयत्न नहीं करेगा। परन्तु सौभाग्यवश, बादको जो कुछ हुआ उसके कारण यह कार्रवाई करनी ही नहीं पड़ी। जब "कूरलैंड"

भीतर प्रविष्ट हुआ तब सबकी आँखें यह देखनेको उत्सुक थीं कि प्रदर्शन क्या रूप धारण करता है। घाटके दक्षिणी किनारेसे उत्तरकी ओरको कुछ दूर तक कुछ लोग एक पंक्तिमें खड़े थे, परन्तु वे बड़ी शांतिसे काम लेते नजर आये। जहाजपर के भारतीय यात्री बहुत डरे हुए नहीं जान पड़े। श्री गांधी और कुछ अन्य यात्री जहाजकी छतपर खड़े देखते रहे। उनके चेहरोंसे घबराहटका कोई भाव प्रकट नहीं होता था। प्रदर्शनकर्ताओंकी मुख्य भीड़ जो बन्दरगाहकी मुख्य गोदी (व्हार्फ)में खड़े जहाजोंपर एकत्र हो गई थी, भीतर आते हुए जहाजोंपर से दिखलाई नहीं पड़ती थी। "कूरलैंड" ब्लफ [टेकरी] के मार्गपर घूम गया और वहाँ जाकर खड़ा हो गया। इससे भीड़को जो आश्चर्य हुआ वह उसकी हरकतोंसे प्रकट होता था। लोग इधर-उधर दौड़ते-भागते नजर आते थे और उनकी समझमें बिलकुल नहीं आ रहा था कि आगेकी कार्रवाई कैसे करें। कुछ देर बाद सबके सब अलेग्जैंड्रा स्क्वेयरकी सभामें चले गये। जिस प्रदर्शनकी इतनी चर्चा थी उसका अन्तिम रूप जहाजवालोंने यही देखा। इसी समय, श्री एस्कम्ब एक छोटी नावमें सवार होकर, बन्दरगाहके कप्तान बैलार्ड, गोदीके अधिकारी श्री रीड, और मुअरिंग-मास्टर श्री सिम्पकिन्सके साथ, "कूरलैंड" की बगलमें आये। अटर्नी-जनरलने कहा : 'कप्तान मिल्ने, मैं चाहता हूँ आप अपने यात्रियोंको बतला दें कि वे नेटाल-सरकारके कानूनोंके मातहत अपने आपको वैसा ही सुरक्षित समझें, जैसे कि वे अपने खुदके गाँवोंमें हों।' कप्तानने पूछा कि क्या मैं यात्रियोंको उतरने दूँ? श्री एस्कम्बने जवाब दिया, अच्छा हो कि आप पहले मुझसे मिल लें। यही बात उन्होंने "नादरी" के लिए भी कही। बादमें वे सभामें भाषण करनेके लिए तटपर ले जाये गये। "कूरलैंड" और "नादरी" अगल-बगलमें, ब्लफके राबारीघाट पर लगा दिये गये। "कूरलैंड" तटके अधिक समीप था।

यह आश्वासन देनेके पश्चात् श्री एस्कम्ब अलेग्जैंड्रा स्क्वेयरमें उस स्थानपर चले गये जहाँ प्रदर्शनकारी एकत्र हुए थे। वहाँ एकत्र लोगोंके सामने भाषण करते हुए उन्होंने उनको विश्वास दिलाया कि इस प्रश्नपर विचार करनेके लिए शीघ्र ही संसदका अधिवेशन होगा। उन्होंने उनसे विसर्जित हो जानेका अनुरोध किया। समितिके कुछ सदस्योंने भी भाषण किये, और अन्तमें भीड़

छँट गई। ये भाषण सुनते हुए श्रोताओंने जो आवाजें लगाई थीं और वक्ताओंने जो कुछ कहा था उनकी कुछ बानगी यहाँ दे देना उपयोगी होगा :

"उनको वापस लौटा दो।" "आप गांधीको तटपर क्यों नहीं लाते?" "डामर और पंख तैयार रखो।" "इन भारतीयोंको वापस लौटा दो।" "यदि हमें भी भारतकी सामाजिक नालियोंके बदबख्त कूड़े-कचरेके साथ एक जगह ठूँसकर रखा गया तो दक्षिण आफ्रिका ब्रिटेनकी मुट्ठीमें नहीं रह सकेगा" (तालियाँ) — डा० मैकेंज़ी। "मैं भी कुलियोंको गरदन पकड़ कर फेंक देनेके लिए सबकी तरह तैयार हूँ। (तालियाँ)... अब उस गांधीके बारेमें सुनिए (तालियाँ)। आप चाहें तो उसके विरुद्ध चिल्लाते रहिए पर मुझपर इतना भरोसा रखिए कि मैं उसका खास मित्र हूँ (हँसी)। गांधी इन्हींमें से एक जहाजपर है और उसकी सबसे बड़ी सेवा यह होगी कि उसे घायल कर डाला जाये। मेरा खयाल है कि गांधी अपने उद्देश्यपर कुर्बान होने और शहीद बननेको बड़ा उत्सुक है। उसको सबसे बड़ी सजा यह दी जा सकती है कि आप उसे अपने साथ रहने दें। वह आपके साथ रहेगा तो आपको उसपर थूकनेका मौका मिलता रहेगा (हँसी और तालियाँ)। आपने उसे खत्म कर दिया तो यह मौका आपके हाथसे जाता रहेगा। मुझपर यदि गलियोंमें हर कोई थूके तो मैं तो फाँसी लगाकर मर जाना पसन्द करूँगा" — डैन टेलर।

भीड़ छँट जानेके लगभग दो घंटे बाद यात्री छोटे-छोटे दलोंमें नावों द्वारा किनारेपर उतरने लगे। श्री गांधीके विषयमें श्री एस्कम्बने समुद्री पुलिसके सुपरिंटेंडेंटको हिदायत दी कि वह जाकर उनसे प्रस्ताव करे कि उनको और उनके परिवारको आज रात चुपचाप उतार दिया जायेगा। श्री गांधीने यह प्रस्ताव धन्यवादपूर्वक स्वीकार कर लिया। परन्तु बादको श्री लॉटन उसी दिन मित्रकी हैसियतसे उनसे मिलने जहाजपर गये और उन्होंने सुझाया कि हम दोनों साथ-साथ उतरें। श्री गांधीने यह सुझाव मान लिया[1] और [वे] अपनी ही जिम्मेवारी तथा जोखिमपर, समुद्री पुलिसको बिना कोई सूचना दिये, कोई ५ बजे, श्री लॉटनके साथ, एडिंगटनके समीप उतर गये। कुछ

१. देखिए पृष्ठ १७८–७९।

लड़कोंने उन्हें पहचान लिया और वे उनके और उनके साथीके पीछे लग गये। जब वे दोनों डर्बनके मुख्य मार्ग वेस्ट स्ट्रीटसे गुजर रहे थे तब भीड़ बहुत बढ़ गई। लोगोंने श्री लॉटनको श्री गांधीसे अलग कर दिया और वे उन्हें लातों, घूंसों और चाबुकोंसे मारने लगे। उनपर सड़ी-गली मछलियाँ और फेंककर मारनेकी दूसरी चीजें फेंकी गईं। उनकी आँखमें चोट लगी और कान कट गया। उनकी पगड़ी उनके सिरपर से उछाल दी गई। जब यह सब हो रहा था तब सुपरिंटेंडेंट पुलिसकी पत्नी संयोगवश उधरसे गुजरीं और उन्होंने बड़ी बहादुरीसे अपनी छत्री सामने करके भीड़से उनकी रक्षा की। लोगोंकी चीखें और चिल्लाहट सुनकर पुलिस भी मौकेपर पहुँच गई और उन्हें बचाकर एक भारतीयके घरमें ले गई। परन्तु अबतक भीड़ भी बहुत बढ़ चुकी थी। उसने मकानको सामनेकी तरफसे घेर लिया और वह 'गाधीको निकालो' की आवाजें लगाने लगी। अँधेरा घना होनेके साथ-साथ भीड़ भी घनी होती चली गई। पुलिस सुपरिंटेंडेंटको भय होने लगा कि भारी दंगा हो जायेगा और लोग जबरन मकानमें घुस जायेंगे, इसलिए उसने श्री गांधीको एक पुलिस सिपाहीकी वर्दी पहनाकर चुपके-से पुलिस-थानेमें पहुँचा दिया। आपके प्रार्थी इस घटनासे कोई लाभ उठाना नहीं चाहते। उन्होंने यहाँ इसकी चर्चा केवल घटना-क्रमके एक अंगके रूपमें कर दी है। वे यह मान लेनेको तैयार हैं कि यह आक्रमण गैर-जिम्मेदार लोगोंका काम था और इस दृष्टिसे विशेष ध्यान देने योग्य नहीं है। परन्तु साथ ही वे यह कहे बिना नहीं रह सकते कि यदि प्रदर्शनसमितिके जिम्मेवार सदस्योंने लोगोंको उनके विरुद्ध भड़काया न होता और सरकारने समितिकी कार्रवाइयोंको बर्दाश्त न किया होता तो यह घटना कभी न घटी होती। प्रदर्शनकी कहानी यहाँ समाप्त हो जाती है।

अब आपके प्रार्थी प्रदर्शनके तात्कालिक कारणोंपर विचार करनेकी अनुमति चाहते हैं। समाचारपत्रोंमें इस आशयके बयान निकले थे कि जहाजोंपर ८०० यात्री हैं और वे सब नेटाल आ रहे हैं; उनमें ५० लोहार और २० कम्पोज़ीटर हैं और कूरलैंड जहाजपर एक छापाखाना भी आया है; और श्री गांधीने —

यह खयाल करके भारी गलती की कि वह प्रतिमास १,००० से २,००० तक अपने देशवासियोंको यहाँ उतार देनेके लिए भारतमें एक स्वतन्त्र ऐजेन्सी

संगठित कर लेगा, और नेटालके यूरोपीय चुपचाप बैठे रहेंगे। (*नेटाल मर्क्युरी*, ९ जनवरी)।

प्रदर्शनके पश्चात् उसके नेताने एक सभामें उसका कारण इस प्रकार समझाया था :

> **दिसम्बरके अन्तमें मैंने *नेटाल मर्क्युरी*में एक लेखांश इस आशयका देखा था कि "कूरलैंड" और "नादरी" जहाजोंके यात्रियोंकी तरफसे श्री गांधी सरकारपर हरजानेका दावा करनेकी सोच रहे हैं कि उन्हें सूतकमें क्यों रखा गया। यह पढ़कर गुस्सेके मारे मेरा खून खौलने लगा। तब मैंने मामला हाथमें लेनेका निश्चय किया और डा० मेकेंजीसे मिलकर सुझाया कि इन लोगोंके यहाँ उतरनेके विरुद्ध प्रदर्शनका संगठन किया जाये। ...इन सज्जनने अन्तमें कहा : मैं स्वयं सैनिक हूँ और २० वर्ष तक सेवा कर चुका हूँ।...मैं किसीसे कम राजभक्त नहीं हूँ।...परन्तु यदि आप एक तरफ भारतीय लोगोंको और दूसरी तरफ मेरे घर-बार, मेरे परिवार, मेरे बच्चोंके जन्मसिद्ध अधिकार, मेरे प्यारे माता-पिताकी स्मृति, और आज यह देश जो-कुछ है वह बनानेके लिए उन्होंने जो-सब किया उसे रखने लगेंगे तो मैं एकमात्र वही काम करूँगा जो मै कर सकता हूँ और जिसकी आप मुझसे आशा रखते होंगे (तालियाँ)। इस बुराईको सहनेके बजाय मैं इस मामलेको ट्रान्सवाल सरकारकी दयापर छोड़ देना पसन्द करूँगा। इस बुराईके मुकाबलेमें यह काम समुद्रमें एक बूँदके बराबर होगा। (*नेटाल मर्क्युरी*, १८ फरवरी)।**

यह भी कहा गया था कि श्री गांधीके, और वे अपने साथ जिन दूसरे वकीलोंको लाये हों उनके, बहकावेमें आकर भारतीय यात्री सरकारपर हरजानेका दावा करेंगे कि उमने उनको कानूनके खिलाफ सूतकमें रखा। *नेटाल मर्क्युरी*ने ३० दिसम्बरके अंकमें लिखा था :

> **इस खबरसे कि "नादरी" और "कूरलैंड" जहाजोंके भारतीय कानूनके खिलाफ जहाजोंके सूतकमें रखे जानेके कारण सरकारपर दावा करनेकी सोच रहे है, इस अफवाहकी प्रायः पुष्टि हो जाती है कि श्री गांधी भी जहाजपर है। उसने अपनी तेज कानूनी सूझ-बूझसे एक ऐसा बढ़िया**

मुकदमा ढूँढ़ लिया है जिसके द्वारा उसे सूतककी दुःखदायी कैद और कार्बोलिक दवाईके शोधक स्नानसे छुटकारा मिलते ही शानदार मिहनताना मिलता रहेगा। इस कामके लिए चन्देकी जो बड़ी-बड़ी रकमें एकत्र की गई बतलाते हैं वे स्वभावतः श्री गांधीको मिलेंगी, मुकदमेमें चाहे हार हो चाहे जीत। और यदि यह सब सत्य हो तो इस भले आदमीको, तटपर आते ही अपना ध्यान लगानेके लिए इस मनोरंजक मुकदमेसे बढ़कर दूसरी चीज नहीं मिल सकती। उसके साथ जहाजपर शायद कुछ और भारतीय वकील भी हैं, जिनको यहाँ लानेका उसने इरादा बताया था। और उन्होंने मिलकर जहाजके अन्य भारतीय यात्रियोंको हरजानेका दावा करनेके लिए तैयार कर लिया होगा।

२९ दिसम्बरके *नेटाल एडवर्टाइज़र*में तथाकथित कानूनी कार्रवाई सम्बन्धी सूचना थी, और अगले दिन उस पत्रमें निकला था :

स्वतन्त्र भारतीयोंके थोकके थोक यहाँ आनेके विरुद्ध भावना डर्बनमें निरंतर उग्र होती रही है और हालमें "कूरलैंड" तथा "नादरी" जहाजों द्वारा इसी प्रकारके ७०० और भारतीयोंके यहाँ पहुँच जानेसे तो, प्रतीत होता है, वह और भी तीव्र हो उठी है। इस प्रश्नने इस घोषणाके कारण और भी दुःखदायी तथा तीव्र रूप धारण कर लिया है कि, भारतीय लोगोंका एक गुट, जहाजोंके रोक रखे जानेके कारण, नेटाल-सरकारपर भारी हरजानेकी नालिश करना चाहता है। कल दुपहर बाद शहरमें एकदम इस आशयका प्रचार किया जाने लगा कि और अधिक भारतीयोंके यहाँ उतरनेके विरुद्ध किसी न किसी प्रकारका प्रतिवाद किया जाना चाहिए। इस प्रकारके सुझाव पूर्ण गंभीरतासे दिये जाने लगे कि जिस दिन भारतीयोंका "कूरलैंड" और "नादरी" से उतरना स्थिर हो उस दिन यूरोपीयोंकी भीड़को जहाज-घाटपर पहुँचकर यात्रियोंको उतरनेसे रोक देना चाहिए। इसके लिए तरीका यह सोचा गया था कि यूरोपीयोंकी भीड़ एक-दूसरेके पीछे आदमियोंकी तीन या चार पंक्तियाँ बनाकर खड़ी हो जाये और अगल-बगलवाले आदमी, मुट्ठीमें मुट्ठी और बाँहसे बाँह बाँधकर, उतरनेवालोंके सामने एक ठोस दीवार-सी बना दें। परन्तु यह शायद लोगोंमें साधारण

चर्चामात्र थी। एशियाई-विरोधी भावना भड़की हुई है, इसपर तो संदेह किया ही नहीं जा सकता; और एक अन्य कालममें श्री हैरी स्पार्क्सके हस्ताक्षरोंसे प्रकाशित यह विज्ञापन इसका प्रमाण है: "आवश्यकता है, डर्बनके एक-एक मर्दकी, एक सभामें हाजिर होनेके लिए—सोमवार, ४ जनवरीको, सायंकाल ८ बजे, विक्टोरिया काफेके बड़े कमरेमें। सभाका प्रयोजन: एक जुलूसका संगठन करना, जो जहाज-घाटपर जाये और एशियाइयोंके उतारे जानेके विरुद्ध आवाज बुलन्द करे।"

आपके प्रार्थी पहले बता चुके हैं कि कौन-सी घटनाएँ क्रमशः प्रदर्शन संगटित करनेका कारण बनीं। परन्तु यहाँ उद्धृत अंशमें प्रदर्शनका तात्कालिक कारण कुछ और ही बतला दिया गया है। इन दोनोंमें अन्तरकी ओर आपके प्रार्थी आपका ध्यान विशेष रूपसे खींच देनेकी अनुमति चाहते हैं। उक्त बयान पत्रोंमें प्रकाशित न होते तो सम्भव है कि प्रदर्शन होते ही नहीं। ये बयान सर्वथा निराधार थे। आपके प्रार्थियोंका निवेदन है कि यदि ये सत्य भी होते तो भी प्रदर्शन-समितिका कार्य किसी प्रकार उचित न ठहरता। समितिके सदस्योंने यूरोपीयों, वतनियों, उपनिवेशमें विद्यमान भारतीयों, और अपने तथा श्री गांधीके साथ अन्याय किया: यूरोपीयोंके साथ, क्योंकि उसकी कार्रवाइयोंके कारण यूरोपीयोंमें कानून तोड़नेकी भावना फैल गई; वतनियोंके साथ, क्योंकि बन्दरगाहपर उन लोगोंकी उपस्थितिके कारण — इससे कुछ मतलब नही कि उन्हें वहाँ कौन लाया—उनका आवेश तथा उनकी लड़ने-मारनेकी प्रवृत्ति भड़कनेकी सम्भावना हो गई, और ये लोग एक बार भड़क जाते हैं तो काबूमें नही रहते; भारतीयोंके साथ, क्योंकि उन्हें कठिन परीक्षामें से गुजरना पड़ा और समितिकी कार्रवाइयोंके कारण उनके विरुद्ध भावनाएँ बहुत भड़क गईं; अपने साथ, क्योंकि उन्होंने अपने बयानोंकी सचाईको परखे बिना ही कानून और व्यवस्था भंग करनेकी भयंकर जिम्मेदारी अपने सिर उठा ली; और श्री गांधीके साथ, क्योंकि श्री गांधी और उनके कामोंके विषयमें भारी भ्रम फैला दिया जानेके कारण—निःसन्देह अनजानेमें—उनके प्राण गँवानेकी नौबत आ गई थी। नेटाल आनेवाले यात्रियोंकी संख्या तो ८०० थी ही नहीं, दोनों जहाजोंमें मिलाकर भी लगभग ६०० ही यात्री थे। और उनमें भी नेटाल आनेवाले तो केवल २०० थे। शेष सब डेलागोआ-बे, मारिशस या ट्रान्सवाल जानेवाले थे। इन २०० में से भी १००

नेटालके पुराने निवासी थे जो भारत जाकर वहाँसे लौट रहे थे। नये आनेवाले १०० से भी कम थे और इनमें भी कोई ४० स्त्रियाँ थीं जो नेटालवासियोंकी पत्नियाँ या रिश्तेदार थीं। शेष ६० या तो दूकानदार थे, या उनके सहायक और फेरीवाले। जहाजोंपर लोहार या कम्पोज़ीटर एक भी नहीं था, और न कोई छापाखाना ही था। श्री गांधीने *नेटाल एडवर्टाइज़र*के प्रतिनिधिके साथ बात करते हुए इस बातसे खुल्लमखुल्ला इनकार कर दिया था कि उन्होंने जहाजोंपर कभी किसीको कानूनके खिलाफ सूतकमें रखे जानेके कारण सरकारपर दावा करनेके लिए उकसाया है।[1] इस इनकारीका प्रतिवाद अबतक किसीने नही किया है। यह अफवाह फैली कैसे इसका पता आसानीसे लगाया जा सकता है। जो हाल पहले बतलाया जा चुका है उससे प्रकट है कि जहाजोंके मालिकों और एजेंटोंने कानूनके खिलाफ सूतक और रोक-टोकके कारण सरकारपर दावा करनेकी धमकी दी थी। अफवाहोंमें दावा करनेकी बात यात्रियोंके सिर मढ़ दी गई, और *नेटाल मर्क्युरी*ने यह भ्रान्त कल्पना कर ली कि इस मामलेमें श्री गांधीका हाथ अवश्य होगा। श्री गांधीने उसी साधन द्वारा इस बातका भी खण्डन किया है कि उनके नेतृत्वमें कोई ऐसा संगठन है, जिसका उद्देश्य इस उपनिवेशको भारतीयोंसे पाट देना है।[2] प्रार्थी साम्राज्ञीकी सरकारको विश्वास दिलाते हैं कि श्री गांधीके अधीन ऐसा कोई संगठन नहीं है। वे तो स्वयं कूरलैंडके एक यात्री मात्र थे। उन्होंने उस जहाजसे यात्रा की, यह भी एक निरी आकस्मिक बात थी। प्रार्थियोंने १३[3] नवम्बरको उन्हें नेटाल आनेका तार दिया और उन्होंने कूरलैंड जहाजका टिकट खरीद लिया, क्योंकि उस तारीखके बाद नेटालके लिए वही पहला जहाज था जो सुगमतासे मिल सकता था। इन इनकारियोंकी यथार्थता कभी भी आसानीसे मालूम की जा सकती है, और यदि ये सत्य पाई जायें तो आपके प्रार्थियोंका निवेदन है कि नेटाल-सरकारको चाहिए कि वह इनके सम्बन्धमें अपना मत प्रकट करके जनताकी भड़की हुई भावनाको शांत कर दे।

सूतकके विषयमें भी कुछ घटनाएँ उल्लेखनीय हैं। उनसे प्रकट होता है कि सूतककी व्यवस्था उपनिवेशको गिल्टीवाले प्लेगसे बचानेके उपायके बनिस्बत

१. देखिए पृष्ठ १७५।
२. देखिए पृष्ठ १७५, २४८, ४००–४ और ४०५–६।
३. गांधीजीको यह तार १३ नवम्बर, १८९६ को मिला था; देखिए पृष्ठ १३९।

भारतीयोंके विरुद्ध चली गई एक राजनीतिक चाल ही अधिक थी। वह व्यवस्था जब पहले-पहल लागू की गई तब जहाजोंके बम्बईसे चलनेके पश्चात् २३ दिन पूरे होने तकके लिए थी। ऊपर डाक्टरोंकी समितिकी जिस रिपोर्ट (परिशिष्ट थ) का जिक्र किया गया है उसमें जहाजोंको शोधने और धूनी लगानेके बाद १२ दिन तक सूतकमें रखनेकी सलाह दी गई थी। जहाजोंको शोधने और धूनी लगानेके लिए उनके डर्बन पहुँचनेके ११ दिन बाद तक कोई कार्रवाई नही की गई। इस बीच, पानी और भोजनकी कठिनाईके उनके सन्देशोंपर भी कान बड़ी लापरवाहीसे दिया गया। कहा जाता है कि महा-न्यायवादीने खानगी तौरपर डाक्टरोंसे बातचीत की और उन्हें सूतककी अवधिके विषयमें अपनी सम्मति देनेको कहा (परिशिष्ट त)। यात्रियोंके बिछौने और कपड़े जला डाले गये और यद्यपि इस बरबादीके बाद उन्हें १२ दिन तक जहाजोंपर ही रहना था फिर भी सरकारने — जहाजोंसे सन्देश भेजा जानेपर भी — कपड़े और बिछौने देनेका कोई प्रबन्ध नही किया। और यदि डर्बनके कुछ परोपकारी भारतीय उदारता न दिखलाते तो यात्रियोंको इतने समय तक बिछौनों और काफी कपडोंके बिना ही रहना पड़ता। शायद इससे उनके स्वास्थ्यको भी भारी हानि पहुंच जाती। प्रार्थी, अधिकारियोंका उचित सम्मान करते हुए भी, यह कहे बिना नही रह सकते कि भारतीय समाजके प्रति उनकी इतनी उपेक्षावृत्ति थी कि उन्होने, जहाजोंको पहुँचे दस दिन बीत जानेसे पहले, उनपर से डाक तक उठवाकर बँटवानेका प्रबन्ध नही किया। इससे भारतीय व्यापारियोंको भारी असुविधा हुई। इन शिकायतोंकी अधिक पुष्टि करनेके लिए आपके प्रार्थी आपका ध्यान इस सचाईकी ओर खीचना चाहते हैं कि कूरलैंडको यात्री उतारनेकी इजाजत मिल गई और वह घाटके पास आ गया तब भी उसे कई दिन तक घाटपर लगनेका स्थान नहीं दिया गया। जो जहाज उससे पीछे आये उनको स्थान दे दिया गया। इसका प्रमाण निम्न विवरण है :

> **"कूरलैंड" के कप्तानने हमारा ध्यान इस वस्तुस्थितिकी ओर खींचा है कि यद्यपि उनका जहाज गत बुधवारसे बन्दरगाहके भीतर खड़ा है फिर भी उसे मुख्य गोदीपर जानेका स्थान अबतक नहीं मिल सका। पिछले दिनों कई जहाज यहाँ आये, और यद्यपि "कूरलैंड" को उनसे**

१. देखिए पृष्ठ २०८।

पहले स्थान पानेका हक था, पीछे आनेवालोंको तो घाटपर लगनेकी जगह मिल गई और "कूरलैंड" धारामें ही खड़ा रह गया। "कूरलैंड" को लगभग ९०० टन माल उतारना है और लगभग ४०० टन कोयलेकी आवश्यकता है। ब्लफसे घाट तक सामान ढोनेका व्यय बहुत ज्यादा होगा। *नेटाल एडवर्टाइज़र*, १९ जनवरी, १८९७।

प्रार्थी यह दिखलानेके लिए कि प्रदर्शनसे पहले और पीछे उसके विषयमें विभिन्न पत्रोंका मत क्या था, उनके उद्धरण देनेकी इजाजत चाहते हैं :

भारतीयोंके आगमनके सम्बन्धमे नेटालकी वर्तमान कार्रवाई सन्तुलित नहीं है। भारतीयोंको यहाँ उतरने देनेके विरुद्ध आन्दोलनने, डर्बनमें एकदम तीव्र रूप धारण कर लिया है। बाहरके संसारका ध्यान, इससे ठीक उलटे, इस यथार्थताकी ओर गये बिना नहीं रहेगा कि अबतक डर्बन बन्दरगाह ही दक्षिण आफ्रिकामें भारतीय लोगोंके प्रवेशका प्राय: एकमात्र द्वार रहा है। यह कल्पना कोई कठिनाईसे ही कर सकता है कि जो देश इतने दीर्घ कालसे खुल्लमखुल्ला भारतीयोंको आनेके लिए उत्साहित करता चला आ रहा है वह, सर्वथा अकस्मात्, डर्बनमें उतरनेकी प्रतीक्षा करते हुए दो जहाजोंके यात्रियों पर उलट पड़ा और उन्हें उतरनेसे रोकनेकी हिंसामय धमकियाँ देने लगा। डर्बनके लोगोंको, जो इस आन्दोलनके साथ हैं, इतनी ज्यादती करनेके बाद, उनके इस रुखके लिए, बधाई देना मुश्किल है। उनका इतना आगे बढ़ जाना दुर्भाग्यकी बात है, क्योंकि इस समय चाहे जो कुछ हो, अन्तमें उन्हें निश्चय ही निराशाका सामना करना और नीचा देखना पड़ेगा।...सब-कुछ कहने और करनेके बाद भी सचाई यह रहती है कि नेटालके लोगोंकी बहुत बड़ी संख्या जानती है कि इस उपनिवेशमें भारतीयोंके आगमनसे उनको बहुत अधिक लाभ हुआ है। ऐसी कल्पना करना ठीक ही होगा कि नेटालमें निरन्तर नये-नये भारतीयोंका आगमन उनकी इस जानकारीका ही परिणाम है कि उनसे पहले आनेवालोंको अपनी नई अवस्थाओंमें सुख मिला था। अब सवाल यह हो सकता है कि नेटालमें आनेवाले पहले भारतीयोंकी यदि यूरोपीय लोग किसी भी प्रकार सहायता न करते तो वे सुखी और

समृद्ध हो ही कैसे सकते? और इसीलिए यह भी कल्पना की जा सकती है कि यूरोपीय लोग इन आगत भारतीयोंकी समृद्धिमें सहायक न होते, यदि इस सहायताके कारण उन्हें अपनी समृद्धिमें भी सहायता न मिलती। जो भारतीय नेटालमें आये वे दो प्रकार के थे — एक गिरमिटिया और दूसरे स्वतन्त्र। इन दोनोंका अनुभव यह है कि ऊपरी विरोधके बावजूद यूरोपीय उन्हें काम या 'सहायता' देनेके लिए तैयार रहते हैं और इस प्रकार वे न केवल उनको समृद्ध बनाकर सुखी और सन्तुष्ट करते हैं, बल्कि अधिक संख्यामें आनेके लिए भी उत्साहित करते हैं। गिरमिटिया भारतीयोंमें से अधिकतरका उपयोग यूरोपीय किसान करते हैं। स्वतन्त्र भारतीयोंमें से जो लोग व्यापार करना चाहते हैं उनकी सहायता यूरोपीय व्यापारी करते हैं। शेष सबको यहाँ आने और बस जानेका उत्साह इस कारण होता है कि उन्हें किसी न किसी प्रकारकी घर-गृहस्थीकी नौकरी मिल जाती है। गिरमिटिया भारतीयोंकी आवश्यकता नेटालको अनिवार्य रूपसे है, क्योंकि काफिर लोगोंमें से जो मजदूर मिलते हैं, वे लापरवाह और बेभरोसेदार होते हैं। इसका प्रमाण यह है कि हजारों भारतीय खेतों और घरोंकी नौकरियोंमें लगे हुए हैं, और प्रायः प्रत्येक डाकसे सैकड़ोंकी और माँग भारतको भेजी जाती है। "परन्तु", बहुधा कह दिया जाता है, "आपत्ति गिरमिटिया भारतीयोंके आनेपर नहीं, स्वतन्त्र भारतीयोंके आनेपर है।" तथापि, पहली बात यह है कि गिरमिटिया कुलीको भी आखिर स्वतन्त्र होना ही है; और इस प्रकार नेटालके लोग भारतीयोंको गिरमिटियोंके रूपमें बुलाकर व्यवहारतः स्वतन्त्र भारतीयोंकी आबादीके निरन्तर बढ़ते रहनेका मार्ग खोल देते हैं। यह सही है कि गिरमिटिया भारतीयोंको उनका इकरारनामा समाप्त हो जानेपर वापस लौटा देनेका प्रयत्न किया गया है, परन्तु अभी तक इस प्रकारके किसी कानूनको अनिवार्य नहीं बनाया जा सका। अब रही बात स्वतन्त्र भारतीयोंकी। ये लोग व्यापार, खेती, या घर-गृहस्थीकी नौकरीमें से किसी एक काममें लगे हुए हैं। इनमें से किसी भी काममें ये प्रत्यक्ष यूरोपीय सहायताके बिना सफल नहीं हो सकते थे। जहाँतक भारतीय व्यापारियोंका सम्बन्ध है, उन्हें तो पहले-पहल सहारा यूरोपीय व्यापारियोंसे ही मिलता है। डर्बनमें शायद

एक भी प्रतिष्ठित व्यापारिक पेढ़ी ऐसी नहीं दिखाई जा सकेगी जिसके एजेंट बीसियों भारतीय न हों। कुली 'किसानों'की सहायता और रक्षा, यूरोपीय दो प्रकारसे करते हैं। उन्हें खेतीके लिए जमीन मूल यूरोपीय मालिकसे ही खरीदनी या किरायेपर लेनी पड़ती है। और उसकी पैदावारकी भी अधिकतर खपत यूरोपीय घरोंमें ही होती है। यदि कुली बागबान और फेरीवाले न होते तो डर्बनके (और उपनिवेशके अन्य भागोंके) लोग अपने रसोई-घरकी बहुतसी आवश्यकताओंके लिए तरसते रह जाते। घर-गृहस्थीके भारतीय नौकरोंके विषयमें केवल इतना कह देना काफी है कि वे काम करनेका सामर्थ्य, विश्वास-पात्रता और आज्ञा-पालकतामें औसत दरजेके काफिरकी अपेक्षा कहीं ऊँचे सिद्ध हुए हैं। शायद बारीकीसे देखनेपर पता लगेगा कि जिन लोगोंने हालके आन्दोलनमे भाग लिया था उनमें से कईके घरोंमें भारतीय नौकर हैं। सरकारी नौकरीमें भी बहुतसे कुली लगे हुए हैं। उन सबके लिए सरकार शिक्षणकी भी व्यवस्था करती है और इस प्रकार वह उनकी उन्नतिमें सहायक होती है। इससे स्पष्ट है कि जो भारतीय उपनिवेशमें पहलेसे विद्यमान हैं उनकी सुख-समृद्धिका मूल कारण यूरोपीय ही है। और इसलिए यह बात युक्तिसंगत नहीं जान पड़ती कि वही लोग उनके और अधिक संख्यामें यहाँ आनेके अकस्मात् विरोधी बन जायें। इस सबके अतिरिक्त इस प्रश्नका साम्राज्य-सम्बन्धी पहलू भी है; और यह सबसे विषम है। जबतक नेटाल ब्रिटिश साम्राज्यका भाग रहेगा (और इसका दारोमदार नेटालपर नहीं, ब्रिटेनपर है) तबतक साम्राज्य-सरकार इस बातका आग्रह रखेगी कि उपनिवेशमें ऐसे कोई कानून न बनाये जाये जो कि साम्राज्यके साधारण विकास और लाभोंके विरोधी हों। भारत साम्राज्यका एक भाग है। और साम्राज्य-सरकार तथा भारत-सरकारका संकल्प सभ्य संसारके सामने यह सिद्ध करके दिखलानेका है कि ब्रिटेन भारतपर शासन भारतीयोंके ही लाभके लिए कर रहा है। यदि भारतके घने हलकोंकी आबादीको कम करके उन्हें राहत पहुँचानेके लिए कुछ न किया जा सका तो यह सिद्ध नहीं हो सकेगा। और यह काम उन हिस्सोंके भारतीयोंको देशसे बाहर जानेके लिए बढ़ावा देकर ही किया जा सकता है। ब्रिटेनको न तो यह अधिकार ही है और

न यह उसकी इच्छा है कि वह भारतकी फालतू आबादीको किसी अन्य देशपर लाद दे। परन्तु उसको यह अधिकार अवश्य है कि यदि ब्रिटिश साम्राज्यके किसी भागकी आबादीका एक हिस्सा भारतीय लोगोंको बुलाये तो वह उसी आबादीके किसी दूसरे भागको उनके प्रवेशका दरवाजा बन्द न करने दे। और जहाँतक नेटालका सम्बन्ध है, यहाँसे प्रतिवर्ष भारतीय मजदूरोंकी नई माँगके लिए जितने प्रार्थनापत्र जाते हैं उनको देखते हुए कहा जा सकता है कि यदि किसी कारण उनका आना यहाँ रोक दिया गया तो उससे भारतकी अपेक्षा अधिक हानि नेटालकी ही होगी। *स्टार*, शुक्रवार, ८ जनवरी, १८९७।

इस सारी कार्रवाईको हम और कुछ नहीं तो कमसे कम असामयिक अवश्य समझते हैं, और जो प्रदर्शन करीब-करीब भीड़की हुकूमतके रूपमें किया जा रहा है उसे हम खतरेसे खाली नहीं मान सकते... उपनिवेशको इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि उसके सिर किसी प्रकारकी बुराई न आने पाये। और यदि वैधानिक आन्दोलन सफल होगा या नहीं इस बातका पूरा निश्चय किये बिना ही कोई जोर-जबरदस्ती कर दी गई तो उसका फल यही होगा कि बुराई उपनिवेशके सिर आ जायेगी।... इसलिए हम गरम-दलके नेताओंसे एक बार फिर आग्रह करेंगे कि वे जो जिम्मेवारी अपने सिर ले रहे हैं उसे भली भाँति सोच-समझ ले। — *नेटाल एडवर्टाइज़र*, ५ जनवरी, १८९७।

यदि गरम दलके नेता इसी परिणाम पर पहुँचें कि ऐसा करना आवश्यक है तो वे अपने सिर भारी जिम्मेवारी उठा लेंगे, और उन्हें उसके परिणाम भुगतनेके लिए तैयार रहना चाहिए।...इससे इस बातपर जोर भले ही पड़ जाये कि नेटाल अपने यहाँ और एशियाइयोंको नहीं आने देना चाहता, परन्तु इससे क्या उपनिवेशियोंके विरुद्ध किये गये इस आरोपकी पुष्टि नहीं होगी कि वे अन्याय और अनौचित्यका व्यवहार करते हैं? — *नेटाल एडवर्टाइज़र*, ७ जनवरी, १८९७।

हमारा खयाल है कि सभामें जो दो हजार आदमी उपस्थित बतलाये जाते हैं उनमें से बहुत कम कोई कानूनके खिलाफ काम करनेके लिए तैयार होंगे। कानून ऐसा कोई अधिकार नहीं देता जिससे सूतकमें

रखे हुए एशियाइयोंको वापस भेजा जा सके अथवा नयोंको यहाँ आनेसे रोका जा सके। इसके अतिरिक्त, ब्रिटिश लोक-सभा ऐसे किसी कानूनको स्वीकार नहीं करेगी जो कि भारतीय प्रजाओंको साम्राज्यके किसी भी भागमें जानेसे रोकता हो। यद्यपि वर्तमान परिस्थितिमें यह बात कुछ खिझानेवाली है परन्तु इसे भुलाया नहीं जा सकता कि वैयक्तिक स्वतन्त्रता संविधानका मूल आधार है। स्वयं ब्रिटेन भी काली और पीली जातियोंकी प्रतिस्पर्धासे बहुत परेशान है।...जो कोरी बातों द्वारा एशियाइयोंकी निन्दा सबसे ज्यादा जोर-शोरसे करते हैं, ऐसे अनेक लोग जब देखते हैं कि वे सस्ते भावों माल बेच रहे है तो उसे खरीद कर उनकी ठोस सहायता करनेमें कोई संकोच नहीं करते।—*टाइम्स आफ़ नेटाल*, ८ जनवरी, १८९७।

प्रदर्शन-आन्दोलनके नेताओंने गुरुवारकी सभामें अपने सिर गम्भीर जिम्मेवारी ले ली थी। कुछ भाषण सौम्यताके लिए उल्लेखनीय नहीं थे। उदाहरणार्थ डा० मैकेंज़ीने वैसी समझदारीसे काम नहीं लिया जैसीसे कि वे ले सकते थे। उन्होंने श्री गांधीके साथ व्यवहारके सम्बन्धमें जो कलुषित संकेत किये वे अत्यन्त असावधानतापूर्ण थे। कहा जाता है कि "कूरलैंड" और "नादरी" जहाजोंसे भारतीयोंके उतरनेके समय जो लोग जहाज-घाटपर एकत्र होंगे वे "शांत" रहेंगे। परन्तु इस बातकी गारंटी क्या है कि जब भीड़ भड़की हुई होगी तब किसी भारतीय यात्रीके शरीरको कोई चोट आदि नहीं लगेगी? और यदि प्रदर्शनके समय कोई झगड़ा हो गया तो उसके लिए नैतिक दृष्टिसे जिम्मेवार कौन होगा? हो सकता है कि एक या एक-सौ नेता कुछ हजार नागरिकोंको शांत रहनेके लिए प्रेरित करते रहें। परन्तु जिस भीड़के हृदयमें स्वतन्त्र भारतीयोंके विरुद्ध तीव्र द्वेषकी आग जल रही है और जो हालके आन्दोलन और एशियाइयों तथा श्री गांधीके आगमनके कारण भड़की हुई है, उसपर ये नेता क्या नियन्त्रण रख सकेंगे? *नेटाल एडवर्टाईज़र*, ९ जनवरी, १८९७।

वर्तमान आन्दोलन मुख्यतया प्रवासी-निकाय (इमिग्रेशन बोर्ड) द्वारा भारतीय कारीगरोंको लानेके प्रयत्नका परिणाम है। उसकी स्थानीय पत्रोंने तुरन्त और बलपूर्वक निन्दा की थी...परन्तु पत्र बहुत आगे नहीं बढ़े

और उन्होंने असामयिक तथा असंयत प्रयत्नोंका समर्थन नहीं किया, इसलिए उनकी अनाप-शनाप शब्दोंमें निन्दा की गई।...साम्राज्य-सरकार एशियाइयोंको रोकनेके लिए कोई तीव्र उपाय करनेको तैयार नहीं हुई, केवल इस कारण हम उसकी निन्दा नहीं कर सकते। हम यह नहीं भूल सकते कि अभी, इस क्षण तक, स्वयं नेटाल-सरकारका उपयोग हमारी स्वार्थ-सिद्धिके लिए एशियाइयोंको यहाँ बुलानेको किया जाता रहा है। एक दलील यह दी जा सकती है कि गिरमिटिया भारतीयोंके आनेपर वही आपत्ति नहीं, जो स्वतन्त्र भारतीयोंके आनेपर की जाती है। यह बिलकुल ठीक है। परन्तु क्या साम्राज्य-सरकारको, और भारत सरकारको भी, यह दिखलाई नहीं देगा कि हम यह भेद केवल अपने स्वार्थके लिए कर रहे हैं? यह किसी भी प्रकार न्याय-संगत नहीं है कि हम अपने लाभके लिए भारतीयोंके एक वर्गको तो यहाँ आनेको प्रोत्साहित करें और दूसरे वर्गका प्रवेश रोक देनेके लिए इस बिनापर चीख-पुकार मचायें कि, हमारा खयाल है, उससे हमको कुछ हानि हो सकती है। —*नेटाल एडवर्टाइज़र*, ११ जनवरी, १८९७।

डर्बनवालोंकी नीति अशिष्ट और लट्ठ-मार है। वहाँ सरकारोंकी समन्वित नीति अथवा कूटनीतिक विचार-विनिमय जैसी कोई चीज नहीं है। साराका सारा नगर जहाज-घाटपर पहुँच जाता है और ऐलान कर देता है कि यदि साम्राज्यकी कुछ प्रजाओंने तटपर उतरनेके अपने असंदिग्ध अधिकारका प्रयोग किया तो हम उनका खून कर देंगे। अकेले-अकेले तो ये लोग मितव्ययी भारतीयोंसे सस्ता माल खरीदनेको तैयार रहते हैं, परन्तु जब सब मिल जाते हैं तब अपने आपपर और एक दूसरेपर अविश्वास करते हैं। खेदकी बात यह है कि आन्दोलनकारियोंकी आपत्तिका आधार ही गलत है। वास्तविक शिकायत आर्थिक है। उसका आधार एक ऐसा अनुभव है, जिसका सिद्धान्त सबकी समझमें नहीं आता। उसे दूर करनेका सर्वोत्तम और शांतिपूर्ण उपाय यह है कि व्यापार-रक्षक सभाओंका संगठन कर लिया जाये, जो कि निम्नतम मूल्य और अधिकतम पारिश्रमिकका निश्चय कर दें।...डर्बन स्वेजके पूर्वमें नहीं है, हालाँकि वह लगभग उसी महागोलार्धमें है। परन्तु प्रतीत होता है कि डर्बनवाले उन लोगोंमें से हैं

जिनके बीच 'बाइबिलकी दस आज्ञाओंका अस्तित्व ही नहीं है', फिर साम्राज्यके कानूनोंकी तो बात ही क्या। गलियोंमें एक दूसरेपर गोलियाँ बरसाकर सुधार करनेका तरीका सभ्य लोगोंका नहीं है। यदि आर्थिक व्यवहारके नियम उन्हें बहुत कठिन लगते हैं तो उन्हें कमसे कम कानूनकी हदमें तो रहना चाहिए। यह तरीका दंगा करनेसे और किसी आन्दोलनकारी द्वारा हजारों आदमियोंको हथियार बाँधकर खड़ा हो जानेके लिए उकसानेसे कहीं अच्छा है। ब्रिटेन अपने भारतीय साम्राज्यके सहस्रों लोगोंको अपमानित होते नहीं देख सकता, न वह वैसा पसन्द करता है। ब्रिटिश द्वीपोंमें संरक्षणकी व्यापार-नीतिका तीव्र विरोध किया जाता है, और मुक्त-द्वार व्यापारको बाइबिलके प्रथम चार और अन्तिम छः नियमोंके मध्यका मार्ग माना जाता है। डर्बनवाले स्वतन्त्रता चाहते हैं तो उन्हें वह माँगने मात्रसे मिल सकती है। परन्तु वहाँवाले ब्रिटिश द्वीपोंसे यह आशा नहीं रख सकते कि वे उनकी कानून-विरोधी कार्रवाइयोंको सह लेंगे या अवैधानिक आन्दोलनोंको प्रोत्साहित करेंगे। —*डिगर्स न्यूज*, १२ जनवरी, १८९७।

नेटालवाले पागल हो गये मालूम पड़ते हैं। वे घृणा और क्रोधके मारे अन्धे होकर बहुनिन्दित 'कुलियों' के विरुद्ध बलका प्रयोग करना चाहते हैं। उन्होंने एक स्थानीय कसाईके नेतृत्वमें एक प्रदर्शनका संगठन किया है, और सारा शहर और उपनिवेश इस चिल्ल-पुकारका साथ देने लगा है। इन प्रदर्शनकारियोंके अव्यावहारिक आदर्शवादपर तरस आता है। इनके प्रत्येक सदस्यने प्रतिज्ञा की है कि वह बन्दरगाहपर जायेगा और 'यदि आवश्यकता हुई तो' एशियाइयोंको उतरनेसे 'बलपूर्वक' रोक देगा। यह भी बतलाया गया है कि इस प्रदर्शनमें भाग लेनेवाले सिद्ध कर देना चाहते हैं कि उनके कहने और करनेमें अन्तर नहीं, और डर्बनवाले ऐसे व्यवस्थित परन्तु प्रभावशाली संगठनका प्रदर्शन कर सकते हैं जो कि दंगा मचानेवाली भीड़से सर्वथा भिन्न हो। उनका खयाल है कि भारतीय लोग उतरेंगे ही नहीं और यदि जहाज उन्हें घाटपर ले भी आये तो वे जहाजोंपर से ही अपने विरुद्ध खड़ी हुई भीड़को देखकर उतरनेके प्रयत्नकी व्यर्थताको समझ लेंगे। जो भी हो, यह प्रदर्शन, समझदार अंग्रेजोंकी किसी

कार्रवाईकी अपेक्षा, हवा-चक्कीपर ला-मंचाके सरदार'की पागलपनभरी चढ़ाईसे अधिक मिलता-जुलता है। उपनिवेशी सिरफिरे और पागल हो गये हैं। उनके साथ जो सहानुभूति होती, उसे उन्होंने बहुत-कुछ खो दिया है। हमने सुना है कि ब्रिटिश लोग भड़क जायें तो इससे बढ़कर उपहासास्पद और कुछ नहीं हो सकता। टामस हुडके शब्दोंमें "विचार और कार्य, दोनों न रहें तो बुराई सिरपर सवार हो जाती है।" यूरोपीय लोग जो कार्रवाई इस समय कर रहे हैं उससे निःसन्देह वे अपने ही कार्यकी हानि कर रहे हैं। —*जोहानिसबर्ग टाइम्स*

नेटालमें भारतीयोंके प्रवेशका विरोध, किसी भी रूपमें, श्री चेम्बरलेनके कार्यकालकी सबसे कम महत्त्वकी घटना नहीं है। इसका प्रभाव इतने अधिक लोगोंपर पड़ता है और ग्रेट ब्रिटेनका सम्बन्ध इसके साथ इतना घनिष्ठ है कि यह कहना अत्युक्ति न होगा कि उनके सामने हल करनेके लिए अबतक जो समस्याएँ आई हैं उनमें यह सबसे कठिन है। डर्बनमें रोके हुए प्रवेशार्थी, उस विशाल जनताके प्रतिनिधि हैं जो यह विश्वास करनेकी अभ्यासी बनाई जा चुकी है कि हमारे रक्षक और पोषक वही लोग हैं जो कि अब हमारे साथियोंको एक नये देशमें पैर रखने देनेसे इनकार कर रहे हैं। भारत-भूमिको यह माननेके लिए प्रोत्साहित किया जाता रहा है कि वह साम्राज्यकी एक प्रिय पुत्री है और विभिन्न वाइसरायोंके तरंगी शासनमें रहकर उसे अपनी स्वतन्त्रताका दावा इस प्रकार करनेका अभ्यासी बनाया जा चुका है कि वह अशिक्षित पूर्वी लोगोंके लिए सेहतमन्द नहीं है। यह विचार अमलमें व्यवहार्य सिद्ध नहीं हुआ। भारतीय लोगोंको यहाँ बुलाया तो इसलिए गया था कि वे देशको समृद्ध बनानेमें उपनिवेशियोंकी सहायता करेंगे, परन्तु अब वे अपने मितव्ययी स्वभावके कारण व्यापारमें भयंकर प्रतिस्पर्धी बन बैठे हैं। वे यहाँ बसकर स्वयं उत्पादक बन गये हैं और अब यह डर हो रहा है कि वे कहीं अपने पुराने मालिकको बाजारसे निकाल ही न दें। इसलिए श्री चेम्बरलेनके सामने जो समस्या

१. सर्वेंटिस-कृत *डान क्विक्ज़ोट* नामक पुस्तकका प्रमुख पात्र, जो हवा-चक्कीको दानव मानकर उसपर चढ़ाई करता है।

उपस्थित है, उसे हल करना सुगम नहीं है। नैतिक दृष्टिसे श्री चेम्बरलेनको भारतीयोंके पक्षकी न्याय्यताका समर्थन करना ही पड़ेगा, आर्थिक दृष्टिसे उन्हें उपनिवेशियोंका दावा वाजिब मानना पड़ेगा और राजनैतिक दृष्टिसे किसी भी मनुष्यके लिए यह निश्चय करना कठिन है कि वह किसका दावा मान्य करे। —*स्टार*, जोहानिसबर्ग, जनवरी, १८९७।

गुरुवारको तीसरे पहर वर्षाके कारण जो सार्वजनिक सभा मार्केट स्क्वेयरके बदले टाउन-हालमें हुई थी उसमें उपस्थिति अथवा उत्साहकी कोई कमी नहीं थी। टाउन-हालमें डर्बनके सभी वर्गोंके लोग मौजूद थे। मजदूर और पेशेवर लोग कन्धेसे कन्धा जोड़कर बैठे थे। इससे प्रकट हो रहा था कि जनताके सभी वर्गोंमें ऐकमत्य है और वे उपनिवेशको एशियाइयोंसे पाट देनेके संगठित प्रयत्नका विरोध करनेके लिए दृढ़संकल्प हैं। श्री गांधीने यह समझकर भारी भूल की है कि जब मैं अपने देशवासियोंको प्रतिमास एकसे दो हजार तककी संख्यामें यहाँ भेजनेके लिए कोई स्वतन्त्र एजेन्सी भारतमें संगठित करता हूँगा, उस समय यहाँके यूरोपीय चुपचाप बैठे रहेंगे। उन्होंने यदि यह समझ लिया है कि यूरोपीय लोग ऐसी किसी योजनापर बिना किसी विरोधके अमल होने देंगे तो उन्होंने यूरोपीय स्वभावको समझनेमें बुरी तरह भूल की है। उन्होंने अपनी तमाम चतुराईके बावजूद यह शोचनीय भूल कर डाली है; और यह भूल ऐसी है कि इसके कारण उनका सोचा हुआ लक्ष्य निश्चय ही पूर्णतः विफल हो जायेगा। वे भूल गये हैं कि यहाँकी प्रमुख प्रशासक जातिके नाते हमारे ऊपर एक बड़ी जिम्मेवारी है। हमारे पुरखोंने इस देशको तलवारके बलपर जीता था और वे इसे हमारे लिए जन्मसिद्ध अधिकार तथा विरासतके रूपमें छोड़ गये हैं। यह जन्मसिद्ध अधिकार जिस तरह हमारे हाथोंमें आया है, उसी तरह हमें इसे अपने बेटों और बेटियोंको उनके जन्मसिद्ध अधिकारके रूपमें सौंप देना है। हमें यह जायदाद समस्त ब्रिटिश और यूरोपीय जातियोंके लिए वंशपरम्परागत रूपमें मिली है, और यदि हमने इस सुन्दर भूमिपर ऐसे लोगोंका अधिकार हो जाने दिया जो कि अपने रक्त, स्वभाव, परम्पराओं, धर्म और राष्ट्रीय जीवनकी अंगभूत प्रत्येक बातमें हमसे भिन्न हैं, तो हम अपनी विरासतके प्रति सच्चे सिद्ध नहीं हो

सकेंगे। इस देशके मूल निवासियोंके हितोंका रक्षक होनेके नाते भी हमारे सिर एक भारी जिम्मेवारी है। नेटालके आधा करोड़ वतनी लोग गोरे आदमीको उसी दृष्टिसे देखते हैं जिससे कि बेटा बापको देखता है, और इसलिए न्यायका तकाजा है कि और कुछ नहीं तो हमें कम-से-कम नेटालके वतनियोंके इस अधिकारकी यथाशक्ति रक्षा करनी चाहिए कि उपनिवेशमें मजदूरी करनेका जायज अधिकार उन्हींका है। उनके अतिरिक्त वे भारतीय भी हैं जो उपनिवेशमें पहले ही बस चुके हैं। इनमें से अधिकतरको हम ही यहाँ लाये थे, और इसलिए हमारा कर्तव्य है कि हम देखें कि वे ऐसी किन्हीं कठिनाइयों और हानियोंके शिकार न हो जायें जो कि उनके देश-वासियोंकी यहाँ बाढ़ आ जानेके कारण उत्पन्न हो जायेंगी और जिनके कारण उनके लिए ईमानदारीसे आजीविका कमा सकना कठिन हो जायेगा। इस समय इस उपनिवेशमें कमसे कम पचास हजार भारतीय मौजूद हैं। वे यहाँकी आवश्यकताओंके लिए बहुत काफी हैं। उनकी संख्या यूरोपीयोंसे भी अधिक है। इस सम्बन्धमें सरकारके रुखको गुरुवारकी सभामें श्री वाइलीने बड़ी योग्यतासे समझा दिया था।...

...डा० मैकेंज़ीने कहा था कि मुझे सरकारकी कार्रवाईसे पूरा-पूरा सन्तोष है और प्रदर्शन-समितिके और सब सदस्य भी मेरे समान ही सन्तुष्ट हैं। इस उद्देश्यके साथ सबके सहमत होनेके कारण पूरी आशा है कि यह प्रदर्शन पूरे-पूरे अर्थमें शांत रहेगा। इसका उपयोग भारतीयोंके लिए एक पदार्थपाठका जैसा होना चाहिए कि इस उपनिवेशके जो द्वार उनके लिए इतने समयसे खुले हुए थे वे अब बन्द होनेवाले हैं, और इसलिए उन्हें चाहिए कि वे अबतककी तरह भारतमें वर्तमान अपने मित्रों और नातेदारोंको यहाँ आनेके लिए प्रेरित करनेका प्रयत्न न करें। यदि प्रदर्शनको भली भाँति काबूमें रखा गया और नेताओंने जो कार्यक्रम रखा है उसे भली प्रकार पूरा किया गया तो वह अपने-आपमें हानिकारक नहीं हो सकता। जैसा कि हम पहले बता चुके हैं समस्या केवल इतनी है कि भीड़को सुगमतासे नियन्त्रणमें नहीं रखा जा सकता और इसलिए नेताओंकी जिम्मेवारी विशेष है। परन्तु नेताओंको यह नियन्त्रण रख सकनेकी अपनी योग्यतामें विश्वास मालूम पड़ता है, और वे बन्दरगाहपर जानेके अपने कार्यक्रमको पूरा

करनेके निश्चयपर दृढ़ हैं। यदि सब कुछ भली प्रकार निभ गया तो इस प्रदर्शनसे सरकारको बहुत अधिक नैतिक बल प्राप्त हो जायेगा। इससे यह भी प्रकट हो जायेगा कि लोग इस आन्दोलनका साथ हृदयसे दे रहे हैं। श्री वाइलीका यह कथन बिलकुल सत्य था कि हमारे हाथमें जो शक्ति है उसका हमें प्रदर्शन तो करना चाहिए, परन्तु सफलता उन्हीं लोगोंकी हो सकती है जो उस शक्तिका प्रयोग उसका दुरुपयोग किये बिना कर सकें। इसलिए हम कानून और अमन-अमानको पूरी तरह बनाये रखनेकी आवश्यकतापर जितना भी जोर दें उतना ही थोड़ा है। अन्तिम सफलता इस बातपर भी उतनी ही निर्भर करती है जितनी अन्य किसी बातपर। और हमें विश्वास है कि प्रदर्शनके नेताओंमें इतनी समझ, सूझ-बूझ और बुद्धि है कि वे अपने अनुयायियोंके उत्साहको विवेकका उल्लंघन नहीं करने देंगे।
—*नेटाल मर्क्युरी*, ९ जनवरी, १८९७।

गत पखवारेमें डर्बनमें "कूरलैंड" और "नादरी" जहाजोंके भारतीय यात्रियोंको डराने और उतरनेसे रोकनेके लिए जो कुछ कहा और किया जा चुका है उसके पश्चात् भी ईमानदारीसे यह मानना पड़ता है कि प्रदर्शनका अन्त लज्जाजनक रहा। यद्यपि प्रदर्शनके नेता अपनी हारको स्वभावतः जीतका दावा करके छिपानेका प्रयत्न कर रहे हैं तो भी यह सारा काण्ड, जहाँतक इसके मूल और घोषित उद्देश्यका सम्बन्ध है, पूरी तरह असफल सिद्ध हुआ है। उद्देश्य यह था —और इससे कम या ज्यादा कुछ नहीं— कि इन दोनों जहाजोंके भारतीय यात्रियोंको नेटालकी भूमिका स्पर्श किये बिना एकदम भारत लौटनेके लिए बाध्य कर दिया जाये। यह पूरा नहीं हुआ।...वर्तमान कानून किसी भी देशसे आनेवाले लोगोंको यहाँ प्रवेशकी जो इजाजत देते हैं उसमें नेटालके लोग अकस्मात् ही अपनी किसी मूर्खतापूर्ण कार्रवाई द्वारा हस्तक्षेप नहीं कर सकते। सम्भव है कि हालमें जो प्रदर्शन भारतसे आये हुए लोगोंके विरुद्ध खड़ा किया गया था वह उन्हें डरानेमें सफल हो जाता, परन्तु उसके पश्चात् भी ऐसी कोई बात हासिल न होती जिसपर प्रदर्शनकारी सचमुच अभिमान कर सकते। यदि असहाय कुलियोंका छोटा-सा दल यहाँ बसे हुए यूरोपीयों द्वारा, जिन्हें चीखते-चिल्लाते काफिरोंके एक गिरोहकी सहायता प्राप्त थी,

पीटे जानेके भयसे लौट भी जाता तो भी यह जीत शोचनीय ही होती। काफिरोंकी यह सहायता उन्हें केवल इस कारण प्राप्त हुई थी कि काफिर तो अपने प्रतिस्पर्धी कुलियोंके प्रति अपनी अप्रीति प्रदर्शित करनेका अवसर पाकर खुश-खुश हो गये थे। इस प्रदर्शनका अन्त जैसा हुआ वह बहुत अच्छा हुआ। बुधवारको डर्बनमें हुई घटनाओंका शोचनीय पहलू सिर्फ यह था कि श्री गांधीपर आक्रमण किया गया। यह ठीक है कि नेटालके लोग उनसे इस कारण बहुत नाराज हैं कि उन्होंने एक पुस्तिका प्रकाशित करके उसमें उनपर गिरमिटिया भारतीयोंके साथ दुर्व्यवहार करनेका आरोप लगाया था। हमने यह पुस्तिका देखी नहीं है, परन्तु यदि इसमें नेटालियोंके सारे समाजपर आक्षेप किये गये हैं तो वे निराधार हैं। फिर भी इसमें सन्देह नहीं है कि हालमें नेटालकी अदालतोंमें सुने गये एक मुकदमेसे प्रकट हो गया था कि कमसे कम यहाँ एक जायदादपर अत्यन्त क्रूर व्यवहारके उदाहरण घटित हो चुके हैं और इसलिए एक शिक्षित भारतीयके नाते यदि श्री गांधी अपने देशवासियोंके साथ ऐसे दुर्व्यवहारसे क्रुद्ध होकर उसका कुछ उपाय करना चाहते हैं तो उन्हें दोष नहीं दिया जा सकता। जहाँतक श्री गांधीपर आक्रमणका सम्बन्ध है वह भीड़के किन्हीं सम्मानित व्यक्तियों द्वारा किया गया नहीं जान पड़ता। परन्तु फिर भी यह असंदिग्ध है कि जिन नवयुवकोंने श्री गांधीको घायल करनेका यत्न किया वे इस प्रदर्शनके जिम्मेवार संगठनकर्ताओंके असंयत भाषणोंके कारण ही भड़के हुए थे। श्री गांधी कोई बड़ी चोट खाये बिना और शायद अपनी जान खोनेसे भी बच गये, यह पुलिसकी मुस्तैदीका ही फल था।... परन्तु दक्षिण आफ्रिका इस समय एक परिवर्तनकी अवस्थासे गुजर रहा है। उसका उक्त असफल प्रदर्शन एक चिह्न-मात्र है। यह सारा देश अभी अपने लड़कपनमें है और लड़कोंको अपने झगड़ोंका फैसला शारीरिक बलके खूनी प्रयोगके द्वारा करनेका शौक होता ही है। इस दृष्टिसे देखा जाये तो डर्बनकी इस सप्ताहकी घटनाओंको हँसकर टाला जा सकता है। परन्तु यदि अन्य किसी दृष्टिसे देखा जाये तो घटनाएँ अत्यन्त निन्दनीय हैं, क्योंकि इनके कारण उन अत्यन्त जटिल राजनीतिक और आर्थिक समस्याओंका, जो केवल नेटालके लिए ही नहीं, बल्कि इंग्लैंड, भारत, और समस्त दक्षिण आफ्रिकाके

लिए महत्त्वपूर्ण हैं, अन्तिम हल निकालनेमें सहायता मिलनेकी अपेक्षा बाधा ही पड़ती है। —*स्टार*, जोहानिसबर्ग, जनवरी, १८९७।

भारतीयोंके साथ व्यापार करनेका चलन जब जोरोंपर है तब "नादरी" और "कूरलैंड" के कुछ सौ यात्रियोंको उतरनेसे रोकनेका क्या फायदा? कई वर्षकी बात है कि, जब फ्री स्टेटमें संसद (फोक्सराट)के वर्तमान कानूनपर अमल शुरू नहीं हुआ था, तब हैरीस्मिथमें अरब लोगोंने अपनी दूकानें खोली थीं और वे पुरानी जमी हुई दूकानोंके मुकाबलेमें एकदम ३० प्रतिशत कम मूल्यपर माल बेचने लगे थे। बोअर लोग रंगके विरुद्ध सबसे अधिक शोर मचाते हैं, और उन्हींकी इन अरबोंके पास भीड़ रहती थी। वे सिद्धान्तकी तो निन्दा करते थे, परन्तु नफा खाते हुए उन्हें संकोच नहीं होता था। आज नेटालमें भी बहुत कुछ वही हाल है। यात्रियोंमें लोहारों, बढ़इयों, कारकुनों और छापाखानेवालोंके होनेकी बात सुनकर "मजदूर समाज" भड़क गया और निःसन्देह उसका समर्थन उन लोगोंने किया जिन्हें सर्वव्यापक हिन्दूके दबावका जीवनके अन्य क्षेत्रोंमें अनुभव हो रहा था। परन्तु इनमें से किसीको भी शायद इस बातका ध्यान नहीं था कि वे स्वयं भारतके फ़ाज़िल मजदूरोंका ध्यान नेटालकी ओर आकृष्ट करनेमें सहायक बने हुए हैं। जो सब्जियाँ, फल और मछलियाँ नेटालमें भोजनकी मेजोंकी शान बढ़ाती हैं उन सबको कुली ही बोते, पकड़ते और बेचते हैं। दस्तरख्वानोंको कोई और कुली धोता है। शायद मेहमानोंको खाना परोसनेका काम भी कुली हजूरिया ही करता है, और वे कुली रसोइयाका ही बनाया हुआ खाना खाते हैं। नेटालियोंको चाहिए कि वे ऐसे परस्पर-विरोधी काम न करें। उन्हे चाहिए कि वे कुलियोंके स्थानपर पहले अपनी जातिके गरीब लोगोंसे काम लेना शुरू करें और इस तरह भारतीय लोगोंको निकालनेका आरम्भ करें, और निरोधक कानून बनानेका काम अपने निर्वाचित प्रतिनिधियोंके लिए छोड़ दें। जबतक नेटाल एशियाइयोंके लिए इस प्रकार रहनेका मन-भावना स्थान बना रहेगा और जबतक नेटालवाले काले लोगोंकी सस्ती मजदूरियोंसे बड़ी संख्यामें लाभ उठाते रहेंगे, तबतक उनके यहाँ आगमनको, बिना कानून बनाये ही, ज्यादासे

ज्यादा घटा देनेका काम यदि अकल्पित रूपसे असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य रहेगा। —*डी. ऐफ. न्यूज़*, जनवरी, १८९७।

भारतीय प्रवेशार्थियोंके उतरनेके विरुद्ध जो प्रदर्शन किया गया उसमें इतनी बात सबके लिए भली हुई कि डा० मैकेंज़ीकी उत्तेजक गलेबाजी और श्री स्पार्क्स तथा उनके नये चेले डैन टेलरकी भड़कीली फिकरा-कशियोंका, नेटालके नेक उपनिवेश, उसके परेशान निवासियों या बहु-निन्दित "कुलियों" पर हवाके बुलबुलोंसे अधिक कोई असर नहीं हुआ। अपने मुँह आप देशभक्त बननेवाले इस दुर्विचारपूर्ण प्रदर्शनके संगठनकर्ताओंने यत्न तो किया था रोमन विदूषकका नाटक खेलनेका, परन्तु उनकी तलवारसे मौत उनकी अपनी ही हो गई। सौभाग्यवश अधिक गम्भीर बात कोई नहीं हुई, परन्तु जिन्होंने लोगोंसे इकट्ठा होने और ऐसा अवैधानिक काम कर गुजरनेकी अपील करनेकी जिम्मेवारी अपने सिर ली थी, उनकी मूर्खता डर्बनकी भीड़की अन्तिम कार्रवाइयोंसे जैसी प्रकट हुई वैसी इस तमाम हल्ले-गुल्लेमें अन्य किसी समय नहीं हुई। जब इस भीड़का कुली प्रवेशार्थियोंको उतरनेसे रोकनेका प्रयत्न असफल हो गया और जब इसने देख लिया कि हमारा प्रदर्शन टाँय-टाँय-फिस्स रह गया है, तब यह चिढ़ गई, और क्रोध तथा अपमानके मारे इसका सारा ध्यान, एक भारतीय बैरिस्टर श्री गांधीपर केन्द्रित हो गया। उनका सबसे बड़ा अपराध, नेटालवालोंकी नजरमें, यह था कि उन्होंने अपने देशवासियोंके मामलोंमें रुचि ली और स्वेच्छासे दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंके वकीलकी भूमिका अपना ली। यहांतक तो प्रदर्शनसे कोई हानि नहीं हुई, और उसकी तुलना क्रिसमसके मूक स्वाँगसे की जा सकती थी; परन्तु जब श्री गांधी बिना किसी दिखावेके उतरकर, एक अंग्रेज सॉलिसिटर श्री लॉटनके साथ चुपचाप शहरमें चले जा रहे थे, तब हालातने एकदम जंगली रूप धारण कर लिया। हम न तो दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंका पक्ष लेना और न श्री गांधीकी युक्तियोंका समर्थन करना चाहते हैं। परन्तु इन सज्जनकी जो शोचनीय दुर्गति की गई वह कलंकमय और निन्दनीय है। कुछ सिर-फिरे लोगोंकी हू-हा करती हुई भीड़ने श्री गांधीको घेर लिया, उन्हें लातों और मुक्कोंका निशाना बनानेकी कमीनी हरकत की गई, और उनपर कीचड़ और सड़ी-

गली मछलियाँ फेंकी गईं। एक आवारा आदमीने उन्हें घोड़ेके चाबुकसे मारा और एकने उनकी पगड़ी उछाल दी। हमें मालूम हुआ है कि उस आक्रमणके कारण वे "बहुत लहू-लुहान हो गये और उनकी गरदनसे खून बहने लगा।" अन्तमें वे पुलिसकी रक्षामें एक पारसी[1]की दूकानमें ले जाये गये। उस इमारतकी रक्षा नगरकी पुलिस करने लगी। अन्तमें वे भारतीय बैरिस्टर वेश बदलकर वहाँसे निकल गये और इस तरह उन्होंने अपनी रक्षा की। बेशक, उपद्रवी भीड़के लिए तो यह एक बड़ा तमाशा था, परन्तु इसे यदि कानून और अमन-अमानके उसूलोंसे न भी देखा जाये तो भी जब अंग्रेज एक बिना सजा पाये स्वतन्त्र व्यक्तिके साथ ऐसा असज्जनोचित और पशुताका व्यवहार करनेपर उतारू हो जायें, तब समझना चाहिए कि डर्बनमें न्याय तथा औचित्यकी ब्रिटिश भावनाका निश्चय ही द्रुत गतिसे लोप होने लगा है। नेटालवालोंने यह मारपीट "ब्रिटेनके शानदार आश्रित देश"— भारतके एक प्रजाजनपर की है, और भारतको ब्रिटिश राजमुकुटका उज्ज्वलतम मणि कहा जाता है। इसलिए ब्रिटेन और भारतकी सरकारें इस घटनाकी तरफसे उदासीन नहीं रह सकेंगी। — *जोहानिसबर्ग टाइम्स*, जनवरी, १८९७।

डर्बनके लोग अपनी शिकायतोंको बढ़ा-चढ़ाकर प्रकट करना चाहते हैं, और वैसा करनेके लिए उन्होंने डराने-धमकानेके जिन कानून-विरोधी तरीकोंको अपनाया उनकी सफाई यह कहकर दी जा रही है कि जो हित संकटमें पड़ गये थे वे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थे और अबतक इन तरीकोंसे परिणाम अच्छे निकले हैं।... यद्यपि उपनिवेशमें कुछ अन्धे लोगोंको ऐसा लग रहा है कि शासनके अधिकार प्रदर्शन-आन्दोलनके नेताओंको सौंप दिये गये थे, परन्तु आन्दोलनका संचालन और नियन्त्रण, शुरूसे आखिर तक, चुपचाप और बिना किसी दिखावे या हल्ले-गुल्लेके, शासक लोग ही कर रहे थे। — *नेटाल मर्क्युरी*, १४ जनवरी, १८९७।

दलकी दृष्टिसे प्रदर्शन सफल रहा, ऐसा दिखाना निरा दम्भ होगा। कल बन्दरगाहपर जो व्याख्यानबाजी हुई उसकी आवाज सार्वजनिक सभाओंके

१. एक भारतीय, श्री रुस्तमजी, जो 'पारसी रुस्तमजी' नामसे प्रसिद्ध थे।

व्याख्यानोंके स्वरसे बहुत भिन्न थी। उस सबसे यह सचाई छिप नहीं सकती कि प्रदर्शनका मूल उद्देश्य, अर्थात् दोनों जहाजोंपर के यात्रियोंको उतरनेसे रोकना, सिद्ध नहीं हुआ और जितना सिद्ध हुआ उतना अन्य उपायोंसे भी हो सकता था। हम सदासे यही कहते आये हैं।... हम जानना चाहते हैं कि कलकी कार्रवाइयोंसे मिला क्या? यदि यह कहा जाये कि उनसे एशियाई आक्रमणको रोकनेकी आवश्यकता का महत्त्व प्रतिपादित हो गया तो हमारा जवाब यह है कि उसका प्रतिपादन तो उतने ही बलपूर्वक सार्वजनिक सभाओंसे भी हो चुका था। और तिसपर इसका समर्थन सभी करते हैं। यदि कोई यह तर्क करे कि उनसे प्रकट हो गया कि लोग दिलसे क्या कहते हैं तो हम इससे सहमत नहीं हो सकते, क्योंकि लोग सरकारके प्रतिनिधिसे वही आश्वासन सुनकर वापस लौट गये जो उसने एक सप्ताह पहले ही दे दिया था। तब सरकारने वचन दिया था कि वह इस समस्याका हल करनेके लिए कानून बनायेगी। कल भी श्री एस्कम्बने इसी आश्वासनको दुहराया, और इससे अधिक कोई वचन नहीं दिया। न तो उन्होंने संसदका विशेष अधिवेशन बुलानेकी बात कही और न भारतीय यात्रियोंको लौटा देनेका वचन दिया। अब समितिने घोषणा की है कि वह सारा मामला सरकारके हाथमें छोड़ देनेके लिए तैयार है। ऐसा करनेके लिए जो कारण एक सप्ताह पहले थे उससे अधिक अब कोई नहीं है — और प्रदर्शनका घोषित लक्ष्य भी अबतक अपूर्ण ही पड़ा है। इसमें आश्चर्यकी बात कुछ नहीं कि बहुतसे लोग इस सारे मामलेको निरी टॉय-टॉय-फिस्स — बन्दर-घुड़की — कहते हैं और ऐसा विश्वास प्रकट करते हैं कि अब यदि ऐसा ही कोई और प्रदर्शन किया गया तो डर्बनके लोग उसमें शामिल होनेको तैयार नहीं होंगे।... इस सप्ताह सरकारने अपने कर्तव्य और अधिकार जिस प्रकार समितिके हकमें छोड़ दिये थे वह इतना असाधारण था कि उससे यह सन्देह हुए बिना नहीं रह सकता कि यह सब नाटक पहलेसे रचा हुआ था। जहाँतक इस प्रश्नका सम्बन्ध है, यह स्वयं-निर्वाचित समिति अपने आपको अस्थायी सरकार ही समझने लगी थी। वह जहाजोंके आवागमनका नियन्त्रण करने लगी और जिन व्यक्तियोंको उसके सदस्योंके समान ही यहाँ रहनेका

अधिकार था उनको भी यहाँ उतरनेकी "इजाजत" देने लगी या देनेसे इनकार करने लगी थी। उसका इरादा यहाँतक था कि वह "डेनगेल्ड"[१] नीतिपर चलेगी और उसके लिए लोगोंसे धन वसूल करेगी। इस सारे समय सरकार चुपचाप देखती रही, उसने यात्रियोंकी रक्षाके लिए कुछ नहीं किया और केवल रस्मी प्रतिवाद करके अपने कर्तव्यकी इतिश्री समझ ली। अब हम इस विवादमें पड़ना नहीं चाहते कि समितिका इस मार्गपर चलना उचित था या नहीं। उसका खयाल है कि उचित था, परन्तु इससे इस सचाईका खण्डन नहीं होता कि उसने अपने व्यवहार द्वारा, कानूनके बिलकुल खिलाफ, सरकारका स्थान ग्रहण कर लिया था। देर तक लम्बी-चौड़ी बातचीत चलती रही। उस बीच जनताको निरन्तर भड़काया जाता रहा। आखिर बिगुल बजा, और सारा डर्बन उठकर और करने या मरनेके लिए तैयार होकर "बन्दरगाह" की तरफ उमड़ पड़ा। और तब, अकस्मात् ही ऐन मौकेपर, महान्यायवादी महोदय "शांत-गम्भीर भावसे उछल पड़े" और लोगोंको भलेमानस बननेकी सलाह देने लगे। उन्होंने लोगोंको आश्वासन दिया कि जो कुछ करना जरूरी होगा मैं सब करूँगा, आप "अपनी नजर अपने एस्कम्बपर रखिए और वह आपको पार उतार देगा।" समितिने घोषणा की कि उसका इरादा कभी भी सरकारके विरुद्ध कुछ करनेका नहीं था और वह सारा मामला सरकारके हाथमें छोड़नेको बिलकुल तैयार है। बस, सम्राज्ञीका जय-घोष होने लगा — चारों ओर आशीर्वाद-वचन गूंज उठे। सब लोग खुश-खुश अपने घरोंको लौट गये। प्रदर्शनकारी जितनी फुर्तीसे एकत्र हुए थे उतनी ही जल्दी बिखर गये। और अब जिन भारतीयोंको भुला दिया गया, वे चुपचाप तटपर उतर आये, मानो कभी कोई प्रदर्शन हुआ ही नहीं था। इस सबके बाद कौन यह सन्देह किये बिना रह सकता है कि सारा मामला पहलेसे रचा हुआ और जाना-माना था? "कूरलैंड" के कप्तानने दावेके साथ कहा है कि समितिने मुझे विश्वास दिलाया था कि वह सरकारकी तरफसे काम कर रही है। यह भी बतलाया गया

१. डेनमार्कवासी आक्रमणकारियोंको धन देकर लौटा देने या उनसे रक्षाके लिए ब्रिटिश जनतापर लगाया जानेवाला कर।

है कि समिति जो-कुछ कर रही थी उस सबको सरकार जानती और पसन्द करती थी। ये बयान यदि सच हों तो इनसे सरकार या समितिकी ईमानदारीपर गम्भीर आक्षेप होता है। यदि समितिको सरकारकी स्वीकृति प्राप्त थी तो इसका मतलब है कि सरकार दोमुँहा खेल खेल रही थी। उसने जिन कारंवाइयोंको अपने प्रकाशित उत्तरमें नापसन्द किया था उन्हींको वह भीतर-भीतर बढ़ावा दे रही थी। अगर ये बयान सही नहीं हैं, तो दोमुँही चालका आरोप समितिके सिर मढ़ा जायेगा। हम इन बयानोंपर विश्वास करना नहीं चाहते, क्योंकि किसी भी बड़े लक्ष्यकी पूर्ति ऐसे उपायोंसे नहीं हुआ करती। —*नेटाल एडवर्टाइज़र*, १४ जनवरी, १८९७।

हमने कल "कूरलैंड"के कप्तानके नाम प्रदर्शन-समितिका जो पत्र प्रकाशित किया था उससे इस आरोपका समर्थन नहीं होता कि समितिने झूठ-मूठ ही ऐसा प्रकट कर दिया था कि वह सरकारकी तरफसे काम कर रही है। परन्तु इस पत्रकी जो ध्वनि है और इसमें महान्यायवादीका जिक्र जिस प्रकार किया गया है उससे वैसा समझ लेनेके लिए कप्तानको भी दोषी नहीं माना जा सकता। परन्तु उस पत्रमें यह दूसरा सन्देह हो जानेकी गुंजाइश मौजूद है कि, कानून-विरोधी कारंवाइयोंके विरुद्ध सरकारकी जो चेतावनियाँ प्रकाशित हुईं उनके बावजूद, अमली तौरपर सरकारने समितिके साथ गठबन्धन कर रखा था। इस पत्रके अनुसार महान्यायवादीने पहले तो यह मान लिया था कि भारतीयोंको उपनिवेशसे बाहर ही रोक देनेका कानूनी उपाय कोई नहीं है, परन्तु पीछे वे यहाँतक आगे बढ़ गये कि उन्होंने एक ऐसी संस्थाके कहनेसे, जिसकी कानूनी स्थिति कुछ नहीं थी और जो डराने-धमकानेके लिए कानून-विरुद्ध उपायोंका सहारा ले रही थी, आये हुए लोगोंको पैसा देकर वापस करनेकी नीति निभानेके लिए जनताके धनका संकल्प कर दिया। इस पत्रकी भाषासे समितिकी हस्ती और उसके गैर-कानूनी कामका स्पष्ट परिचय मिल जाता है। जब यह चाल नहीं चली, तब प्रदर्शन किया गया और ऐन मौकेपर महान्यायवादी सामने प्रकट हो गये। रूढ़ उक्ति काममें लाई जाये तो, इसपर टीक-टिप्पणी अनावश्यक है। —*नेटाल एडवर्टाइज़र*, २० जनवरी, १८९७।

गत सप्ताहकी सब गले-बाजी, कवायद, और बिगुल-बाजीके बाद भी डर्बनके नागरिक इतिहासका निर्माण नहीं कर सके — हाँ, यदि उस न कहने लायक गांधीकी आँखपर सड़े हुए आलूका निशाना बाँधना कोई ऐतिहासिक तथ्य हो तो बात दूसरी है। भीड़की बहादुरीके कारनामे प्रायः गम्भीरसे उपहासास्पद हो ही जाया करते हैं। और लापरवाहीकी दलीलोंके साथ लापरवाहीसे फेंके हुए अंडोंका मेल भी बैठ ही जाता है।...सप्ताह-भर तक नेटालके मन्त्रियोंने हालातको पकने दिया। उन्होंने नामको भी दस्तन्दाजीका बहाना तक नहीं किया। उनकी नीति ही सारे मामलेको गैर-सरकारी छूट दे देनेकी मालूम पड़ती थी। फिर जब "नादरी" और "कूरलैंड" जहाज-घाटसे केवल कुछ-सौ गज दूर रह गये तब श्री एस्कम्ब मौकेपर प्रकट हो गये। उन्होंने बढ़कर बीच-बचाव किया। लोग तितर-बितर हो गये, और कुछ घंटे पीछे उन्होंने असफल जोशका प्रदर्शन, गांधीकी रिक्शा उलटकर, उनकी आँखोंमें चोट मारकर और जिस मकानमें उन्हें रखा गया था उसपर जंगलीपनसे हमला करके किया — *केप आर्गस*, जनवरी, १८९७।

प्रदर्शनमें कुछ सौ काफिरोंका दस्ता क्यों शामिल था, इस बातकी सफाई अबतक नहीं हुई। इसका मतलब क्या यह था कि गोरे और वतनी लोगोंका पक्ष एक ही है? वरना, यह और किस बातकी निशानी थी? एक बातमें लोकमतकी सर्वसम्मति है। लोगोंने जो परिणाम निकाल लिया है, वह भ्रांत हो सकता है, परन्तु उन्हें यह विश्वास कभी नहीं होगा कि सारा मामला सरकार और इस अद्भुत आन्दोलनके नेताओंके आपसी षड्यंत्रका परिणाम नहीं था, और स्वयं-गठित समिति इसमें सफल नहीं हो सकी। सब कुछ नाटकीय हलकेपनसे हो गया। मन्त्रियोंने एक ऐसी समितिको अपने अधिकार सौंप दिये, जिसका एक ऐसा दावा था कि वह जनताकी प्रतिनिधि है। उनका कहना था कि तुम कुछ भी करो, मगर वैधानिक ढंगसे करो। यह सन्देशा सब तक पहुँचा दिया गया, और वैधानिक कार्रवाईके जादूका असर भी हुआ, परन्तु आजतक यह कोई भी नहीं समझा कि इसका मतलब क्या था। मन्त्रियोंने वैधानिक ढंगसे काम किया और वचन दे दिया था कि हम शांति-भंग होनेपर भी

हस्तक्षेप नहीं करेंगे। उन्होंने कह दिया था कि हम सिर्फ गवर्नरके पास जायेंगे और उससे कह देंगे कि हमें पद-भारसे मुक्त कर दीजिए। समितिने सर्वथा वैधानिक विधिसे भीड़ इकट्ठी की, उसमें वतनी लोगोंको भी शामिल किया, और वह कुछ ब्रिटिश प्रजाओंको एक ब्रिटिश उपनिवेशमें उतरनेसे बलपूर्वक रोकनेके लिए निकल पड़ी। इस मोहक नाटकका अन्तिम अंक बन्दरगाहपर खेला गया। उसमें समितिने अपने अधिकार श्री एस्कम्बको वापस लौटा दिये, सरकारको फिर प्रतिष्ठित कर दिया गया, और प्रत्येक व्यक्ति सन्तुष्ट होकर घर लौट गया। समितिको यद्यपि जगह-जगह मुँहकी खानी पड़ी, फिर भी उसका दावा है कि नैतिक जीत उसीकी हुई। मन्त्रीवर्ग भी अपनी "एक ही भूमिका" पर नाचता रहा। और भारतीयोंको यद्यपि उतरनेकी इजाजत बिलकुल नहीं दी जानेवाली थी, फिर भी वे भीड़के छँटते ही एक-साथ उतर पड़े। — *नेटाल विटनेस*, जनवरी, १८९७।

श्री वाइलीने डर्बनकी सभामें जो कुछ श्री एस्कम्ब द्वारा शिष्टमण्डलसे कहा गया बतलाया था, उससे इनकारीकी तो बात ही क्या, उसके किसी हिस्सेका जिक्र तक नहीं किया गया। इसलिए यह बात लिखित रूपमें मौजूद है कि मन्त्रियोंने निश्चय कर लिया था कि डर्बनमें तनिक भी दंगा हुआ तो भीड़का राज ही सर्वोपरि रहेगा। "हम गवर्नरसे जाकर कह देंगे कि शासनका सूत्र आपको अपने हाथोंमें लेना होगा।" सब जानते हैं कि नये आम चुनाव जल्दी ही होनेवाले हैं। परन्तु यह किसीने भी नहीं सोचा होगा कि कोई मन्त्रिमंडल केवल लोगोंके मत प्राप्त करनेके लिए इतने नीचे उतर आयेगा कि किसी बड़े शहरकी जनताको कानून तोड़नेकी आजादी दे दे। — *नेटाल विटनेस*, जनवरी, १८९७।

यह नहीं हो सकता कि आप गिरमिटिया भारतीयोंको तो सैकड़ोंकी संख्यामें यहाँ बुलाते रहें और स्वतन्त्र भारतीयोंका आना बिलकुल बन्द कर दें; वरना आपको निराशाका सामना करना पड़ेगा — *प्रिटोरिया प्रेस*, जनवरी, १८९७।

श्री वाइलीने भारतीय विरोधी आन्दोलनके पुरस्कर्ताओं और श्री एस्कम्बमें हुई बातचीतका जो विवरण दिया है उसके अनुसार इस मामलेमें

सरकारका रुख गंभीर निन्दाका विषय हो सकता है। यद्यपि श्री वाइलीका बयान स्पष्ट शब्दोंमें था, फिर भी उससे स्पष्ट है कि समिति ऐसा काम करना चाहती थी जो कि कानूनके खिलाफ था। समितिने कहा था कि "हमारा खयाल है कि इस उपनिवेशकी सरकारके प्रतिनिधि और अधिकारीके नाते हमारा विरोध करनेके लिए आपको बलका प्रयोग करना पड़ेगा।" इसके उत्तरमें श्री एस्कम्बने कहा बतलाते हैं कि "हम ऐसा कोई काम नहीं करेंगे। हम आपके साथ हैं, और हम आपका विरोध करनेके लिए कोई काम नहीं करेंगे। परन्तु यदि आप हमें ऐसी स्थितिमें डाल देंगे तो हम इस उपनिवेशके गवर्नरके पास जाकर कह देंगे कि उपनिवेशका शासन-सूत्र आप अपने हाथमें ले लीजिये। हम अब सरकारको नहीं चला सकते और आपको किन्हीं और आदमियोंकी तलाश करनी होगी।" इस बयानके अनुसार, सरकारने बहुत ही शोचनीय निर्बलता प्रकट की है। यदि किसी मन्त्रीको यह खबर दी जाये कि कुछ लोग कोई कानूनके खिलाफ काम करना चाहते हैं तो उसे चाहिए कि वह पलभर भी संकोचके बिना अपनेसे मिलनेवालोंसे कह दे कि कानूनमें रत्ती-भर भी दस्तन्दाजी नहीं होने दी जायेगी, और यदि आवश्यकता हो तो मन्त्रीको साफ शब्दोंमें कह देना चाहिए कि कानूनकी रक्षा सब तरह और सब उपलब्ध साधनोंसे की जायेगी। इसके विपरीत, श्री एस्कम्बके कहनेका भाव यह था कि सरकार इस कानून-विरोधी कार्रवाईका विरोध करनेके लिए कुछ नहीं करेगी। जो लोग खुल्लमखुल्ला भारतीय प्रवेशार्थियोंके लिए हिन्द महासागरको उपयुक्त स्थान बताते हैं उनके हाथोंमें खेल जानेसे पदारूढ़ सरकारके एक सदस्यकी शोचनीय निर्बलता प्रकट होती है। —*टाइम्स आफ़ नेटाल* जनवरी, १८९७।

ऊपरके उद्धरण अपना भाव आप ही बतला रहे हैं। प्रायः प्रत्येक समाचार-पत्रने उक्त प्रदर्शनकी निन्दा की है। उन्होंने यह भी दिखलाया है कि सरकारने समितिकी कार्रवाईको बढ़ावा दिया था। प्रार्थी यहाँ यह भी जिक्र कर देना चाहते हैं कि इसके बाद प्रदर्शनके नेताओंने इस बातसे इनकार किया है कि सरकार और उनमें कोई "गठबन्धन" हो गया था। फिर भी यह एक सचाई है, और ऊपरके उद्धरणोंसे यह स्पष्ट है कि यदि सरकार, श्री एस्कम्ब

और श्री वाइलीमें हुई बातचीतके सम्बन्धमें, श्री वाइलीके वक्तव्यका खंडन कर देती और सार्वजनिक रूपसे यह घोषणा कर देती कि यात्रियोंको न केवल सरकारसे रक्षा पानेका अधिकार है, बल्कि आवश्यकता होनेपर उनकी रक्षा की भी जायेगी, तो यह प्रदर्शन होने ही न पाता। अब तो स्वयं सरकारके ही मुखपत्रने कहा है कि जब आन्दोलन चल रहा था तब "सरकार ही उसका संचालन और नियंत्रण कर रही थी।" उक्त लेखसे तो ऐसा लगता है कि सरकार चाहती थी कि यदि भीड़को भली भाँति नियंत्रण और संयममें रखा जा सके तो ऐसा प्रदर्शन अवश्य किया जाये, जिससे कि वह यात्रियोंके लिए एक नमूनेके सबकका काम दे। नेटाल-सरकारका पूरा लिहाज करते हुए भी कमसे कम इतना तो कहा ही जा सकता है कि एक ब्रिटिश उपनिवेशकी सरकारके द्वारा डराने-धमकानेके इस तरीकेकी इजाजतका या बढ़ावेका दिया जाना एक सर्वथा नया अनुभव है और यह ब्रिटिश संविधानके परम संचित सिद्धान्तोंके सर्वथा विरुद्ध है। प्रार्थियोंकी नम्र सम्मति है कि इस प्रदर्शनके परिणाम सारे उपनिवेश और भारतीय समाज, दोनोंके हितकी दृष्टिसे भयंकर हुए बिना नही रहेंगे, क्योंकि भारतीय लोग भी ब्रिटिश साम्राज्यका वैसा ही अंग होनेका दावा करते हैं जैसा कि यूरोपीय ब्रिटिश लोग। इसके कारण, दोनों समाजोंकी भावनाओंमें बिगाड़ पहले ही बढ़ चुका है। इसके कारण यूरोपीय उपनिवेशियोंकी दृष्टिमें भारतीयोंका दरजा गिर गया है। इसके कारण भारतीयोंकी स्वतन्त्रता कम करनेके लिए अनेक कठोर उपाय सुझाये जाने लगे हैं। आपके प्रार्थियोंकी नम्र प्रार्थना और आशा है कि साम्राज्यकी सरकार इस सबको उपेक्षा और निश्चिन्तताकी दृष्टिसे नही देख सकेगी, और न ही देखेगी। जो लोग ब्रिटिश-साम्राज्यमें मेल-मिलापकी रक्षा करने और प्रजाजनोंके विभिन्न भागोंमें न्यायको बनाये रखनेके लिए जिम्मेवार हैं वही उनमें फूट और दुर्भावनाओंको उत्पन्न अथवा उत्साहित करने लगें तो विभिन्न हितोंका संघर्ष होनेकी स्थितिमे इन सब भागोंको परस्पर मेल-मिलाप रखनेके लिए प्रेरित करनेका कार्य पहलेसे बहुत अधिक कठिन हो जायेगा। और यदि साम्राज्यकी सरकार इस सिद्धान्तको मानती है कि भारतीय ब्रिटिश प्रजाजनोंको भी साम्राज्यके सब उपनिवेशोंके साथ सम्बन्ध रखनेकी स्वतन्त्रता होनी चाहिए तो प्रार्थी यह विश्वास करनेका साहस करते है कि साम्राज्य-सरकारकी ओरसे ऐसी कोई घोषणा कर दी जायेगी जो कि औपनिवेशिक सरकारोंकी ओरसे ऐसा शोचनीय पक्षपात होनेकी सम्भावनाको रोक दे।

इस संघर्षके समय भारतीय समाजका व्यवहार कैसा रहा था इस सम्बन्धमें १६ जनवरीके *नेटाल एडवर्टाइज़र*में की गई निम्नलिखित टिप्पणी अंकित करने योग्य है :

> **इस सप्ताहकी उत्तेजनाके समय डर्बनकी भारतीय जनताने जो व्यवहार किया वही सर्वथा इष्ट था। निश्चय ही अपने देशवासियोंके साथ नगरके लोगोंका व्यवहार देखकर उसे दुःख हुआ होगा, परन्तु उसने बदला लेनेका कोई प्रयत्न नहीं किया और अपने शांत व्यवहार तथा सरकारमें विश्वासके द्वारा उसने सार्वजनिक शांतिको स्थिर रखनेमें बहुत सहायता दी।**

श्री गांधीके साथ जो कुछ बीती उसका प्रार्थी और अधिक जिक्र करना नहीं चाहते थे। परन्तु वे नेटालमें दोनों समाजोंके बीच भाष्यकर्ताका कार्य करते हैं। इसलिए यदि उनके सम्बन्धमें कोई गलतफहमी रह गई हो तो भारतीय पक्षको भारी हानि हो जानेकी सम्भावना है। दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंके नामसे उन्होंने भारतमें जो कुछ किया उसकी सफाईमें इस प्रार्थनापत्रमें अबसे पहले बहुत कुछ कहा जा चुका है। परन्तु इस मामलेको और अधिक स्पष्ट करनेके लिए प्रार्थी साम्राज्य-सरकारका ध्यान परिशिष्ट म की ओर आकृष्ट करना चाहते हैं। उसमें समाचारपत्रोंके कुछ उद्धरण एकत्र किये गये हैं। अबसे पूर्व प्रार्थियोंने साम्राज्य-सरकारकी सेवामें जो प्रार्थनापत्र दिये हैं उनमें भारतीय ब्रिटिश प्रजाजनोंकी भारतसे बाहरकी स्थितिको स्पष्ट करनेका प्रयत्न किया गया है। और यह नम्र निवेदन किया गया है कि १८५८ की दयालु घोषणाके अनुसार यह स्थिति साम्राज्यके अन्य प्रजाजनोंके समान[१] होनी चाहिए। महामहिम मारक्विस आफ़ रिपनने उपनिवेशोंके सम्बन्धमें जो खरीता भेजा था उसमें पहले ही यह उल्लेख कर दिया गया था कि "साम्राज्य-सरकारकी इच्छा है कि महारानीकी भारतीय प्रजाओंके साथ साम्राज्यकी अन्य सब प्रजाओंके समान ही व्यवहार किया जाये।"[२] परन्तु उसके पश्चात्

१. ब्रिटिश सरकारके नाम प्रार्थनापत्रोंके लिए देखिए खण्ड १, पृष्ठ ११७–१२८, १८९–२११, २१७–२३२, २५८–२६०, ३१०–३१४, और ३३१–३५४। १८५८ की घोषणाकी दृष्टिसे ब्रिटिश प्रजाके रूपमें भारतीयोंकी मान-मर्यादाके विषयमें देखिए खण्ड १, पृष्ठ ८०, १०९–१०, १२२–३, २०४–५, ३४३–४, ३४७–८, ३४९–५० और इस खण्डका पृष्ठ ३७५–७६।

२. देखिए खण्ड १, पृष्ठ २०४।

इतने परिवर्तन हो चुके हैं कि एक नई घोषणा करना आवश्यक हो गया है। विशेषतः इस कारण कि इस उपनिवेशमें अनेक कानून ऐसे पास किये जा चुके है जो कि उक्त नीतिके विरोधी है।

प्रार्थियोंका निवेदन है कि इस प्रदर्शनके सम्बन्धमें एक और घटना भी ध्यान देने योग्य है, और वह है बन्दरगाहपर वतनी लोगोंका इकट्ठा होना। इसका पहले भी जिक्र किया जा चुका है, परन्तु डर्बनके एक प्रमुख प्रतिनिधि श्री जी० ए० डी'लैबिस्टरने नगर-परिषद (टाउन कौंसिल) को जो पत्र लिखा है और उसपर सरकारके ही मुख-पत्र *नेटाल मर्क्युरी*ने जो टिप्पणी प्रकाशित की है उससे परिस्थितिकी गम्भीरताका परिचय भली भाँति हो जाता है:

> "सज्जनो,—मै उन अनेक प्रतिनिधियोंमें से हूँ जिन्होंने कलके प्रदर्शनमें भाग लेनेवाले वतनी लोगोंके दंगाई बरतावको चिन्तापूर्वक देखा था। बन्दरगाहके मार्गपर वतनी लोगोंके कई दल लाठियाँ घुमाते और पूरी आवाजसे चिल्लाते कई जगह पटरीपर कब्जा जमाकर खड़े हो गये थे; और बन्दरगाहपर कोई पाँच सौ या छः सौ लड़के हाथोंमें लाठियाँ लिये और गाते और चिल्लाते हुए इकट्ठे थे। उनमें अधिकतर लड़के जैसे-तैसे कोट पहने हुए थे। ऐसा मालूम पड़ता था कि वे शांति भंग करनेकी कसम खाकर आये हैं। इस मामलेका अधिक विवरण सुगमतासे मिल सकता है।
>
> यदि आपकी सम्मानित संस्थाने इस नगरमें कानून और अम्नकी संरक्षिका होनेके नाते तुरन्त ही यह प्रकट करनेके उपाय नहीं किये कि वह इस प्रकारके व्यवहारको सहन नहीं करेगी तो वतनी लोगोंपर कलकी कार्रवाईका बुरा असर और भी बढ़ जायेगा। जातीय विद्वेष अधिक फैल जायेगा। यह समझनेमें कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि कलके प्रदर्शनमें वतनी लोगोंको जिस तरह इकट्ठा किया गया था वैसा करना नगरके लिए कितने बड़े संकटका कारण हो सकता है। कुछ समय हुआ जब कि पुलिसके साथ उनका झगड़ा हो गया था और वतनी लोग घुड़दौड़के मैदानपर इकट्ठे हो गये थे। उसका भी ऐसा ही दुष्परिणाम निकला था।
>
> मेरा निवेदन है कि कलके प्रदर्शनमें वतनियोंको शामिल करनेसे डर्बनके उज्ज्वल यशपर ऐसा धब्बा लग गया है जिसे तुरन्त ही धो डालना आपका कर्त्तव्य है। और मैं यह कहनेका साहस कर सकता हूँ

कि यदि आपने इस मामलेको जोरोंसे हाथमें लिया तो आपके अधिकतर सदस्य इसे सन्तोषकी दृष्टिसे देखेंगे। मेरा सादर सुझाव है कि नगर-निगम (कारपोरेशन) को पहला काम यह करना चाहिए कि वह जाँच करे कि इन वतनी लोगोंको वहाँ इकट्ठा करने और उक्त अवसरपर इनके बरताव और नियन्त्रणके लिए जिम्मेवार व्यक्ति कौन था। और भविष्यमें इसकी पुनरावृत्ति न हो इसलिए अगर मौजूदा उपनियम इस अनिष्टको रोकनेके लिए काफी न हों तो विशेष उपनियम भी बना दिये जायें।

यह इस कारण और भी आवश्यक हो गया है कि अटर्नी-जनरल साहबने ऊपर लिखे हुए हालातमें जो दंगाई और खतरनाक लोग एकत्र हो गये थे उनका कोई जिक्र नहीं किया। परन्तु मुझे विश्वास है कि उनसे यह शोचनीय भूल केवल इस कारण हुई कि उन्होंने वह सब कुछ स्वयं नहीं देखा जो कि मैंने और अन्य लोगोंने देखा था। मेरा खयाल है कि उन कोट-धारी जवानोंका पता सुगमतासे लगाया जा सकता है। अन्य लोग समितिके सदस्योंके नौकर थे। एक सदस्यने तो इस मौकेका विशेष लाभ उठाकर अपनी पेढ़ीका विज्ञापन करनेके लिए अपनी दूकानके नौकरोंको वहाँ भेज दिया था। उनमें से हरएकके हाथमें दो या तीन लाठियाँ थीं और उनकी पीठपर बड़े-बड़े अक्षरोंमें पेढ़ीका नाम लिखा था।"

श्री लैबिस्टरने कारपोरेशनको जो पत्र लिखा है, जिसमें गत बुधवारको प्रदर्शन करनेके लिए लाठियोंसे लैस वतनी लोगोंका दल एकत्र करनेके खतरेकी ओर ध्यान खींचा गया है और जिसमें नगर-परिषदसे इस मामलेकी जाँच करनेके लिए कहा गया है, उसकी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए। हमें विश्वास है कि वतनी लोगोंके गिरोहको बन्दरगाहपर इकट्ठा करनेकी जिम्मेदारी प्रदर्शन-समितिपर किसी भी प्रकार नहीं है। परन्तु वतनी लोग वहाँ स्वयं भी नहीं गये होंगे। और इसलिए इस मामलेकी पूरी तरह जाँच करके दोष उन व्यक्तियोंपर डाला जाना चाहिए जिन्होंने कि यह गम्भीर उत्तरदायित्व अपने सिर ले लिया था। श्री

लैबिस्टरका यह कथन सर्वथा उचित है कि प्रदर्शनमें वतनियोंकी उपस्थिति डर्बनके उज्ज्वल नामपर एक कलंक है और इसके परिणाम बहुत भयंकर हो सकते थे। भारतीय और वतनी एक-दूसरेको पसन्द नहीं करते। यदि वतनियोंका कोई दल इकट्ठा करके उसे भारतीयोंके विरुद्ध भड़का दिया गया तो इसका परिणाम भयंकर और दुःखदायी हो सकता है। ऐसे मामलोंको वतनी लोग दलीलसे नहीं समझ सकते, उनका जोश झट भड़क जाता है और उनका स्वभाव लड़ाकू है। तनिक-सी उत्तेजनासे वे आग-बबूला हो जाते हैं और जहाँ खून बहानेकी बात हो वहाँ तो वे कुछ भी कर गुजरनेको तैयार रहते हैं। इससे भी अधिक लज्जाजनक बात यह थी कि जब श्री गांधी उतर गये और उन्हें फील्ड स्ट्रीटमें ठहरा दिया गया तब वतनियोंको भारतीयोंपर हमला करनेके लिए उकसाया गया। यदि पुलिस चौकन्नी न होती और वतनियोंको तितर-बितर करनेमें सफल न हो जाती तो बुधवारकी रातका अन्त ऐसे भयंकर दंगोंके साथ होता जैसे कि कभी किसी ब्रिटिश उपनिवेशमें न हुए होंगे; क्योंकि एक जंगली लड़ाकू जातिको एक अधिक सभ्य और शान्त जातिके विरुद्ध उन दोनोंसे अधिक ऊँची जातिके लोगोंने भड़का दिया था। इसके कारण यह उपनिवेश बहुत दिनोंके लिए बदनाम हो जाता। जिन चार काफिरोंने फील्ड स्ट्रीटमें शोर मचाया और लाठियाँ घुमाई थीं उन्हें गिरफ्तार करनेकी बजाय उन गोरे लोगोंको गिरफ्तार करना चाहिए था जो उन्हें वहाँ लाये थे और जिन्होंने उन्हें भड़काया था। और उन्हे मजिस्ट्रेटके सामने पेश करके काफिरोंको जो जुर्माना किया गया उसके अनुपातमें ही भारी जुर्माना कराना चाहिए था। काफिरोंको तो बलिका बकरा मात्र बनाया गया और यह उनके प्रति ज्यादा कठोरता हुई; क्योंकि उन्होंने तो, सचमुच, ऐसे लोगोंकी आज्ञाका पालन मात्र किया था, जिन्हें ज्यादा समझदारीसे काम लेना चाहिए था। इस किस्मके मामलेमें वतनियोंको घसीटना उनके सामने ऐसी दुर्बलताका प्रदर्शन करना है जिससे हमेशा बचना चाहिए। हमें विश्वास है कि वतनियोंके समान भड़कीले लोगोंके जातीय पूर्वग्रहोंको उकसाने जैसी खतरनाक और निन्दनीय कार्रवाईकी पुनरावृत्ति भविष्यमें फिर कभी नहीं की जायेगी। — *नेटाल मर्क्युरी*, १६ जनवरी, १८९७।

इस सम्बन्धमें कुछ तथ्य सामने रख देनेसे सम्राज्ञीकी सरकारको शायद नेर्णयपर पहुँचनेमें सुगमता हो जायेगी। भारतीयोंका यहाँ निर्बाध आगमन रोक देनेकी माँग यह समझकर की जा रही है कि, कोई संगठन हो या न हो, हालमें बहुत अधिक भारतीय इस उपनिवेशमें घुस आये हैं। परन्तु प्रार्थी निःसंकोच कह सकते हैं कि तथ्योंसे इस भयका समर्थन नहीं हो सकता। यह कहना ठीक नहीं है कि गत वर्ष, उससे पिछले वर्षकी अपेक्षा, अधिक भारतीय यहाँ आये। पहले वे जर्मन और ब्रिटिश इंडिया स्टीम नैविगेशन कम्पनीके जहाजोंसे यहाँ आया करते थे। यह कम्पनी अपने यात्रियोंको, डेला-गोआ-बेमें दूसरे जहाजोंमें बदल दिया करती थी। इस कारण भारतीय छोटे-छोटे दलोंमें यहाँ पहुँचते थे। और उनपर किसीका अधिक ध्यान नहीं जाता था। गत वर्ष दो भारतीय व्यापारियोंने अपने जहाज खरीद लिये, और बम्बई तथा नेटालके बीच प्रायः नियमित और सीधा यातायात आरम्भ कर दिया। दक्षिण आफ्रिका आनेके इच्छुक अधिकतर भारतीय इन जहाजोंका लाभ उठाने लगे, और इस प्रकार छोटे-छोटे दलोंमें बँटकर आनेके बदले यहाँ एक-साथ पहुँचने लगे। इसलिए स्वभावतः उनकी ओर सबका ध्यान चला गया। इसके अलावा, जो भारत लौटते थे उनकी ओर किसीका भी ध्यान गया नहीं मालूम पड़ता। निम्न सूचीसे स्पष्ट हो जायेगा कि इस उपनिवेशके स्वतन्त्र भारतीयोंकी संख्यामें बहुत वृद्धि नहीं हुई है। कममे कम वह इतनी तो हुई ही नहीं कि उसके कारण किसीको कोई डर लगने लगे। यह बात भी ध्यानमें रखनी चाहिए कि यूरोपीयोंका आगमन अब तो स्वतन्त्र भारतीयोंके आगमनकी अपेक्षा बहुत अधिक है ही, पहले भी सदा ऐसा ही रहा है।

> **स्थानापन्न प्रवासी-संरक्षक श्री जी० ओ० रदरफोर्ड द्वारा हस्ताक्षरित एक विवरणसे ज्ञात होता है कि गत अगस्तसे जनवरी तक सात जहाजी पेढ़ियाँ १२९८ स्वतन्त्र भारतीयोंको इस उपनिवेशसे बाहर ले गईं, और इसी अवधिमें यही पेढ़ियाँ १९६४ भारतीयोंको यहाँ लाईं। उनमें से अधि-कतर बम्बईसे यहाँ आये।—*नेटाल मर्क्युरी* १७ मार्च, १८९७।**

यह शिकायत सर्वथा निराधार है कि यूरोपीय और भारतीय कारीगरोंमें कोई होड़ है। आपके प्रार्थी निजी जानकारीके आधारपर कह सकते हैं कि इस उपनिवेशमें, लोहार, बढ़ई और राज आदि बहुत कम कारीगर भारतीय

है; और जो हैं वे भी यूरोपीय कारीगरोंसे नीचे दरजेके हैं (ऊँचे दरजेके भारतीय कारीगर नेटाल आते ही नही)। कुछ दर्जी और सुनार भी इस उपनिवेशमें हैं, परन्तु वे केवल भारतीय समाजकी आवश्यकता पूरी करते हैं। जहाँतक भारतीय और यूरोपीय व्यापारियोंमें होड़का सवाल है, उसके सम्बन्धमें ऊपर दिये गये उद्धरणोंमें यह ठीक ही कहा गया है कि यह होड़ यदि कुछ है भी तो भारतीयोंको यूरोपीय व्यापारियों द्वारा दी गई भारी सहायताके कारण ही है। और यूरोपीय व्यापारी, भारतीय व्यापारियोंकी सहायता खुशीसे ही नहीं, बल्कि उत्सुकताके साथ करते है, इससे प्रकट होता है कि इन दोनोंमें कोई अधिक होड नही है। सच तो यह है कि भारतीय व्यापारी केवल बिचौलियेका काम करते है। उनका व्यापार शुरू ही वहाँ होता है जहाँ कि यूरोपीयोंका खत्म हो जाता है। लगभग दस वर्ष पहले भारतीय मामलोंकी हालत जाँचनेके लिए जो आयुक्त (कमिश्नर) नियुक्त किये गये थे उन्होंने भारतीय व्यापारियोंके सम्बन्धमें लिखा था :

> **हमे निश्चय हो गया है कि यूरोपीय उपनिवेशियोंके मनमें इस उपनिवेशकी सारी ही भारतीय आबादीके विरुद्ध जो खिजलाहट मौजूद है वह बहुत कुछ उन अरब व्यापारियोंके कारण है, जो होड़ होनेपर, यूरोपीय व्यापारियोंको मात देनेमे सदा ही सफल हो जाते है — विशेषतः चावल जैसी वस्तुओंके व्यापारमें, जिनकी खपत अधिकतर प्रवासी भारतीयोंकी आबादीमें होती है। . . .**
>
> **हमारी राय है कि ये अरब व्यापारी नेटालकी ओर आकृष्ट उन भारतीयोंके कारण हुए हैं जिन्हे कि यहाँ प्रवासी-कानूनोंके अनुसार लाया गया है। इस समय इस उपनिवेशमें बसे हुए भारतीयोंकी संख्या ३०,००० है। उन सबका मुख्य खाद्य चावल हैं। और इन चतुर व्यापारियोंने इस चीजको यहाँ लाने व बेचनेके लिए अपनी चतुराई और शक्तिका उपयोग ऐसी सफलतासे किया है कि जहाँ वह कुछ वर्ष पहले २१ शिलिंग प्रति बोरीके भाव बिका करता था वहाँ १८८४ में उसका मूल्य केवल १४ शिलिंग प्रति बोरी रह गया। . . . कहा जाता है कि काफिर लोग, अरब व्यापारियोंसे अपनी जरूरतकी चीजें छः या सात वर्ष पहलेके मूल्योंकी अपेक्षा २५ से ३० प्रतिशत तक सस्ते भावपर खरीद सकते हैं। . . .**

कुछ लोग एशियाई या "अरब" व्यापारियोंपर जो पाबन्दियाँ लगवाना चाहते हैं उनपर विचार करना आयोग (कमिशन) को सौंपे गये कामके दायरेमें नहीं आता। ***हम यहाँ केवल इतना लिखकर सन्तोष कर लेते हैं कि इन व्यापारियोंका यहाँ आना सारे ही उपनिवेशके लिए लाभदायक सिद्ध हुआ है, और इनके विरुद्ध कोई कानून बनाना, यदि अन्यायपूर्ण नहीं तो अबुद्धिमत्तापूर्ण अवश्य होगा। यह सम्मति हम बहुत अध्ययनके पश्चात् प्रकट कर रहे हैं।*** (अक्षरोंमें फर्क प्रार्थियोंने किया है). . . **प्रायः ये सभी व्यापारी मुसलमान हैं। ये शराब या तो बिल्कुल ही नहीं पीते, या थोड़ी पीते हैं। इनका स्वभाव ही मितव्ययी और कानूनसे दबकर चलनेका है।**

एक आयुक्त श्री सांडर्सने अपनी अतिरिक्त रिपोर्टमें लिखा है :

जहाँतक स्वतन्त्र भारतीय व्यापारियों, उनकी स्पर्धा और उससे होनेवाली भावोंकी मन्दीका सम्बन्ध है, जिससे कि जनताको लाभ पहुँचता है (और आश्चर्य यह कि वह उसके खिलाफ ही शिकायत करती है), वहाँतक यह बात स्पष्ट है कि ये भारतीय दूकानें गोरे व्यापारियोंकी अधिक बड़ी पेढ़ियोंके बलपर ही चलती हैं। वे पेढ़ियाँ इन दूकानोंका अत्यन्त अनन्य रूपमें पोषण करती हैं। और इस तरह वे अपना माल बेचनेके लिए इन दूकानदारोंको अपना नौकर जैसा बना लेती हैं।

आप चाहें तो भारतीयोंका आगमन रोक दें। अगर अभी खाली मकान काफी न हों तो अरबों या भारतीयोंको, जो आधेसे कम आबाद देशकी उपज व खपतकी शक्ति बढ़ाते हैं, निकालकर और खाली करा लें। परन्तु इस एक विषयको उदाहरणके तौरपर उठाकर जाँचिए, और इसके परिणामोंका पता लगाइए। पता लगाइए कि, किस तरह मकानोंके खाली पड़े रहनेसे जायदाद और सेक्युरिटीजकी कीमत घटती है और कैसे, इसके बाद, इमारतोंके व्यापारमें और उसपर निर्भर करनेवाले दूसरे व्यापारों तथा दूकानोंमें गतिरोध आना अनिवार्य हो जाता है। देखिए कि, इससे गोरे मिस्त्रियोंकी माँग कैसे कम होती है, और इतने लोगोंकी खर्च करनेकी शक्ति कम हो जानेसे कैसे राजस्वमें कमीकी अपेक्षा करनी

होगी। फिर, छँटनीकी या कर बढ़ानेकी या दोनोंकी जरूरत। इस परिणामका और दूसरे परिणामोंका, जो इतने अधिक हैं कि उनका विस्तारपूर्वक वर्णन नहीं किया जा सकता, मुकाबला कीजिए, और फिर अगर अंधी जाति-भावना या ईर्ष्या ही प्रबल होती है, तो वही हो।

हालमें स्टेंगरमें हुई एक सभामें भाषण करते हुए एक वक्ता (श्री क्लेटन) ने कहा था:

कुली मजदूर ही नहीं, अरब दूकानदार भी इस उपनिवेशके लिए लाभदायक सिद्ध हुए हैं। मैं जानता हूँ कि मेरा यह विचार लोकप्रिय नहीं है, परन्तु मैंने इस प्रश्नपर सभी दृष्टियोंसे विचार किया है। हमें दिखलाई क्या पड़ता है? मार्केट स्क्वेयरके चारों ओर मकानोंकी जमीनपर लाभका इतना अच्छा शतमान केवल अरब दूकानदारोंके कारण उपलब्ध हो रहा है। जमीनोंके मालिकोंको लाभ केवल इस कारण हुआ है कि जिस जमीनको अन्य कोई कभी न लेता उसे कुली मजदूरोंने ले लिया है। अभी उस दिन मार्केट स्क्वेयरके साथ लगी हुई मकानोंकी जमीनका मूल्य नीलाममें इतना ऊँचा उठा कि कुछ वर्ष पहले उसकी कोई कल्पना तक नहीं कर सकता था। भारतीयोंने यहाँ एक ऐसा व्यापार शुरू कर दिया है जो कि पुराने ढँगकी दूकानदारीसे कभी शुरू न होता। मैं मानता हूँ कि कहीं-कहीं एक-आध यूरोपीय दूकानदार भारतीयोंके कारण डूब गया है, परन्तु उनके यहाँ आनेसे अवस्था उन दिनोंकी अपेक्षा अच्छी हो गई है जब कि सारे व्यापारपर कुछ ही दूकानदारोंका एकाधिपत्य था। जहाँ-कहीं कोई अरब दूकानदार दिखाई देता है, हम उसे कानूनके मुताबिक ही चलता देखते हैं। हमने लोगोंको यह कहते सुना है कि उपनिवेशियोंको अपना जन्मसिद्ध अधिकार नहीं छोड़ना चाहिए — उन्हें अपनी जमीनपर भारतीयोंको कब्जा नहीं करने देना चाहिए। मुझे प्रायः निश्चय है कि मैं यदि अपनी सन्तानके लिए कोई जमीन छोड़ जाऊँगा तो वह उसपर स्वयं मेहनत करनेकी जगह उसे उचित लगानपर भारतीयोंको उठा देना पसन्द करेगी। मेरे विचारमें इस सभाके लिए एशियाइयोंके विरुद्ध निन्दा ही निन्दाका प्रस्ताव पास करना न्याय-संगत नहीं होगा।

*नेटाल मर्क्युरी*के एक नियमित संवाददाताने लिखा है :

हम कुलियोंको यहाँ अपनी जरूरतसे लाये थे, और इसमें संदेह नहीं कि उन्होंने नेटालकी उन्नतिमें बड़ी सहायता की है।....

पच्चीस वर्ष पहले यहाँके शहरों और कस्बोंमें फल, सब्जी और मछली कोई कठिनाईसे ही खरीद सकता था। गोभीका एक फूल यहाँ ढाई शिलिंगमें बिकता था। यहाँके किसान सब्जीकी खेती क्यों नहीं करते थे? सम्भव है कि इसका कुछ कारण उनकी सुस्ती भी हो, परन्तु थोक पैदावार करना भी बेकार था। मैं ऐसे कई उदाहरण जानता हूँ कि गाड़ियों फल दूर-दूरके शहरोंमें अच्छी हालतमें पहुँचाये गये, परन्तु वे वहाँ बिक नहीं सके। जो व्यक्ति गोभीका एक-आध फूल ढाई शिलिंगमें खरीद सकता हो, वह स्वभावतः फूलोंसे लदी गाड़ी देखकर एक फूलके लिए एक शिलिंग देते हुए संकोच करेगा। इसलिए हमें ऐसे मेहनती फेरीवालोंकी जरूरत थी जो अपना निर्वाह मितव्ययितासे करते हुए, इन चीजोंको बेचकर, लाभ और सुख, दोनों उठा सकें। और हमारी यह जरूरत, शर्तबन्दीकी मियाद खतम कर चुकनेवाले गिरमिटिया कुलियोंने पूरी कर दी। और घरों या होटलों आदिमें, रसोइयों और हजूरियोंकी जरूरत भी कुलियोंने पूरी कर दी, क्योंकि इन कामोंमें हमारे वतनी लोग बेशऊर सिद्ध होते हैं; और जो ऐसे नहीं होते वे, जैसे ही उनको मेहनत करके काम सिखा दिया गया वैसे ही, अपने गाँवोंका रास्ता नाप लेते हैं।

स्वतन्त्र कुली मजदूर, वह कारीगर हो तो, कम मजदूरी लेकर भी खुशीसे यूरोपीय कारीगरकी अपेक्षा अधिक समय तक काम करता रहता है। और कुली व्यापारी सूती कम्बल गोरे दूकानदारसे आना-टका सस्ता बेच देता है। बस बात इतनी ही है।

निश्चय ही, मालकी उपलब्धि और माँगकी आर्थिक पुकार, आपका ब्रिटिश प्रजाओंका देशभक्त संघ, आपका मुक्त व्यापारका शानदार नारा, जिसमें अपना विश्वास प्रकट करनेके लिए जान-बुलको नाकों चने चाबकर कीमत चुकानी पड़ती है — इन सबका तकाजा है कि यह चीख-पुकार न हो।

आस्ट्रेलियाने अपने यहाँ काले लोगोंका प्रवेश निषिद्ध कर दिया है। परन्तु हड़तालों और बैंकोंपर धावोंसे कोई बड़ा सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत नहीं होता। कुली लोग यूरोपीयोंकी अपेक्षा हलके कपड़े और जूते पहनते हैं। फिर भी वे इस मामलेमें हमारी पृथक् बस्तियोंमें रहनेवाले वतनियोंसे आगे हैं। कई बरस पहले खेतोंपर काम करनेवाले गोरे पुरुषों या स्त्रियोंके, या शहरोंके बड़भैया समाजके बच्चोंके पैरोंमें भी, जबतक वे किसी पार्क या सभामें न जाते होते, बूट शायद ही कभी देखनेको मिलते थे। यह रिवाज जूता बनानेवालोंके लिए भले ही खराब रहा हो, उनके पाँवोंको इससे कोई नुकसान नहीं होता था। कुली लोग मांस नहीं खाते, और शराब आदि नहीं पीते। उनकी यह आदत, मुझे फिर कहना होगा, कसाइयों और परवाना-प्राप्त कलारोंकी दृष्टिसे खराब है। विश्वास रखिए, ये सब बातें धीरे-धीरे ठीक हो जायेंगी, परन्तु (सभ्यता, शिष्टता या संयमकी दृष्टिसे जन-हितके लिए जितना करना उचित है उससे भी आगे बढ़कर) लोगोंको खान-पान या पहरावेके मामलोंमें संसदके कानून द्वारा विवश करना निरा अत्याचार है, जन-हितकारी कानून बनाना नहीं। क्या गोरे प्रवेशार्थियोंके समूहोंको भी बाहर ही रोका जाता है? जबतक यहाँ वतनी आबादी है तबतक, गोरे लोग, केवल गुजारे लायक मजदूरी लेकर काम करनेको तैयार नहीं होंगे। वे निकम्मे बैठना पसन्द करेंगे, काम करना नहीं। हाँ, उन सबको आप हाँक सकें तो बात और है।

हम हालातसे बचकर नहीं चल सकते। हमारा उपनिवेश काले लोगोंका देश है। और मैं कितना ही क्यों न चाहूँ कि हमारे वतनी लोग अपने उचित स्थानपर रहें; और कुली भी, जो अपने उचित स्थानपर रहनेके लिए ज्यादा रजामन्द हैं; फिर भी गोरे लोगोंका काम तो मालिकका ही है, और रहेगा भी। इसे भी जाने दीजिए। मैं यह चर्चा करना नहीं चाहता कि किस प्रकार गरीब किसान, अपने शौकीन दोस्तों, अर्थात् शहरी कारीगरोंका मिहनताना नहीं चुका सकते, और इसलिए वे किसी कच्चे कारीगरसे घटिया काम करवाकर भी खूब खुश रहते हैं। परन्तु मैं कुशल कारीगरोंसे इतनी अपील अवश्य करना चाहता हूँ कि वे अपना पारिश्रमिक स्वयं नियत करने और उसीमें सन्तुष्ट रहनेकी कृपा करें। वे अपने निर्बल

विरोधियोंसे न डरें। और क्योंकि शहरोंमें उनकी संख्या कहीं अधिक है इसलिए वे वर्ग-संघर्षसे, जाति-कलहसे, बचकर चलें। सुयोग्य आदमीको अपनी पूरी कीमत हमेशा मिलती ही है। यही बात मैं अच्छे व्यापारियोंसे कहना चाहता हूँ। देहातोंके दूकानदारोंको अपनी कीमतें खासी घटानी ही क्यों न पड़ जायें, वे नष्ट निश्चय ही नहीं होंगे। प्रति सप्ताह चार-सौ गैलन शीरेकी नकद बिक्री थोड़ी नहीं होती। साम्राज्यके देशोंका संघ बनानेकी बात भारतके अपने साथी प्रजाजनोंका बहिष्कार करनेकी है। भारतके वीर सैनिक, हमारे सैनिकोंके साथ कन्धेसे कन्धा भिड़ाकर लड़ चुके हैं, उसकी सेनाएँ अनेक रक्त-रंजित रणक्षेत्रोंमें हमारे झंडेके सम्मानकी रक्षा कर चुकी हैं। भारतमें बहुतेरी यूरोपीय दूकानें हैं। उनकी ग्राहकी बहुत अच्छी है, और वे अच्छी कमाई कर रही हैं।

प्रार्थियोंकी नम्र सम्मति है कि बहुत-सी बड़ी-बड़ी यूरोपीय पेढ़ियाँ सैकड़ों यूरोपीय मुहर्रिरों और सहायकोंको नौकरी दे ही इस कारण सकती हैं कि उनका माल भारतीय दूकानदार बेचते हैं। आपके प्रार्थियोंका निवेदन है कि परिश्रमी और मितव्ययी भारतीय लोग जहाँ-कहीं चले जाते हैं, वहांके निवासियोंकी आर्थिक समृद्धि और भौतिक सुखकी उन्नतिमें सहायक हुए बिना नहीं रहते। और वे परिश्रमी और मितव्ययी हैं यह तो उनके अति उग्र विरोधी भी मानते हैं। ट्रांसवालवासी परदेशियों (एटलॉण्डर्स)का समाज एक ऐसा समाज है, जो दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंकी उपस्थितिका बिलकुल असंगत विरोध करता रहता है। उसके विषयमें *स्टार*ने लिखा है :

दक्षिण आफ्रिका एक नया देश है। इसलिए इसका दरवाजा सबके लिए खुला रहना चाहिए। केवल किसीकी गरीबीके कारण इसे उसके लिए बन्द नहीं कर देना चाहिए। आज यहाँ जो लोग इतने धनी दिखाई पड़ रहे हैं, उनमें से अधिकतर अपनी जेबमें केवल कहावती आधा क्राउन [ढाई शिलिंग] डालकर यहाँ आये थे। हाँ, हमें यहाँकी आबादीके नेक नामकी रक्षा अवश्य करनी चाहिए। ***परन्तु वैसा भी, आवारागर्दी और गुंडागिरीके विरुद्ध स्थानीय कानूनोंका प्रयोग न्याय और कठोरतासे करके ही करना चाहिए। नये आनेवालोंको यह***

जाननेसे पहले ही मनमाने ढँगसे रोककर नहीं, कि नये देशकी अधिक अच्छी अवस्थाओंमें वे यहाँके उपयोगी नागरिकोंके बीच अपना स्थान ग्रहण कर सकेंगे या नहीं।

यह टिप्पणी कुछ आवश्यक परिवर्तनोंके पश्चात् भारतीय समाजपर शब्द-प्रति-शब्द लागू होती है। और यदि इसमें वर्णित स्थिति सत्य हो और वह 'परदेशियों' के बारेमें स्वीकार्य हो तो, आपके प्रार्थी साहसके साथ निवेदन करते हैं, वह वर्तमान मामलेमें और भी अधिक स्वीकार्य होनी चाहिए।

नेटाल-सरकारने प्रदर्शन-समितिको जो वचन दिया था[1] उसकी पूर्तिके लिए वह १८ मार्चसे आरम्भ होनेवाली माननीय विधान-सभामें निम्न तीन विधेयक पेश करना चाहती है:

> *सूतक (क्वारंटीन)*[2]--(१) **जब कभी कोई स्थान, १८८२ के कानून ४ के अनुसार, रोग-ग्रस्त क्षेत्र घोषित किया जाये, तब सपरिषद गवर्नर चाहे तो एक अतिरिक्त घोषणा द्वारा यह आज्ञा दे सकता है कि उक्त स्थानसे आनेवाले किसी भी जहाजके किसी भी यात्रीको यहाँ न उतारा जाये। (२) यह आज्ञा उस जहाजपर भी लागू होगी जिसपर कि उक्त रोग-ग्रस्त घोषित स्थानसे आये हुए यात्री मौजूद हों, वे यात्री भले ही किसी अन्य स्थानसे जहाजपर सवार क्यों न हुए हों, या भले ही जहाजने अपनी यात्रामें घोषित स्थानका स्पर्श तक न किया हो। (३) उक्त आज्ञा तबतक लागू समझी जायेगी जबतक कि उसे अन्य घोषणा द्वारा वापस न ले लिया जाये। (४) जो कोई व्यक्ति इस कानूनका उल्लंघन करके यहाँ उतरेगा उसे, यदि सम्भव होगा तो, तुरन्त ही उसी जहाजपर वापस भेज दिया जायेगा, जिससे कि वह नेटाल आया था। और उस जहाजका मास्टर उस यात्रीको वापस लेने और जहाजके मालिकके व्ययपर उसे इस उपनिवेशसे वापस ले जानेके लिए बाध्य होगा। (५) जिस जहाजसे कोई यात्री इस कानूनका उल्लंघन करके यहाँ उतरेगा उसके मास्टर और मालिकोंको, इतना जुर्माना किया जा सकेगा कि वह इस**

१. देखिए पृष्ठ ३६३।
२. देखिए पृष्ठ ३२५ और ३७८–७९।

प्रकार उतरे हुए प्रति यात्री पीछे एक सौ पौंड स्टर्लिंगसे कम न रहे। सर्वोच्च न्यायालयकी आज्ञासे वह जुर्माना उस जहाजसे वसूल किया जा सकेगा। और उस जहाजको यहाँसे विदा होनेकी इजाजत तबतक नहीं दी जायेगी जबतक कि वह जुर्माना अदा न कर दे और जबतक उसका मास्टर इस प्रकार उतारे हुए प्रत्येक यात्रीको उपनिवेशसे वापस ले जानेकी व्यवस्था न कर दे।

परवाने (लाइसेन्स)[1] **— (१) कोई भी नगर-परिषद (टाउन कौंसिल) या नगर-निकाय (टाउन बोर्ड) शहरमें थोक या फुटकर व्यापार करनेके लिए आवश्यक वार्षिक परवाने (१८९६के अधिनियम ३८ के परवाने नहीं) जारी करनेके प्रयोजनसे, समय-समयपर किसी अधिकारीकी नियुक्ति कर सकता है। (२) जो व्यक्ति इस प्रकार १८८४के कानून ३८ या इसी प्रकारके अन्य किसी स्टाम्प कानून या इस कानूनके अनुसार थोक या फुटकर व्यापारियोंको परवाने देनेके लिए नियुक्त किया जायेगा, उसे इस कानूनके अर्थोंमें "परवाना देनेवाला अधिकारी" माना जायेगा। (३) परवाना देनेवाला अधिकारी, किसी भी थोक या फुटकर व्यापारीको यथामति परवाना (१८९६ के अधिनियम ३८ का परवाना नहीं) दे सकेगा या देनेसे इनकार कर सकेगा। और उक्त परवाना देनेवाले अधिकारीके परवाना देने या न देनेके निर्णयपर, अगली धारामें बतलाये हुए प्रकारके अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रकार, किसी भी अदालतमें, पुनर्विचार, प्रति-निर्णय या परिवर्तन नहीं किया जा सकेगा। (४) परवाना देनेवाला अधि-कारी जो निर्णय करेगा वह यदि १८८४के कानून ३८ या इसी प्रकारके अन्य किसी कानूनके अनुसार किया गया होगा तो उसके विरुद्ध किसीको भी उपनिवेश-सचिवके यहाँ, और अन्य मामलोंमें परिस्थितियोंके अनुसार नगर-परिषद या नगर-निकायमें, अपील करनेका अधिकार रहेगा**[2]**, और**

१. परवानोंके सम्बन्धमें जो कानून आखिरकार मंजूर किया गया था उसके लिए देखिए पृष्ठ ३८४–८६।

२. परवाना-अधिकारीके फैसलेके खिलाफ अपीलके बारेमें अन्ततः इस विधेयकमें जो व्यवस्था की गई थी उसमें और यहाँ दी हुई व्यवस्थामें थोड़ा-सा फर्क था। देखिए उपधारा ६, पृष्ठ ३८५।

उपनिवेश-सचिव या नगर-परिषद या नगर-निकाय (जिस किसीके यहाँ अपील की गई होगी) यह आदेश दे सकेगा कि जिस परवानेके विरुद्ध अपील की गई है वह दिया जाये, या मन्सूख कर दिया जाये। (५) जो व्यक्ति कहा जाने-पर भी परवाना देनेवाले अधिकारीको यह निश्चय नहीं दिला सकेगा कि मैं जो व्यापार करना चाहता हूँ उसमें प्रचलित हिसाब-किताबकी बहियोंको अंग्रेजी भाषामें रख सकता हूँ, और १८८७ के दिवालिया कानून ४७ की धारा १८० उपधारा (क) की शर्तोंका पालन कर सकता हूँ, उसे परवाना नहीं दिया जायेगा। (६) जो स्थान इष्ट व्यापारके लिए उपयुक्त नहीं होगा, या जिसमे सफाई तथा स्वास्थ्यकी उचित और पर्याप्त व्यवस्था नहीं होगी, या जिसमें माल और सामान रखनेके घरोंके अतिरिक्त विक्रेताओं, मुहर्रिरों और नौकरोंके उठने-बैठनेके लिए उपयुक्त और पर्याप्त व्यवस्था नहीं होगी, उसमे व्यापार करनेके लिए परवाना नहीं दिया जायेगा।[1] (७) जो-कोई व्यक्ति ऐसा थोक या फुटकर व्यापार या रोजगार करेगा या परवाना-प्राप्त स्थानको ऐसी हालतमें रखेगा जिसके कारण वह परवानेका अधिकारी न रह जाये, वह इस अधिनियमका उल्लंघन करनेका अपराधी माना जायेगा, और उसे प्रत्येक अपराधके लिए २० पौंड जुर्माना किया जा सकेगा, और लाइसेंस देनेवाला अधिकारी वह जुर्माना मजिस्ट्रेटकी अदालत द्वारा वसूल कर सकेगा।

प्रवासियोंपर प्रतिबन्ध[2] — (१) यह कानून "१८९७ का प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियम" कहलायेगा। (२) यह अधिनियम इन लोगोंपर लागू नहीं होगा : (क) जिस व्यक्तिके पास, इस अधिनियमके साथ संलग्न अनुसूची क[3] में दिये हुए रूपमे, उपनिवेश-सचिव या नेटालके एजेंट-जनरल या इस अधिनियमकी आवश्यकताओंके लिए नेटाल-सरकार द्वारा नेटालके भीतर

१. जिस रूपमें अधिनियम मई ९, १८९७ को स्वीकार हुआ था उसमे उपधारा ८ में ये शब्द जोड़ दिये गये थे : 'जिन मामलोंमें मकानका उपयोग दोनो कामोंके लिए किया जाता है।' देखिए पृष्ठ ३८५।

२. प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियमको जिस रूपमें गवर्नरकी अनुमति मिली थी, वह पृष्ठ ३७९–८४ पर दिया गया है।

३. देखिए पृष्ठ ३८३।

या बाहर नियुक्त किसी अधिकारी द्वारा हस्ताक्षरित, प्रमाणपत्र हो; (ख) जो व्यक्ति किसी ऐसे वर्गका हो जिसके नेटालमें आनेके लिए, कानून द्वारा या सरकारसे स्वीकृत किसी योजना द्वारा, व्यवस्था की जा चुकी हो; (ग) जिस व्यक्तिको, उपनिवेश-सचिवने लिखकर, इस अधिनियमके प्रभावसे मुक्त कर दिया हो; (घ) सम्राज्ञीकी स्थल और जल-सेनाएँ; (ङ) किसी भी सरकारके किसी युद्ध-पोतके अधिकारी और कर्मचारी; (च) जिस व्यक्तिको साम्राज्य-सरकार या अन्य किसी सरकार द्वारा, या उसकी आज्ञासे, नेटालमें अधिकृत प्रतिनिधि नियुक्त किया गया हो। (३) अगली उपधाराओंमें जिन वर्गोंकी व्याख्या कर दी गई है, और आगे जिनको "निषिद्ध प्रवेशार्थी" कहा जायेगा, उनके किसी भी व्यक्तिका स्थल या जलमार्गसे नेटालमें प्रवेश निषिद्ध किया जाता है। वे हैं: (क) जो व्यक्ति इस अधिनियमके अनुसार नियुक्त किसी अधिकारी द्वारा कहा जानेपर उपनिवेश-सचिवके नाम यूरोपकी किसी भाषाके अक्षरोंमें स्वयं उस रूपमें प्रार्थनापत्र लिखकर उसपर हस्ताक्षर नहीं कर सकेगा जो कि इस अधिनियमकी अनुसूची ख[1] में दिखलाया गया है; (ख) जो व्यक्ति इस अधिनियमके अनुसार नियुक्त अधिकारीको यह निश्चय नहीं दिला सकेगा कि उसके पास निर्वाहके लिए अपनी ही मिल्कियतके पर्याप्त साधन मौजूद हैं और उनका मूल्य पच्चीस पौंडसे कम नहीं है[2]; (ग) जिस व्यक्तिको, नेटाल तक आनेमें, अन्य किसी व्यक्तिने किसी भी प्रकार सहायताकी होगी[3]; (घ) जो व्यक्ति अहमक या पागल होगा; (ङ) जो व्यक्ति किसी घिनौने या भयंकर छूतके रोगसे पीड़ित होगा; (च) जो व्यक्ति कत्ल या डकैती आदि किसी गम्भीर अपराध या अन्य किसी ऐसे निन्दित कानून-विरोधी अपराधमें दण्डित[4] हो चुका होगा जो सदाचारके विपरीत हो तथा निरा राजनीतिक अपराध न हो और जिसे क्षमा नहीं किया जा

१. देखिए पृष्ठ २७२–७३ और ३७९।

२. बादमें इसका संशोधन करके इसे 'कंगाल' के लिए बदल दिया गया था; देखिए पृष्ठ ३८०।

३. यह उपधारा बादमें निकाल दी गई थी; देखिए पृष्ठ ३८०।

४. अधिनियममें इसके साथ "दो वर्षके अन्दर" जोड़ दिया गया था; देखिए पृष्ठ ३८०।

चुका होगा; (छ) जो वेश्या हो, या जो दूसरोंकी वेश्यावृत्तिसे अपना निर्वाह करता हो। (४) जो-कोई निषिद्ध प्रवेशार्थी, इस कानूनके विधानोंकी उपेक्षा करके, नेटाल आता हुआ या नेटालमें पहुँचा हुआ पकड़ा जायेगा उसे इस अधिनियमके उल्लंघनका अपराधी माना जायेगा, उसे अन्य दण्डके अतिरिक्त उपनिवेशसे हटाया जा सकेगा, और दंडित होनेपर उसे छः मास तककी सादी कैदकी सजा दी जा सकेगी; परन्तु अपराधीको उपनिवेशसे निकालनेके लिए अथवा ५०–५० पौंडकी दो स्वीकरणीय जमानतें देनेपर कि वह महीना-भरके भीतर उपनिवेशसे चला जायेगा, कैदकी सजापर अमल नहीं किया जायेगा। (५) जो व्यक्ति इस अधिनियमकी धारा ३ के अनुसार निषिद्ध प्रवेशार्थी जान पड़ेगा, परन्तु उक्त धाराकी उपधारा (घ), (ङ), (च) और (छ) के अन्दर न आता होगा उसे निम्न शर्तोंपर नेटालमें आने दिया जायेगा : (क) वह उतरनेसे पहले, इस अधिनियमके अनुसार नियुक्त अधिकारीके पास १०० पौंडकी रकम जमा करवा दे, (ख) यदि वह व्यक्ति नेटालमें आनेके बाद एक सप्ताहके अन्दर उपनिवेश-सचिव या किसी मजिस्ट्रेटसे यह प्रमाणपत्र ले लेगा कि वह इस अधिनियमकी निषेध-सीमामें नहीं आता, तो उसके १०० पौंड वापस कर दिये जायेंगे, (ग) यदि वह एक सप्ताहके अन्दर ऐसा प्रमाणपत्र नहीं ले सकेगा तो उसके १०० पौंड जब्त कर लिये जायेंगे और उसके साथ निषिद्ध प्रवेशार्थी जैसा व्यवहार किया जायेगा; परन्तु जो व्यक्ति इस धाराके अनुसार नेटाल आयेगा वह जिस जहाजसे यहाँके किसी बन्दरगाहमें उतरा होगा उसपर या उसके मालिकोंपर किसी प्रकारका दायित्व नहीं आयेगा। (६) जो व्यक्ति इस अधिनियमके अनुसार नियुक्त किसी अधिकारीको विश्वास दिला देगा कि मैं नेटालका पूर्व-निवासी हूँ और मैं धारा (३) की उपधारा (घ), (ङ), (च) और (छ) की मर्यादामें नहीं आता, उसे निषिद्ध प्रवेशार्थी नहीं माना जायेगा। (७) जो व्यक्ति निषिद्ध प्रवेशार्थी न होगा उसकी पत्नी और नाबालिग बालक इस अधिनियमके किसी भी प्रतिबन्धसे मुक्त रहेंगे। (८) जिस जहाजसे कोई भी निषिद्ध प्रवेशार्थी उतारा जायेगा उसके मास्टर और मालिकोंको पृथक्-पृथक् और सम्मिलित रूपमें जुर्माना किया जा सकेगा, वह जुर्माना एक सौ पौंड

स्टर्लिंगसे कम नहीं होगा, उसे प्रथम पाँच प्रवेशार्थियोंके पश्चात् प्रति पाँच प्रवेशार्थियोंके लिए १०० पौंडके हिसाबसे, ५,००० पौंडतक बढ़ाया जा सकेगा, यह जुर्माना सर्वोच्च न्यायालयके आदेशपर उस जहाजसे वसूल किया जा सकेगा, और जबतक वह जहाज यह जुर्माना न चुका देगा और जबतक उसका मास्टर इस नियमके अनुसार नियुक्त किसी अधिकारीको यह निश्चय न करवा देगा कि उसने प्रत्येक निषिद्ध प्रवेशार्थीको वापस ले जानेकी व्यवस्था कर दी है तबतक उसे यहाँसे विदा होनेका अनुमतिपत्र नहीं दिया जायेगा। (९) कोई भी निषिद्ध प्रवेशार्थी कोई व्यापार या पेशा करनेके लिए लाइ-सेन्स पानेका अधिकारी नहीं होगा; न वह कोई जमीन ठेकेपर, मिल्कियतके रूपमें या अन्य प्रकार ले सकेगा, न मताधिकारका प्रयोग कर सकेगा, न किसी नगरका प्रतिनिधि निर्वाचित हो सकेगा या उसके मताधिकारोंमें नाम लिखा सकेगा, और यदि उसे इस अधिनियमके विरुद्ध कोई लाइसेन्स या मताधिकार मिल चुके होंगे तो वे रद माने जायेंगे। (१०) सरकार द्वारा इसी प्रयोजनसे अधिकृत कोई भी अधिकारी किसी भी जहाजके मास्टर, मालिक या एजेंटके साथ यह करार कर सकेगा कि वह नेटालमें पाये गये किसी निषिद्ध प्रवेशार्थीको उसके जन्म-देशके किसी बन्दरगाहतक या वहाँसे समीपके किसी बन्दरगाहतक ले जाये; और कोई भी पुलिस अधिकारी उस प्रवेशार्थीको उसके निजी सामान सहित उस जहाजपर सवार करा सकेगा, और यदि वह प्रवेशार्थी निर्धन हो तो उसे उस जहाजसे उतरनेके पश्चात् अपने जीवनकी परिस्थितियोंके अनुसार एक महीने तक निर्वाह करनेके लायक नकद धन दिया जा सकेगा। (११) जो व्यक्ति किसी निषिद्ध प्रवेशार्थीकी इस अधिनियमके विधानोंका उल्लंघन करनेमें सहायता करेगा उसे भी इस अधिनियमका उल्लंघन करनेका अपराधी माना जायेगा[1]। (१२) जो व्यक्ति इस अधिनियमकी धारा ३ की उपधारा (छ) के अनुसार निषिद्ध प्रवेशार्थीकी नेटालमें आनेमें सहायता करेगा उसे इस अधिनियमके उल्लंघनका अपराधी माना जायेगा और

१. यह विधेयक जिस रूपमें स्वीकार हुआ था उसके खण्ड ११, १२ और १३ में 'इरादतन' शब्द जोड़ दिया गया था। देखिए पृष्ठ ३८२ ।

अदालतमें वैसा सिद्ध हो जानेपर उसे एक वर्ष सख्त कैद तककी सजा दी जा सकेगी। (१३) जो व्यक्ति, उपनिवेश-सचिव द्वारा हस्ताक्षरित, लिखित या मुद्रित अधिकारपत्रके बिना, किसी पागल या अहमकको नेटालमें लायेगा उसे इस अधिनियमका उल्लंघन करनेवाला माना जायेगा, और उसे अन्य दण्डके अतिरिक्त, जबतक वह पागल या अहमक इस उपनिवेशमें रहेगा तबतक उसके भरण-पोषणके लिए उत्तरदायी ठहराया जायेगा। (१४) कोई भी पुलिस अधिकारी या इस अधिनियमके अनुसार इस प्रयोजनके लिए नियुक्त अन्य अधिकारी, इस अधिनियमकी धारा ५ की शर्तोंका पाबन्द रहते हुए, निषिद्ध प्रवेशार्थियोंको स्थल या जल-मार्गसे नेटालमें प्रविष्ट होनेसे रोक सकेगा। (१५) गवर्नर चाहेगा तो समय-समयपर इस अधिनियमके विधानोंका पालन करवानेके लिए अधिकारियोंकी नियुक्ति कर सकेगा, उन्हें अपनी इच्छानुसार हटा सकेगा, और उनके कर्तव्य निर्धारित कर सकेगा, और उन अधिकारियोंको अपने विभागके प्रधान अधिकारी द्वारा समय-समयपर दिये गये आदेशोंका पालन करना होगा। (१६) सपरिषद गवर्नर चाहें तो इस अधिनियमके विधानोंका अधिक अच्छी तरह पालन करवानेके लिए समय-समयपर उनके नियमोपनियमोंमें संशोधन या परिवर्तन कर सकेगा। (१७) इस अधिनियमका या इसके अनुसार बनाये गये नियमोपनियमोंका उल्लंघन करनेके लिए दिया गया दण्ड, जिन अपराधोंके लिए विशेष रूपसे अधिक ऊँचे दण्डका विधान कर दिया गया है उन्हें छोड़कर, ५० पौंड जुर्माने, या जबतक जुर्माना न चुकाया जाये तबतक सादी या सख्त कैद, या जुर्माने और तीन महीनेतककी कैदसे अधिक नहीं होगा। (१८) इस अधिनियम या इसके अधीन बनाये गये नियमोपनियमोंका उल्लंघन करनेके सब अपराधोंके विरुद्ध और १०० पौंड तकके जुर्मानों या वसूलियोंके सब मुकदमोंपर, कार्रवाई करनेका अधिकार मजिस्ट्रेटोंको होगा।

इस अधिनियमकी अनुसूची क[1], एक कोरा प्रमाणपत्र है; जिस व्यक्तिका नाम उसमें भर दिया जायेगा उसे "नेटालमें प्रवेशके लिए योग्य और उप-

१. देखिए पृष्ठ ३८३।

युक्त व्यक्ति" माना जायेगा। अनुसूची ख' उस प्रार्थनापत्रका फार्म है जिसे कि इस ऐक्टके अमलसे बरी होनेका दावा करनेवाले व्यक्तियोंको भरना पड़ेगा।

ये तीनों विधेयक शायद शीघ्र ही विचारके लिए सम्राज्ञीकी सरकारके सामने आयेंगे। यदि ऐसा हुआ तो शायद आपके प्रार्थियोंको इन विधेयकोंके विषयमें आपकी सेवामें फिर उपस्थित होना पड़े। अभी तो आपके प्रार्थी केवल इतना निवेदन करके सन्तोष मान रहे हैं कि यद्यपि इन तीनों विधेयकोंमें से किसीका भी उद्देश्य प्रकट नहीं किया गया है, तो भी इन सबकी रचना भारतीय समाजके विरुद्ध की गई है। इसलिए यदि सम्राज्ञीकी सरकार इस सिद्धान्तको मानती हो कि भारतीय लोगोंपर ब्रिटिश उपनिवेशोंमें पाबन्दियाँ लगाई जा सकती हैं, तो यह कहीं अधिक अच्छा होगा कि वैसा खुल्लमखुल्ला किया जाये। उपनिवेशकी भावना भी यही जान पड़ती है, जैसा कि निम्न उद्धरणसे प्रकट होता है।

*नेटाल एडवरटाइज़र*ने प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियमके विषयमें अपने १२ मार्च १८९७के अंकमें लिखा है :

> **यह सीधा-सादा और ईमानदारीका उपाय नहीं है, क्योंकि इसमें इसके वास्तविक उद्देश्यको छिपानेकी चेष्टा की गई है, और उसे स्वीकार तभी किया जा सकता है जब कि इसपर अमल अधूरे ढंगसे किया जाये। इसके विधानोंको यदि यूरोपीय प्रवेशार्थियोंपर भी पूरी तरह लागू किया गया तो उससे उपनिवेशको हानि होगी। और यदि इसका प्रयोग केवल एशियाइयोंके विरुद्ध किया गया तो वह एक दूसरी दिशामें उतने ही अन्याय और अनौचित्यकी बात हो जायेगी।... यदि उपनिवेश एशि-याई प्रवासी विरोधी विधेयक चाहता है तो अच्छा हो कि हम एशियाई प्रवासी विरोधी बिल ही बना लें।... यहाँ तक तो हम प्रदर्शन-समितिके मन्तव्यसे सहमत हो सकते हैं, परन्तु उसके द्वारा अपनाई गई युक्तियाँ कुछ खास असरकारक नहीं थीं।... बहकना भी एक भूल थी, जैसी**

१. देखिए पृष्ठ ३८३–८४।

२. जब बादमें ये तीनों विधेयक स्वीकार हुए उस समय श्री चेम्बरलेनको, जुलाई २, १८९७ को, एक प्रार्थनापत्र भेजा गया। देखिए पृष्ठ ३६० और ३६१–७८।

कि डा० मैकेंजीने अपनी लड़ाई आप लड़ने और "ब्रिटिश सरकारपर बन्दूक तानने" की बड़ी-बड़ी बातें कहकर की। हम योग्य डाक्टर साहबको विश्वास दिला सकते हैं कि इस प्रकारकी बातोंसे सुविचारी उपनिवेशियोंको नफरत ही होती है।

*नेटाल विटनेस*ने अपने फरवरी २७, १८९७ के अंकमें लिखा था :

किसी लक्ष्यकी पूर्तिके लिए चालबाजी और धोखेबाजीका सहारा लेनेसे बढ़कर ब्रिटिश लोगोंकी भावनाओंको उत्तेजित करनेवाली बात और कोई नहीं हो सकती; और उपनिवेशमें प्रवेशपर प्रतिबन्ध लगानेवाला यह विधेयक, वास्तविक उद्देश्यको चालाकियोंसे छिपानेका एक निन्दनीय प्रयत्न है। ऐसे उपायोंका सहारा लेकर उपनिवेश अपना और दूसरोंका भी सम्मान खो बैठेगा।

गिरमिटिया भारतीयोंको इस विलके अमलसे बरी रखनेकी चर्चा करते हुए *टाइम्स आफ़ नेटाल*ने २३ फरवरीके अंकमें लिखा था :

इससे साधारणतया सारे उपनिवेशकी असंगति प्रकट होती है। सभी जानते हैं कि गिरमिटिया भारतीय उपनिवेशमें बस जाते हैं, और फिर भी सब या, कमसे कम, निर्वाचकोंकी एक बहुत बड़ी बहु-संख्या गिरमिटिया भारतीयोंको यहाँ बुलानेका निश्चय किये हुए है। इस असंगतिकी ओर ध्यान गये बिना नहीं रह सकता, और इससे एकदम प्रकट हो जाता है कि इस सारे प्रश्नपर लोकमत कितना बँटा हुआ है। भारतीयोंके विरुद्ध आपत्ति इस कारण की जाती है कि वे अज्ञानी हैं, वे मुंशियों और कारीगरोंके रूपमें दूसरोंका मुकाबला करते हैं, और व्यापारमें भी वे प्रतिस्पर्धी सिद्ध होते हैं। यह स्मरणीय है कि हालमें डर्बनमें जो हलचल हुई थी उसमें प्रदर्शनकर्ताओंकी भीड़ डेलागोआ-बेसे कुछ भारतीयोंको लेकर आये हुए एक जहाजकी तरफ इस इरादेसे जा रही थी कि उन्हें उतरनेसे रोक दे। ऐन मौकेपर किसीने आवाज लगाकर कहा कि ये भारतीय तो व्यापारी हैं, और भीड़ सन्तुष्ट हो गई। यह घटना इतना बतलानेके लिए काफी है कि उपनिवेशमें कुलियोंके प्रवेशका विरोध जनताके केवल एक भाग द्वारा किया जाता है।

परन्तु इन विधेयकोंके विरुद्ध सबसे गम्भीर और प्रबल आपत्ति यह है कि ये ऐसी बुराईको रोकनेका दावा करते हैं जो कि मौजूद है ही नहीं। इतना ही नहीं, यदि सम्राज्ञीकी सरकारने उपनिवेशमें बसे हुए ब्रिटिश भारतीय प्रजाजनोंकी तरफसे दस्तन्दाजी न की तो भारतीय-विरोधी कानूनोंका अन्त कहीं भी नहीं होगा। शहरोंके कारपोरेशनोंने सरकारसे प्रार्थना की है कि हमें भारतीय लोगोंको पृथक् बस्तियोंमें हटा देने, उन्हें व्यापार या पेशेके परवाने देनेसे इनकार कर देने (यह बात ऊपर उद्धृत विधेयकोंमें से भी एकसे पूरी हो जाती है), और भारतीयोंके हाथ अचल सम्पत्ति बेचने या उनके नामपर तब्दील करनेसे इनकार कर देनेका अधिकार दिया जाये। विश्वास किया जाता है कि सरकारने इनमें से प्रथम और अन्तिम माँगका कोई उत्साहजनक उत्तर नहीं दिया, फिर भी ये माँगें तो बनी ही है, और इसका क्या ठिकाना कि आज सरकारका झुकाव कुछ कारणोंसे जिन माँगोंको पूरा करनेका नहीं है, उनके प्रति उसका झुकाव सदा इसी प्रकारका रहेगा।

अन्तमें प्रार्थियोंका निवेदन है कि ऊपर जिन घटनाओंका वर्णन किया गया है और जिन प्रतिबन्धक कानूनोंके भविष्यमें बनाये जानेका अनुमान लगाया गया है, उनको ध्यानमें रखकर या तो ब्रिटिश भारतीय प्रजाजनोंकी स्थितिके विषयमें समयपर नीतिकी एक घोषणा कर दी जाये या ऊपर जिस खरीतेका जिक्र आया है उसे पुनः पुष्ट कर दिया जाये, जिससे कि नेटाल-उपनिवेशमें बसे हुए सम्राज्ञीके ब्रिटिश भारतीय प्रजाजनोंपर लगी हुई पाबन्दियाँ हटा ली जायें और भविष्यमें कोई नई पाबन्दियाँ न लगाई जायें। अथवा उनकी ऐसी सहायता की जाये जिससे उनके साथ न्याय हो सके।

और न्याय तथा दयाके इस कार्यके लिए, आपके प्रार्थी, अपना कर्तव्य मानकर, सदा दुआ करेंगे।

अब्दुलकरीम हाजी आदम
(दादा अब्दुल्ला ऐंड कम्पनी)
और इकतीस अन्य

परिशिष्ट

(परिशिष्ट क)

नकल

[जनवरी २५, १८९७]

प्रतिवादके इस सार्वजनिक पत्र द्वारा, जिन किन्हीं लोगोंका इससे कोई सम्बन्ध हो उन सबको विदित और स्पष्ट कराया जाता है कि आज हमारे प्रभु ईसामसीहके एक हजार आठ सौ सत्तानबेवें वर्षके जनवरी मासके पच्चीसवें दिन, नेटाल उपनिवेशमें, डर्बनके नोटरी पब्लिक मुझ जान मुअर कुकके सम्मुख और हस्ताक्षरकर्ता गवाहोंकी उपस्थितिमें, इसी बन्दरगाहके तथा इस समय नेटालके इस बन्दरगाहके भीतरी भागमें खड़े हुए, ७६० टन या लगभग इतने ही वजन तथा १२० हार्सपावरके जहाज "कूरलैंड"के मास्टर-मैरिनर और कमांडर अलेक्जैंडर मिल्नेने, स्वयं आकर और पेश होकर, शपथपूर्वक घोषणा करके निम्न बयान दिया :

उक्त जहाज बिक्रीका साधारण माल और २५५ यात्री लादकर गत ३० नवम्बरको बम्बईके बन्दरगाहसे चला था और इसने दिसम्बर १८९६के १८वें दिन सायंकाल ६ बजकर ३४ मिनटपर इस बन्दरगाहके बाहर लंगर डाला।

बम्बईसे रवाना होनेके पहले, इसके मल्लाहों और यात्रियोंका निरीक्षण और गिनती करके उनके स्वस्थ होने और बन्दरगाहकी देनदारियाँ अदा कर चुकनेका प्रमाणपत्र इसे दे दिया गया था।

सारी यात्रामें, सब यात्री और मल्लाह प्रत्येक प्रकारके रोगसे सर्वथा मुक्त रहे; और उक्त यात्रामें यात्रियोंके निवास-स्थानोंकी सफाई, हवादारी और औषधि द्वारा शोधनका काम प्रतिदिन कठोरतासे नियमपूर्वक किया जाता रहा; और यहाँ पहुँचने-पर मुझ पेश होनेवाले व्यक्तिने, जहाजके सब लोगोंके स्वस्थता-सम्बन्धी साधारण कागजात इस बन्दरगाहके स्वास्थ्य-अधिकारीके सुपुर्द कर दिये, और मुझ पेश होनेवाले व्यक्तिके पूछनेपर स्वास्थ्य-अधिकारीने मुझे सूचित किया कि उक्त जहाज तबतक सूतकमें रखा जायेगा जबतक कि उसे बम्बईसे चले २३ दिन नहीं बीत जायेंगे।

दिसम्बर १९को उक्त पेश होनेवालेने तटपर यह संकेत-सन्देश भेजा : "मेरे पास पानीकी कमी होती जा रही है और कुछ पानी प्राप्त करनेका प्रयत्न करना जरूरी है।" जहाजकी सफाई और औषधि द्वारा शोधनके काम कठोरतासे किये जा रहे हैं।

दिसम्बर २२को उक्त पेश होनेवालेने तटपर फिर निम्न संकेत-सन्देश भेजा : "हमारी अवधि पूरी हो गई है। क्या अब हम सूतकसे निकल गये? कृपया सूतक-अधिकारीसे सलाह कीजिए। बताइए, हम सब स्वस्थ हैं। धन्यवाद।" इसका यह जवाब मिला : "सूतककी मियाद अबतक तय नहीं हुई।" सूतकके इन चार दिनोंमें उक्त पेश होनेवालेके जहाजकी सफाई और शोधन प्रतिदिन किया जाता रहा और सूतकके नियमोंका पालन कठोरतासे किया जाता रहा।

दिसम्बर २३को उक्त पेश होनेवालेने यह संकेत-सन्देश भेजा : "पानी बिना संकटमें हैं। घोड़ोंके लिए घास चाहिए। जहाजपर पूर्ण स्वस्थता है। मालिकोंसे कहिए हमें सूतकसे छुड़ानेका पूर्ण प्रयत्न करें।" इसका जवाब यह मिला : "मालिकोंकी तरफसे : पानी भापसे तैयार कर लो। सूतकसे छूटनेकी खबर आज दुपहर मिलनेकी आशा है। घास कल सुबह भेजेंगे। आपके पास डाक है क्या?"

दिसम्बर २४को स्वास्थ्य-अधिकारी जहाजपर आया और उसने आज्ञा दी कि सब पुरानी पट्टियाँ, मैले चिथड़े और पुराने कपड़े जला डालो, माल-गोदाममें धूनी दो और उसकी सफेदी करवाओ, सब कपड़ोंको धूप दिखाओ और उनका शोधन करो, खानेकी चीजें यात्रियोंके सम्पर्कसे अलग रखो, सब यात्रियोंके पहननेके कपड़े कार्बोलिक ऐसिडमें डुबाओ, यात्रियोंको भी इस ऐसिडके हलके घोलसे नहलाओ, और जहाजको रोगसे मुक्त रखनेके लिए और भी जो करना आवश्यक हो सो करो। उसने यह भी कहा कि सूतक आजकी तारीखसे ११ दिन तक रहेगा।

दिसम्बर २५को यात्रियोंके बिछानेकी बहुतसी पट्टियाँ जला डाली गईं, और यात्रियोंके रहनेके सब स्थानों, स्नान-घरों, और पेशाब-घरोंका शोधन करके सफेदी करा दी गई।

दिसम्बर २६को यात्रियोंको नहलाकर उनके पहननेके कपड़े कार्बोलिक ऐसिडके हलके घोलमें डुबाये गये। तटपर यह संकेत-सन्देश भेजा गया : "पानीके बिना संकटमें हैं। तुरन्त भेजो। सूतक अधिकारीके आज्ञानुसार खानेका नया सामान भी। घोड़ोंको उतार देनेमें भी क्या कोई अड़चन है? सूतक-अधिकारी तो हमसे मिल ही चुका है। जहाजपर पूर्ण स्वस्थता है और सूतक-अधिकारीकी आज्ञाओंका पालन किया जा रहा है। हमें जल्दी बुलाओ। यात्री देरीके कारण बहुत दुःखी हैं। धन्यवाद।"

दिसम्बर २७को उक्त पेश होनेवालेने फिर यह संकेत-सन्देश दिया : "आप कल माँगी हुई चीजें भेज रहे हैं या नहीं?" इसपर संकेत-केन्द्र पर निम्न संकेत दिखलाया गया : पानी कल सुबह ९ बजे पहुँचानेका प्रबन्ध किया है।" तब

उक्त पेश होनेवालेने यह संकेत-सन्देश ऊँचा किया और निरन्तर दो घंटे तक इसे ऊँचा रखा : "पानीके बिना संकटमें हैं।" जहाजकी सफाई और शोधनका काम पूर्ववत् कठोरतासे किया जाता रहा।

दिसम्बर २८को यह संकेत-सन्देश दिया गया : "शनिवारको और चिट्ठियों द्वारा मॉगी हुई सब चीजें भेजो। घोड़ोंको उतारनेके सम्बन्धमें हिदायत भी।" दिनके ११ बजे सामान पुरानेवाली भाप-नौका "नेटाल" आकर जहाजकी बगलमें लगी और शोधनके लिए कार्बोलिक ऐसिड और धूनी लगानेके लिए गन्धक पहुँचा गई। एक पुलिस-अधिकारीने भी जहाजपर आकर इन औषधियोंका प्रयोग होते देखा। कुछ ताजा पानी भी जहाजपर चढ़ाया गया। जहाजको जलते हुए गन्धककी धूनी खूब दी गई, ऊपर और नीचेकी छतोंको कार्बोलिक ऐसिडसे पूरी तरह धो डाला गया, और सारे जहाजमें इसी जन्तुनाशक औषधिका प्रयोग किया गया। सब बिछौने, पट्टियाँ, थैले, टोकरे, और अन्य भी जिस किसी सामानसे रोगकी छूत लगनेका भय हो सकता था वह सब जहाजकी भट्ठीमें फूँक दिया गया।

दिसम्बर २९को जहाजके ऊपर-नीचेकी छतें फिर कार्बोलिक ऐसिडसे धोई गई और जहाजके अन्य भागोंमें भी इसी औषधिका खुले हाथों प्रयोग किया गया। उक्त पेश होनेवालेने यह संकेत-सन्देश ऊपर उठाया : "धूनी और शोधनके कामोंसे जहाज-पर मौजूद अधिकारीको सन्तुष्ट कर दिया। सूतक-अधिकारीको एकदम खबर दें।" चार घंटे बाद, १० बजे, उक्त पेश होनेवालेने फिर तटपर सन्देश भेजा : "हम तैयार हैं। सूतक-अधिकारीका इन्तजार है।" २–३० बजे भाप-नौका 'लायन' जहाजकी बगलमें आई और सूतक-अधिकारीको जहाजपर छोड़ गई। उसने सारे जहाजका निरीक्षण करनेके पश्चात् पूर्ण सन्तोष प्रकट किया कि मेरी आज्ञाओंका पालन बहुत अच्छी तरह किया गया है। परन्तु कहा कि जहाजको आजकी तारीखसे १२ दिन तक और सूतकमें रहना पड़ेगा। ३ बजे फिर यह सन्देश ऊँचा किया गया : "सरकारकी आज्ञासे सब यात्रियोंके बिस्तरे फूँक दिये गये, सरकारसे प्रार्थना है कि नये बिस्तरे तुरन्त दे। उनके बिना यात्रियोंका जीवन संकटमें है। हमें लिखित हिदायत चाहिए कि सूतक कबतक रहेगा, क्योंकि जबानी बताया गया समय सूतक-अधिकारीके हर बार आनेके साथ बदलता रहता है। इस बीच बीमार कोई भी नहीं पड़ा। सरकारको सूचना दें कि जबसे हम बम्बईसे चले तबसे प्रतिदिन हमारे जहाजका शोधन होता रहा है। १०० मुर्गियाँ और १२ भेड़ें भेजो।" जहाजकी सफाई और शोधन कठोरतापूर्वक चलता रहा।

दिसम्बर ३०को उक्त पेश होनेवालेने यह सन्देश भेजा : "कलके संकेत-सन्देशका जवाब दो। यात्री उतरना चाहते हैं और तटपर सूतक घरमें रहनेका अपना खर्च आप उठानेको तैयार हैं।"

दिसम्बर ३१को उक्त पेश होनेवालेने फिर यह संकेत-सन्देश भेजा : "आपका विचार मेरे मंगलवार और कलके सन्देशोंका जवाब इस वर्ष देनेका है या नहीं?" जहाजकी सफाई और शोधन हमेशाकी तरह कठोरतासे किया जा रहा है।

जनवरी १, २, ३, ४, ५, ६, ७ और ८, सन् १८९७को प्रतिदिन सारे जहाजकी पूरी सफाई, शोधन और हवा लगानेके काम किये जाते रहे और सूतकके नियमोंका कठोरतासे पालन किया गया।

जनवरी ९को भी सफाई और शोधन फिर किया गया। ५–३० बजे शामको, 'नेटाल' भाप-नौका द्वारा, उक्त पेश होनेवालेको मालिकोंकी तरफसे श्री गांधीकी मारफत इस आशयका पत्र मिला कि हमारी स्पष्ट आज्ञाके बिना जहाजको हिलाना भी मत, क्योंकि भारतीय यात्रियोंके लिए जानका खतरा है। यात्रियोंको उतारनेकी अनुमति मिल जानेके पश्चात् भी जहाजको आगे न बढ़ाया जाये।

जनवरी १०को यह सन्देश ऊँचा किया गया : "सूतक फिर खतम है। चार यूरोपीय यात्रियोंको एकदम उतारना चाहता हूं। पानी और भोजन-सामग्री भी और भेजो। घोड़े उतारनेके बारेमें क्या हिदायत है? चारा भेजो। खबर दो कि हम सब स्वस्थ हैं।" ये सब सन्देश तटपर पूरी तरह समझे जाते रहे और इन सबके जवाबमें झण्डी ऊपर उठाई जाती रही। सफाई और शोधन यथापूर्व किया गया।

जनवरी ११को स्वास्थ्य-अधिकारी जहाजपर आया और यात्रियोंको उतारनेका अनुमतिपत्र दे गया। डेढ़ बजे दुपहरको भाप-नौका 'नेटाल' ने जहाजपर ४,८०० गैलन पानी पहुँचाया। चार यूरोपीय यात्री यह सन्देश ऊँचा करनेके बाद 'नेटाल' द्वारा तटपर उतर गये : "मेरे यूरोपीय यात्रियोंको तटपर उतारनेसे 'नेटाल' इनकार कर रहा है। हिदायत भेजो।" ४ बजे तटपर संकेत-सन्देश उठाये गये परन्तु कुहासेके कारण उनका मतलब समझा नहीं जा सका। सफाई और शोधन और गोदामोंको हवा देनेके काम सख्तीसे किये गये। एक पत्र मिला, जिसपर 'समितिके अध्यक्ष' हैरी स्पार्क्सके हस्ताक्षर थे। वह इसके साथ नत्थी है और उसपर 'क'[1] चिह्न कर दिया है। उसकी नकलें भी इस मूलकी नकलोंके साथ लगा

१. देखिए परिशिष्ट कक, पृष्ठ २८१।

दी गई हैं। इस पत्रमें, इसके साथ संलग्न कुछ कागजात भेजनेकी बात लिखी थी, परन्तु वे उक्त पेश होनेवालेको मिले नहीं।

जनवरी १२को शामके ४–३० बजे सफाई और हवा देने आदिका काम हमेशाकी तरह हो जानेके बाद तटपर यह संकेत-सन्देश ऊँचा उठा हुआ दिखाई दिया: "कप्तान कल रवाना होगा।"

जनवरी १३को प्रातः ७–१० बजे जहाजका मार्गदर्शक गार्डन जहाज खींचनेवाली सरकारी नौका "चर्चिल" द्वारा आया और उसने उक्त पेश होनेवालेको लंगर उठाकर १०–३० बजे बन्दरगाहमें दाखिल होनेके लिए तैयार रहनेकी आज्ञा दी। यह, बन्दरगाहके कप्तानकी मारफत, सरकारकी स्पष्ट आज्ञा थी। और क्योंकि उक्त पेश होनेवालेको उक्त "कूरलैंड"के मालिकोंकी हिदायत थी कि हमारी स्पष्ट आज्ञाके बिना आगे मत सरकना, इसलिए उसने जहाजके मार्गदर्शक गार्डनसे प्रार्थना की कि आप मालिकोंको सूचना दे दें कि मैं सरकारकी आज्ञासे बन्दरगाहमें दाखिल हो रहा हूँ। ११–५० बजे जहाजका मार्गदर्शक जहाज खींचनेवाली नौका "रिचर्ड किंग" द्वारा फिर आया। जहाजको उस नौकाके साथ जोड़ा गया और सीमाके पार खींच ले जाया गया। १२–४५ बजे बंदरका लंगर डाल दिया गया और जहाजको कनस्तरोंके पुलके साथ लगा दिया गया। १–१५ बजे उपनिवेशके महान्यायवादी श्री एच० एस्कम्ब बन्दरगाहके कप्तानके साथ आये और उक्त पेश होनेवालेसे सब यात्रियोंको यह इत्तिला देनेका अनुरोध किया कि वे सब नेटाल-सरकारकी रक्षामें हैं और वे अपने आपको यहाँ उतना ही सुरक्षित समझें जितना कि अपने भारतीय ग्रामोंमें। ३ बजे बन्दरगाहके कप्तानसे आज्ञा मिली कि यात्रियोंको सूचना दे दी जाये कि वे उतरनेके लिए स्वतन्त्र हैं।

और उक्त अलेग्जैंडर मिल्नेने यह भी घोषणा की कि १३ जनवरीको जबसे उसका उक्त जहाज इस बन्दरगाहके भीतरी भागमें आकर पहुँचा तबसे २३ जनवरीके दुपहर-बाद तक उसे घाटपर स्थान देनेके बजाय धारामें ही खड़े रहनेके लिए विवश किया गया। इसी बीच दूसरे जहाज आये और उन्हें घाटपर स्थान दे दिया गया। बन्दरगाहके कप्तानने उक्त पेश होनेवालेके साथ इस प्रकारके व्यवहारका कारण बतलानेसे भी इनकार कर दिया।

जनवरी १६को उक्त पेश होनेवाला अलेग्जैंडर मिल्ने, डर्बनके नोटरी फ्रेडरिक ऑगस्टस लॅटनके सामने पेश हुआ, और उसने अपना प्रतिवाद नियमपूर्वक लिखवा दिया।

उक्त पेश होनेवाला, और मैं उक्त नोटरी भी, सरकार या सरकारी अधिकारियोंके उक्त कार्यों और उनके कारण हुए सारे नुकसान और हानिके विरुद्ध प्रतिवाद करते हैं।

इस प्रकार, डर्बन, नेटालमें, उपर्युक्त दिन, महीने और वर्षको, यहाँ दस्तखत करनेवाले गवाहोंकी उपस्थितिमें, किया और कानून द्वारा निर्धारित रूपमें लिखकर स्वीकृत किया गया।

गवाह:

(ह०) गॉडफ्रे मिलर,

(ह०) जॉर्ज गुडरिक

(ह०) अलेग्ज़ेंडर मिल्ने,
उक्त शपथ-कर्ता

(ह०) जॉन एम० कुक
नोटरी पब्लिक

(*परिशिष्ट कक*)

नकल

जनवरी ८, १८९७

कप्तान मिल्ने
"कूरलैंड" जहाज

प्रिय महाशय,

शायद आपको पता न होगा, और न आपके यात्रियोंको ही होगा कि इधर कुछ समयसे एशियाइयोंके आगमनके विरुद्ध उपनिवेशकी भावनाएँ बहुत भड़की हुई हैं। आपके जहाज तथा "नादरी" के यहाँ आनेपर तो वे चरम सीमापर पहुँच गई हैं।

उसके बाद डर्बनमें सार्वजनिक सभाएँ हुई हैं, और संलग्न प्रस्ताव उनमें उत्साह-पूर्वक पास किये गये हैं। इन सभाओंमें उपस्थिति इतनी अधिक थी कि जो लोग इनमें सम्मिलित होना चाहते थे वे सब नगरके सभा-भवन (टाउन हाल) में प्रविष्ट नहीं हो सके।

डर्बनके प्रायः प्रत्येक व्यक्तिने हस्ताक्षर करके अपना संकल्प प्रगट किया है कि वह आपके जहाज और "नादरी" के यात्रियोंको उपनिवेशमें नहीं उतरने देगा। हमारी प्रबल इच्छा है कि यदि सम्भव हो तो डर्बनके लोगों और आपके यात्रियोंमें टक्कर न हो। उन्होंने यहाँ उतरनेका यत्न किया तो बिलकुल निश्चय है कि यह टक्कर होकर रहेगी।

आपके यात्री यहाँकी भावनाओंसे अनजान हैं और अनजानपनेमें ही यहाँ आ गये हैं, और हमें महान्यायवादीसे मालूम हुआ है, कि यदि आपके आदमी भारत लौट जाना चाहेंगे तो उनका खर्च उपनिवेश दे देगा।

इसलिए यदि हमें जहाजके घाटपर लगनेसे पहले ही आपके पाससे वह उत्तर मिल जाये तो हमें खुशी होगी कि आपके यात्री उपनिवेशके खर्चपर भारत लौट जाना पसन्द करेंगे या, यहाँ जो हजारों आदमी उनके उतरनेका विरोध करनेका मौका देखने तैयार खड़े हैं, उनका सामना करके वे जबरदस्ती उतरनेका प्रयत्न करना चाहेंगे।

आपका सच्चा,
(ह०) हैरी स्पार्क्स
समितिका अध्यक्ष

(परिशिष्ट ख)

नकल

[जनवरी २२ १८९७]

प्रतिवादके इस सार्वजनिक पत्र द्वारा, जिन किन्हीं लोगोंका इससे कोई सम्बन्ध हो उन सबको विदित और स्पष्ट कराया जाता है कि आज हमारे प्रभु ईसामसीहके एक-हजार आठ सौ सत्तानबेवें वर्षके जनवरी मासके बाईसवें दिन, नेटाल उपनिवेशमें, डर्बनके नोटरी पब्लिक मुझ जान मुअर कुकके सम्मुख और इसपर हस्ताक्षर करनेवाले गवाहोंकी उपस्थितिमें, बम्बईके बन्दरगाहके तथा इस समय इस बन्दरगाहके भीतरी भागमें खड़े हुए, ११६८.९२ टन या लगभग इतने ही वजन और १६० हार्सपावरके जहाज "नादरी" के मास्टर-मैरिनर तथा कर्मांडर फ्रैन्सिस जॉन रेफिनने स्वयं आकर और पेश होकर, शपथपूर्वक घोषणा करके निम्न बयान दिया :

उक्त जहाज बिक्रीका साधारण माल और ३५० यात्री लादकर गत ३० [२८ ?] नवम्बरको बम्बईके बन्दरगाहसे चला था और उसने दिसम्बर १८९६ के १८ वें दिन दुपहरको इस बन्दरगाहके बाहर लंगर डाला।

बम्बईसे रवाना होनेके पहले, इसके मल्लाहों और यात्रियोंका निरीक्षण और गिनती करके, उनके स्वस्थ होने और बन्दरगाहकी देनदारियाँ अदा कर चुकनेका प्रमाणपत्र इसे दे दिया गया था।

सारी यात्रामें एक रसोइयेको छोड़कर सब यात्री और मल्लाह रोगसे मुक्त रहे। उस रसोइयेके पाँव सूज गये थे। परन्तु १९ दिसम्बरको डाक्टरने उसे देखकर बतलाया कि उसे जिगर और गुर्दोंकी कोई उलझी हुई बीमारी है, और उसीके कारण २० दिसम्बरको वह मर गया। यहाँ पहुँचनेपर उक्त पेश होनेवाले व्यक्तिने जहाजके सब लोगोंके स्वस्थता सम्बन्धी साधारण कागजात इस बन्दरगाहके स्वास्थ्य-अधिकारीके सुपुर्द

कर दिये, और उक्त पेश होनेवाले व्यक्तिके पूछनेपर स्वास्थ्य-अधिकारीने उसे सूचना दी कि उक्त जहाजको पाँच दिन सूतकमें रखा जायेगा, जिससे कि बम्बईके बन्दरगाहसे चलनेके समयसे लेकर २३ दिन पूरे हो जायें।

अगले दिन जहाजकी छतें और यात्रियों तथा मल्लाहोंके निवास-स्थान धोये और शोधित किये गये।

दिसम्बर २० को जहाजकी छतें और यात्रियों तथा मल्लाहोंके निवास-स्थान धो डाले गये और एकसे दूसरे सिरे तक उसका पूरी तरह शोधन कर दिया गया।

दिसम्बर २१ को जहाज धो डाला गया, और सब स्नानघरों व टट्टियों आदिका पूरी तरह शोधन कर दिया गया, और सूतकके नियमोंका कठोरतासे पालन किया गया

सितम्बर २२ को छतें धोई गई और स्नानघरों व टट्टियों आदिका औषधियों द्वारा शोधन किया गया।

जिन पाँच दिनोंके लिए जहाजको स्वास्थ्य-अधिकारी द्वारा सूतकमें रखा गया था उनके समाप्त हो जानेपर और सूतकके नियमोंका कठोरतासे पालन किया जा चुकने पर उक्त पेश होनेवालेने तटके कार्यालयको यह संकेत-सन्देश दिया : "सूतकके विषयमें क्या फैसला रहा, कृपया जवाब दीजिए।" इसका उत्तर यह मिला: "सूतककी अवधिका निर्णय अभी तक नहीं हुआ।"

दिसम्बर २३ को छतें धुलवाकर और सब स्नानघरों और टट्टियोंका जन्तुनाशक औषधियोंसे शोधन कराकर, उक्त पेश होनेवालेने तटको फिर यह सन्देश दिया : "सूतकके विषयमें क्या रहा?" इसका जवाब मिला : "सूतक-अधिकारीकी हिदायतें अभी कुछ भी नहीं।"

दिसम्बर २४ को छतें धोई गई और स्नानघरोंका औषधियों द्वारा शोधन किया गया। उसी दिन, स्वास्थ्य-अधिकारी और पुलिस-सुपरिंटेंडेंट जहाजपर आये। उन्होंने मल्लाहों और यात्रियोंको इकट्ठा करवाकर उनका निरीक्षण किया और जहाजका पूरी तरह शोधन करवाया। इस काममें कार्बोलिक ऐसिड और कार्बोलिक पाउडरका खुलकर प्रयोग किया गया। स्वास्थ्य-अधिकारीकी हिदायतसे यात्रियोंके सब मैले कपड़े, पट्टियाँ, टोकरियाँ और अन्य बेकार चीजें जहाजकी भट्टीमें जला डाली गई और बारह दिनके लिए सूतक और मढ़ दिया गया। इस तारीख तक सूतकके सब नियमोंका कठोरतासे पालन किया जाता रहा था।

दिसम्बर २५ को बड़ी और छोटी सब छतें स्वास्थ्य-अधिकारीके बतलानेके अनुसार, १ भाग कार्बोलिक ऐसिड और २० भाग पानीके घोलसे धो डाली गई।

दिसम्बर २६ को छतें धोई गई, स्नान-घरोंका औषधिसे शोधन किया गया और सूतकके नियमोंका कठोरतासे पालन किया गया।

दिसम्बर २७ को मुख्य छत और छोटी छतें धोई गई और १ भाग कार्बोलिक ऐसिड और २० भाग पानीके घोलसे शोधी गई।

दिसम्बर २८ को बड़ी और छोटी छतें कार्बोलिक ऐसिड और पानीके घोलसे धोई गई। स्नान-घरोंमें सफेदी करवाई गई। और आज तक सूतकके नियमोंका कठोरतासे पालन किया गया। यात्रियोंके बिछौनों, बिस्तरों और सब मैले कपड़ोंको जहाजकी भट्टीमें जला डाला गया, और सब यात्रियोंके कपड़े छोटी-बड़ी छतोंमें लटकाकर नौ जगह गन्धक सुलगा दी गई। सब छेद बन्द कर दिये गये और सायं ६–३० बजे तक आगको जलता रखा गया। मल्लाहोंके रहनेका स्थान, बड़ी बैठक, दूसरे दरजेकी कोठरियाँ, स्नान-घर और गलियोंमें भी यही कार्रवाई की गई। यात्रियों और मल्लाहोंको भी उक्त घोलसे नहलाया गया। छतें धो डाली गई और यात्रियोंके सब निवास-स्थान इस घोलसे साफ किये गये। कपड़े भी घोलमें डुबाये गये।

दिसम्बर २९ को यह सन्देश तटपर भेजा गया: "शोधन-कार्य स्वास्थ्य-अधिकारीकी तसल्लीके अनुसार पूरा हो गया।" स्वास्थ्य-अधिकारीने जहाजका निरीक्षण किया और कहा कि शोधन-कार्यसे मेरा सन्तोष हो गया है और उसने जहाज तथा मल्लाहोंपर इस तारीखसे बारह दिनका सूतक लगा दिया।

दिसम्बर ३० को यह संकेत-सन्देश तटपर भेजा गया: "सरकारसे कहो कि जो कपड़े उसने जलवा दिये हैं उनकी जगह तुरन्त २५० कम्बल भेज दे। यात्रियोंको उनके बिना बड़ा कष्ट है। वरना उन्हें तुरन्त उतार दो। यात्री सरदी और नमीसे पीड़ित हैं। डर है कि इनके कारण कहीं बीमारी न फैल जाये।"

जनवरी ९ को उक्त पेश होनेवालेने तटको यह संकेत-सन्देश भेजा: "सूतक समाप्त हो गया। यात्रियोंको उतारनेकी इजाजत मुझे कब मिलेगी? कृपया जवाब दीजिए।"

जनवरी ११ को स्वास्थ्य-अधिकारी जहाजपर आया और यात्रियोंको उतारनेकी इजाजत दे गया। सूतकका झंडा उतार दिया गया। इसपर पेश होनेवालेने तटपर जानेकी अनुमति माँगी, परन्तु पुलिस-अधिकारी और जहाज-चालकके सामने ही अनुमति देनेसे इनकार कर दिया गया। "नेटाल" मार्गदर्शकको लेकर आया। उसने जहाज-पर आकर कागजात और बन्दरगाहके फार्मोंकी खाना-पूरी कर दी और उक्त फ्रैन्सिस जान रैफिनको वह आज्ञा दे गया कि तुम तटसे इशारा मिलनेपर घाटमें आनेके लिए तैयार रहो।

जनवरी १२ को तटसे कोई इशारा नहीं मिला।

जनवरी १३ को "चर्चिल" यह सरकारी आज्ञा लेकर आया कि १०–३० बजे प्रातः तटपर आनेके लिए तैयार रहना। साढ़े-बारह बजे इस पेश होनेवालेके जहाजने लंगर डाला और वह "कूरलैंड" की बगलमें जा लगा। २–३० बजे बन्दरगाहके कप्तानसे आज्ञा मिली कि यात्रियोंको बतला दो कि उनको उतरनेकी स्वतन्त्रता है।

और अब यह पेश होनेवाला, और मैं उक्त नोटरी भी, सरकार या सरकारी अधिकारियोंके उक्त कार्यों और उनके कारण हुए सारे नुकसान और नाशके विरुद्ध प्रतिवाद करते हैं।

इस प्रकार डर्बन, नेटालमें, उपर्युक्त दिन, महीने और वर्षको, यहाँ हस्ताक्षर करनेवाले गवाहोंकी उपस्थितिमें किया और कानून द्वारा निर्धारित रूपमें लिखकर स्वीकृत किया गया।

गवाह:
(ह०) जॉर्ज गुडरिक
(ह०) गॉडफ्रे वेलर [मिलर?]

(ह०) फ्रॅं० जॉ० रैफिन
उक्त शपथ-कर्ता
(ह०) जॉन एम० कुक
नोटरी पब्लिक

(परिशिष्ट ग)

नकल

डर्बन
दिसम्बर १९, १८९६

सेवामें
स्वास्थ्य-अधिकारी
पोर्ट नेटाल

नादरी जहाज

प्रिय महाशय,

हमने आज प्रातःकालके "मर्क्युरी" में पढ़ा कि उक्त जहाजमें बीमारी कोई नहीं थी। इसलिए हमें यह देखकर बहुत आश्चर्य हो रहा है कि उसे सूतकके स्थानमें रखा गया है।

अगर उसे सूतकमें रखनेका कारण मालूम हो जाये तो हमें बहुत प्रसन्नता होगी। जल्दी जवाबके लिए हम आपकी बहुत कृपा मानेंगे।

आपके सच्चे,
(ह०) दादा अब्दुल्ला ऐंड कम्पनी

(परिशिष्ट घ)

नकल

(तार)

दिसम्बर २१, १८९६

प्रेषक : लॉटन
सेवामें : उपनिवेश-सचिव
मैरित्सबर्ग

"कूरलैंड" और "नादरी" दो जहाज पिछले महीनेकी २८ और ३०[1] तारीखोंको बम्बईसे चलकर गत शुक्रवारको यहाँ पहुँचे। उनमें बीमारी कोई नहीं थी। फिर भी दोनों उसी दिन हस्ताक्षरित परन्तु अगले दिन मुद्रित घोषणा द्वारा सूतकमें रख दिये गये। मैं मालिकोंकी तरफसे गवर्नर महोदयके नाम प्रार्थनापत्र तैयार कर रहा हूँ और शिष्टमण्डलको पेश करके और वकीलकी हैसियतसे हाजिर होकर बतलाना चाहता हूँ कि कानूनकी दृष्टिसे यह मामला कितने विशिष्ट स्वरूपका है। मैं यह प्रार्थना भी करना चाहता हूँ कि सूतक हटवा दिया जाये। रोकके कारण मालिकोंको डेढ़-सौ पौंड प्रतिदिनका नुकसान हो रहा है। और "नादरी" को तो मारिशससे बम्बई तक किराये पर सामान ले जानेके लिए तय किया जा चुका है। क्या गवर्नर महोदय अगले बुधवारको शिष्टमण्डलसे मिल सकेंगे?

(ह०) गुडरिक, लॉटन ऐंड कुक

१. यह तारीख गलत मालूम होती है। वास्तवमें "कूरलैंड" ३०को और "नादरी" २८ नवम्बरको बम्बईसे रवाना हुआ था — देखिए पृष्ठ २०६। गांधीजी, जिन्होंने "कूरलैंड" से यात्रा की थी, ३० नवम्बर, १८९६को भारतमें थे। उस दिन उन्होंने वाइसरायको एक तार भेजा था — देखिए पृष्ठ १४८ और २८९।

(परिशिष्ट ङ)

नकल

(तार)

प्रेषक : मुख्य उपसचिव
सेवामें : श्री एफ० ए० लॉटन
डर्बन

ता० २२ — आपका कलका तार। मुझे जवाब देनेको कहा गया है कि प्रार्थनापत्रको गवर्नर सलाहके लिए मन्त्रियोंको देंगे। इसलिए शिष्टमण्डलका गवर्नरसे मिलना और उनके सामने दलीलें पेश करना अनावश्यक है।

(परिशिष्ट च)

नकल

डर्बन
दिसम्बर २१, १८९६

सेवामें : माननीय हैरी एस्कम्ब

श्रीमन्,

आज मैंने आपको जो तार पीटरमैरित्सबर्ग भेजा है उसकी नकल साथमें नत्थी कर रहा हूँ। मुझे पता नहीं था कि गवर्नर साहब डर्बनमें ही हैं।

"कूरलैंड" और "नादरी" जहाज बम्बईसे गत मासकी २८ और ३०[1] तारीखोंको चलकर यहाँ गत शुक्रवारको पहुँचे थे। उसी दिन वे एक घोषणा द्वारा सूतकमें रख दिये गये, यद्यपि दोनों जहाजोंपर यात्रामें किसी किस्मकी बीमारी नहीं हुई थी। घोषणा अगले दिन खास सरकारी गजटमें प्रकाशित की गई।

१. देखिए पाद-टिप्पणी, पृष्ठ २८६।

१८८२ के कानून ४ के अनुसार गवर्नर साहब अपनी कार्य-कारिणी समितिकी सलाहसे, समय-समयपर ऐसी आज्ञाएँ दे सकते हैं और ऐसे नियम बना सकते हैं, जो विशिष्ट प्रकारकी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए आवश्यक हों और जिनसे यह निश्चय किया जा सके कि किसी जहाजको किन परिस्थितियोंमें कानूनके अमलसे पूर्णतः या अंशतः बरी किया जा सकता है। मैं गवर्नर साहबके नाम प्रार्थनापत्र तैयार कर रहा हूँ कि इस मामलेमें ऐसी विशिष्ट परिस्थितियाँ विद्यमान हैं। प्रार्थनापत्र पेश करनेके लिए मैं गवर्नर साहबसे मिलने एक शिष्टमण्डलको लाना चाहता हूँ, और मालिकोंके वकीलकी हैसियतसे स्वयं उनके सामने हाजिर होकर मालिकोंके प्रार्थनापत्रका समर्थन करना चाहता हूँ।

जहाजोंके रोके जानेके कारण उनके मालिकोंमें से प्रत्येकको डेढ़-सौ पौंड प्रतिदिनका नुकसान हो रहा है। इस कारण वे गवर्नर साहबकी सेवामें, वे जल्दीसे जल्दी जो दिन नियत कर देनेकी कृपा करें उसी दिन, उपस्थित होनेके लिए उत्सुक हैं।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
(ह०) एफ० ए० लॉटन

(परिशिष्ट छ)

नकल

डर्बन
दिसम्बर २२, १८९६

प्रिय श्री लॉटन,

गवर्नर साहबने मुझे यह कहनेकी आज्ञा दी है कि यद्यपि सूतकके जैसे मामलेमें वे निश्चय ही मन्त्रियोंसे सलाह लेना पसन्द करेंगे, फिर भी, यदि आप चाहते ही हों तो, कल मेरित्सबर्गमें वे इस मामलेमें रुचि रखनेवाले सज्जनोंके शिष्टमण्डलसे मिल लेंगे।

आपका शुभैषी,
(ह०) हैरी एस्कम्ब

श्री० एफ० ए० लॉटन

(*परिशिष्ट ज*)

नकल

सेवामें

महामहिम माननीय सर *वाल्टर फ्रान्सिस हेली हचिन्सन,* सेंट माइकेल और सेंट जॉर्जके प्रतिष्ठिततम संघके नाइट-कमांडर; नेटाल उपनिवेशके गवर्नर और प्रधान सेनापति; वहांके वाइस-एडमिरल; और वतनी जनताके सर्वोच्च शासक :

कूरलैंड जहाजकी मालिक और *नादरी* जहाजके मालिकोंकी प्रतिनिधि, डर्बन नगरकी दादा अब्दुल्ला एंड कम्पनीका इन जहाजोंको सूतकसे छुड़वानेके लिए नम्र प्रार्थनापत्र।

निवेदन है कि,

ये जहाज, *नादरी* और *कूरलैंड,* गत मासकी २८ और ३० तारीखोंको सब वर्गोंके ३५६ और २५५ यात्री लेकर बम्बईसे इस बन्दरगाहके लिए रवाना हुए थे और इस महीनेकी १८ तारीखको क्रमशः दुपहरके २ बजे और शामके ५-३० बजे यहां पहुँच गये।

इन दोनों जहाजोंके डाक्टरोंने यहां पहुँचनेके पश्चात् सरकारी स्वास्थ्य-अधिकारीको बतलाया कि इन जहाजोंपर न तो अब किसी प्रकारकी कोई बीमारी है और न बम्बईसे यहाँ तककी उनकी यात्रामें ही कोई बीमारी हुई थी। फिर भी इस बन्दरगाहके उक्त सरकारी स्वास्थ्य-अधिकारीने आपकी एक घोषणाका हवाला देकर यात्रियोंको उतारनेका अनुमतिपत्र देनेसे इनकार कर दिया।

इस घोषणापर इसी महीनेकी १८ तारीख पड़ी हुई है और यह १९ तारीखके असाधारण सरकारी गजटमें प्रकाशित हुई थी।

आपके प्रार्थियोंका निवेदन निम्न प्रकार है :

(क) कोई भी सरकारी घोषणा "या तो सरकारी आज्ञासे प्रकाशित या सार्वजनिक विज्ञप्ति" होती है। यह घोषणा १९ तारीख तक प्रकाशित नहीं हुई थी। इसलिए यह १८ तारीखको यहाँ पहुँचे हुए इन जहाजोंपर लागू नहीं हो सकती।

(ख) यदि १८८२ के कानून ४ की धारा १ के शब्दोंका बिलकुल ठीक-ठीक अर्थ किया जाये तो यह घोषणा केवल उन जहाजोंपर लागू हो सकती है जो इस घोषणाके प्रकाशित होनेके पश्चात किसी छूतकी बीमारीवाले बन्दरगाहसे चलकर यहां पहुँचे हों।

(ग) पूर्व-वर्णित जहाजोंपर यात्रियोंकी बड़ी संख्यामें भीड़ होनेसे बीमारी और महामारी फैल सकती है।

(घ) डाक्टरोंके संलग्न प्रमाणपत्रोंसे प्रकट होता है कि इनके यात्री, आबादीके लिए बिना किसी भयके, उतारे जा सकते हैं।

(ङ) पूर्वोक्त कारणोंसे प्रार्थियोंको औसतन डेढ़-सौ पौंड प्रतिदिनका नुकसान हो रहा है।

इसलिए प्रार्थियोंकी प्रार्थना है कि बन्दरगाहके स्वास्थ्य-अधिकारीको इन जहाजोंको यात्री उतारनेका अनुमतिपत्र देनेकी हिदायत कर दी जाये अथवा उनके लिए और कोई उचित सुविधा कर दी जाये। और इसके लिए आपके प्रार्थी सदा दुआ करेंगे, आदि।

(हस्ताक्षर) दादा अब्दुल्ला ऐंड कं०

(परिशिष्ट जक)

नकल

डर्बन
दिसम्बर २२, १८९६

गुडरिक, लॉटन ऐंड कुक

महाशय, — आपके प्रश्नोंके उत्तर ये हैं:

(१) गिलटीवाले बुखार या प्लेगकी छूत लगनेके बाद कितने समयमें उसके चिह्न प्रकट हो जाते हैं?

रोग लगनेके बाद उसके चिह्न प्रकट होनेका समय कुछ घंटेसे लेकर एक सप्ताह तक होता है (क्रुकशैंककी पुस्तक, चौथा संस्करण, १८९६)। मैं इन रोग-कृमियोंका टीका लगाकर चूहोंको २४ घंटोंमें मारकर देख चुका हूँ।

(२) यदि किसी जहाजको छूतकी बीमारीवाले बन्दरगाहसे चले १८ दिन हो चुके हों और उस बीच जहाजमें कोई बीमारी न रही हो, तो क्या उस पर भी यह रोग होनेकी सम्भावना रहेगी? — नहीं।

(३) ३५० भारतीयोंको बन्दरगाहके बाहर किसी छोटे जहाजमें गरमीकी ऋतुमें बहुत देर तक ठूँसकर रखनेका परिणाम क्या होगा? — भारतीयोंके लिए अत्यन्त भयंकर।

आपका हितैषी,
(हस्ताक्षर) जे० पेरट प्रिन्स, एम० डी०

(परिशिष्ट जख)

नकल

दिसम्बर २२, १८९६

प्रिय महाशय,

बम्बईमें इस समय फैले हुए प्लेगके सम्बन्धमें, आपके प्रश्नोंका उत्तर मैं आपकी जानकारीके लिए क्रमशः देता हूं।

पहली बात यह है कि रोग लगनेके बाद उसके चिह्न प्रकट होनेका समय २ से ८ दिन तक होता है, हालाँकि सर वाल्टर ब्रौडबेंट इस समयको कुछ घंटेसे लेकर २१ दिन तक मानते हैं। इक्कीस दिन, रोग लगनेके बाद, उसके प्रकट होनेका अधिकतम समय जान पड़ता है।

दूसरे, यदि जहाजोंकी यात्राके २१ दिनोंमें स्वस्थता रहनेका असन्दिग्ध प्रमाणपत्र हो तो मेरी सम्मतिमें जहाजसे रोग फैलनेका कोई डर नहीं।

तीसरे, लोगोंको बड़ी संख्यामें किसी बन्द स्थानपर ठूंसकर रखनेसे सदा ही अस्वास्थ्य फैलनेका भय रहता है। इसलिए यदि सम्भव हो तो उससे बचना चाहिए।

आपका विश्वस्त,
(हस्ताक्षर) एन० एस० हैरिसन
एम० डी० बी० ए०, कैंटब

(परिशिष्ट झ)

नकल

(तार)

प्रेषक : लॉटन
सेवामें : उपनिवेश-सचिव
मैरित्सबर्ग

सूतकके विषयमें जवाबका चिन्तासे इन्तजार है। दोनों जहाज पानी, चारा और खाना माँग रहे हैं।

(हस्ताक्षर) गुडरिक, लॉटन ऐंड कुक

(परिशिष्ट ञ)

नकल

डर्बन
दिसम्बर २४, १८९६

सेवामें
श्री डेनियल बर्टवेल, एम० डी०
स्थानापन्न स्वास्थ्य-अधिकारी
नेटाल बन्दरगाह

श्रीमन्,

हमें, *कूरलेंड* जहाजकी मालिक और *नादरी* जहाजके मालिकोंकी प्रतिनिधि, इस नगरकी दादा अब्दुल्ला ऐंड कं० ने, आपका ध्यान इस बातकी ओर खींच देनेकी हिदायत दी है कि ये दोनों जहाज, क्रमशः २५५ और ३५६ यात्रियोंको लिये हुए बम्बईसे इस बन्दरगाहके लिए चलकर, इस महीनेकी १८ तारीख शुक्रवारसे इस बन्दरगाहके बाहर लंगर डालनेकी जगह पड़े हुए हैं। कारण यह है कि यद्यपि दोनों जहाजोंके मास्टर, १८५८के कानून ३ के अनुसार, इस आशयके घोषणापत्रपर पहले भी हस्ताक्षर करनेको तैयार थे और अब भी तैयार है कि वे प्रमाणित करते है कि उनके दोनों जहाजोंपर सारी यात्रामें पूर्ण स्वस्थता रही, और कानूनी आवश्यकता पूरी करनेके लिए वे और भी सब कुछ करनेको तैयार हैं, फिर भी आपने उन्हें यात्री उतारनेका अनुमतिपत्र नहीं दिया।

हमें हिदायत दी गई है कि हम आपसे प्रार्थना करें कि आप इन जहाजोंको तुरन्त ही यात्री उतारनेका अनुमतिपत्र दे दें, जिससे कि वे बन्दरगाहमें आकर अपने यात्री और अपना माल उतार सकें।

यदि आपको हमारी प्रार्थना स्वीकार करनेसे इनकार हो तो हमें आपकी इनकारीके कारण जानकर प्रसन्नता होगी। यह मामला अत्यन्त शीघ्रता और महत्त्वका है, इसलिए अपना उत्तर अपनी सुविधानुसार शीघ्रतम देकर हमें अनुगृहीत कीजिए।

आपके आज्ञाकारी सेवक,
(हस्ताक्षर) गुडरिक, लॉटन ऐंड कुक

(परिशिष्ट ट)

नकल

डर्बन
दिसम्बर २४, १८९६

सेवामें

गुडरिक, लॉटन एंड कुक

महाशय, — आपका आजकी तारीखका पत्र मिला। मैं स्वास्थ्य-अधिकारीकी हैसियतसे, सब हितोंका उचित ध्यान रखते हुए, अपना कर्तव्य पालन करनेका प्रयत्न कर रहा हूं।

मैं इस बातके लिए तैयार हूं कि जितने भी आदमी उतारे जाने हैं उन सबको, जहाजोंके खर्चपर, ब्लफ [बन्दरगाहकी टेकरी] के सूतक-घरमें रखनेकी इजाजत दे दूं। जब यह प्रबन्ध हो जायेगा तब, मेरी हिदायतोंपर अमल करनेके बाद, जहाजोंको यात्री उतारनेका अनुमतिपत्र दिया जा सकेगा।

आपका आज्ञाकारी,
(हस्ताक्षर) डी० बर्टवेल
स्थानापन्न स्वास्थ्य-अधिकारी

(परिशिष्ट ठ)

नकल

डर्बन
दिसम्बर २५, १८९६

सेवामें

श्री डी० बर्टवेल, एम० डी०
स्थानापन्न स्वास्थ्य-अधिकारी

श्रीमन्,

आपका कलका पत्र मिला। परन्तु उसका उत्तर देनेसे पहले हम आपका ध्यान इस बातकी ओर खींचना चाहते हैं कि आपने हमारे कलके पत्रमें पूछे गये प्रश्नका कोई उत्तर नहीं दिया है। उसका उत्तर मिल जानेपर हम आपके २४ ता० के पत्रका उत्तर दे सकेंगे।

जहाजोंको एक दिन रोकनेका मतलब १५० पौंडका नुकसान होता है, और उससे यात्रियोंका जीवन नहीं तो उनका स्वास्थ्य तो संकटापन्न हो ही जाता है।

इन बातोंका विचार करते हुए, भरोसा है, आपका उत्तर हमें आज प्रातःकाल ही मिल जायेगा। और उसके पश्चात् तुरन्त ही आपको हमारा उत्तर पहुँच जायेगा।

आपके आज्ञाकारी सेवक,
(हस्ताक्षर) गुडरिक, लॉटन ऐंड कुक

(परिशिष्ट ड)

नकल

डर्बन
दिसम्बर २५, १८९६

गुडरिक, लॉटन ऐंड कुक

महाशय,

आपके २५ दिसम्बरके पत्रके उत्तरमें, जिसमें आपने लिखा है कि मैंने आपके उस पहले पत्रमें पूछे हुए प्रश्नका उत्तर नहीं दिया जो आपने यात्री उतारनेका अनुमतिपत्र देनेसे मेरे इनकार करने आदिके विषयमें लिखा था, मैं निवेदन करना चाहता हू कि मैं इन जहाजोंको, मेरी लिखी हुई शर्तोंको पूरा किये बिना, अनुमतिपत्र देना सुरक्षित नहीं समझता।

आपका आज्ञाकारी,
(हस्ताक्षर) डी० बर्टवेल
स्थानापन्न स्वास्थ्य-अधिकारी
डर्बन बन्दरगाह

(परिशिष्ट ढ)

नकल

डर्बन
दिसम्बर २५, १८९६

सेवामें

श्री डी० बर्टवेल, एम० डी०
स्थानापन्न स्वास्थ्य-अधिकारी

प्रिय महोदय,

हमें आपका आजका पत्र मिला। आपने यात्री उतारनेका अनुमतिपत्र देनेसे इनकार करनेके विषयमें लिखा है कि आप अपनी लिखी हुई शर्तोंके पूरे हुए बिना अनुमतिपत्र दे देना सुरक्षित नहीं समझते।

इसके उत्तरमें हम आपका ध्यान फिर इस तथ्यकी ओर आकृष्ट करनेकी अनुमति चाहते हैं कि आपने अब भी हमारे कलके पत्रमें किये हुए प्रश्नका उत्तर नहीं दिया।

हम दोनोंमें किसी प्रकारका भ्रम न रहे, इसलिए हम आपका ध्यान उस कानूनकी ओर आकृष्ट करना चाहते हैं, जिसके अनुसार आप देखेंगे कि अनुमतिपत्र देनेसे इनकार कुछ विशिष्ट कारणोंसे ही किया जा सकता है। और हम आपसे इस मामलेमें वे कारण बतलानेके लिए कह रहे हैं। स्पष्ट है कि आप उस प्रश्नका उत्तर देना नहीं चाहते जिसे पूछनेका हमारे मुअक्किलोंको पूरा अधिकार है। आपकी इस अनिच्छा पर हमें आश्चर्य है।

आपके आज्ञाकारी सेवक,

(हस्ताक्षर) गुडरिक, लॉटन ऐंड कुक

हम उन शर्तोंको पूरी तरह और ठीक-ठीक जानना चाहते हैं जो कि आप यात्री उतारनेका अनुमतिपत्र देनेके लिए लगाना चाहते हैं; क्योंकि अगर आपने हमें वे शर्तें बताई हैं तो वे पूरी तौरसे बताई गई हैं ऐसा नहीं लगता।

(परिशिष्ट ण)

नकल

डर्बन

दिसम्बर २६, १८९६

गुडरिक, लॉटन ऐंड कुक

महाशय,

आपका २५ दिसम्बर १८९६का पत्र मुझे मिला। मैं उचित एहतियाती कार्रवाईके बिना इन जहाजोंको यात्री उतारनेका अनुमतिपत्र देकर उपनिवेशको खतरेमें नहीं डाल सकता।

यदि यात्रियोंको सूतकके मकानोंमें नहीं उतारा जाता तो जहाजोंको धूनी लगाने और दोनों जहाजोंके कप्तानोंको हमने कपड़ोंके विषयमें जो एहतियात करनेकी हिदायतें दी हैं — अर्थात् उन्हें धोने और औषधियों द्वारा शोधनेकी और सब पुराने चिथड़े, पट्टियाँ, थैले आदि जला डालनेकी — उनपर अमल हो चुकनेके बाद बारह दिन पूरे होनेसे पहले यात्रियोंको उतारनेका अनुमतिपत्र नहीं दिया जा सकता। यदि जहाजोंके मालिक सूतकका खर्च उठानेको तैयार हों तो यात्री उतारनेसे पहले उन्हें ऊपर दी हुई धूनी लगाने आदिकी एहतियातें पूरी कर देना चाहिए। यात्री

उतारनेके बाद जहाजोंको यहाँसे जानेकी सहूलियत कर दी जायेगी। परन्तु मुनासिब पाबन्दियोंके बिना किनारेके साथ उनका कोई सम्पर्क नहीं होना चाहिए। यदि आप चाहते हैं कि जहाज यहाँसे विदा हो जायें तो उसका सबसे आसान तरीका यही है कि उनके मालिक, जहाजोंको धूनी लगाने आदिके बाद, यात्रियोंको बारह दिन तक, या यदि आवश्यकता हो तो उससे अधिक समय तक भी, टेकरीपर सूतकमें रखनेका खर्च उठा लें।

इस मामलेसे सम्बद्ध कोई कानूनी नुक्ते हों तो आप कृपया "क्लार्क आफ द पीस" को लिखिए। मेरा उनसे कोई वास्ता नहीं है।

आपका आज्ञाकारी,
(हस्ताक्षर) डी० बर्टवेल

(परिशिष्ट त)

नकल

डर्बन
दिसम्बर २६, १८९६

सेवामें
श्री डी० बटवेल, एम० डी०

प्रिय महोदय,

आपका आजका पत्र हमें मिला। हमने तीन बार आपसे पूछा कि आप "कूरलैंड" और "नादरी" जहाजोंको यात्री उतारनेका अनुमतिपत्र किन कारणोंसे नहीं दे रहे हैं, और तीनों बार आपने इस प्रश्नको टाल दिया। इसलिए अब हम यह मानकर चल रहे हैं कि आप ये कारण बतलानेसे इनकार करते हैं।

हमें मुख्य उपसचिवसे ज्ञात हुआ है कि आपने सरकारको अपनी इनकारीका कारण यह बतलाया है कि बम्बईमें गिल्टीवाला प्लेग फैला हुआ है और यदि इन जहाजोंको यात्री उतारनेकी अनुमति दे दी गई तो यहाँ भी छूत फैल जानेका डर है। हमें यदि आपकी ओरसे इसके विपरीत कोई बात न बतलाई गई तो हम समझेंगे कि आपकी इनकारीका कारण यही है। कानूनकी दृष्टिसे यदि मान लिया जाये कि यह एक उचित कारण है तो सिद्ध करना पड़ेगा कि इसका आधार युक्तिसंगत है।

डा० क्रुकशैंकने रोग-कीटाणु-विज्ञानपर अपनी पुस्तकके हालमें प्रकाशित संस्करणमें लिखा है कि "रोग लग जानेपर उसके चिह्न प्रकट होनेके लिए कुछ घंटोंसे लेकर

एक सप्ताह तकका समय लगता है।" हमने सरकारके नाम अपने मुअक्किलोंके प्रार्थनापत्रके साथ डा० प्रिन्स और डा० हैरिसनकी जो सम्मतियां नत्थी की थीं उनमें भी बहुत कुछ ऐसा ही बतलाया गया है। और हमें मालूम हुआ है कि आप यह समय बारह दिनका बताते हैं। इन दोनों जहाजोंको बम्बईसे चले अब क्रमशः २६ और २८ दिन हो चुके हैं। अब, और जबसे इन दोनोंने अपनी-अपनी यात्रा आरम्भ की तबसे अबतक, इनमें स्वस्थता रहनेका सर्वथा स्पष्ट प्रमाण मिल चुका है। इन वास्तविकताओंके बावजूद आपने अपना विचार यह घोषित किया है कि आप इन जहाजोंको यात्री उतारनेका अनुमतिपत्र देनेसे तबतक इनकार करते रहेंगे जबतक इन्हें और इनके यात्रियोंको औषधियों द्वारा शोधित किये हुए (आपके ही शब्दोंमें) बारह दिन नहीं बीत जायेंगे। हमारे मुअक्किलोंकी हिदायत है कि हम इस कार्रवाईके विरुद्ध प्रतिवाद करें और आपको सूचना दे दें कि आपके अनुमतिपत्र देनेसे इनकार करनेके कारण उनको जो भी नुकसान होगा और जहाजोंको अधिक समय तक रोक रखनेके कारण उनके यात्रियोंके स्वास्थ्यको जो हानि पहुँचेगी उस सबके लिए जिम्मेवार आपको ठहराया जायेगा।

इसी प्रकार, हमें आपका ध्यान इस बातकी ओर खींचनेकी भी हिदायत की गई है कि अब जहाजोंको बन्दरगाहके बाहरी भागमें लंगर डाले खड़े हुए आठ दिनसे ऊपर बीत चुके हैं। और यद्यपि आपने गुरुवारके प्रातःकाल इस पत्रके लेखकको सूचना दी थी कि शायद उस दिन दुपहर बाद आप जहाजोंका औषधियों द्वारा शोधन करनेकी व्यवस्था करेंगे, फिर भी आपके आजके पत्रसे लगता है कि आपने अबतक वैसी कोई कार्रवाई नहीं की है। इस विलम्बके लिए भी आपको ही जिम्मेवार ठहराया जायेगा।

जहाजोंके मालिकोंके खर्चपर यात्रियोंको तटपर सूतकमें रखनेके सम्बन्धमें हम आपको सूचना देना चाहते हैं कि हमारे मुअक्किल आपकी अनुमतिपत्र न देनेकी कार्रवाईको कानूनके खिलाफ मानते हैं। और इस कारण वे आपकी किसी कार्रवाईमें, आपसे यह प्रार्थना कर देनेसे अधिक, कोई भाग नहीं लेना चाहते कि आप जिसे जहाजोंका औषधियों द्वारा शोधन करना कहते हैं उसे करनेके लिए जो भी उपाय करना उचित समझें सो, घंटा-भरका भी अनावश्यक विलम्ब किये बिना, कर डालें। इसके अतिरिक्त, आपने जो रास्ता सुझाया है उससे हमारे मुअक्किलोंकी हानिमें कमी नहीं होगी, क्योंकि वे फिर भी जहाजोंका माल नहीं उतार सकेंगे।

१. देखिए पृष्ठ २९०–९१।

हम इस बातका भी यहाँ उल्लेख कर देना चाहते हैं कि जहाजोंके यहाँ पहुँचनेपर स्वास्थ्य-अधिकारीने अपना यह मत प्रकट किया था कि जहाजोंको यात्री उतारनेकी अनुमति बिना किसी खतरेके दी जा सकती है, और मुझे वैसा करने दिया जाये तो मैं अनुमतिपत्र दे दूँगा। परन्तु इसपर उसे मुअत्तिल कर दिया गया और उसके स्थानपर आप नियुक्त कर दिये गये।

यह भी एक तथ्य है कि पहले तो इस प्रश्नपर श्री एस्कम्बने डा० मैकेंजी और डा० ड्यूमासे बातचीत की और फिर उन्होंने आपको सुझाया (जैसा कि उन्होंने स्वयं इस पत्रके लेखकको बतलाया है) कि आप उनको बुलाकर यात्री उतारनेकी अनुमति देनेसे इनकार करनेके विषयमें उनकी सम्मति ले लें।

आपके आज्ञाकारी सेवक,
(हस्ताक्षर) गुडरिक, लॉटन ऐंड कुक

(परिशिष्ट थ)

नकल

डर्बन
जनवरी ८, १८९७

सेवामें
माननीय उपनिवेश-सचिव
मैरित्सबर्ग

श्रीमन्,

हम नम्रतापूर्वक निम्नलिखित हकीकत आपके ध्यानमें लाना चाहते हैं:

हम *कूरलैंड* जहाजके मालिक और *नादरी* जहाजके मालिकोंके प्रतिनिधि हैं। ये दोनों जहाज गत ३०[1] नवम्बरको बम्बईसे चले और गत मासकी १८ तारीखको क्रमशः ५-३० बजे सायं और २ बजे दोपहर यहाँ पहुँचे थे। इन दोनोंपर सम्राज्ञीके क्रमशः २५५ और ३५६ भारतीय प्रजाजन थे।

अगले दिन प्रातःकाल सरकारने एक *असाधारण गज़ट* प्रकाशित किया, जिसमें गवर्नरकी एक घोषणा निकालकर बम्बईको छूत-रोग-ग्रस्त बन्दरगाह घोषित किया गया था।

१. देखिए पादटिप्पणी, पृष्ठ २८६।

इन दोनों जहाजोंके पास स्पष्ट प्रमाणपत्र मौजूद थे कि यहाँ पहुँचने पर, और सारी यात्रामें, इनमें स्वस्थता रही। फिर भी इस बन्दरगाहके स्थानापन्न स्वास्थ्य-अधिकारीने इन दोनोंको यात्री उतारनेका अनुमतिपत्र देने और वैसा करनेके कारण बतलानेसे भी इनकार कर दिया। परन्तु हमारा खयाल है कि हमें मुख्य उपसचिवके गत मासकी २४ तारीखके इस तारसे वे कारण मालूम हो गये हैं: "डाक्टरोंकी समितिने सरकारको सलाह दी है कि गिल्टीवाले प्लेगकी छूतके चिह्न प्रकट होनेका समय कभी-कभी बारह दिन तक होता है। इसलिए छूत लगनेकी समस्त सम्भावनाएँ नष्ट कर देनेके पश्चात् सूतकका समय इतने दिन होना चाहिए। उक्त समितिने यह सिफारिश भी की है कि यात्रियों और उनके कपड़ोंका औषधियों द्वारा पूरा-पूरा शोधन कर दिया जाये और सब पुराने चिथड़े तथा मैले कपड़े जला डाले जायें। सरकारने समितिकी रिपोर्टको स्वीकार कर लिया है और स्वास्थ्य-अधिकारीको हिदायत दी है कि वह इसके अनुसार अमल करे और जहाजोंको यात्री उतारनेकी अनुमति तबतक न दे जबतक कि उसे यह निश्चय न हो जाये कि इस रिपोर्टकी सब शर्तें पूरी हो गई हैं।"

जहाज गत मासकी १८ तारीखसे २८ तारीख तक बन्दरगाहके बाहर लंगर डालनेकी जगह खड़े रहे। परन्तु औषधियों द्वारा उनका शोधन करनेकी कोई कार्रवाई नहीं की गई। और हमारा खयाल है कि २९ तारीखको डाक्टरोंकी समितिकी रिपोर्टके अनुसार शोधनका काम पूरा कर दिया गया।

शोधनमें इस विलम्बके कारण जहाजोंके मालिकोंका एक-सौ-पचास पौंड प्रतिदिनके हिसाबसे १,६५० पौंडका नुकसान हो गया।

मुख्य उपसचिवके २४ तारीखके तारमें दिये हुए इस आश्वासनपर भरोसा करके कि यदि जहाजोंको डाक्टरोंकी समितिकी रिपोर्टकी शर्तें पूरी करनेके लिए स्वास्थ्य-अधिकारीके हाथोंमें छोड़ दिया गया तो उन्हें यात्री उतारनेकी अनुमति उनके सब अधिकारों सहित दे दी जायेगी, जहाज उसके हाथोंमें छोड़ दिये गये। इससे (१) यात्रियोंकी तो यह भारी हानि हुई कि उनके सब बिछौने, बिस्तरे और अधिकतर कपड़े जला डाले गये, और उनमें से बहुतोंको कई रात तख्तोंपर सोना पड़ा; (२) हम मालिकोंकी यह भारी हानि हुई कि सूतकके दिनोंमें जहाजोंके रोक रखे जानेके कारण हमें प्रतिदिन १५० पौंडका अनावश्यक व्यय उठाना पड़ा; और (३) यात्रियोंके मित्रों और देशवासियोंकी यह भारी हानि हुई कि रोकके समय उन्हें उनके लिए बिछौनों, बिस्तरों, वस्त्रों और भोजनकी व्यवस्था करनी पड़ी।

गत कुछ दिनोंमें डर्बनमें उत्तेजित यूरोपीय नागरिकोंकी दो सभाएँ हुई हैं। उन्हें *नेटाल एडवर्टाइज़र*के कई अंकोंमें यह विज्ञापन निकलवाकर किया गया था :

"आवश्यकता है, डर्बनके एक-एक मर्दकी, एक सभामें हाजिर होनेके लिए — सोमवार, ४ जनवरीको, सायंकाल ८ बजे, विक्टोरिया काफेके बड़े कमरेमें। सभाका प्रयोजन : एक जुलूसका संगठन करना, जो जहाजघाटपर जाये और एशियाइयोंके उतारे जानेके विरुद्ध आवाज बुलन्द करे। हैरी स्पार्क्स, अध्यक्ष, प्रारम्भिक समिति।"

इन दोनों सभाओंमें उपस्थिति खूब थी। और जैसा कि ऊपरके विज्ञापनमें स्पष्ट बतलाया गया है, इस सभाका लक्ष्य कानूनके खिलाफ होनेपर भी डर्बनका टाउन-हाल ऐसी सभाओंके लिए खोल दिया गया।

हम मानते हैं कि यदि सभाका उद्देश्य कानून-सम्मत हो तो सम्राज्ञीकी प्रजाओंका पूरा अधिकार है कि वे ऐसी सभाओंके द्वारा अपनी शिकायतोंको जाहिर करें। परन्तु इनमें से पहली सभाके सम्बन्धमें हम आपका ध्यान ५ तारीखके *मर्क्युरी* और *नेटाल एडवर्टाइज़र*में प्रकाशित विवरणकी ओर खींचना चाहते हैं। उससे आपको ज्ञात होगा कि कुछ वक्ताओंके विपरीत घोषणा करनेपर भी, उसमें यह विचार प्रकट किया गया था कि यदि सरकार हमारी प्रार्थना न माने और यात्रियोंको उतार ही दिया जाये तो यात्रियोंके विरुद्ध या उनमें से कुछके विरुद्ध हिंसाका प्रयोग किया जाये।

परन्तु डा० मैकेंज़ीके एक भाषणके अंशोंकी ओर हम आपका ध्यान विशेष रूपसे खींचना चाहते हैं, क्योंकि ये सज्जन डाक्टरोंकी उस समितिके भी सदस्य थे जिसकी रिपोर्टके अनुसार जहाजोंको सूतकमें रखा गया; और इनके विषयमें यह कल्पना की जा सकती है कि इन्होंने इस समितिके सदस्यकी हैसियतसे अपनी सम्मति न्याय और निष्पक्षतासे दी होगी। इन्होंने उक्त भाषण ऐसी ही एक सभामें निम्न प्रस्ताव पेश करते हुए दिया था :

"सभामें उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति इस प्रस्तावसे सहमत है, और इसे क्रियान्वित करनेमें सरकारको सहायता देनेके लिए अपने-आपको पाबन्द करता है कि उसका देश उससे जो चाहेगा सो वह करेगा। और इस दृष्टिसे, यदि आवश्यकता होगी तो उसे जब कभी कहा जायेगा, वह बन्दरगाहपर जानेको तैयार रहेगा।"

हमारे द्वारा नियुक्त एक आदमीने डा० मैकेंजीके भाषणकी जो रिपोर्ट ली थी उसके कुछ उद्धरण निम्नलिखित हैं :

"श्री गांधीने हमारे नामको भारतकी नालियोंमें घसीटा और वहां हमारी ऐसी काली और मैली तसवीर खींची कि जैसी उसकी अपनी खाल है (हँसी और तालियाँ)।"

"हम श्री गांधीको बतला देंगे कि नेटाल उपनिवेशमें आना, यहां जो भी कुछ अच्छा और नेक है उसका फायदा उठाना, और फिर यहाँसे जाकर जिनके आतिथ्यका उपभोग वह कर रहा था उन्हींको गालियां देना, कैसा होता है। हम श्री गांधीको बतला देंगे कि उसकी कार्रवाइयोंसे हमें पता लग गया है कि कुलियोंको जो-कुछ दिया गया था उससे वे सन्तुष्ट नहीं है, और वह उनके लिए कुछ और लेना चाहता है। और सज्जनो, वह जरूर कुछ और पायेगा (हँसी और तालियां)।"

"अमेरिकाने कुछ चीनियोंको वापस चीन भेज दिया था और ग्लासगो तकके कुछ लोगोंको वापस भेज दिया था, क्योंकि यांकी [अमरीकी] लोग उन्हें अच्छा नहीं समझते थे। हम भी बहुत-से रोगी, प्लेगवाले लोगोंको वहीं भेज देंगे जहांसे वे आये हैं।"

डा० मैकेंज़ीने जो प्रस्ताव पेश किया था उसपर तुरन्त बोलते हुए उन्होंने कहा :

"तो, आपको पता लग गया कि हमें बन्दरगाहपर क्यों जाना है (तालियां)। मुझे आशा है कि जब आवश्यकता पड़ेगी तब आप सब वहां पहुँच जायेंगे। इसमें ऐसी कोई बात नहीं जिसके लिए आपमें से किसीको शरमिन्दा होना पड़े। जिस किसीमें कुछ भी मरदानगी हो उसे उसका देश जब भी कहे तभी उसके लिए कुछ कर गुजरनेको तैयार रहना चाहिए।"

"परन्तु हमें जो हालात झिलमिलाते दिखलाई दे रहे हैं उनसे यदि यह मालूम पड़ता हो कि भारतीय लोग यूरोपीयोंकी बराबरीपर खड़े होनेवाले हैं, तो वैसा केवल एक तरीकेसे हो सकता है — वैसा केवल संगीनोंकी नोकके बलपर किया जा सकता है" (तालियां)।

"हम, जो आज रात यहां इकट्ठे हुए है, अपने मानकी रक्षाके लिए, और उपनिवेशमें अपने बच्चोंके लिए वे स्थान सुरक्षित करनेके लिए, जो आज भी हम गांधीपन्थियोंके बच्चों और वारिसोंको सौंप चुके हैं, किसी भी हद तक आगे बढ़नेको तैयार हैं" (तालियां)।

"मैं इस सभामें बहुत जल्दीमें आ गया हूं। परन्तु मेरा खयाल है कि मैंने मुख्य-मुख्य बातें आपके सामने पेश कर दी हैं। और उनका मतलब यह है कि हम इस मामलेमें सरकारका साथ देंगे, हमको भरोसा है कि सरकार हमारी सहायता करेगी, और उन दोनों जहाजोंमें से एक भी व्यक्तिको डर्बनके बन्दरगाहमें नहीं उतरने दिया जायेगा" (जोरकी तालियां)।

दूसरी सभा ७ तारीखको हुई थी। उसकी कार्रवाईके निम्न अंश हम आजके *मर्क्युरी*से उद्धृत कर रहे हैं :

श्री जे० एस० वाइली : "अभी किसीने कहा है कि जहाज डुबा दो, और मैंने एक मल्लाहको यह कहते सुना था कि जो कोई जहाजपर गोला छोड़ेगा उसे मैं एक महीनेकी तनख्वाह दे दूंगा (तालियाँ और हँसी)। आपमें से क्या हर कोई इस कामके लिए अपनी एक महीनेकी तनख्वाह निछावर करनेको तैयार है?" ('हाँ हाँ' और 'सब सब'की आवाजें)।

श्री साइक्स : "आपको अपना समय और कमाई, दोनोंकी कुर्बानी करनेके लिए अपना मन पक्का कर लेना चाहिए। आपको अपना काम छोड़कर प्रदर्शनमें चलनेके लिए तैयार रहना चाहिए। सब कुछ संगठित ढंगसे होना चाहिए — आपको अपने नेताओंकी आज्ञा माननी चाहिए। इसका कोई फायदा नहीं होगा कि हरएक आदमी एक-दूसरेको दूर ठेलता रहे (हँसी)। आपको आज्ञाका पालन कठोरतासे करना चाहिए। आज्ञा सुनते ही पंक्ति बाँध लीजिए और वही कीजिए जो आपसे कहा जाये (तालियाँ, हंसी और 'फिर कहो' की आवाजें)। उन्होंने प्रस्ताव पेश किया : "हम भारतीयोंके बन्दरगाहपर आते ही प्रदर्शन करते हुए जहाज-घाटपर पहुँचें, परन्तु हरएक आदमी नेताओंकी आज्ञा माननेका पाबन्द रहेगा" (तालियाँ)।

डा० मैकेंजी : "जब हम पिछली बार यहाँ जमा हुए थे तब स्थिति जितनी विकट थी उतनी अब नहीं रही। हम उसी रास्ते आगे बढ़ रहे हैं जो हमने तय कर लिया था। हम सरकारकी स्थिति अच्छी तरह जानते हैं। उसकी जितनी भी ताकत है उससे वह हमारी सहायता करनेको तैयार है। जहाँतक सरकारका सम्बन्ध है, उससे मुझे पूरा सन्तोष है। इस मामलेमें डर्बनके उच्च नागरिकोंसे सरकारकी पूर्ण सहमति है। इसलिए आपको ऐसा कोई खयाल नहीं करना चाहिए कि जिन सज्जनोंको निर्वाचकोंने इस समय शासककी स्थितिमें रख दिया है उनके साथ आपका विरोध या टक्कर तो नहीं हो जायेगी। वे उपनिवेशके साथ हैं। और यह बात बधाईके लायक है। परन्तु दुर्भाग्य से सरकारकी स्थिति ऐसी नहीं है कि वह भारतीयोंसे जोर देकर यह कह सके कि तुमको यहाँ नहीं उतरने दिया जायेगा, और तुम जिन जहाजोंसे आये हो उनसे ही तुम्हें वापस जाना पड़ेगा। ऐसा करना प्रायः असम्भव है; और इसलिए हमारी समितिने श्री एस्कम्बसे कह दिया है कि यह अवस्था बड़ी असंगत है। जब सरकारका तन्त्र उपनिवेशके असली फायदेकी बात और उसकी एकमात्र इच्छा पूरी नहीं कर सकता तो उपनिवेशके संविधानमें अवश्य कोई कमी होनी चाहिए (तालियाँ)। हमने उन्हें बता दिया है कि उपनिवेशी आग्रह रखेंगे कि यह हालत मिटाई जाये और सरकारकी स्थितिको इस तरह बदला

जाये कि वह देशकी इच्छाओं और आवश्यकताओंको पूरा कर सके। श्री एस्कम्ब हमसे सहमत हैं और आपको मालूम ही है कि हालातका तुरन्त सामना करनेके लिए क्या किया जा रहा है। सरकारसे जो कुछ हो सकता है वह कर रही है; और मुझे आशा है कि अगले दो-एक दिनमें उपनिवेश भरमें जो भी सभा होगी उसमें एकमतसे संसदका अधिवेशन तुरन्त ही बुलानेकी इच्छा प्रकट की जायेगी। डर्बनके मर्द इस विषयमें सर्वथा एकमत हैं। मैंने कहा है 'डर्बनके मर्द' — क्योंकि इस जगहके आसपास कुछ बूढ़ी औरतें भी चक्कर काट रही हैं ('सुनो सुनो' की आवाज और हँसी)। और अखबारोंकी आड़में कलम थाम कर बैठे हुए लोग कैसे हैं यह तो हम अखबारोंके कुछ अग्रलेखोंकी ध्वनिसे ही जान ले सकते हैं। जो लोग इस किस्मकी चीजें लिखते हैं वे मानते हैं कि नागरिकोंको पता ही नहीं, सही क्या है। बात यह है कि जो सही है सो करनेकी हिम्मत ही उन लोगोंमें नहीं है। उसे करनेमें थोड़ी जोखिम जो उठानी पड़ती है (तालियाँ)। यदि इस सभामें भी कोई वैसी 'बूढ़ी औरतें' होतीं तो वे उस समय जरूर उठकर खड़ी हो गई होतीं जब कि सभापतिने प्रस्तावके विरोधियोंको हाथ उठानेको कहा था। हम मान लें कि वैसी कोई औरतें यहाँ नहीं हैं। हम ऐसे लोगोंसे कोई वास्ता नहीं रखना चाहते।

"यह प्रस्ताव नेटाल उपनिवेशके अच्छे सलूकसे सम्बन्ध रखता है। एकके अलावा इन जहाजों परके सब आदमी जब भारतसे चले थे तब उन्हें ऐसा कोई सन्देह नहीं था कि उनका इस उपनिवेशके निवासियोंकी हैसियतसे अच्छा स्वागत नहीं किया जायेगा। अलबत्ता, एक यात्रीके बारेमें वाजिब अपेक्षा की जा सकती है कि उसे वैसा सन्देह करनेका कारण रहा होगा ("गांधी" की आवाजें, हँसी और हो-हल्ला)।

"मैं भारतीयोंके बारेमें जो कुछ भी कह रहा हूँ वह इस भलेमानुस पर लागू नहीं होता ("भलामानुस नहीं" की आवाज)। हमने नियम बना दिया है, और अब एक भी भारतीयको यहा उतरने नहीं दिया जायेगा।

"हमें अधिकार है कि हम दरवाजा बन्द कर दें और हम उसे बन्द करनेका इरादा रखते हैं। जो लोग इस समय सूतकमें हैं उनके साथ भी हम न्यायका बरताव करेंगे — हम उस एक आदमीके साथ भी न्यायका ही बरताव करेंगे, परन्तु मुझे आशा है कि इन दोनों बरतावोंमें अन्तर स्पष्ट होगा (हँसी)। जहाँतक सांविधानिक और अन्तर्राष्ट्रीय मामलोंका प्रश्न है, उन्हें हम सरकारके लिए छोड़ देनेको तैयार हैं। परन्तु एक सम्बन्ध निजी भी है, और उसे छोडनेके लिए मैं तैयार नहीं हूँ। वह सम्बन्ध है, अपने प्रति और शेष उपनिवेशके प्रति अपने कर्तव्यका। जबतक

कुछ सफलता न मिले, तबतक आन्दोलन बन्द करनेका हमारा कोई इरादा नहीं। इस लक्ष्यको सामने रखकर, मुझे आशा है, डर्बनके नागरिक प्रत्येक समय बन्दरगाह-पर जाने और कहा जानेपर प्रदर्शन करनेके लिए उसी प्रकार तैयार रहेंगे जिस प्रकार वे पहले रहते आये हैं। जो लोग इन जहाजोंसे आये हैं, उन्हें हम बता देंगे कि नेटालके उपनिवेशियोंका आशय क्या है। एक लक्ष्य हमारा और भी है। वह तभी पूरा होगा जब आप वहाँ पहुँच जायेंगे और नेताओंकी हिदायतें सुन लेंगे (हँसी और तालियाँ)। आपमें से हरएकको एक-एक नेताके साथ हो जाना चाहिए। उसीसे आपको पता लगेगा कि आपको कब क्या हिदायत मिलनेवाली है। उस हिदायतका मतलब यह है कि आप अपने औजार पटक कर सीधे बन्दरगाह-पर पहुँच जायें (तालियाँ)। जब आप जहाज-घाटपर पहुँच जायेंगे तब हुक्मके पाबन्द हो जायेंगे — जो कोई पता लगानेका कष्ट करेगा उसे पता लग जायेगा। तब हमको ठीक वही करना होगा जो हमारा नेता कहेगा, यदि वह कुछ कहे तो (हँसी)। दो-एक दिनमें कोई नई बात होगी। तब फिर आपसे एक और सभामें सलाह लेनेकी आवश्यकता पड़ेगी। हम अपनी-अपनी राय या रास्तेपर चलना नहीं चाहते। हम एकमात्र जनताके प्रतिनिधि होकर रहना चाहते हैं (तालियाँ)।

"सभापतिको आशा है कि आप अपनी बातपर दृढ रहेंगे। ऐसा न हो कि अभी तो आप एकमत रहें और जब काम करनेकी जरूरत पड़े तब आपमें से केवल एकतिहाई ही दिखलाई पड़ें। जहाँतक जहाजोंपर के भारतीयोंका प्रश्न है वहाँतक प्रदर्शन शान्त रहेगा — और रही उस एक आदमीकी बात, उसका फैसला नेताओंपर और आपपर छोड़ दिया जायेगा। नेता और आप उसके साथ वहीं भुगत लेंगे (जोरकी तालियाँ और हँसी)। अब हम चाहते हैं कि आप लक्ष्यकी पूर्तिके लिए अपना संगठन कर लीजिए। कुछ लोगोंने कहा है कि हमारे पास जो सौ-पचास आदमी नौकरी करते हैं हम उन सबको ले आयेंगे। अब हमें ऐसे स्वयंसेवकोंकी जरूरत है जो इतने आदमियोंका नेतृत्व कर सकें और उनकी जिम्मेवारी अपने सिर ले सकें। (एक आवाज: 'शनिवारको एक बार परख लीजिए')।

"श्री वाइलीने कहा है कि लोग अपना नाम बतलाकर उन व्यक्तियोंकी सूची भी साथ दे दें, जो कि उनके साथ काम करने और उनकी आज्ञा माननेको तैयार रहेंगे, तो संगठन करने और प्रदर्शनको नियमित करनेमें सुगमता हो जायेगी। इससे सभापतिजीको टोली-नेताओंके नाम मालूम हो जायेंगे और वे यह निश्चय कर सकेंगे कि हिदायत किस-किसको भेजी जाये, और वे सब उसकी सूचना अपनी-अपनी टोलीको दे देंगे। सचमुच तो प्रधान नेता केवल एक हैं — श्री स्पार्क्स; परन्तु वे अकेले

५,००० आदमियोंसे बात नहीं कर सकते, इसलिए सूचना पहुँचानेके इस माध्यमकी जरूरत है (एक आवाज — अब निकला कामका ढंग)।"

इस उपनिवेशमें सम्राज्ञीके प्रतिरक्षा-मन्त्री हैं श्री एस्कम्ब। एक समितिने उनके साथ मुलाकात की थी। प्रतीत होता है कि उस मुलाकातका जो हाल सभामें सुनाया गया उससे लोगोंको प्रदर्शन संगठित करनेके लिए बड़ा प्रोत्साहन मिला। इस समितिकी तरफसे सभामें निम्न हाल पेश किया गया था :

"श्री एस्कम्बने आज प्रातःकाल दो घंटे तक समितिसे बातचीत करनेकी कृपा की। बातचीत अच्छी तरह समझदारीके साथ हुई। उन्होंने बतलाया कि 'सरकारका एक-एक आदमी आपके साथ है और वह इस कामको प्रत्येक उपायसे यथासम्भव शीघ्र करना चाहती है। परन्तु आपको ध्यान रखना चाहिए कि ऐसा कोई काम न हो जिससे हमारे हाथ बँध जायें। अड़ियल घोड़ेको मौतके मुँहमें समा जाने तक एड लगाते रहना एक बात है, और चलते घोड़ेको एड़ लगा-लगा कर मार डालना बहुत भिन्न बात है।' इसपर समितिवालोंने कहा : 'यदि सरकारने कुछ न किया तो डर्बनवालोंको स्वयं कुछ करना और भारी संख्यामें बन्दरगाहपर जाना पड़ेगा। और देखना पड़ेगा कि क्या-कुछ किया जा सकता है।' यह कहकर उन्होंने इसके साथ इतना और जोड़ दिया : 'हम मानते हैं कि सरकारके प्रतिनिधि और उपनिवेशके अच्छे अधिकारीकी हैसियतसे आप हमारा विरोध करनेके लिए सेनाका भी प्रयोग करेंगे?' श्री एस्कम्बने कहा : 'हम ऐसा कुछ नहीं करेंगे। हम आपके साथ हैं; और आपका विरोध करनेके लिए हम ऐसा कुछ नहीं करेंगे। परन्तु यदि आप हमको ऐसी स्थितिमें डाल देंगे तो शायद हमें उपनिवेशके गवर्नरके पास जाना पड़े और उससे यह प्रार्थना करनी पड़े कि उपनिवेशका शासन-सूत्र आप अपने हाथमें ले लीजिए, क्योंकि अब हम शासन चलानेमें असमर्थ हैं। आपको कोई और आदमी तलाश करने होंगे' (होहल्ला)।"

प्रतिरक्षा-मन्त्रीने यदि सचमुच ही ये शब्द कह दिये हों तो उनपर कोई सम्मति प्रकट करना हमारा काम नहीं है। परन्तु हम सादर आपका ध्यान उस भारी खतरेकी ओर खींचना चाहते हैं जो कि भड़के हुए लोगोंकी बहुत बड़ी भीड़को बन्दरगाहकी तरफ जाने देनेसे खड़ा हो सकता है। इन लोगोंका इरादा पहले कितना ही शान्त क्यों न हो, परन्तु सभामें वक्ताओंके भाषण तथा उनपर की हुई टिप्पणियां सुन लेनेके पश्चात् उत्तेजित हुए इन लोगोंके प्रदर्शनके उद्देश्यों और दोनों जहाजोंके यात्रियोंकी सुरक्षाके सम्बन्धमें किसीको भी गहरी चिन्ता हुए बिना नहीं रह सकती।

हम आपसे सादर निवेदन करना चाहते हैं कि हमने इस उपनिवेशके कानूनोंके सामने सिर झुकानेवाले नागरिक होनेके नाते, भारी नुकसान उठाकर भी, सरकारकी सब शर्तोंको खुशी-खुशी पूरा कर देनेका यत्न किया है; और वैसा कर चुकनेके पश्चात, इजाजत मिलनेपर हम अपने जहाजोंके यात्रियोंको बन्दरगाहके घाटपर उतारनेके हकदार हो गये हैं। इतना ही नहीं, वैसा करते हुए, हम अपने यात्रियों और सम्पत्तिके लिए, लोगोंकी गैर-कानूनी कार्रवाइयोंसे सरकारी संरक्षण पानेके भी हकदार हैं — वे लोग कोई भी क्यों न हों। परन्तु सम्भव है कि इस सम्बन्धमें सरकारकी कार्रवाईके कारण, पहलेसे विद्यमान उत्तेजना और भी बढ़ जाये, इसलिए अच्छा यह होगा कि यात्रियोंको ऐसे चुपचाप उतार दिया जाये कि जनताको इसका पता ही न चले और फलतः सरकारको कोई कार्रवाई न करनी पड़े। इसके लिए हम सरकारके साथ सब आवश्यक सहयोग करनेको तैयार हैं। यदि हमारा यह सुझाव आपको पसन्द हो तो हमें आपका उत्तर पाकर और यह जानकर प्रसन्नता होगी कि इसे क्रियान्वित करनेके लिए हमें क्या करना चाहिए।

आपके आज्ञाकारी सेवक,
(हस्ताक्षर) दादा अब्दुल्ला ऐंड कम्पनी

(परिशिष्ट द)

नकल

डर्बन
जनवरी ९, १८९७

सेवामें
माननीय उपनिवेश-सचिव
मैरित्सबर्ग

श्रीमन्,

कल हमने आपको जो पत्र लिखा था और जिसमें हमने आपकी सेवामें निवेदन किया था कि प्रदर्शनकी कानून-सम्मतता और *कूरलैंड* तथा *नादरी* जहाजोंके यात्रियोंके उतरनेपर उनकी सुरक्षाके सम्बन्धमें हम इतना अधिक भयभीत किन कारणोंसे हो रहे हैं, उसीके सिलसिलेमें, हम आपकी सेवामें आज प्रातःकालके *मर्क्युरी* पत्रका निम्न अनुच्छेद प्रस्तुत कर रहे हैं: "जिस घोषणापत्रपर डर्बनके मालिकोंने

इतनी बड़ी संख्यामें हस्ताक्षर किये हैं उसका शीर्षक यह है : उन सदस्योंके नामोंकी व्यापार या व्यवसायसह सूची, जो बन्दरगाहपर जाने, यदि आवश्यकता हो तो एशियाइयोंको उतरनेसे जबरदस्ती रोकने और अपने नेताओंकी किन्हीं भी आज्ञाओंको माननेके लिए तैयार हैं।"

हम आपका ध्यान *मर्क्युरी* पत्रके उसी अंककी ओर दिलाकर आपको यह बतलाना चाहते हैं कि "*द लीडर्स*" [नेतागण] शीर्षकके नीचे आपको यह समाचार मिलेगा कि उस प्रदर्शनमें भाग लेनेके लिए रेलवे कर्मचारी श्री स्पार्क्सके सेनापतित्व और श्री वाइली तथा श्री ऐब्राहमकी कप्तानीमें एकत्र हो गये हैं; और डा० मैकेंजी प्रदर्शनके समय मकानोंकी छपाई और ईंटोंकी चिनाई करनेवाले राजोंकी टुकड़ीके नायक रहेंगे। ये डा० मैकेंज़ी डॉक्टरोंकी उस समितिके भी सदस्य थे जिसकी सलाहसे जहाजोंको सूतकमें रखा गया है।

यदि सरकार हमें यह आश्वासन दे देगी कि सरकारी नौकरोंको प्रदर्शनमें किसी भी प्रकारका भाग लेनेसे रोक दिया जायेगा तो हमें प्रसन्नता होगी।

आपके आज्ञाकारी सेवक,
(हस्ताक्षर) दादा अब्दुल्ला ऐंड कम्पनी

(परिशिष्ट ध)

नकल

उपनिवेश-सचिवका कार्यालय
नेटाल, पीटरमैरित्सबर्ग
जनवरी ११, १८९७

सी० ओ० २५७/१८९७

महाशय,

मुझे आपके इसी महीनेकी ८ और ९ तारीखोंके पत्रोंका उत्तर देनेकी हिदायत हुई है।

आपका यह सुझाव कि यात्रियोंको चुपचाप, जनताको पता लगने दिये बिना, उतार दिया जाये, अमलमें लाना असम्भव है। सरकारको पता चला है कि आपने बन्दरगाहके कप्तानसे अनुरोध किया है कि जहाजोंको खास हिदायतोंके बिना बन्दरगाहमें न लाया जाये। आपकी इस कार्रवाई और आपके इन दोनों पत्रोंसे, जिनका उत्तर दिया जा रहा है, प्रकट होता है कि आप भारतीय यात्रियोंके उतरनेके विरुद्ध

उपनिवेश-भरमें विद्यमान तीव्र भावनाओंसे परिचित हैं, और उनको इन भावनाओंकी विद्यमानता और तीव्रताकी सूचना देनी ही चाहिए।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
(हस्ताक्षर) सी० बर्ड,
मुख्य उपनिवेश-सचिव

श्री दादा अब्दुल्ला ऐंड कं०,
डर्बन।

(परिशिष्ट न)

नकल

डर्बन
जनवरी १०, १८९७

सेवामें
माननीय हैरी एस्कम्ब

प्रिय महोदय,

हमारी आपके साथ कल जो मुलाकात हुई थी उसके परिणामकी सूचना हमने अपने मुअक्किल दादा अब्दुल्ला ऐंड कं० को दे दी है। इस मुलाकातमें आपने श्री वाइलीके उस सार्वजनिक वक्तव्यका प्रतिवाद कर दिया था जो कि उन्होंने प्रदर्शन-समितिके साथ हुई आपकी मुलाकातके सम्बन्धमें दिया था। और श्री वाइलीने जो शब्द आपके मुखसे निकले हुए बतलाये थे उन्हें आपने गलत बतलाकर कहा था कि आपके कथनका भाव यह था: कि, यदि मन्त्री लोग डर्बनमें दंगेको दबानेमें असमर्थ रहें तो वे अपने पदपर रहनेके अयोग्य सिद्ध हो जायेंगे, और त्यागपत्र दे देंगे।

श्री सेटनके साथ वार्तालापमें आपने यह भी बतलाया था कि निम्न बातोंको सरकार मानती है:

१. सूतककी आवश्यकताएँ पूरी हो चुकनेपर *कूरलैंड* और *नादरी* जहाजोंको यात्री उतारनेकी इजाजत अवश्य दे देनी चाहिए।
२. यह इजाजत मिल जानेपर जहाजोंको अधिकार हो जायेगा कि वे अपने यात्री और माल चाहें तो स्वयं घाटपर आकर उतार दें, चाहें छोटी नौकाओं द्वारा।
३. दंगाइयोंकी जोर-जबरदस्तीसे यात्रियों और मालकी रक्षा करनेकी जिम्मेवारी सरकारकी है।

दूसरी ओर, श्री लॉटनने आपको बतलाया था कि इस उपनिवेशमें भारतीयोको यूरोपीयोके साथ-साथ रहना पड़ता है, इसलिए उनके मुअक्किलोंकी इच्छा है कि यात्रियोंको उतारते हुए यथाशक्ति ऐसा कोई काम न किया जाये जिससे कि भारतीयोंके विरुद्ध कुछ यूरोपीयोंकी पहले ही भड़की हुई भावनाएँ और भी भड़क जायें। और इसीलिए, उन्हें निश्चय है कि, उनके मुअक्किल यात्रियोंका उतारना उपयुक्त समय तक स्थगित रखनेमें सरकारके साथ पूरा सहयोग करेंगे, जिससे कि सरकार इतने समयमें उचित प्रबन्ध कर सके।

हमें आपको यह बतला देनेकी हिदायत की गई है कि सूतक की मियाद आज समाप्त हो जाती है और साधारण अवस्थाओंमें हमारे मुअक्किल आज ही उतारनेका काम शुरू कर देते, परन्तु यदि यह काम स्थगित रखनेके कारण होनेवाला नुकसान — जो कि १५० पौंड प्रतिदिन है — उठानेके लिए सरकार तैयार हो तो वे सरकारकी सहूलियतके लिए उसे उचित समय तक स्थगित कर देनेमें सहमत हैं।

हमें आशा है कि आप इस सुझावके औचित्यको समझेंगे और सरकार इसे मान लेगी।

हम आपका ध्यान इस तथ्यकी ओर भी खींचते हैं कि जिन संकल्पित दंगोको "प्रदर्शन" बतलाया जा रहा है उनके संगठनमें सम्राज्ञीकी स्वयंसेवक-सेनामें कमिशन पाये हुए बहुत-से सज्जन भी भाग ले रहे हैं, और वे समाचारपत्रों तथा प्रदर्शन-पटोंके द्वारा अपना विज्ञापन इन संकल्पित दंगोके विभाग-सेनापतियोंके रूपमें होने दे रहे हैं। इसके अतिरिक्त, कप्तान स्पार्क्सने इन्हीं साधनोंके द्वारा अपने-आपको इन प्रस्तावित दंगोका प्रधान सेनापति विज्ञापित किया है।

हम सादर, परन्तु अति अनिच्छापूर्वक, अपनी यह सम्मति प्रकट कर देना चाहते हैं कि यदि इस संगठनको मिथ्या आशाओंके सहारे बढ़ने देनेके स्थानपर, आरम्भमे ही, गैर-कानूनी घोषित कर दिया जाता तो इस समय यह उत्तेजना दिखलाई न पड़ती और यात्रियोको यथासमय उतार देनेमें कोई कठिनाई न होती। और क्योंकि अब यह घोषणा सार्वजनिक रूपसे कर दी गई है कि इस संगठनके साथ, या कमसे कम इसके उद्देश्योंके साथ, सरकारकी सहानुभूति है, और सरकारी अफसरोके सेनापतियों तथा सरकारी कर्मचारियोंके सिपाहियोंमें सम्मिलित हो जानेके कारण इसकी जाहिरा पुष्टि भी हो गई है, इसलिए इसपर जनताका विश्वास जम गया है। यह सब न होता तो जनता इसपर विश्वास कभी न करती।

आपके आज्ञाकारी सेवक,
(हस्ताक्षर) गुडरिक, लॉटन ऐंड कुक

(परिशिष्ट प)

नकल

महान्यायवादीका कार्यालय
पीटरमैरित्सबर्ग, नेटाल
जनवरी ११, १८९७

प्रिय महाशय,

मुझे आपका डर्बन-क्लबसे लिखा हुआ १० जनवरी १८९७का पत्र मिला।

मैंने तो समझा था कि श्री लॉटन और मेरी मुलाकात 'निजी भेंट' ही मानी जायेगी। श्री लॉटनने अपने ९ तारीखके पत्रमें यही शब्द लिखे थे।

आपने अपने पत्रमें जो-कुछ श्री लॉटनके और मेरे द्वारा कहा गया बताया है मैं उसे सही नहीं मानता।

आपका सच्चा,
(हस्ताक्षर) हैरी एस्कम्ब

श्री गुडरिक, लॉटन ऐंड कुक,
डर्बन

(परिशिष्ट फ)

नकल

डर्बन
जनवरी १२, १८९७

सेवामें
माननीय हैरी एस्कम्ब

प्रिय महोदय,

हमारे १० तारीखके पत्रके उत्तरमें आपका ११ तारीखका पत्र हमें मिला। आपने लिखा है:

"मैंने तो समझा था कि श्री लाटन और मेरी मुलाकात 'निजी भेंट' ही मानी जायेगी। श्री लाटनने अपने ९ तारीखके पत्रमें यही शब्द लिखे थे।

"आपने अपने पत्रमें जो-कुछ श्री लॉटनके और मेरे द्वारा कहा गया बताया है मैं उसे सही नहीं मानता।"

इसके उत्तरमें हम निवेदन करना चाहते हैं कि यह तो बिलकुल ठीक है कि श्री लॉटनने अपने ९ तारीखके पत्रमें आपसे 'निजी भेंट' की ही प्रार्थना की थी, परन्तु हम आपका ध्यान इस तथ्यकी ओर खींचना चाहते हैं कि बातचीत जब कुछ मिनट ही चली थी उस समय आपने श्री लॉटनको यह याद रखनेके लिए कहा कि जो कुछ आप कहेंगे उसका एक-एक शब्द मैं अगले दिन अपने मन्त्रिमण्डलके साथियोंको बतला दूँगा। और आपने हमारे बीच जो बातें हुई थीं, उनमें से प्रत्येक बात हमारे मुअक्किलोंके सामने दुहरा देनेकी इजाजत भी उन्हें दे दी थी।

श्री लॉटनके निश्चय दिलानेपर हम जोर देकर कहना चाहते है कि मुलाकातमें जो बातचीत हुई थी उसका भाव हमने अपने १० तारीखके पत्रमें आपको ठीक-ठीक ही लिखा है। परन्तु आपसमें कोई गलतफ़हमी न रहे, इसके लिए आप हमारी जो-जो गलतियाँ समझते हों, वे बतला दें तो हमें प्रसन्नता होगी।

आपके आज्ञाकारी सेवक,

(हस्ताक्षर) गुडरिक, लॉटन ऐंड कुक

(परिशिष्ट ब)

नकल

डर्बन

जनवरी १२, १८९७

सेवामें

माननीय हैरी एस्कम्ब

महोदय,

हम मुख्य उपमंत्रिव द्वारा हस्ताक्षरित कलकी तारीखके एक पत्रकी प्राप्ति स्वीकार करते हैं। उसमें उन्होंने सूचना दी है कि उन्हें उपनिवेश-सचिवके नाम लिखे गये ८ और ९ तारीखोंके हमारे दो पत्रोंका उत्तर निम्न प्रकार देनेकी हिदायत हुई थी :

"आपका यह सुझाव कि यात्रियोंको चुपचाप, जनताको पता लगने दिये बिना, उतार दिया जाये, अमलमें लाना असम्भव है। सरकारको पता चला है कि आपने बन्दरगाहके कप्तानसे अनुरोध किया है कि जहाजोंको खास हिदायतोंके बिना बन्दरगाहमें न लाया जाये। आपकी इस कार्रवाई और आपके इन दोनों पत्रोंसे, जिनका उत्तर दिया

जा रहा है, प्रगट होता है कि आप भारतीय यात्रियोंके उतरनेके विरुद्ध उपनिवेश-भरमें विद्यमान तीव्र भावनाओंसे परिचित हैं, और उनको इन भावनाओंकी विद्यमानता और तीव्रताकी सूचना देनी ही चाहिए।"

भारतीय यात्रियोंके उतरनेके विरुद्ध डर्बनके एक विशेष वर्गमें जो भावना इस समय फैली हुई है उससे हम इनकार नहीं कर सकते। परन्तु, साथही, हमें अति आदरपूर्वक आपको यह बतला देना चाहिए कि इस भावनाको निरुत्साहित करनेके बदले सरकारने उन उपायोंसे प्रोत्साहित किया है, जिनका वर्णन हम अपने ८ और ९ तारीखोंके पत्रोंमें कर चुके हैं।

हमें आश्चर्य है कि आपने, हमारे ऊपर निर्दिष्ट पत्रो द्वारा आपके ध्यानमें लाये हुए निम्न तथ्योंका जिक्र तक नहीं किया:

१. कुछ लोगोंने डर्बनमें गैर-कानूनी उद्देश्योंसे सभाएँ कीं और वे अब भी कर रहे हैं। परन्तु सरकारने उन्हें रोकनेका कोई यत्न नहीं किया। २. डॉ० मैकेंजी, डाक्टरोंके बोर्डके सदस्य होते हुए भी, इन सभाओंके उद्देश्योंको बढ़ावा देनेवालोंके एक चुस्त अगुआ बने हुए हैं। ३. इनमें से कई सभाओंमें बतलाया गया है कि इन सभाओंके उद्देश्योंके साथ सरकारकी सहानुभूति है। ४. प्रतिरक्षा-मन्त्रीने इस संगठनकी समितिसे प्राय: कह दिया है कि सरकार दंगाइयोंके कानून-विरुद्ध उद्देश्योंकी सिद्धिके प्रयत्नोंमें कोई रुकावट खड़ी नहीं करेगी। ५. जो भी कोई हमारे यात्रियों और मालके विरुद्ध कोई कानून-विरुद्ध कार्रवाई करे उससे रक्षा पानेमें हमें सरकारकी सहायताका हक है। ६. दंगाइयोंने एक "घोषणा" निकाली है। हमने अपने ९ तारीखके पत्रमें उसका हवाला दे दिया था। ७. सरकारके रेलवे-कर्मचारी भी दंगाइयोंके साथ प्रदर्शनमें भाग ले रहे हैं। ८. दंगाइयोंके नेता कप्तान स्पार्क्स बने हुए हैं, और सम्राज्ञीके अनेक कमिशन-प्राप्त अफ़सर उनके नीचे मातहत-हैसियतोंमें काम कर रहे हैं। ९. हमने सरकारसे ऐसा आश्वासन देनेकी प्रार्थना की थी कि सरकारी कर्मचारियोंको इस प्रदर्शनमें भाग लेनेसे रोक दिया जाये। १०. हमने सुझाव दिया था कि यात्रियोंको उतारनेका काम उचित समय तक स्थगित कर दिया जाये, बशर्ते कि इसके कारण हमारा जो नुकसान हो उसे, अर्थात् १५० पौंड प्रतिदिनके व्ययको, सरकार उठा ले।

अब हम निवेदन करते हैं कि हमें इनमें से प्रत्येक शिकायत और प्रश्नका उत्तर दिया जाये। हम यह भी प्रार्थना करते हैं कि हमें बतलाया जाये कि सरकारने यात्रियोंके उतारेकी रक्षाके लिए अगर कोई उपाय किये हैं तो वे क्या हैं।

जहाजोंको बन्दरगाहसे परे लंगर डाले हुए आज २४ दिन हो गये। इसका खर्च हमपर १५० पौंड प्रतिदिन पड़ रहा है। इसलिए हमें विश्वास है कि आप हमें कल दुपहर तक पूरा उत्तर देनेके औचित्यको समझेंगे। हम आपको यह सूचना दे देना भी उचित समझते हैं कि यदि हमें ऐसा कोई उत्तर न मिला, जिसमें कि यह आश्वासन दिया गया हो कि हमें गत रविवारसे लगाकर १५० पौंड प्रतिदिनके हिसाबसे हरजाना दिया जायेगा, और हम यात्रियों तथा मालको उतार सकें इसलिए आप दंगाइयोंको दबानेके उपाय कर रहे हैं, तो हम सरकारके संरक्षणका भरोसा करके जहाजोंको बन्दरगाहमें लानेकी तैयारियाँ एकदम शुरू कर देंगे। हमारा सादर निवेदन है कि सरकार हमें यह संरक्षण देनेके लिए बाध्य है।

दंगाइयोंके उद्देश्योंके सम्बन्धमें सरकार किसी प्रकारके भ्रममें न रहे, इस प्रयोजनसे हम उस सूचनाकी एक नकल इस पत्रके साथ नत्थी कर रहे हैं, जिसपर कप्तान स्पार्क्सके हस्ताक्षर हैं और जो कप्तान वाइली और उनके अन्य मातहतोंने कल *कूरलैंड* और *नादरी* जहाजोंके कप्तानोंपर तामील की थी। (यह पत्र अन्यत्र दिया गया है[1])।

कप्तान स्पार्क्स द्वारा हस्ताक्षरित इस सूचनाका असर यह हुआ है कि कई यात्रियोंको डर लगने लगा है कि यदि हम इस बन्दरगाहपर उतरे तो जीवित नहीं बचेंगे।

इसी प्रकार हम उस स्मरणपत्रकी भी एक नकल इसके साथ नत्थी कर रहे है, जो कप्तान वाइलीका लिखा हुआ है और जो दोनों जहाजोंके कप्तानोंपर उनके दस्तखत करवानेके लिए तामील किया गया था और जिसके बारेमें उन्होंने बतलाया था कि इसमें लिखी हुई शर्तोंपर ही जहाजोंको यहाँ यात्री और माल उतारने दिया जायेगा। (परिशिष्ट बक)

अन्तमें हम अत्यन्त आदरपूर्वक पूछना चाहते हैं कि क्या सरकार इन उद्धत कार्रवाइयोंको यों ही चलने देगी? इनका नतीजा सम्राज्ञीके प्रजाजनोंकी मृत्यु नहीं तो भी उनके आहत हो जानेके अलावा और कुछ नहीं हो सकता।

आपके आज्ञाकारी सेवक,

(हस्ताक्षर) दादा अब्दुल्ला ऐंड कम्पनी

१. देखिए परिशिष्ट कक।

(परिशिष्ट बक)

नकल

मेट्रो होटल
डर्बन, नेटाल
[जनवरी ११, १८९७]

नादरी जहाजके कप्तान और बन्दरगाह प्रदर्शन-समितिके बीच तय हुई शर्तें: १. *नादरी* बन्दरगाहके बाहर लंगर डालनेकी जगह छोड़कर डर्बन बन्दरगाहमें नहीं आयेगा। २. नेटालवासी भारतीयोंकी पत्नियों और बच्चोंको उतरने दिया जायेगा। ३. जो भारतीय नेटालके पुराने निवासी हैं उनके विषयमें समितिको यह निश्चय हो जानेपर कि वे नेटाल लौट रहे हैं, उन्हें उतरने दिया जायेगा। ४. शेष सबको *कूरलैंड* जहाजमें सवार करा दिया जायेगा, और जो *कूरलैंड*में नहीं समा सकेंगे उनको *नादरी* जहाज वापस ले जायेगा। ४क. जिन भारतीयोंको *कूरलैंड* जहाज नहीं ले सकेगा उनको भारत वापस ले जानेके किराये मात्रकी पूरी रकम समिति जहाजको दे देगी। ५. इस बन्दरगाहपर भारतीयोंके जो कपड़े और अन्य सामान नष्ट कर दिया गया है उसकी केवल ठीक कीमत — अधिक नहीं — समिति भारतीयोंको दे देगी। ६. *नादरी*को बन्दरगाहसे बाहर लंगर डालनेके स्थानपर कोयला और खाना-पानी आदि लेनेमें, बन्दरगाहके भीतर लेनेकी अपेक्षा, जो अधिक व्यय पड़ेगा और उसे समिति द्वारा वह स्थान न छोड़ने देनेके कारण जो और व्यय उठाना पड़ेगा वह समिति *नादरी*को दे देगी।

(परिशिष्ट भ)

नकल

जहाज-घाट
जनवरी १३, १८९७
१०-४५ सुबह

श्री दादा अब्दुल्ला ऐंड कम्पनी

महाशय,

मुझे आपके कलकी तारीखके पत्रकी प्राप्ति स्वीकार करनेका मान प्राप्त हुआ है।

बन्दरगाहके कप्तानने जहाजोंको हिदायत कर दी है कि वे आज १२ बजे सीमा लाघकर भीतर आनेके लिए तैयार रहें।

व्यवस्थाकी रक्षाके सम्बन्धमें सरकारको उसकी जिम्मेदारीकी याद दिलाई जानेकी जरूरत नहीं है।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
(ह०) हैरी एस्कम्ब

(परिशिष्ट म)

नकल

महोदय,

मैंने देखा है कि *मर्क्युरी*के आज प्रातःकालके अंकमें आपने अपनी यह सम्मति प्रकट की है कि गत बुधवारको डर्बनमें उतरने और नगरमें से गुजरकर आनेकी श्री गांधीको जो सलाह दी गई थी वह ठीक नहीं थी। उनके तटपर आनेमें क्योंकि मेरा भी हाथ था, इसलिए यदि आप अपनी उक्त सम्मतिका उत्तर देनेका अवसर मुझे प्रदान करनेकी कृपा करेंगे तो मैं आपका अनुगृहीत हूंगा। अबतक कुछ भी कहनेका कोई अर्थ नहीं था, क्योंकि हालत यह थी कि यदि आप प्रदर्शन-कर्ताओंके कार्यक्रम और उनके उद्देश्य सिद्ध करनेके ढंगको नहीं मानते थे तो आपकी सुनने तकको कोई तैयार नहीं था। परन्तु अब क्योंकि प्रदर्शन-समिति टूट चुकी है और लोगोंकी भावनाएँ भड़काई नहीं जा रहीं, इसलिए मुझे आशा है कि मेरे पत्रपर शान्तिसे और विचारपूर्वक ध्यान दिया जा सकेगा। मैं आरम्भमें ही बतला दूँ, कि जब आन्दोलन चल रहा था तभी मैंने श्री गांधीकी भारतमें प्रकाशित उस पुस्तिकाकी एक प्रति प्राप्त कर ली थी, जिसके सम्बन्धमें हमें कुछ मास पूर्व रायटरका एक तार मिला था। इस कारण मैं आपके पाठकोंको विश्वास दिला सकता हूँ कि रायटरने न केवल उस पुस्तिकाका अर्थ गलत किया था, बल्कि इतना गलत किया था कि दोनोंको पढ़ चुकनेके पश्चात् मैं यह परिणाम निकाले बिना नहीं रह सकता कि तार लिखनेवालेने वह पुस्तिका पढ़ी ही नहीं थी। मैं यह भी कह सकता हूँ कि उस पुस्तिकामें ऐसी कोई बात नहीं है जिसपर कोई इस आधारपर आपत्ति कर सके कि वह असत्य है। जो कोई चाहे, वह पुस्तक लेकर उसे स्वयं पढ़कर देख सकता है। आपके पाठकोंको चाहिए कि वे ऐसा करें और अपनी सम्मति ईमानदारीसे दें कि क्या कोई बात उसमें असत्य है। क्या कोई बात उसमें ऐसी है जिसे किसी राजनीतिक विरोधीके लिए अपने पक्षके समर्थनमें कहना उचित न हो? दुर्भाग्यवश, रायटरने उसका जो वर्णन दिया उससे जनताका मन भड़क गया, और हालके झगड़ोंमें एक भी आदमी ऐसा नहीं रहा जो जनताको सत्य और असत्यका अन्तर बतला देता। उत्तेजनाके समय जिस-किसीने जो शब्द अपने मुखसे निकाले उन्हें दोहराकर मैं उसका जी दुखाना नहीं चाहता। मुझे निश्चय है कि शान्तिके समय उसे भी उनके कारण बहुत पछतावा होगा। परन्तु वस्तुस्थितिको स्पष्ट कर देनेके प्रयोजनसे मेरा कर्तव्य है कि मैं आपके पाठकोंको बतला दूँ कि जहाजसे उतरने और नगरमें

आनेसे पहले श्री गांधीकी स्थिति क्या थी। इसलिए, मैं किसीका भी नाम लिये बिना, केवल उन शब्दोंका भाव यहाँ देता हूँ जो कि सार्वजनिक रूपसे उनके विषयमें कहे गये थे: १. उसने हमारे नामको हिन्दुस्तानकी नालियोंमें घसीटा और हमारी ऐसी काली और मैली तस्वीर खींची कि जैसा उसका अपना चेहरा है। २. उसे किनारेपर उतर आने दो जिससे कि हमें उसपर थूकनेका मौका मिल सके। ३. हुक्म मिलते ही उसके साथ कुछ खास बरताव किया जाये और उसे कदापि नेटालमें उतरने न दिया जाये। ४. वह सूतकमें पड़े जहाजपर, सरकारके विरुद्ध मुकदमा चलानेके लिए यात्रियोंसे फीस वसूल करनेमें लगा हुआ है। ५. जब प्रदर्शन-समितिके प्रतिनिधि तीन सज्जन कूरलैंड जहाजपर गये तब वह ऐसे "सन्नाटे" में था कि उसे उठाकर जहाजके सबसे नीचेके गोदाममें ले जाकर रखना पड़ा। एक दूसरे मौकेपर उसे कूरलैंड की छतपर अत्यन्त खिन्न अवस्थामें बैठे पाया गया। उनके विरुद्ध कही गई बातोंके ये केवल कुछ नमूने हैं, परन्तु मेरे प्रयोजनके लिए इतने ही पर्याप्त हैं। यदि ये आक्षेप सत्य हो, दूसरे शब्दोंमें, यदि श्री गांधी सचमुच कायर, पर-निन्दक, दूर हटकर हमपर छुरीसे कायरतापूर्ण वार करनेवाले हों, यदि उन्होंने ऐसा कोई काम किया हो कि वे दूसरोंके द्वारा थूके जाने लायक हों, यदि वे ऐसे डरपोक हों कि सामने आकर अपने कियेका परिणाम भुगतनेको तैयार न हो, तो वे कानूनका सम्मानित पेशा करनेके लिए अयोग्य हैं। अथवा, जिस महान राजनीतिक प्रश्नमें उनके देशवासियोंकी हमारे जितनी ही रुचि है और जिसके सम्बन्धमें अपने राजनीतिक विचारोंका प्रचार करनेका उन्हें हमारे जितना ही अधिकार है, उसके आन्दोलनके नेता बननेके योग्य वे नहीं है। उनके भारत लौटनेसे पहले, मैं कामके प्रसंगमें कई बार उनसे मिल चुका था, और मुकदमेबाजीसे बचने तथा झगड़ोंको न्यायपूर्वक सुलझा देनेके लिए वे जैसी चिन्ता प्रकट करते थे उसका मुझपर बड़ा प्रभाव पड़ा था। यहाँतक कि, उनके विषयमें मेरी सम्मति बड़ी ऊँची बन गई थी। मैं यह सब जान-बूझकर लिख रहा हूँ, और मुझे तनिक भी सन्देह नहीं कि मेरे पेशेके और भी जो लोग श्री गांधीको जानते हैं वे मेरे इन शब्दोंका समर्थन करेंगे। एक बार एक बड़े न्यायाधीशने कहा था कि अदालतमें सफलता अपने विरोधीको नीचा दिखानेके प्रयत्नसे नहीं, बल्कि अपने आपको ऐसा योग्य बनानेसे होती है कि हम विरोधीके बराबर हो जायें या उससे ऊँचे उठ जायें। मेरा अभिप्राय यह है कि राजनीतिमें हमें अपने विरोधीके साथ न्याय करनेका, उसकी युक्तियोंका उत्तर युक्तियोंसे देनेका यत्न करना चाहिए, उसके सिरपर ईंट या पत्थर मारकर नहीं। मैंने देखा है कि कानूनी मामलों और एशियाई प्रश्न, दोनोंके विवादोंमें, श्री गांधी हमेशा

सम्मानास्पद विरोधीका व्यवहार करते हैं। उनके तर्क हमें कितने ही अप्रिय क्यों न लगें, वे औचित्यकी सीमाका उल्लंघन करके वार कभी नहीं करते। इस कारण हमने निश्चय किया था कि वे यद्यपि चाहते तो जहाजपर सप्ताह-भर रुके रह सकते थे, फिर भी अपने शत्रुओंको ऐसा कहनेका अवसर न दें कि वे डरकर "कूरलैंड" जहाजमें गये हैं; या, वे चोरकी तरह रातको छिपकर डर्बनमें न घुसें, बल्कि सच्चे मर्द और राजनीतिक नेताके समान स्थितिका सामना करें। और मैं कह सकता हूँ कि उन्होने पूरी उदात्तताके साथ ठीक यही किया भी। मैं उनके साथ केवल एक कानून-पेशा व्यक्तिकी हैसियतसे ही गया था, जिससे कि मैं यह प्रकट कर सकूँ कि श्री गांधी एक सम्मानित पेशेके सम्मानित व्यक्ति है और जिससे, उनके साथ जो व्यवहार किया गया उसके विरुद्ध अपनी प्रतिवादकी आवाज उठा सकूँ। मुझे आशा थी कि मैं मौजूद रहूँगा तो शायद उनका अपमान नहीं होगा। अब सारा मामला आपके पाठकोंके सामने आ गया है — और वे कारण भी जिनसे प्रेरित होकर श्री गांधीने इस प्रकार उतरनेका निश्चय किया। वे चाहते तो अपने विरुद्ध भीड़को इकट्ठा होते देखकर केंटोके मुहानेमें जहाजपर ही रुके रहते। और वे चाहते तो पुलिस थानेमें जाकर शरण ले लेते। परन्तु उन्होंने वैसा कुछ नहीं किया। उन्होंने कहा कि मैं डर्बनके लोगोंके सामने जाने और अंग्रेजोंकी हैसियतसे उनपर भरोसा करनेको तैयार हूँ। जुलूसके तमाम मुश्किल रास्तेमें उन्होंने जो वीरता और साहस दिखलाया उससे ज्यादा और कोई नहीं दिखला सकता था। मैं सारे नेटालको विश्वास दिला सकता हूँ कि वे वीर पुरुष है और उनके साथ वीर पुरुषोंका-सा ही व्यवहार करना चाहिए। उन्हें डराकर दबा लेनेका तो प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि मैंने जो देखा उससे मुझे निश्चय हो गया है कि यदि उन्हें यह मालूम हो कि सारा टाउनहाल मुझपर हमला करनेवाला है तो भी वे पीछे दुबक जानेवाले व्यक्ति नहीं है। अब, मुझे आशा है कि आपके सामने सारी कहानी निष्पक्षतासे रखी जा चुकी है। इस पुरुषका डर्बनने घोर अपमान किया है। मैं उस दृश्यका वर्णन नहीं करता। मुझे वैसा करना पसन्द ही नहीं। मैंने जान-बूझकर "डर्बन" लिखा है, क्योंकि यह आंधी डर्बनने उठाई थी और डर्बनको ही उसके फलका उत्तरदायी होना चाहिए। हम सबके सिर इस व्यवहारके कारण नीचे हो गये हैं। हमारी न्याय और औचित्यकी परम्पराएँ धूलमें मिल गई दीखती हैं। हमें अपना व्यवहार सज्जनोंका-सा रखना चाहिए, और वैसा करना हमारे स्वभावके कितना ही विपरीत क्यों न हो, हमें शिष्टता और उदारतापूर्वक खेद प्रकट करना चाहिए। — आपका, एफ० ए० लॉटन।

नेटाल मर्क्युरी, १६ जनवरी, १८९७।

श्री गांधीकी भारतीय पुस्तिकाके विषयमें रायटरने जो संक्षिप्त तार भेजा था, उसपर गत एक-दो दिनोंमें बहुत कुछ कहा जा चुका है। . . . निःसन्देह तारमें दिये हुए सारांशसे मनपर जो प्रभाव पड़ता है वह उससे भिन्न है जो कि पुस्तिकाको पढ़ लेनेवालोंके मनपर पड़ा है। . . . सच्ची बात यह है कि हमें मानना पड़ता है कि श्री गांधीकी पुस्तिकामें, दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंकी स्थितिका वर्णन, भारतीय दृष्टिसे गलत नहीं किया गया। यूरोपीय लोग भारतीयोको अपने समान माननेसे इनकार करते हैं; और भारतीयोंका खयाल है कि ब्रिटिश प्रजा होनेके नाते हम उन सब सुविधाओं और अधिकारोंके हकदार हैं जो कि उपनिवेशमें यूरोपीयोंकी सन्तान ब्रिटिश प्रजाजनोंको प्राप्त हैं। सम्राज्ञीकी १८५८की घोषणाके बलपर उन्हें ऐसा दावा करनेका अधिकार भी है। इस बातसे इनकार नहीं किया जा सकता कि दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंके विरुद्ध भावनाएँ विद्यमान हैं; परन्तु साथ ही हमारा खयाल है कि शायद श्री गांधी इस वास्तविकताका कुछ अधिक विचार करेंगे कि दक्षिण आफ्रिकामें उनके प्रायः सभी देशवासी उस वर्गके हैं जिसे भारतमें भी रेलगाड़ियोंके पहले दर्जेमें यात्रा नहीं करने दी जायेगी, या ऊँचे होटलोंमें नहीं ठहरने दिया जायेगा। . . . परन्तु हम पुस्तिका और तार द्वारा भेजे हुए उसके सारांशपर फिर लौटें, तो ये सारांश ठीक उतने ही सही लिखे गये हैं, जितने कि आर्मीनियनोंके साथ तुर्कोंके बरतावका बयान करनेवाली किसी पुस्तिकाके हो सकते थे — और सचमुच, रायटरके तारको स्वतन्त्र रूपसे पढ़नेसे मनपर कुछ ऐसा ही असर पड़ता है। परन्तु जब श्री गांधीकी लिखी हुई सारी पुस्तिका पढ़ते हैं तब ज्ञात होता है कि उसमें कुछ उदाहरण तो सचमुच वास्तविक कठिनाइयोंके दिये गये हैं, पर उसका अधिकतर भाग ऐसी राजनीतिक शिकायतोंसे भरा पड़ा है जैसी कि बहुत बार ट्रान्सवालके परदेशी (एटलॉण्डर) किया करते हैं। संक्षेपमें, इस पुस्तिकामें ऐसी कोई बात नहीं है जो श्री गांधी नेटालमें पहले प्रकाशित न कर चुके हों और जो अबतक साधारणतया अज्ञात हो। दूसरी ओर, श्री गांधी या अन्य किसीके लिए ऐसा प्रयत्न करना व्यर्थ है कि दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंका वही दरजा स्वीकार किया जाये, जो वे स्वयं अपना मानते हैं। इस मामलेमें मक्कारी करनेसे कोई लाभ नहीं होगा। भारतीयोंके यहाँ भारी संख्यामें आने, उनके रीति-रिवाजों, और उनके रहन-सहनके तरीकोंके विरुद्ध इस देशमें प्रबल और गहरी भावना विद्यमान है। कानूनकी दृष्टिसे वे ब्रिटिश प्रजा हो सकते हैं परन्तु जातीय परम्पराओं और भावनाओंके अनुसार, जिनका बल कानूनसे कहीं अधिक है, वे विदेशी हैं। *नेटाल मर्क्युरी*, १८ जनवरी, १८९७।

अब यह माना जाने लगा है कि श्री गांधीके विरुद्ध जितना हो-हल्ला मचाया गया था वह तथ्योंके तकाजेसे कहीं अधिक कटु, तीव्र और उग्र था। उनके वर्णनमें कुछ अत्युक्ति होते हुए भी, उसमें उपनिवेशवालोंके चरित्रको जान-बूझकर या इच्छापूर्वक ऐसा बिगाड़कर चित्रित करनेका यत्न नहीं किया गया था कि उसके कारण उनसे बदला लेनेके लिए लोगोंको भड़काना उचित माना जा सकता। निश्चय ही, इस सम्बन्धमें कुछ गरम-मिजाज लोगोंको भ्रम हो गया था। श्री गांधी अपने देशवासियोंकी ठीक वही सेवा करनेका यत्न कर रहे हैं, जिसे करनेके लिए अंग्रेज सदा तैयार रहते आये है। और जब समय आनेपर शान्तिपूर्वक विचार किया जायेगा तब मानना होगा कि उनके उपाय कितने ही भ्रान्त और उनके सिद्धान्त कितने ही असमर्थनीय क्यों न हों, उनके साथ जाति-च्युत और अछूत आदमीका-सा व्यवहार करनेकी नीति इतनी बुरी है कि उससे अधिक बुरी दूसरी कोई नीति नहीं हो सकती। वे जिस वस्तुको अपने साथी देशवासियोंका अधिकार समझते हैं उसीको प्राप्त करनेका यत्न कर रहे है। अंग्रेज सदासे यह अभिमान करते आये हैं कि हम किसीके पक्षपाती बनकर भी अपने विरोधियोंके साथ न्यायका त्याग नहीं करते। उपनिवेशी जानते है कि श्री गांधीकी माँग पूरी कर देना इस उपनिवेशके हितोंके लिए घातक होगा। वे जानते हैं कि एशियाइयों और यूरोपीयोंमें जातीयताका अन्तर मौलिक और स्थायी होनेके कारण उनमें सामाजिक समानता कभी हो ही नहीं सकती। कोई भी युक्ति-क्रम इस खाईको कभी नहीं पाट सकता। वे जानते है कि न्यायके विचार उनके विरुद्ध होते हुए भी आत्म-रक्षाकी स्वाभाविक भावना उन्हें चेतावनी दे रही हैं कि सुरक्षाका मार्ग वहीं है जो तुमने अपना रखा है। संक्षेपमें, वे जानते हैं कि यदि एशियाइयोंके आगमनपर कोई प्रतिबन्ध न लगाया गया तो यह उपनिवेश गोरोंका उपनिवेश नहीं रहेगा। परन्तु यह सब मनवानेके लिए, जो लोग स्वभावतः हमसे भिन्न विचार रखते हैं उनके साथ अनुचित और अनावश्यक कटु व्यवहार करके, हमें अपना पक्ष बिगाड़ नहीं लेना चाहिए। हम निजी बातोंपर अधिक जोर देकर पहले ही अपनी बहुत हानि कर चुके हैं। इसलिए आशा है कि भविष्यमें अपना आन्दोलन करते हुए उपनिवेशके नेता उस आत्मगौरव और आत्मसंयमका विशेष ध्यान रखेंगे जिसके बिना हम यह आशा नहीं कर सकते कि निष्पक्ष निरीक्षक हमारे पक्षका समर्थन करेंगे।
— *नेटाल मर्क्युरी*, १९ जनवरी, १८९७।

श्री गांधीने *एडवर्टाइज़र*के प्रतिनिधिसे भेंटमें जो कुछ कहा उसे बहुत रुचिसे पढ़ा गया है और उससे मालूम पड़ता है, उनके पास अपने पक्षमें कहनेको बहुत कुछ है। यदि उनकी बातें ठीक हैं तो उनके और इस उपनिवेशको भारतीयोंसे पाट देनेकी उनकी योजनाके

विषयमें कही गई बातोंमें भारी अत्युक्तिसे काम लिया गया है। जनतामें उनके विरुद्ध इतनी उत्तेजना बहुत-कुछ इसी कारण फैली है। आशा है कि इस मामलेको स्पष्ट करके उनके साथ न्याय किया जायेगा। यह जोर देकर कहा गया है कि सरकारके पास ऐसे प्रमाण हैं जिनसे सिद्ध होता है कि ऐसी एक योजना थी। यदि ऐसा हो तो उन प्रमाणोंको प्रकट कर देना चाहिए, क्योंकि श्री गांधीके विरुद्ध जो आरोप किये गये हैं उनमें यही मुख्य है। श्री गांधीने माना है कि "यदि उपनिवेशको भारतीयोसे पाट देनेके लिए कोई संगठित प्रयत्न किया जा रहा हो तो प्रदर्शन-समितिके नेताओ और नेटालके अन्य किसी भी व्यक्तिको इसके विरुद्ध वैधानिक आन्दोलन खड़ा करनेका पूरा अधिकार होगा।" इस तरह यदि, कुछ लोगोंके कथनानुसार, इस योजनाकी विद्यमानता सिद्ध की जा सके तो श्री गांधीका मुख बन्द हो जायगा। . . . इसके अतिरिक्त, उन्होने इस आक्षेपसे भी साफ इनकार किया है कि वे जहाजोंको रोक रखनेके कारण लोगोंको सरकारके विरुद्ध मुकदमा चलानेके लिए उकसा रहे थे। यदि कोई प्रमाण इस आक्षेपके पक्षमें हो तो उसे भी पेश कर देना चाहिए। उन्होंने इस बातसे भी इनकार किया है कि वे अपने साथ एक छापाखाना और कुछ कम्पोज़िटर लाये थे और नेटाल आनेवाले यात्रियोंकी संख्या इतनी बड़ी थी जितनी कि बतलाई गई है। निश्चय ही ये मामले ऐसे हैं कि इन्हें एकदम सच्चा या झूठा सिद्ध किया जा सकता है। ये तय हो गये तो बड़ा अच्छा होगा, क्योंकि श्री गांधी जो कह रहे हैं वह यदि सच निकल गया तो उससे पता चल जायेगा कि हालका आन्दोलन अपर्याप्त कारणो और गलत जानकारीके आधारपर आरम्भ किया गया था। . . . साम्राज्य-सरकारकी सहायता लेनी हो तो दृढ़ तथ्योंके सहारे ही आगे बढ़ना उचित है। ऐसा शोर मचानेसे हमारे पक्षका समर्थन नहीं होगा कि एक या दो जहाजोंमें हजारो भारतीय चले आ रहे हैं और वे हमारे देशको पाटे दे रहे है, और बादको जब इसकी छान-बीन की जाये तो पता लगे कि वे केवल सौ-दो-सौ ही है। अत्युक्ति करनेसे कोई लाभ नहीं होगा। . . . इस सचाईकी ओरसे आँख नहीं मींची जा सकती कि यह पाशविक कार्रवाई, प्रदर्शनके दिन, प्रदर्शन तथा उसके कारणों द्वारा उत्पन्न की हुई उत्तेजनाके जोशमें, और सरकारके प्रतिनिधियोंके इस आश्वासनकी उपेक्षा करके की गई थी कि यात्री पूर्णतया सुरक्षित हैं। इससे स्पष्ट है कि यदि कहीं प्रदर्शन उस सीमा तक पहुँचा दिया जाता, जो कि पहले सोची गई थी, तो बड़े पैमानेपर क्या-क्या हो जाता। — *नेटाल एडवर्टाइज़र* जनवरी १६, १८९७।

[अंग्रेजीसे]

सम्राज्ञीके मुख्य उपनिवेश-मन्त्री, लन्दनके नाम नेटालके गवर्नरके १० अप्रैल, १८९७ के खरीता नम्बर ६२का सहपत्र।

कलोनियल आफ़िस रेकर्ड्स: पिटीशंस ऐंड डिसपैचेज़ (प्रार्थनापत्र और खरीते), १८९७।

३०. पत्र: श्री अलेक्ज़ैंडर[1]को

डर्बनकी भीड़से जिस तरह गांधीजीकी रक्षा की गई थी और उन्हें निकाला गया था उसका वर्णन उन्होंने स्वयं *आत्मकथा* (गुजराती, १९५२, पृष्ठ १८९–९३) में किया है। पुलिस सुपरिंटेंडेंट तथा उनकी पत्नी द्वारा गांधीजीके नाम लिखे हुए २२ जनवरी, १८९७ के पत्रों (एस० एन० १९३८ और एस० एन० १९३९) से मालूम होता है कि गांधीजीने उनको व्यक्तिगत रूपसे कुछ भेंट भेजी थीं और उन्हें धन्यवाद दिया था। दुर्भाग्यवश उनके पत्र हमें नहीं मिले। निम्नलिखित तथा उसके बादका पत्र कागज-पत्रोंमें उपलब्ध है। स्पष्टतः इन पत्रोंका मसविदा भारतीय समाजकी ओरसे गांधीजीने ही तैयार किया था।

डर्बन
मार्च २४, १८९७

सेवामें
श्रीमान आर० सी० अलेक्ज़ैंडर
सुपरिंटेंडेंट, नगर-पुलिस
डर्बन

श्रीमन्,

हम, नीचे हस्ताक्षर करनेवाले, इस उपनिवेशके भारतीय समाजके प्रतिनिधि, इस पत्रके साथ आपको उपयुक्त खुदावकी हुई एक सोनेकी घड़ी भेंट करना चाहते हैं। आपने और आपकी पुलिसने १३ जनवरी, १८९७ को जिस उत्तम ढंगसे अमन-अमानकी रक्षा की और जिस तरह आप एक ऐसे व्यक्तिकी प्राण-रक्षाके निमित्त बने, जिसे प्रेम करनेमें हम आनन्द अनुभव करते हैं, उसकी कृतज्ञतामय स्वीकृतिके उपलक्ष्यमें ही हमारी यह भेंट अर्पित है।

हम जानते हैं कि आपने जो-कुछ किया उसे आप अपने कर्तव्यसे अधिक नहीं मानते। परन्तु हमारा विश्वास है कि उस असाधारण समयपर आपने जो बहुमूल्य काम किया उसके बारेमें अगर हम अपनी विनम्र सराहना किसी-न-किसी रूपमें अंकित न करें तो हमारी भारी कृतघ्नता होगी।

१. देखिए, प्रस्तावना, पृष्ठ १७८।

इसके सिवा, उसी उपलक्ष्यमें हम इसके साथ १० पौंडकी रकम भी भेज रहे हैं। यह आपके दलके उन लोगोंमें बाँटनेके लिए है, जिन्होंने उस अवसरपर सहायता की थी।

आपके, आदि

हस्तलिखित अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० २१४९) से। उपलब्ध प्रतिमें हस्ताक्षर नहीं है ।

३१. पत्र: श्रीमती अलेक्जैंडरको

डर्बन
मार्च २४, १८९७

श्रीमती अलेक्जैंडर
डर्बन

महोदया,

हम, नीचे हस्ताक्षर करनेवाले, इस उपनिवेशके भारतीय समाजके प्रतिनिधि, इसके साथ आपको अपनी तुच्छ भेंटके रूपमें एक सोनेकी घड़ी, जंजीर और उपयुक्त खुदाव किया हुआ लोलक भेज रहे हैं। आपने १३ जनवरी, १८९७ को भारतीय-विरोधी प्रदर्शनके संकटके समय एक ऐसे व्यक्तिकी रक्षा की थी, जिससे प्रेम करनेमें हम आनन्द अनुभव करते हैं। इस कार्यमें आपने कम व्यक्तिगत जोखिम नही उठाई। हमारी यह तुच्छ भेंट आपके उसी कार्यकी सराहनाका प्रतीक है।

हमें निश्चय है कि हम आपको कुछ भी दें, वह आपके कार्यका पर्याप्त बदला नही हो सकता। आपका कार्य सदैव सच्चे स्त्रीत्वका नमूना बना रहेगा।

आपके, आदि

हस्तलिखित अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० २१५०) से। उपलब्ध प्रतिमें हस्ताक्षर नहीं है।

३२. प्रार्थनापत्र : नेटाल विधानसभाको[1]

मार्च १५, १८९७ के प्रार्थनापत्रमें गांधीजीने संक्रामक रोग-सम्बन्धी सूतक (क्वारंटीन), विक्रेता-परवाना विधेयक (डीलर्स लाइसेन्सेज बिल) और प्रवासी प्रतिबन्धक विधेयक (इमिग्रेशन रिस्ट्रिक्शन बिल) का विस्तारके साथ उल्लेख किया था। ये विधेयक नेटाल विधानमण्डलके विचाराधीन थे और इनसे दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंके अधिकारोंपर प्रतिबन्ध लगता था। उस प्रार्थनापत्रमें गांधीजीने कहा था कि अगर ये विधेयक कानूनके रूपमें परिणत हो गये तो प्रवासी भारतीय उपनिवेश-मन्त्रीके सामने मामला पेश करेंगे। जैसा कि आगे मालूम होगा, इस कथनने जुलाई २ के प्रार्थनापत्रमें ठोस रूप ग्रहण किया। परन्तु यह कदम उठानेके पहले २६ मार्चको स्वयं नेटाल विधानसभाको ही एक प्रार्थनापत्र दिया गया था। उसका पाठ *नेटाल मर्क्युरी*में प्रकाशित हुआ था और बादमें जुलाई २ के प्रार्थनापत्रके साथ संलग्न कर दिया गया था। यह प्रार्थनापत्र नीचे दिया जाता है।

डर्बन
मार्च २६, १८९७

सेवामें
माननीय अध्यक्ष व माननीय सदस्यगण
विधानसभा नेटाल
पीटरमैरित्सबर्ग

उपनिवेशवासी भारतीयोंके नीचे हस्ताक्षर
करनेवाले प्रतिनिधियोंका प्रार्थनापत्र

नम्र निवेदन है कि,

आपके प्रार्थी इस प्रार्थनापत्रके द्वारा संक्रामक रोग सूतक (क्वारंटीन), व्यापार-परवाने (ट्रेड लाइसेंसेज़), प्रवासी (इमिग्रेशन) और स्वतंत्र भारतीय संरक्षण (अनकावेनेंटेड इंडियन्स प्रोटेक्शन) विधेयकों[2]के सम्बन्धमें भारतीय

१. इस प्रार्थनापत्रको *नेटाल मर्क्युरी*ने अपने मार्च २९, १८९७ के अंकमें प्रकाशित किया था। उसने इसमें कुछ प्रास्ताविक पंक्तियाँ जोड़ दी थीं और थोड़ा-सा साधारण शाब्दिक परिवर्तन कर दिया था।

२. इन विधेयकोंकी व्यवस्थाएँ पृष्ठ ३७८–८८ में दी गई हैं।

समाजकी भावनाएँ इस सदनके सामने पेश करनेका साहस कर रहे हैं। ये विधेयक या तो अभी इस सम्माननीय सदनके सामने विचारके लिए पेश हैं, या शीघ्र ही पेश होनेवाले हैं।

प्रार्थियोंको मालूम हुआ है कि उपर्युक्त विधेयकोंमें से पहले तीनका मंशा इस उपनिवेशमें सम्राज्ञीकी भारतीय प्रजाके आगमनको प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपमें रोकना है। यह अजीब मालूम होगा कि उनका मंशा जिन लोगोंपर असर करनेका है उनका उल्लेख उनमें है ही नहीं।[1] प्रार्थी अत्यन्त आदरके साथ निवेदन करते हैं कि काम करनेका ऐसा तरीका अ-ब्रिटिश है, इसलिए एक ऐसे उपनिवेशमें जिसे दक्षिण आफ्रिकाका सबसे अधिक ब्रिटिश उपनिवेश माना जाता है, इसे बिलकुल प्रश्रय नहीं मिलना चाहिए। अगर इस सम्माननीय सदनके सामने सिद्ध कर दिया जाये और सदनको सन्तोष हो जाये कि इस उपनिवेशमें भारतीयोंकी उपस्थिति एक अनिष्ट है और इसमें भारतीय भयानक संख्यामें टूटे पड़ रहे है तो, प्रार्थियोंका निवेदन है, सब सम्बद्ध पक्षोंके लिए हितावह यह होगा कि इस अनिष्टको सीधे लक्ष्य करके एक विधेयक पास कर लिया जाये।

परन्तु प्रार्थी आदरपूर्वक निवेदन करते हैं कि उपनिवेशमें भारतीयोंकी उपस्थिति एक अनिष्ट होनेके बदले उपनिवेशके लिए लाभदायक है। उसमें भारतीयोंकी भयानक पैमानेपर भरमार भी नहीं हो रही है। यह सब आसानीसे साबित किया जा सकता है।

मानी हुई बात है कि विधेयकोंका मंशा जिन भारतीयोंको उपनिवेशसे दूर रखनेका है, वे "शराबसे परहेज करनेवाले और उद्यमी" है। इस तरहका अभिप्राय देशके ऊँचेसे ऊँचे अधिकारियोंने और भारतीयोके घोरतम विरोधियोंने भी व्यक्त किया है। और आपके प्रार्थियोंका दावा है कि ऐसे लोगोंकी जमात जहाँ भी जाये, वहाँका आर्थिक लाभ किये बिना नहीं रह सकती। हालमें ही बसे नेटाल जैसे नये देशोंमें तो यह बात खास तौर से सही है।

१. यद्यपि इन चारों विधेयकोंका भीतरी मंशा भारतीयोंपर असर करनेका था, इनमें से तीनमें भारतीयोंका स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया था। केवल स्वतन्त्र भारतीय संरक्षण विधेयकमें उनका नाम लिया गया था। इस बातकी ओर गांधीजीने खास तौरसे ध्यान खींचा था।

स्थानापन्न प्रवासी संरक्षकने जो हिसाब प्रकाशित किया है[1] उससे मालूम होता है कि गत अगस्त और जनवरीके बीच १,९६४ भारतीय इस उपनिवेशमें आये और १,२९८ यहाँसे गये। हमें विश्वास है कि आपका सम्माननीय सदन इस बढ़तीको ऐसी नहीं मानेगा कि इसके कारण विचाराधीन विधेयकोंको पेश करना उचित ठहराया जा सके। प्रार्थियोंको भरोसा है कि सम्माननीय सदन इस वस्तुस्थितिकी भी उपेक्षा नहीं करेगा कि इन ६६६ भारतीयोंमें से सब नहीं तो अधिकतर ट्रान्सवाल चले गये होंगे।

फिर भी, प्रार्थी यह कहना नहीं चाहते कि उपर्युक्त वक्तव्योंको बिना जाँचे ही मंजूर कर लिया जाये। परन्तु प्रार्थियोंका निवेदन यह है कि इन वक्तव्योंसे मामलेकी जाँचकी जरूरत सिद्ध होती है।

प्रार्थियोंको भय है कि ये विधेयक लोगोंके द्वेषभावको तुष्ट करनेके लिए पेश किये जा रहे हैं। इसलिए हमारा आदरपूर्ण निवेदन है कि विधेयकों पर विचार करनेके पहले यह सम्माननीय सदन असंदिग्ध रूपमें पता लगा ले कि यह अनिष्ट मौजूद है भी या नहीं।

प्रार्थियोंका नम्र सुझाव है कि स्वतन्त्र भारतीयोंकी गणना की जाये। और बारीकीसे यह जाँच भी की जाये कि भारतीयोंकी उपस्थिति अनिष्ट है या नहीं। विधेयकोंके बारेमें इस सदनके सही निष्कर्षपर पहुँचनेके लिए ये दोनों बातें बिलकुल जरूरी हैं। इस कार्यमें इतना समय नहीं लगेगा कि इसके बाद कानून बनाना बेकार हो जाये।

विधेयकोंके छिपे हुए उद्देश्य और उनके असामयिक स्वरूपको छोड़कर भी परीक्षण करनेपर मालूम हो जाता है कि वे अन्यायपूर्ण और मनमाने हैं।

जहाँतक संक्रामक रोग-सम्बन्धी सूतक-विधेयकों (क्वारंटीन बिल्स) की बात है, प्रार्थी इस सम्माननीय सदनको आश्वासन देते हैं कि वे किसी भी ऐसी बातका विरोध नहीं करना चाहते जो समाजकी स्वास्थ्य-रक्षाके लिए आवश्यक हो — फिर वह कितनी ही कठोर क्यों न हो। उपनिवेशको संक्रामक रोगोंसे सुरक्षित रखनेके लिए जो भी कानून बनाये जायेंगे उनका प्रार्थी स्वागत करेंगे और उनका अमल करानेमें अधिकारियोंको शक्तिभर सहयोग देंगे। परन्तु प्रार्थियोंकी शिकायत है कि यह विधेयक तो भारतीय-

१. देखिए पृष्ठ २५९।

विरोधी नीतिका एक अंग-मात्र है।[1] ऐसी अवस्थामें उसके खिलाफ आदरके साथ अपना विरोध दर्ज करा देना प्रार्थी अपना कर्तव्य समझते हैं। प्रार्थी मानते हैं कि एक ब्रिटिश उपनिवेशमें इस तरहका कानून बननेसे ब्रिटिश सत्ता व व्यापारके प्रति ईर्ष्या रखनेवाली दूसरी सत्ताओंको अपने यहाँ बनाये जानेवाले कष्टप्रद संक्रामक रोग-नियमोंको उचित ठहरानेका मौका मिलेगा।

व्यापार-परवाना विधेयकका प्रार्थी वहाँतक स्वागत करते हैं, जहाँतक उसका मंशा उपनिवेशके विभिन्न समाजोंको अपने घर-बार साफ-सुथरे रखने और अपने मुहर्रिरों तथा नौकरोंके लिए अच्छे मकानोंकी व्यवस्था करनेकी शिक्षा देना है।

परन्तु परवाना देनेवाले अफसरको परवाना देनेसे "स्वेच्छानुसार" इनकार करनेका जो विवेकाधिकार दिया जा रहा है, उसका हम आदरपूर्वक, फिर भी अत्यन्त जोरोंके साथ, विरोध करते हैं। औपनिवेशिक सचिव, नगर-परिषदों (टाउन कौंसिल्स) या नगर-निकायों (टाउन बोर्ड्स) को अन्तिम अधिकार देनेवाली उपधाराके तो हम और भी खास तौरसे विरोधी हैं। इन धाराओंसे बिल्कुल साफ तौरपर मालूम हो जाता है कि विधेयक सिर्फ भारतीय समाजके विरुद्ध काममें लाया जायेगा। जो व्यक्ति या संस्थाएँ अक्सर लोगोंके राग-द्वेषके अनुसार काम करती हों, उनके निर्णयोंके खिलाफ उच्चतम न्यायालयोंसे फरियाद करनेका अधिकार प्रजाको न देना सभ्य जगतके किसी भी हिस्सेमें एक निरंकुश कार्य माना जायेगा। अगर ब्रिटिश राज्यमें ऐसा हो तो वह ब्रिटिश नाम और ब्रिटिश संविधानके लिए अपमानजनक होगा। ब्रिटिश संविधानको तो दुनियामें सबसे शुद्ध माना जाता है, और यह ठीक ही है। हमारा निवेदन है कि ब्रिटिश शासनके स्थायित्वके लिए और सम्राज्ञीकी तुच्छातितुच्छ प्रजा भी जिस सुरक्षाकी भावनाका सुख भोगती है उसके लिए ऐसे कानूनसे ज्यादा संकटजनक और कोई चीज नहीं हो सकती, जो ब्रिटिश राज्यके उच्चतम न्यायालयके सामने अपनी सच्ची या मानी हुई शिकायतें पेश करनेके प्रजाके अधिकारको छीनता हो। ब्रिटिश न्यायालयोंने तो कठिनसे कठिन कसौटीके समयमें भी अपनी पूर्ण निष्पक्षताकी कीर्ति सुरक्षित रखी है। इसलिए प्रार्थियोंका नम्र निवेदन है कि इस विधेयकके बारेमें यह सम्माननीय सदन कोई भी निर्णय क्यों न करे, प्रस्तुत उपधाराको वह एकमतसे नामंजूर कर दे।

१. देखिए पृष्ठ २१३–१४, २१४–१६, २६६ और ३६३–६४।

प्रवासी-प्रतिबन्धक विधेयककी वह उपधारा, जिसके अनुसार यूरोपीय भाषामें फार्म भरने[1]की जरूरत होती है, विधेयकको एक वर्ग-विशेषसे सम्बन्ध रखनेवाला रूप दे देती है। प्रार्थियोंके नम्र मतसे यह भारतीयोंके प्रति अन्याय है। वर्तमान भारतीय प्रवासियोंके हितार्थ प्रार्थियोंका निवेदन है कि उपधारामें संशोधन करना जरूरी है, क्योंकि ज्यादातर सम्पन्न भारतीय घरेलू नौकरोंको भारतसे लाते हैं। वे कुछ निश्चित वर्षोंके बाद कामसे मुक्त हो जाते हैं और उनकी जगहोंपर दूसरे आ जाते हैं। इस तरीकेसे उपनिवेशमें भारतीयोंकी संख्या तो नहीं बढ़ती, फिर भी इससे भारतीयोंको लाभ होता है। ऐसे नौकरोंका अंग्रेजी या कोई दूसरी यूरोपीय भाषा जानना सम्भव नहीं है। वे किसी तरह यूरोपीयोंके प्रतिस्पर्धी भी नहीं होते। प्रार्थियोंका निवेदन है कि अगर किसी दूसरे कारणसे नहीं, तो कमसे कम इसी कारणसे उपधारामें संशोधन कर दिया जाये, ताकि उस वर्गके भारतीयोंपर उसका प्रभाव न पड़े। २५ पौंडी उपधारा भी इसी सिद्धान्तके अनुसार आपत्तिजनक है।[2] उपनिवेशके वर्तमान भारतीयोंके हितोंका विचार, और नहीं तो ऐसी बातोंमें ही सही, सहानुभूतिके साथ किया जाना जरूरी है।

जहाँतक गैर-गिरमिटिया भारतीयोंके संरक्षण विषयक विधेयक[3] का सम्बन्ध है, प्रार्थी सरकारको उसके भले इरादोंके लिए हृदयसे धन्यवाद देते हैं — खास तौर से इसलिए कि विधेयककी रचना इस विषयमें भारतीय समाजके कुछ सदस्यों और सरकारके बीच पत्र-व्यवहारके फलस्वरूप हुई है। परन्तु सरकारने जो उपकार किया है वह पाँचवीं उपधारा[4]से बिलकुल व्यर्थ हो जायेगा। इस उपधाराके अनुसार, उन लोगोंपर गैर-कानूनी गिरफ्तारीके लिए हरजानेका दावा नहीं किया जा सकता, जो उपधारा २में उल्लिखित परवाना न रखनेवाले स्वतन्त्र भारतीयोंको गिरफ्तार करें। झगड़ा तो तभी पैदा होता है, जब कि

१. देखिए खण्ड ३ (क), पृष्ठ ३८०, और मसविदेके लिए सूची ख, पृष्ठ ३८३।

२. पृष्ठ २६९ पर दिये हुए खण्ड ३ ख की आर्थिक योग्यताके बदले बादमें एक अन्य उपधारा मंजूर कर ली गई थी। उसका सम्बन्ध 'कंगालों'से था। देखिए पृष्ठ ३८०।

३. देखिए पृष्ठ ३३०–३१ और पृष्ठ ३७६–७७, और विधेयकका जो पाठ मंजूर किया गया था उसके लिए देखिए पृष्ठ ३८६–८७।

४. ये व्यवस्थाएँ अधिनियमकी उपधारा ४ में हैं। देखिए पृष्ठ ३८६–८७।

कोई अफसर गिरफ्तारी करनेके लिए जरूरतसे ज्यादा उत्साह दिखाता है।[१] प्रार्थियोंका खयाल है कि कर्मचारियोंको सिर्फ इतनी सूचना दे देना काफी होता कि वे १८९१ के कानून २५की उपधारा ३१ का अमल करायें। इसके विपरीत, विधेयक तो पुलिसको परवाना न रखनेवाले भारतीयोंको दण्ड-भयके बिना गिरफ्तार करनेकी खुली छूट दे देता है। प्रार्थी निवेदन कर दें कि सिर्फ परवाना ले लेनेसे ही परवानेवालेको परेशानीसे मुक्ति नहीं मिल जाती। परवाना साथ रखना हमेशा सम्भव नहीं है। ऐसे उदाहरण मौजूद है, जिनमें परवाना पाये हुए भारतीय परवाना साथ लिये बिना थोड़ी देरके लिए घरसे बाहर जानेपर अफसरोंके अति उत्साहके कारण गिरफ्तार कर लिये गये हैं। इसलिए, प्रार्थियोंका निवेदन है कि उपर्युक्त विधेयकसे भारतीय समाजकी रक्षा तो न होगी, बल्कि उसकी उपधारा पाँचवींके कारण उनके अपमानके पहलेसे भी ज्यादा मौकोंकी सम्भावना हो जायेगी। इसलिए प्रार्थी इस सम्माननीय सदनसे प्रार्थना करते हैं कि विधेयकमें ऐसा संशोधन या परिवर्तन कर दिया जाये, जिससे वह भारतीय समाजके सच्चे लाभका जरिया बन जाये, जैसा कि, निस्सन्देह, उसका मंशा है।

अन्तमें, हमें यह दुहरा देनेकी इजाजत दी जाये कि पहले तीन विधेयकोंपर हमारी मुख्य आपत्ति यह है कि उनका मंशा जिस अनिष्टको रोकनेका है, उसका अस्तित्व है ही नहीं। इसलिए हमारी प्रार्थना है कि उन विधेयकोंपर विचार करनेके पहले यह सम्माननीय सदन आदेश दे कि उपनिवेशकी स्वतंत्र भारतीय आबादीकी गणना की जाये, कुछ वर्षोंकी वार्षिक संख्या-वृद्धिका हिसाब लगाया जाये और भारतीयोंकी उपस्थिति उपनिवेशके सर्वोत्तम हितोंको सामान्यतः हानि पहुँचानेवाली है या नहीं, इसकी जाँच की जाये। स्वतंत्र भारतीयोंके संरक्षणकी उपधारा ५ विधेयकसे निकाल दी जाये या ऐसी दूसरी राहतें दी जायें, जिन्हें सदन उपयुक्त समझे। न्याय और दयाके इस कार्यके लिए प्रार्थी अपना कर्तव्य समझकर सदैव दुआ करेंगे, आदि।

(ह०) अब्दुल करीम हाजी आदम और कम्पनी

पीटरमैरित्सबर्ग आर्काइव्ज़; देखिए: एन-पी-पी, जिल्द ६५६, प्रार्थनापत्र ६।

१. यह उल्लेख उस महिलाके मामलेका मालूम होता है, जिसे गैरकानूनी गिरफ्तारीके लिए हरजाना दिलाया गया था। मामलेका विवरण पृष्ठ ११ पर देखिए।

३३. पत्र: औपनिवेशिक सचिवको

गांधीजीने सरकार और अपने बीचका जो पत्र-व्यवहार समाचारपत्रोंमें प्रकाशनार्थ भेजा था, यह पत्र उसका एक अंश है:

डर्बन
मार्च २६, १८९७

सेवामें
माननीय औपनिवेशिक सचिव
मैरित्सवर्ग

महोदय,

मैं आपका ध्यान परम माननीय उपनिवेश मन्त्रीके नाम श्रीमान गवर्नर महोदयके एक खरीते[1] की ओर आकर्षित करता हूँ, जो आजके *मर्क्युरी*में प्रकाशित हुआ है। उसमें गवर्नर महोदयने कहा है:

> **"मुझे मालूम हुआ है कि, श्री गांधी ऐसे बेमौके जहाजसे उतरकर तटपर आये जब कि बहके हुए लोग प्रदर्शनके शांतिपूर्वक निबट जानेके कारण क्षुब्ध थे और उभड़ी हुई भावनाओंको ठंडा पड़नेका समय नहीं मिल पाया था। मुझे यह भी मालूम हुआ है कि श्री गांधी अब मानते हैं, ऐसे बेमौके उतरकर आनेमें उन्होंने जिस सलाहका अनुसरण किया वह बुरी थी।"[2]**

१. खरीतेमें १३ जनवरी, १८९७ की घटनाका, जिसका विवरण पृष्ठ १८७ और २२६–२७ पर उपलब्ध है, यह उल्लेख किया गया था: "श्री गांधी, एक पारसी (ज्योंका त्यों शब्द) वकील, जो हालके मताधिकार-कानूनके खिलाफ भारतीयोंके आन्दोलनमें प्रमुख रहे हैं और दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंके विषयमें एक ऐसी पुस्तिकाके लेखक हैं, जिसके कुछ बयानोंपर यहाँ बहुत नाराजी जाहिर की गई है, ठीक उतरनेके स्थानपर नहीं, बल्कि डर्बन नगरकी सीमाके अन्दर उतरे; और कुछ दंगाई लोगोंने उन्हें पहचान लिया और उनको घेर लिया और उनके साथ दुर्व्यवहार किया।" इसके बाद वह अनुच्छेद था, जो गांधीजीने ऊपर उद्धृत किया है। अन्त इन शब्दोंसे हुआ था: "और वे इस विषयमें अपनी कार्रवाईकी जिम्मेवारी स्वीकार करते हैं" (*नेटाल मर्क्युरी*, २६–३–१८९७)।

२. देखिए पृष्ठ २२६–२७। गांधीजीको बादमें अपने साथ तटपर ले जानेवाले और जहाज-कम्पनीके कानूनी सलाहकार श्री लॉटनने जो सलाह दी थी, वह ठीक-ठीक यह

मैंने हमेशा माना है, और अब भी मानता हूँ कि जिस सलाहका मैंने अनुसरण किया वह उत्तम थी। इसलिए अगर गवर्नर महोदय मुझे बता सकें कि उन्होंने किस आधारपर उपर्युक्त बात कही है, तो मुझे प्रसन्नता होगी।[1]

आपका सेवक,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
नेटाल मर्क्युरी, ८–४–१८९७

३४. प्रार्थनापत्र : नेटाल विधानपरिषदको[2]

मार्च २६, १८९७[3]

सेवामें
माननीय अध्यक्ष और माननीय सदस्यगण
माननीय विधानपरिषद, नेटाल
पीटरमैरित्सबर्ग

नीचे हस्ताक्षर करनेवाले, इस उपनिवेशके भारतीय समाजके प्रतिनिधियोंका प्रार्थनापत्र

नम्र निवेदन है कि,

आपके प्रार्थी गैर-गिरमिटिया भारतीयोंके संरक्षण सम्बन्धी विधेयक[4] के विषयमें, जो इस समय आपके विचाराधीन है, नम्रतापूर्वक आपकी सेवामें निवेदन

है : 'मुझे लगता है कि आपका बाल भी बाँका नहीं होनेका। अब तो सब शान्त है। गोरे सबके सब बिखर गये हैं। परन्तु, मेरी राय है, चाहे कुछ भी हो, आपको लुक-छिपकर तो नगरमें प्रवेश करना ही नहीं चाहिए' (*आत्मकथा*, गुजराती, १९५२, पृष्ठ १८९)।

१. देखिए पृष्ठ ३४०–४१।

२. इस प्रार्थनापत्रका पाठ लगभग वही है, जो विधानसभाको दिये गये मार्च २६, के तत्सम्बन्धी अंशका है। देखिए पृष्ठ ३२७ और पादटिप्पणियाँ।

३. प्रार्थनापत्रकी वास्तविक तारीख मार्च २६ ही है (एस० एन० २३६४), परन्तु यह पेश मार्च ३० को किया गया था।

४. देखिए पृष्ठ ३७६–७७ और कानूनके पाठके लिए, पृष्ठ ३८६–८७।

करना चाहते हैं। विधेयक पेश करनेमें सरकारके भले इरादोंके लिए प्रार्थी हृदयसे धन्यवाद देते हैं—खास तौरसे इसलिए कि विधेयक सरकार तथा भारतीय समाजके कतिपय सदस्योंके बीच हुए कुछ पत्र-व्यवहारका नतीजा नजर आता है। परन्तु प्रार्थियोंको भय है कि विधेयकका अच्छा असर उसकी उस उप-धारासे व्यर्थ हो जाता है, जिसके अनुसार किसी भी अधिकारीको, जो परवाना न रखनेवाले किसी भारतीयको गिरफ्तार करे, गैर-कानूनी गिरफ्तारीके लिए हरजाना देनेके दायित्वसे मुक्त कर दिया गया है। असुविधा तो तभी होती है जब कि कोई अधिकारी १८९१ के कानून २५के खंड ३१ का अमल करानेमें जरूरतसे ज्यादा उत्साह दिखाता है। इसलिए, प्रार्थियोंके नम्र मतसे, अगर पुलिस अधिकारियोंको इतना निर्देश दे दिया जाता कि वे उक्त कानूनका अमल करानेमें सोच-विचारसे काम लें तो असुविधा कमसे कम होती। वर्तमान विधेयकके अधीन, भय है कि, असुविधा बढ़ जायेगी; क्योंकि उसके अनुसार परवाना ले लेने मात्रसे परवाना रखनेवाला गिरफ्तारीकी शक्यतासे मुक्त नहीं हो जाता। परवाना तो साथ रखना जरूरी है, और वैसा करना सदैव आसान नहीं है। ऐसे उदाहरणोंका लेखा मौजूद है, जब कि भारतीयोंको, उनके घरोंके पास ही, परवाने न रखनेके कारण गिरफ्तार करके बहुत ज्यादा सन्ताप में डाला गया है। यदि विधेयककी पाँचवीं उपधारा कायम रही तो सम्भावना यह है कि ऐसे मामले पहलेसे ज्यादा होंगे। और चूँकि विधेयक भारतीय समाजके हितके लिए पेश किया गया है, इसलिए, आपके प्रार्थियोंका निवेदन है कि, उस समाजकी भावनाओंका थोड़ा खयाल तो किया ही जाना चाहिए। अतएव, आपके प्रार्थी नम्रतापूर्वक विनती करते हैं कि विधेयककी पाँचवीं उपधारा उससे निकाल दी जाये, अथवा परिषद ऐसी कोई दूसरी राहत दे जिसे वह उपयुक्त और उचित समझे। और न्याय तथा दयाके इस कार्यके लिए आपके प्रार्थी, कर्तव्य समझ कर, सदैव दुआ करेंगे, आदि आदि[1]।

[अंग्रेजीसे]

नेटाल विधानपरिषदकी ३० मार्च, १८९७ की कार्यवाहीका अंश।

कलोनियल आफ़िस रेकर्ड्स, नं. १८१, जिल्द ४२; और, आर्काइव्ज़, पीटर-मैरित्सबर्ग, एन-पी-पी, जिल्द ६५६, प्रार्थनापत्र ६।

१. कलोनियल आफ़िस रेकर्ड्समें उपलब्ध छपी हुई प्रतिमें हस्ताक्षर नहीं हैं।

३५. नेटालमें भारतीयोंकी स्थिति

गांधीजीने श्री जोज़ेफ़ चेम्बरलेनके नाम अपने मार्च १५, १८९७ के महत्त्वपूर्ण प्रार्थनापत्रकी प्रतियाँ इंग्लैंडके अनेक लोकसेवकोंको निम्न पत्रके साथ भेजी थीं। उनका इरादा प्रभावशाली व्यक्तियोंके विचारोंको दक्षिण आफ्रिकी भारतीयोंके पक्षमें प्रभावित करनेका तो था ही, साथ ही उनके मनमें औपनिवेशिक प्रधानमन्त्रियोंका सम्मेलन भी था, जो आगे चलकर उसी साल लंदनमें होनेवाला था।

वेस्ट स्ट्रीट
डर्बन (नेटाल)
मार्च २७, १८९७[1]

श्रीमन्,

हम, नेटाल-निवासी भारतीय समाजके प्रतिनिधि, निम्न हस्ताक्षरकर्ता, निवेदन करते हैं कि आप इसके साथ संलग्न, परम माननीय श्री जोजेफ़ चेम्बरलेनको भेजे हुए प्रार्थनापत्रपर विचार करनेकी कृपा करें। यह प्रार्थनापत्र एक ऐसी समस्याके विषयमें है जो इस समय नेटालमें भारतीयोंके लिए सर्वव्यापी बन गई है। यह प्रार्थनापत्र है तो बहुत लम्बा, परन्तु हमें हार्दिक आशा है कि आप इसके विषयके महत्त्वको देखते हुए इसकी लम्बाईका खयाल न करेंगे और इसे पूरा पढ़ लेंगे।

इस उपनिवेशकी भारतीय समस्या इस समय बड़ी विकट स्थितिमें पहुँच गई है। उसका प्रभाव सम्राज्ञीकी इस उपनिवेशवासी भारतीय प्रजापर ही नहीं, परन्तु भारतकी सारी आबादीपर पड़ रहा है। वास्तवमें उसका रूप साम्राज्य-व्यापी है। जैसा कि *टाइम्स*ने लिखा है, प्रश्न यह है कि "वे एक ब्रिटिश-शासित देशसे दूसरेमें स्वतन्त्रतापूर्वक जा सकते हैं या नहीं, और उन देशोंमें जाकर ब्रिटिश प्रजाजनोंको प्राप्त अधिकारोंका दावा कर सकते हैं या नहीं?" नेटालके यूरोपीय कहते हैं कि कम-से-कम हमारे देशमें तो वे ऐसा नहीं कर सकते। उक्त प्रार्थनापत्रमें, नेटालके इस रुखके कारण, भारतीयोंपर होनेवाले अत्याचारोंकी दुःखभरी कहानी सुनाई गई है।

१. यह तारीख, स्पष्टतः, उस दिनकी है, जब कि पत्र लिखकर प्रार्थनापत्रके साथ भेजनेके लिए तैयार रखा गया था। प्रार्थनापत्र नेटालके गवर्नरको अप्रैल ६, १८९७ को दिया गया था। देखिए पादटिप्पणी, पृष्ठ १९७।

लंदनमें शीघ्र ही ब्रिटिश उपनिवेशोंके प्रधानमंत्रियोंका एक सम्मेलन होनेवाला है। उसमें एकत्रित प्रधान-मन्त्रियोंके साथ श्री चेम्बरलेन इस प्रश्नपर विचार-विनिमय करेंगे कि उपनिवेशोंको भारतीयोंके विरुद्ध ऐसे कानून बनाने दिये जायें या नहीं जो केवल उनपर लागू हों, यूरोपीय लोगोंपर नही; और अगर बनाने दिये जायें तो किस हद तक। इस कारण हमारे लिए आवश्यक हो गया है कि नेटालमें हमारी जो स्थिति है उसे संक्षेपमें आपके सामने पेश कर दें।

इस उपनिवेशमें भारतीयोंको जिन कानूनी निर्योग्यताओंका सामना करना पड़ रहा है उनमें से कुछ ये हैं.

१. भारतीय लोग रातको ९ बजेके बाद, यूरोपीय लोगोंके समान परवाना दिखलाये बिना बाहर नहीं निकल सकते।[1]

२. कोई भारतीय यदि इस आशयका परवाना न दिखला सके कि वह स्वतंत्र भारतीय है, तो उसे दिनके किसी भी समय गिरफ्तार किया जा सकता है। (यह शिकायत विशेष रूपसे इस नियमपर अमल करनेके ढंगके विरुद्ध है)।

३. भारतीयोंको अपने पशु हाँककर ले जाते हुए भी अमुक प्रकारके परवाने रखने पड़ते हैं; यूरोपीयोंको ऐसा कोई परवाना नहीं दिखलाना पड़ता।

४. डर्बनके एक उपनियमके अनुसार वतनी नौकरों और भारतीय नौकरोंका पंजीकरण (रजिस्ट्रेशन) किया जाता है। इस उपनियममें भारतीयोंका जिक्र "एशियाकी असभ्य जातियोंके अन्य लोग" कहकर किया गया है।

५. गिरमिटिया भारतीयोंका स्वतंत्र हो जानेपर या तो भारत लौट जाना जरूरी है — उनका मार्ग-व्यय उन्हें दे दिया जायेगा — या, यदि वे थोड़े स्वतंत्र होकर उपनिवेशमें बसना चाहें तो, उन्हें उसका मूल्य ३ पौंड वार्षिक व्यक्ति-करके रूपमें चुकाना पड़ेगा।[2] (लंदन

१. परवाने सम्बन्धी कानूनों और उन्हें कार्यान्वित करानेके ढंगके लिए देखिए पृष्ठ ९–१४; और खण्ड १, पृष्ठ ३०१–६।

२. देखिए खण्ड १, पृष्ठ २१५ और इस कानूनकी विस्तृत चर्चाके लिए खण्ड १, पृष्ठ २१५–३५।

*टाइम्स*ने इस स्थितिको "खतरनाक रूपमें दासताके निकट" की स्थिति बताया है।)

६. भारतीय यदि मताधिकार प्राप्त करना चाहें तो उनका या तो यह सिद्ध करना जरूरी है कि वे ऐसे किसी देशसे आये हैं जिसमें "संसदीय मताधिकारपर आधारित चुनावमूलक प्रातिनिधिक संस्थाएँ" मौजूद हैं,[१] या यह जरूरी है कि वे सपरिषद गवर्नरसे इस नियमसे मुक्त होनेका आज्ञापत्र प्राप्त करें। यूरोपीयोंके लिए ऐसा कोई नियम नहीं है। (भारतीयोंके लिए यह कानून गत वर्ष ही बनाया गया था। तबतक उन्हें भी उपनिवेशके सामान्य मताधिकार कानूनके अनुसार मताधिकारी माना जाता था। उस कानूनके अनुसार जो व्यक्ति वयस्क और पुरुष हो और ५० पौंडकी स्थावर सम्पत्तिका स्वामी हो अथवा १० पौंड वार्षिक किराया देता हो वह, यदि दक्षिण आफ्रिकाका वतनी न हो तो, मताधिकारी बन सकता था।)[२]

७. भारतीय विद्यार्थियोंकी योग्यता, चरित्र और हैसियत कुछ भी क्यों न हो, उनके लिए सरकारी हाई स्कूलोंके दरवाजे बन्द हैं।

स्थानीय संसदके वर्तमान अधिवेशनमें जो कानून पास किये जायेंगे उनका विवरण निम्नलिखित है:

१. गवर्नरको अधिकार हो जायेगा कि वह किसी संक्रामक रोगग्रस्त बन्दरगाहसे आनेवाले किसी भी व्यक्तिको उपनिवेशमें उतरनेकी इजाजत देनेसे इनकार कर दे, वह व्यक्ति अन्य किसी बन्दरगाहसे ही जहाजपर सवार क्यों न हुआ हो।[३] (प्रधानमंत्रीने संसदमें इस विधेयकके द्वितीय वाचनका प्रस्ताव पेश करते हुए कहा था कि इसके द्वारा नेटाल सरकार इस उपनिवेशमें स्वतंत्र भारतीयोंका आगमन रोक सकेगी।)

२. नगर-परिषदों (टाउन कौंसिल्स) और नगर-निकायों (टाउन बोर्ड्स) को यह अधिकार प्राप्त हो जायेगा कि वे जिस-किसीको चाहें व्यापार करनेका परवाना दे दें, और चाहें तो इनकार कर दें।[४] उनके

१. देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३१९–२८।

२. देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३३६।

३. सूतक कानून: देखिए पृष्ठ २६६–६७, ३६२–६४ और ३७८–७९।

४. देखिए पृष्ठ ३८५।

निर्णयपर देशका उच्चतम न्यायालय भी पुनर्विचार नहीं कर सकेगा। (प्रधानमंत्रीने इस विधेयकके द्वितीय वाचनका प्रस्ताव करते हुए संसदमें कहा था कि इस प्रकारका अधिकार इसलिए दिया जायेगा, कि भारतीय लोगोंके व्यापार करनेके परवाने रोके जा सकें)।

३. उपनिवेशमें आनेवालोंको कुछ शर्तें पालन करनेके लिए विवश किया जा सकेगा। उदाहरणार्थ, वे कम-से-कम २५ पौंडकी सम्पत्तिका स्वामी होनेका प्रमाण दें; वे एक नियत फार्म किसी यूरोपीय भाषामें भर सकें, इत्यादि। प्रधानमंत्रीके कथनानुसार इस कानूनमें एक बिना लिखी मान्यता यह है कि इसे यूरोपीय लोगोंपर लागू नहीं किया जायेगा। (सरकारने बतलाया है कि ये तीनों कानून अस्थायी होंगे। उसे आशा है कि उपनिवेशोंके प्रधानमन्त्रियोंके पूर्वोक्त सम्मेलनके पश्चात् वह ऐसे विधेयक पेश कर सकेगी जो केवल भारतीयों और एशियाइयोंपर लागू हों। तब उन कानूनोंमें अधिक कठोर पाबन्दियाँ लगाई जा सकेंगी और मनमें कुछ संकोच रखकर कानून बनाने अथवा उसका अधूरा पालन करनेकी परम्पराको छोड़ा जा सकेगा।)

४. अभी स्वतंत्र भारतीयोंको गिरफ्तारीके जिस अप्रिय अनुभवका सामना करना पड़ता है उससे उनकी रक्षाके लिए एक नई परवाना-प्रणाली चलाई जायेगी, और जो अधिकारी बिना-परवानेवाले भारतीयोंको गिरफ्तार करेंगे उन्हें गलत गिरफ्तारी करने आदिके कारण कोई जवाबदेही नहीं करनी पड़ेगी।[2]

नेटाल सरकारके सामने निम्न भारतीय-विरोधी कानून बनानेके सुझाव रखे गये हैं:

१. भारतीयोंको भूमिका स्वामी न बनने दिया जाये।

२. नगर-परिषदोंको अधिकार दिया जाये कि वे भारतीयोंको उनके लिए निश्चित की हुई पृथक् बस्तियोंमें रहनेके लिए विवश कर सकें।

१. देखिए खण्ड ३ (ख), पृष्ठ ३८० । योग्यता सम्बन्धी व्यवस्थाके स्थानपर बादमें एक ऐसी उपधारा जोड़ दी गई थी, जिसके अनुसार 'कंगाल' मताधिकारसे वंचित थे ।

२. देखिए पृष्ठ ३८६–८७ ।

वर्तमान प्रधानमंत्रीका मत है कि भारतीयोंको सदा "लकड़हारे और पनि-हारे" बनकर रहना चाहिए, और "जिस नये दक्षिण आफ्रिकी राष्ट्रका अब निर्माण किया जा रहा है उसका अंग उन्हें कभी नहीं बनने देना चाहिए।" हम यहाँ इतना जिक्र और कर दें कि सब मानते हैं कि नेटालकी समृद्धि मुख्य-तया भारतसे आये हुए गिरमिटिया मजदूरोंपर निर्भर करती है, और नेटाल ही भारतीय निवासियोंको स्वतंत्रताके अधिकार देनेसे इनकार कर रहा है।

परन्तु भारतीयोंकी स्थिति सारे ही दक्षिण आफ्रिकामें कमोबेश इसी प्रकारकी है। यदि भारतीयोंको ब्रिटिश उपनिवेशों और उनसे सम्बद्ध देशोंमें आने-जाने और उनके साथ कारोबार करनेकी स्वतन्त्रता नहीं दी जायेगी तो स्वतंत्र भारतीय उद्यमोंका तो अन्त ही हो जायेगा। *टाइम्स*के कथनानुसार, *अभी* तो भारतीय अपने बहुत पुराने और परम्परागत अन्धविश्वास छोड़-कर व्यापारादिके लिए बाहर जानेकी प्रवृत्ति दिखलाने लगे हैं, और अभी उपनिवेश उनके लिए दरवाजे बन्द किये डाल रहे हैं। यदि ब्रिटिश सरकारने, और इसलिए साम्राज्यकी संसदने, यह सब चलने दिया तो हमारी नम्र सम्मतिमें यह १८५८ की दयालुतापूर्ण घोषणाका गम्भीर उल्लंघन होगा। और यदि भारतको ब्रिटिश साम्राज्यसे पृथक् न समझा जाये तो इस व्यवहारसे साम्राज्यके संघकी जड़ ही कट जायेगी।

हमारा खयाल यहाँतक है कि ऊपर दिये हुए तथ्य-मात्र इतने काफी हैं कि आप उन्हें देखकर हमारे पक्षका पूरे दिलसे समर्थन करनेको तैयार हो जायेंगे।

आपके आज्ञाकारी सेवक,
अब्दुलकरीम हाजी आदम
(दादा अब्दुल्ला ऐंड कं०)
तथा चालीस अन्य

छपी हुई अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० २१५९) से।

३६. पत्र : फर्दुनजी सोराबजी तलेयारखाँको

सेंट्रल वेस्ट स्ट्रीट
डर्बन (नेटाल)
मार्च २७, १८९७

प्रिय श्री तलेयारखाँ,

आपके दो पत्रोंके लिए धन्यवाद। दूसरा तो इसी सप्ताह मिला है। खेद है कि समयकी कमीके कारण मैं लम्बा पत्र नहीं लिख सकता। मेरा करीब-करीब पूरा ध्यान भारतीय प्रश्नमें लगा है। हालकी घटनाओंके बारेमें श्री चेम्बरलेनके नाम प्रार्थनापत्र अगले सप्ताह[1] तैयार हो जायेगा। तैयार होनेपर मैं कुछ नकलें आपको भेजूँगा। उससे आपको सब जरूरी जानकारी मिल जायेगी।

आजकल नेटाल-संसदकी बैठकें हो रही हैं और तीन भारतीय-विरोधी विधेयक उसके विचाराधीन हैं। नतीजा मालूम होते ही लंदनमें प्रचारके लिए आपके कृपापूर्ण सुझावके सम्बन्धमें आपको लिखूँगा। इस समय जनताकी भावनाएँ जैसी हैं, उनमें आपका लोकसेवकके नाते नेटाल आना ठीक होगा या नहीं, यह प्रश्न है। नेटालमें ऐसे व्यक्तिका जीवन इस समय खतरेमें है। मुझे जरूर खुशी है कि आप मेरे साथ नहीं आये। संक्रामक रोग सम्बन्धी सूतक (क्वारंटीन)के नियम भी खास तौरसे ऐसे बना दिये गये हैं कि और भारतीयोंका आना रोका जा सके।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी प्रतिसे; सौजन्य : रुस्तमजी फर्दुनजी सोराबजी तलयारखाँ।

१. देखिए पादटिप्पणी, पृष्ठ १९७।

३७. पत्र : ज़ूलूलैंड-सचिवको

बीचग्रोव, डर्बन
अप्रैल १, १८९७

श्री सचिव
परमश्रेष्ठ गवर्नर महोदय, ज़ूलूलैंड
पीटरमैरित्सबर्ग

महोदय,

क्या मैं पूछ सकता हूँ कि परम माननीय उपनिवेश-मन्त्रीने नोंदवेनी और एशोवे बस्तियोंके नियमों-सम्बन्धी प्रार्थनापत्रका कोई उत्तर भेजा है या नहीं?[1]

आपका, आदि,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

इंडिया आफिस लायब्रेरी। देखिए : जुडीशियल ऐंड पब्लिक फाइल्स १८९७, जिल्द ४६७, नं० २५३६/१९१७

३८. भारतके लोकसेवकोंके नाम

गांधीजीने श्री चेम्बरलेनके नाम मार्च १५, १८९७ के प्रार्थनापत्रकी नकल नीचे दिये हुए पत्रके साथ भारतके अनेक लोकसेवकोंको भी भेजी थी।

डर्बन (नेटाल)
अप्रैल २, १८९७

श्रीमन्,

हालके भारतीय-विरोधी प्रदर्शनके विषयमें जो प्रार्थनापत्र श्री चेम्बरलेनको भेजा गया था[2] उसकी एक प्रति मैं आपको भेज रहा हूँ। लंदनमें शीघ्र ही

१. इन नियमोंके अनुसार भारतीय नोंदवेनी और एशोवे बस्तियोंमें जमीन खरीद या प्राप्त नहीं कर सकते थे। उक्त प्रार्थनापत्र मार्च ११, १८९६ को उपनिवेश-मन्त्रीके पास भेजा गया था। देखिए खण्ड १, पृष्ठ २९९–३०१, ३०६–७ और ३१०–१४।

२. देखिए पृष्ठ १९७।

उपनिवेशोंके प्रधानमंत्रियोंके सम्मेलनमे, अन्य प्रश्नोंके अतिरिक्त, इसपर भी विचार किया जायेगा। इस कारण यह सर्वथा आवश्यक है कि इस प्रश्नके भारतीय पक्षको यथाशक्ति दृढ़तासे पेश किया जाये। मै जानता हूं कि भारतके लोकसेवकोंका सारा ध्यान इस समय दुर्भिक्ष और प्लेगकी ओर लगा हुआ है। परन्तु अब इस प्रश्नका अन्तिम निर्णय होनेवाला है, इस कारण मै यह सुझानेका साहस कर रहा हूँ कि इसपर लोकसेवकोंको पूरा ध्यान देना चाहिए। दुर्भिक्षका एक इलाज विदेशोंमें जाकर बसना भी है। और उपनिवेश अब इसीको रोकनेका प्रयत्न कर रहे हैं। ऐसी हालतमे मेरा निवेदन है कि इस मामलेपर भारतके लोकसेवकोंको तुरन्त और बहुत ही संजीदगीके साथ ध्यान देना चाहिए।

आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि यहाके भारतीयोंने भारतीय-दुर्भिक्ष-कोषमें ११३० पौंडसे अधिक चन्दा दिया है।

आपका आज्ञाकारी,

मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी साइक्लोस्टाइल्ड प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० २२१०) से।

३९. पत्र : फर्दुनजी सोराबजी तलेयारखाँको

डर्बन

[अप्रैल ६, १८९७][1]

प्रिय श्री तलेयारखाँ,

मैं आज आपको प्रार्थनापत्र और दूसरे कागजात भेज रहा हूँ। अधिक लिखनेके लिए समय ही नही है। समस्याने ऐसा गंभीर रूप धारण कर लिया है कि भारतीयोंपर जो बाधा-निषेध लादे जा रहे है उनके खिलाफ सारे भारतको उठ खड़ा होना चाहिए। समय *अभी* है या फिर *कभी न* होगा। और नेटाल सम्बन्धी प्रश्नका निर्णय तमाम उपनिवेशोंपर लागू किया जा सकेगा।

१. यह पत्र अप्रैल ७, १८९७ के परिपत्र (देखिए पृष्ठ ३३८–३९) की पीठपर सम्भवतः अप्रैल ६, १८९७ को लिखा गया था, जब कि गांधीजीने उक्त प्रार्थनापत्र नेटालके गवर्नरको दिया था। देखिए पादटिप्पणी, पृष्ठ १९७।

सार्वजनिक संस्थाएँ दुर्व्यवहार-विरोधी प्रार्थनापत्रोंसे भारतीय मन्त्रालयको पूर क्यों नहीं दे सकतीं? सबका मत एक ही है। न्याय प्राप्त करनेके लिए कार्रवाई ही जरूरी है।

हृदयसे आपका,

मो० क० गांधी

अगर और कुछ नहीं किया जा सकता तो, किसी भी हालतमें, राज्यके द्वारा प्रवासियोंका भेजा जाना तो बन्द कर ही दिया जाये।

मो० क० गां०

गांधीजीके हस्ताक्षरयुक्त मूल अंग्रेजी पत्रसे; सौजन्य: रुस्तमजी फर्दुनर्जी मोरावजी तल्यारखाँ।

४०. पत्र: औपनिवेशिक सचिवको

डर्बन
अप्रैल ६, १८९७

सेवामें
माननीय औपनिवेशिक सचिव
मैरित्सबर्ग

महोदय,

आपका गत ३१ तारीखका पत्र[1] प्राप्त हुआ। उसके द्वारा आपने मुझे सूचना दी है कि गवर्नरके खरीतेके जिस अंशका मैंने उल्लेख किया था उसके आधारकी जानकारी मुझे नहीं दी जा सकती, परन्तु मेरे पत्र और आपके उत्तरकी नकल गवर्नर महोदय परम माननीय उपनिवेश-मन्त्रीको जानकारीके लिए भेज देंगे।

उत्तरमें, मेरा खयाल है कि अगर वह जानकारी मेरे किसी वक्तव्यसे प्राप्त की गई है तो उसकी सूचना मुझे दी जानी चाहिए। मैं अत्यन्त आदरके साथ अपनी चिन्ता व्यक्त किये बिना नहीं रह सकता कि परमश्रेष्ठ गवर्नर महोदयने

१. गांधीजीके जिस पत्रका यह उत्तर था उसके लिए देखिए पृष्ठ ३२९।

मुझसे सत्यासत्यकी जाँच किये बिना ही, इस तरहकी जानकारी परम माननीय उपनिवेश-मन्त्रीको देना उचित समझा।

मै इस पत्र-व्यवहारकी नकल अखबारोंको भेज रहा हूँ।

आपका,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

नेटाल मर्क्युरी, ८-४-१८९७।

४१. पत्र : जूलूलैंड-सचिवको

डर्बन

अप्रैल ७, १८९७

सेवामें
श्री डब्ल्यू० ई० पीची
जूलूलैंड-सचिव
पीटरमैरित्सबर्ग

महोदय,

मै, सम्मानके साथ, आपके ६ तारीखके पत्रकी प्राप्ति स्वीकार करता हूँ। उसके द्वारा आपने मुझे सूचना दी है कि गवर्नरको उपनिवेश-मन्त्रीके पाससे निर्देश मिला है कि जूलूलैंडमें मकानोंकी जमीनकी बिक्रीके सम्बन्धमे कुछ संशोधित नियम जारी किये जायें।

आपका, आदि,

(ह०) मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

इंडिया आफिस लायब्रेरी। देखिए : जुडीशियल ऐंड पब्लिक फाइल्स १८९७, जिल्द ४६७, नं० २५३६/११७७।

४२. भारतीयोंका सवाल

डर्बन
अप्रैल १३, १८९७

सेवामे
सम्पादक
नेटाल मर्क्युरी

महोदय,

भारतसे लौटनेके बाद भारतीयोंके प्रश्नपर लिखनेका मेरा यह पहला ही मौका है।[1] इस बीच मेरे बारेमें बहुत-कुछ कहा गया है। मैं चाहता तो बहुत हूँ कि उस सबकी उपेक्षा कर दूँ, फिर भी मालूम होता है कि कुछ कहे बिना काम न चलेगा। मुझपर ये आरोप लगाये गये हैं: (१) भारतमें मैंने उपनिवेशियोंके चारित्र्यको बदनाम किया और कई गलत-बयानियाँ कीं[2]; (२) उपनिवेशको भारतीयोंसे पूर देनेके लिए मेरे अधीन एक संस्था है[3]; (३) मैंने कूरलैंड और *नादरी* जहाजोंके यात्रियोंको भड़काया कि वे गैर-कानूनी तौरसे रोके जानेके कारण सरकारपर हरजानेका मुकदमा चलायें[4]; (४) मुझे राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा है और मैं जो काम कर रहा हूँ उसका उद्देश्य अपनी थैली भरना है।

जहाँतक पहले आरोपकी बात है, आपने मुझे उससे मुक्त कर दिया है।[5] इसलिए उसके बारेमें कुछ कहना आवश्यक नहीं मालूम होता। फिर भी, रस्मी तौरपर तो मैं यह कह ही दूँ कि मैंने कभी ऐसा कोई काम नहीं किया, जिससे मुझपर वह अपराध लगाया जा सके। दूसरे आरोपके बारेमें मैंने जो-कुछ अन्यत्र कहा है उसीको यहाँ दुहराता हूँ। मेरा ऐसे किसी संगठनसे कोई सम्बन्ध नहीं है। जहाँतक मुझे मालूम है, उपनिवेशको भारतीयोंसे पूर देनेके लिए कोई संगठन है भी नहीं। तीसरे आरोपको मैं नामंजूर कर ही

१. अखबारोंमें लिखनेका।

२. यह उल्लेख हरी पुस्तिकामें बताई गई गलत-बयानियोंका है।

३. देखिए पृष्ठ ४००, ४०५ और ४०७।

४. देखिए पृष्ठ १७५, २२८–२९ और २३१।

५. देखिए पृष्ठ ३१८।

चुका हूँ। अब मैं फिर बहुत जोरोंसे कहता हूँ कि मैंने सरकारपर मुकदमा चलानेके लिए किसी एक यात्रीको भी नही भड़काया। चौथे आरोपके बारेमें मै कहता हूँ कि मुझे कोई भी राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा नही है। जो लोग मुझसे व्यक्तिगत रूपमें परिचित हैं वे जानते है कि मेरी महत्त्वाकांक्षा किस दिशामें है। मै किसी प्रकारके संसदीय सम्मानकी आकांक्षा नही करता। और यद्यपि तीन मौके आये, मैंने जान-बूझकर मत-दाता सूचीमें अपना नाम शामिल होने नही दिया। मैं जो सार्वजनिक काम करता हूँ उसका कोई मिहनताना नहीं पाता। अगर यूरोपीय उपनिवेशी मेरा विश्वास कर सकें तो मैं नम्रता-पूर्वक उन्हें विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि मै दोनों समाजोंके बीच फूटके बीज बोनेके लिए यहाँ नहीं रहता, बल्कि उनके बीच सम्मानपूर्ण मेल-जोल करानेके लिए रहता हूँ। मेरी नम्र रायमें, दोनों समाजोंके बीच जो मनोमालिन्य है उसमें से ज्यादातरका कारण एक-दूसरेकी भावनाओं और कार्योंके बारेमें गलतफहमी है। इसलिए मेरा कार्य उन दोनोंके बीच एक नम्र दुभाषियेका है। मुझे यह विश्वास करना सिखाया गया है कि ब्रिटेन और भारत कितने भी समय तक एक साथ रह सकते हैं। शर्त इतनी ही है कि दोनोंके बीच भाईचारेकी भावना हो। ब्रिटेन और भारतके बड़ेसे बड़े मनस्वी इस आदर्शकी पूर्तिके प्रयत्नों में लगे हुए हैं। मैं तो नम्रताके साथ उनका अनुसरण मात्र कर रहा हूँ। और महसूस करता हूँ कि नेटालके यूरोपीयोंकी वर्तमान कार्रवाइयाँ उस आदर्शकी साधनाको निष्फल करनेवाली भले ही न हों, फिर भी उसमें बाधा डालनेवाली तो हैं ही। मै यह भी महसूस करता हूँ कि इन कार्रवाइयोंका आधार पुख्ता नहीं है। ये जनताके द्वेष-भाव और पूर्वग्रहोंके आधारपर की जा रही हैं। ऐसी स्थितिमें, मैं विश्वास करता हूँ कि, यूरोपीय उपनिवेशियोंका मत उपर्युक्त मतसे कितना भी भिन्न क्यों न हो, वे उसके बारेमें सहिष्णुतासे काम लेंगे।

नेटालकी संसदके सामने अनेक विधेयक[1] पेश हैं। भारतीयोंके हितोंपर उनका प्रतिकूल प्रभाव पड़नेवाला है। भारतीयोंके बारेमें इन्हें ही अन्तिम कानून नहीं माना जाता। किंतु माननीय प्रधानमंत्रीने कहा है कि उपनिवेशोंके प्रधानमन्त्रियोंकी बैठक हो जानेपर और भी कड़े कानून बनाये जा सकते हैं। भारतीयोंके लिए

१. सूतक (क्वारंटीन), विक्रेता-परवाना, प्रवासी प्रतिबन्धक और गैर-गिरमिटिया भारतीय संरक्षण विधेयक।

यह एक मनहूस नजारा है। इसे टालनेके लिए अगर वे अपनी तमाम साधन-शक्तिका उपयोग करें तो, मेरे खयालसे, उन्हें दोषी नहीं ठहराया जाना चाहिए। दीख पड़ता है कि हर चीज जल्दी-जल्दी की जा रही है, मानो हर तरहके और हर हालतके हजारों भारतीयोंकी नेटालमें बाढ़ आ जानेका खतरा आ गया हो।[1] मेरा निवेदन है कि ऐसा कोई खतरा नही है। और अगर हो भी तो हालमें जिस संक्रामक रोग सूतक कानून[2]का अवलम्बन किया गया था, उससे कारगर रोक लगाई जा सकती है। भारतीय लोग उपनिवेशके लिए अनिष्टकारी हैं या हितकारी, इसकी जाँचके सुझावकी खिल्ली उड़ाई गई है। और फैसला यह दिया गया है कि जिसके आँखें है वह देख सकता है कि किस तरह भारतीय चारों ओरसे यूरोपीयोंको खदेड़ रहे है। मै आदरके साथ मतभेद व्यक्त करता हूँ। गिरमिटिया भारतीयोंके अलावा हजारों स्वतंत्र भारतीयोंने नेटालमें बड़ी-बड़ी जायदादोंको विकसित किया है, उन्हें मूल्यवान बनाया है और जंगलोंसे उपजाऊ भूमिमें बदल दिया है। उन्हें, मेरा विश्वास है, आप अनिष्ट न कहेंगे। उन्होंने किन्हीं यूरोपीयोंको नही उखाड़ा। उलटे, उन्हें समृद्धिशाली बनाया है और उपनिवेशकी सामान्य सम्पत्तिको बहुत बढ़ा दिया है। उन्होंने जो काम किया है क्या उसे यूरोपीय लोग करेंगे — कर सकेंगे? क्या भारतीयोंने इस उपनिवेशको दक्षिण आफ्रिकाका उद्यान-उपनिवेश बनानेमें अच्छी-खासी मदद नही की है? जब यहाँ स्वतंत्र भारतीय नही थे उस समय एक गोभीकी कीमत आधा क्राउन [ढाई शिलिंग या लगभग एक रुपया ग्यारह आने] होती थी। अब गरीबसे गरीब आदमी भी गोभी खरीद सकता है। क्या यह अभिशाप है? क्या इससे श्रमिकोंको कुछ हानि पहुँची है? कहा जाता है कि "भारतीय व्यापारियोंने उपनिवेशका कलेजा ही खा लिया है।" क्या बात ऐसी ही है? यूरोपीय पेढ़ियोंने जिस तरह अपने व्यापारको बढ़ाया है, वह भारतीय व्यापारियोंके ही कारण सम्भव हुआ है। और इस वृद्धिके कारण ये पेढ़ियाँ सैकड़ों यूरोपीय मुहर्रिरों और हिसाब-नवीसोंको नौकरी दे सकती है। भारतीय व्यापारी तो बिचौलियोंका काम करते है। वे अपना काम वहाँ आरम्भ करते हैं, जहाँ यूरोपीय उसे छोड़ते है। इससे इनकार नहीं कि वे यूरोपीयोंकी अपेक्षा

१. मार्च २७को संसदमें भाषण करते हुए नेटालके प्रधानमन्त्रीने देशको स्वतन्त्र भारतीय प्रवासियोंसे पूर देनेकी एक व्यवस्थित योजनाकी चर्चा की थी (एस० एन० २१७१)।

२. यह उल्लेख *कूरलैंड* और *नादरी*पर लगाये गये सूतक (क्वारंटीन)का है।

कम खर्चपर रह सकते हैं; मगर यह तो उपनिवेशके लिए लाभजनक है। वे यूरोपीय वस्तु-भंडारोंसे थोक खरीदी करते हैं और थोक भावोंपर थोड़ा-सा फायदा लेकर बिक्री कर सकते हैं। इस तरह वे गरीब यूरोपीयोंको लाभ पहुँचाते हैं। इसके जवाबमें कहा जा सकता है कि आज जो काम भारतीय दूकानदार करते हैं, वही काम यूरोपीय कर सकते थे। यह एक भ्रम है। अगर भारतीय न होते तो वही यूरोपीय जो आज थोक व्यापारी हैं, फुटकर विक्रेता होते। अलबत्ता, कुछ खास-खास व्यापारियोंकी बात अलग होती। इसलिए, भारतीय दूकानदारोंने यूरोपीय दूकानदारोंको एक सीढ़ी ऊपर उठा दिया है। यह भी कहा गया है कि भविष्यमें भारतीय व्यापारी यूरोपीयोंके हाथका थोक व्यापार भी हड़प सकते हैं। यह खयाल वास्तविक हालतोंसे साबित नहीं होता, क्योंकि थोक भाव यूरोपीय और भारतीय भंडारोंमें बिलकुल एक-से नहीं, तो लगभग एक-से जरूर हैं। इस प्रकार थोक व्यापारमें प्रतिद्वंद्विता करना किसी भी तरह अनुचित नहीं माना जा सकता। भारतीयोंका सस्ता रहन-सहन थोक भाव निश्चित करनेपर कोई महत्त्वपूर्ण असर नहीं डालता, क्योंकि एकको सस्ते रहन-सहनसे जो फायदा है, वह दूसरेको उसकी अधिक पद्धतिशील व्यावसायिक आदतों और व्यापार-सम्बन्धी "स्वदेश-सम्बन्धों" से मिल जाता है। एक ओर तो यह आपत्ति की जाती है कि भारतीय नेटालमें जमीन-जायदाद खरीदते हैं और दूसरी ओर कहा जाता है कि उनका धन उपनिवेशमें काम नहीं आता, बल्कि भारतको चला जाता है — क्योंकि "वे बूट नहीं पहनते, यूरोपीय वस्त्र नहीं पहनते और अपनी कमाई भारतको भेज देते हैं," और इस प्रकार उपनिवेशके धनका भयानक बहाव हो रहा है। ये दोनों आपत्तियाँ स्वयं ही एक-दूसरीका पूरा जवाब देनेवाली हैं। अगर मान लिया जाये कि भारतीय बूट और यूरोपीयोंके बनाये कपड़े नहीं पहनते, तो भी वे इस प्रकार बचा हुआ धन भारत नहीं भेजते, बल्कि उसे जमीन-जायदाद खरीदनेमें लगा देते हैं। इसलिए, वे उपनिवेशमें एक हाथसे जो-कुछ कमाते हैं, दूसरे हाथसे खर्च कर देते हैं। तो फिर वे जो-कुछ भारतको भेजते हैं वह, इस तरहकी जमीन-जायदादके कियायेके रूपमें पाये हुए ब्याजका एक अंशमात्र हो सकता है। भारतीयोंका जमीन-जायदाद खरीदना दुहरे लाभका है। उससे जमीनकी कीमत बढ़ती है और यूरोपीय राज-मिस्त्रियों, बढ़इयों और अन्य कारीगरोंको काम मिलता है। यूरोपीय कारीगरोंको भारतीय समाजसे डरनेका कोई कारण है, यह एक

काल्पनिक भूत-मात्र है। यूरोपीय और भारतीय कारीगरोंमें कोई प्रतिस्पर्धा नहीं है। भारतीय कारीगर तो हैं ही बहुत थोड़े, और वे थोड़े भी साधारण कोटिके हैं। डर्बनमें भारतीयोंकी एक इमारत बनानेके लिए भारतीय कारीगरोंको लानेकी एक योजना बनाई गई थी, परन्तु वह विफल हो गई। कोई अच्छे भारतीय कारीगर यहाँ आनेको तैयार नहीं हैं। मेरे देखनेमें ऐसी बहुत-सी भारतीय इमारतें नहीं आईं, जिन्हें भारतीय कारीगरोंने बनाया हो। उपनिवेशमें तो कामका एक स्वाभाविक बँटवारा हो गया है। कोई समाज किसी दूसरे समाजके कामको हथियाता नहीं।

अगर ऊपर व्यक्त किये हुए विचार जरा भी युक्तिसंगत हैं तो मैं निवेदन करना चाहता हूँ कि कानूनी हस्तक्षेप अनुचित है। माँग और पूर्तिका नियम आपोंआप स्वतंत्र भारतीयोंके आगमनको नियन्त्रित कर देगा। आखिर, यह तो मान ही लिया गया है कि भारतीय लोग यूरोपीयोंके बलपर ही फल-फूल सकते हैं। फिर अगर वे सचमुच घुन-रूप ही हैं, तो ज्यादा शानदार रास्ता यह होगा कि उनसे यूरोपीयोंका वैसा बल खींच लिया जाये। तब, हो सकता है, भारतीय कुछ समय बौखलाहट दिखायें, मगर वे न्यायकी दृष्टिसे शिकायत न कर सकेंगे। यह तो किसीको भी अन्यायपूर्ण मालूम होगा कि कानून पोषकोंकी शिकायतोंपर पोषितोंके जीवनमें दस्तंदाजी करे। तथापि ऊपरकी सारी दलीलके बलपर मैं जो दावा करना चाहता हूँ वह इतना ही है कि पहले जिस जाँच-पड़तालका सुझाव दिया जा चुका है उसके उचित सिद्ध करनेके लिए इसमें बहुत-कुछ तथ्य है। इसमें शक नहीं कि प्रश्नका दूसरा पहलू भी होगा। अगर जाँच हो तो दोनों पहलुओंकी पूरी छान-बीन हो जायेगी और निष्पक्ष निर्णय प्राप्त किया जा सकेगा। तब हमारे कानून बनानेवालोंको अपने कामके लिए और श्री चेम्बरलेनको अपने मार्गदर्शनके लिए खासी-अच्छी सामग्री मिल जायेगी। दस वर्ष पूर्व सर वाल्टर रैग और अन्य व्यक्तियोंके एक आयोग (कमिशन) ने जो मत दिया था सो यह है कि स्वतन्त्र भारतीय इस उपनिवेशको लाभ पहुँचानेवाले हैं। अगर पिछले दस वर्षोंमें परिस्थितियाँ इतनी बदल नहीं गई कि इस मतको स्वीकार ही न किया जा सके, तो कानून बनानेवालोंके सामने इस समय विश्वसनीय सामग्री केवल यह इतनी ही है।[1] तथापि ये

१. आयोगके निकाले हुए निष्कर्षोंके लिए देखिए खण्ड १, पृष्ठ २२५–२६, २८०–८५ और इस खण्डके पृष्ठ २६०–६२।

सब विचार स्थानिक हैं। उपनिवेशके लोगोंको साम्राज्य-व्यापी दृष्टिसे भी क्यों नहीं देखना चाहिए? और अगर देखना चाहिए तो कानूनकी नजरमें भारतीयोंको वही अधिकार मिलने चाहिए, जो दूसरी सब ब्रिटिश प्रजाओंको उपलब्ध हैं। भारत लाखों यूरोपीयोंको लाभ पहुँचाता है; भारतसे ही ब्रिटिश साम्राज्य बना है; भारतने इंग्लैंडको लाजवाब प्रतिष्ठा प्रदान की है; भारत इंग्लैंडके लिए अक्सर लड़ा है। तो फिर, क्या यह उचित है कि उसी साम्राज्यके यूरोपीय प्रजाजन जो इस उपनिवेशमें रहते हैं और जो स्वयं भारतके मजदूरोंसे भारी फायदा उठाते हैं, स्वतंत्र भारतीयोंके इस उपनिवेशमें रहकर ईमानदारीके साथ जीविका-उपार्जन करने पर आपत्ति करें? आपने कहा है कि भारतीय यूरोपीयोंके साथ सामाजिक समानता चाहते हैं। मैं मंजूर करता हूँ कि मैं इस वाक्यांशको भली-भाँति समझा नहीं। परन्तु इतना तो मैं जानता हूँ कि भारतीयोंने श्री चेम्बरलेनसे दोनों समाजोंके बीच सामाजिक सम्बन्धोंको व्यवस्थित करनेकी माँग कभी नहीं की। और जबतक दोनों समाजोंके बीच आचार-व्यवहार, प्रथाओं, आदतों और धर्मका अन्तर कायम है तबतक, उनमें सामाजिक भेदका रहना स्वाभाविक ही है। भारतीय जो-कुछ समझ नहीं पाते, यह है कि दुनियाके किसी भी भागमें दोनों समाजोंके सहृदयता और मेलजोलसे रहनेमें यह भेद आड़े क्यों आये, और कानूनकी निगाहमें भारतीयोंका नीचा दर्जा मंजूर क्यों करना पड़े? अगर भारतीयोंकी सफाई-सम्बन्धी आदतें जैसी चाहिए वैसी नहीं है तो सफाई-विभाग कड़ी चौकसी रखकर आवश्यक सुधार करा सकता है। अगर भारतीय वस्तु-भंडारोंका दिखावा सुन्दर नहीं होता तो परवाना-अधिकारी उन्हें थोड़ेसे समयमें सुन्दर बनवा सकते हैं। ये सब बातें तभी हो सकती हैं जब कि यूरोपीय उपनिवेशी ईसाइयोंकी हैसियतसे भारतीयोंको अपने भाई, या ब्रिटिश प्रजाजनकी हैसियतसे बन्धु-प्रजाजन समझें। तब, आजके समान वे उन्हें कोसेंगे नहीं; उन्हें धमकियाँ नहीं देंगे, बल्कि उनमें जो दोष हों उन्हें निकालनेमें मदद करेंगे और इस तरह उन्हें और अपने-आपको दुनियाकी नजरमें ऊँचा उठायेंगे।

मैं प्रदर्शन-समिति[1]से अपील करता हूँ, जिसे खास तौरसे मजदूरोंका प्रतिनिधि माना जाता है। अब उसे मालूम हो गया है कि *कूरलैंड* और *नादरी*

१. देखिए पादटिप्पणी २, पृष्ठ १६७ और पृष्ठ २१७–१८ तथा २२५–२६।

जहाजोंसे ८०० यात्री नेटाल नहीं आये। और जो आये है उनमें एक भी भारतीय कारीगर नहीं है।[1] भारतीयोंने "यूरोपीयोंको रसोइये बना देने और खुद मालिक बन जाने"[2] का कोई प्रयत्न नहीं किया। यूरोपीय मजदूरोंको भारतीय मजदूरोंके खिलाफ कोई शिकायत नहीं हो सकती। ऐसी हालतमें, मेरी नम्र राय है, उनके लिए यह शोभनीय होगा कि वे फिरसे अपनी स्थिति-पर विचार करें और अपनी शक्तिको ऐसी दिशामें लगायें, कि सम्राज्ञीकी उपनिवेशवासी प्रजाके सब वर्ग उत्तेजना और संघर्षकी स्थितिमें रहनेके बजाय आपसमें मेलजोल और शांतिसे रहें। अखबारोंमें यह समाचार छपा है कि भारतीयोंकी ओरसे शीघ्र ही एक सज्जन इंग्लैड जानेवाले है और उप-निवेशके खिलाफ प्रमाण इकट्ठे किये जा रहे है। इस विषयमे कोई गलत-फहमी न हो इसलिए मैं कह दूँ कि निकट आनेवाले सम्मेलनके खयालसे दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंकी ओरसे एक सज्जन इंग्लैड जानेवाले हैं।[3] वे भारतीयोंसे सहानुभूति रखनेवालों तथा साधारण जनताके सामने और, जरूरत हो तो, श्री चेम्बरलेनके सामने भी भारतीयोंका दृष्टिकोण पेश करेंगे। उन्हें मार्ग-व्यय और दूसरे खर्चके अलावा, उनकी सेवाओंके लिए कोई पुरस्कार नहीं दिया जायेगा। यह कथन कि उपनिवेशके खिलाफ प्रमाण इकट्ठे किये जा रहे है, बड़ा बेढंगा है। यह सच नहीं है, इसीलिए इसे नकली नामसे लिखा गया है। बेशक, जानेवाले सज्जनको भारतीय प्रश्नकी सारी जानकारी दे दी जायेगी। मगर यह बात तो अखबारोंमें निकल ही चुकी है। भारतीयोंकी कभी यह इच्छा नहीं रही, और न अब है, कि वे अपने साथ यूरोपीयोंके निष्ठुर व्यवहार और सामान्य शारीरिक दुर्व्यवहारके खिलाफ मामला तैयार करें। वे यह भी साबित करना नहीं चाहते कि नेटालमें गिरमिटिया भारतीयोंके साथ दूसरे स्थानोंसे बदतर बरताव किया जाता है। इसलिए अगर उपनिवेशके

१. देखिए पृष्ठ १७४–७५।

२. देखिए पृष्ठ २१२।

३. उल्लेख मनसुखलाल हीरालाल नाजरका है, जिन्हें इंग्लैंड भेजा गया था और जिन्होंने वहाँ जाकर दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंकी समस्याओंके सम्बन्धमें लोगोंको अच्छी जानकारी दी और इस तरह मूल्यवान काम किया। देखिए खण्ड १, पृष्ठ १३८ और ३९३।

खिलाफ प्रमाण एकत्रित करनेकी बात ऐसा कोई खयाल पैदा करनेके मंशासे कही गई हो तो वह निराधार है।

आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
नेटाल मर्क्युरी, १६–८–१८९७

४३. पत्र: फ्रान्सिस डबल्यू० मैक्लीनको

वेस्ट स्ट्रीट
डर्बन
मई ७, १८९७

सेवामें
माननीय सर फ्रान्सिस डबल्यू० मैक्लीन, नाइट
अध्यक्ष, केन्द्रीय अकाल-पीड़ित सहायक समिति
कलकत्ता

श्रीमन्,

अकाल-निधिमें चन्देके लिए डर्बनके मेयरके नाम आपका तार जैसे ही पत्रोंमें प्रकाशित हुआ, वैसे ही डर्बनके भारतीयोंने चन्देकी एक सूची जारी कर देना अपना कर्तव्य समझा। तुरन्त अंग्रेजी, गुजराती, हिन्दी और तमिलमें परिपत्र निकाले गये।[1] उन सबकी नकलें हम इसके साथ भेज रहे है।

परन्तु जब डर्बनके मेयर महोदयने चन्देकी एक आम सूची जारी की, तब हमने अपना एकत्रित किया हुआ सारा चन्दा उसमें भेज देनेका निश्चय किया।

यह चन्दा नेटाल उपनिवेशके सब हिस्सोंसे विशेष कार्यकर्ताओंने इकट्ठा किया है। इसमे से कुछ नेटालके बाहरसे भी आया है।

मेयरके पास आज तक जो रकम इकट्ठी हुई है वह कुल १,५३५ पौंड १ शि० ९ पेंस है। इसमेंसे १,१०८ पौंड भारतीयोंसे प्राप्त हुए हैं।

१. देखिए पृष्ठ १९१–९२ ।

इसके साथ हम १० शिलिंग और इससे ज्यादा चन्दा देनेवालोंकी सूची भेज रहे हैं। हमारा सुझाव है कि यह सूची भारतके मुख्य-मुख्य दैनिक पत्रोंमें प्रकाशित करा दी जाये।

हमें डर्बनके मेयरकी मार्फत जो धन्यवादका तार मिला है, उसके लिए हम कृतज्ञ हैं। हमारी भावना यह है कि हमने अपने कर्तव्यसे ज्यादा कुछ नहीं किया। अफसोस यही है कि हम अधिक नहीं कर सके।

भवदीय विनीत,
दादा अब्दुल्ला ऐंड कं०
वास्ते — भारतीय समाज

गांधीजीके हस्ताक्षरोंमें लिखी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० २३१७) से।

४४. पत्र : ए० एम० कैमेरॉनको

५३-ए, फील्ड स्ट्रीट
डर्बन, नेटाल
मई १०, १८९७

प्रिय श्री कैमेरॉन,

आपके दो कृपापत्र मिले थे। मेरी पत्नी सौरीमें थीं और दफ्तरके कामका भार भी था। इसलिए, मुझे कहते खेद है, मैं आपके पहले पत्रका जवाब इससे पहले देनेमें असमर्थ रहा।

हाँ, श्री राय चले गये हैं। जब हमने सुना कि प्रधानमन्त्रियोंका सम्मेलन लंदनमें इस विषयपर विचार-विमर्श करनेवाला है, तब हमने किसीको भेजनेका निश्चय किया। श्री रायने स्वेच्छासे अपनी सेवा समर्पित की। उन्हें कोई शुल्क नहीं मिलेगा। उनका किराया और खर्च कांग्रेस देगी।

भारतमें अभी-हालमें जो काम किया गया है,[१] उसके बाद लोगोंको यह विश्वास दिलाना कठिन है कि वहाँ इस समय और बहुत ज्यादा कुछ किया जा सकता है।

१. गांधीजीने, स्पष्टतः, भारतमें अपने ही १८९६के कामका उल्लेख किया है। रायको भारतमें फिरसे लोकमतका संगठन करनेके लिए भेजा गया था।

प्रस्तावित भारतीय समाचारपत्र'के बारेमें अखबारोंमें जो कुछ निकला है उसका बहुत अंश सही है। और आपका कृपापत्र आनेके पहले उसके सम्बन्धमें मैंने आपकी याद भी की थी। अगर काम पूरा हो गया तो मैं आपसे उसके बारेमें और पत्रव्यवहार करूँगा। आप जो भी सुझाव दे सकेंगे उनकी कद्र की जायेगी।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

[पुनश्च :] शनिवारको प्रदर्शन-सम्बन्धी प्रार्थनापत्रकी एक नकल आपको भेजी गई थी।

श्री ए० एम० कैमेरॉन
पी० मै० बर्ग

मूल अंग्रेजी पत्रकी फोटो-नकल (सी० डबल्यू० १०८०) से; सौजन्य : महाराजा प्रवीरेन्द्रमोहन टागोर।

४५. पत्र : ब्रिटिश एजेंटको

प्रिटोरिया
मई १८, १८९७

सेवामें
माननीय ब्रिटिश एजेंट
प्रिटोरिया

श्रीमन्,

आपने इस गणराज्यके ब्रिटिश भारतीयोंके सम्बन्धमें जो मुलाकात देनेकी कृपा की थी, उसमें मैंने कहा था कि अगर १८८५ के कानून ३[2] के अर्थके सम्बन्धमें भारतीय समाज यहाँ एक परीक्षात्मक मुकदमा दायर करे तो उसका खर्च सम्राज्ञी-सरकारको देना चाहिए। इसलिए मैं शिष्टमण्डलकी ओरसे निवेदन करता हूँ कि आप परम माननीय उपनिवेश-मन्त्रीको तार देकर

१. देखिए पादटिप्पणी १, पृष्ठ १९६।
२. देखिए खण्ड १, पृष्ठ १७७–८।

पूछें कि क्या सम्राज्ञी-सरकार मुकदमेका खर्च देगी? इस निवेदनके आधार निम्नलिखित हैं:

१. यह परीक्षात्मक मुकदमा फ्री स्टेटके मुख्य न्यायाधीशके पंच-फैसलेके कारण आवश्यक हुआ है। पंच-फैसला कराना सम्राज्ञी-सरकारने मंजूर किया था। और, यद्यपि ट्रान्सवालके भारतीयोंके हित दाँव पर चढ़े थे, इस विषयमें उनकी भावनाओंकी जाँच-पड़ताल नहीं की गई। उन्होंने अमुक व्यक्तिको ही पंच नियुक्त करनेका भी आदरपूर्वक विरोध किया था। परन्तु वह भी निष्फल रहा (ब्लू बुक सी० ७९११, १८९५ पृष्ठ ३५, अनुच्छेद ३)।

२. उपर्युक्त सरकारी रिपोर्ट (ब्लू बुक) में प्रकाशित तारों (नं० ९, पृष्ठ ३८ और नं० १२ का सहपत्र, पृष्ठ ८६) से मालूम होता है कि सम्राज्ञी-सरकारने परीक्षात्मक मुकदमा चलानेका विचार किया है। चूंकि मुकदमा भारतीय समाजके किसी व्यक्तिके नामसे दायर किया जायेगा, इसलिए मेरा निवेदन है, यह अनुमान उचित ही होगा कि खर्च सम्राज्ञी-सरकार देगी।

३. यद्यपि १८८४ के समझौते (कानवेंशन) की धारा १४ से ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीयोंको संरक्षण प्राप्त है, फिर भी उनका दरजा गिराने और उनपर बाधा-निषेध लादनेकी कार्रवाइयाँ की गई हैं। इन कार्रवाइयोंके खिलाफ संघर्ष करनेमें वे पहले ही भारी खर्च उठा चुके हैं। उनकी आर्थिक स्थिति अपेक्षाकृत ऐसी नहीं है कि वे इस तरहका कोई भार सहन कर सकें। मुझे आशा है कि आप अपने तारमें खर्च-सम्बन्धी निवेदनके इन आधारोंका आशय दे देंगे।[१]

मैं अपनी ओरसे और जिस शिष्ट-मंडलको आज आपने कृपापूर्ण मुलाकात दी उसकी ओरसे आपको एक बार फिर धन्यवाद देता हूँ कि आप हमसे इतने सौजन्यके साथ मिले और आपने हमारी बातें इतने धैर्य और सहृदयताके साथ सुनीं।

शिष्टमंडलकी ओरसे,

आपका, आदि,
मो० क० गांधी

मुख्य उपनिवेश-मंत्रीके नाम केपटाउन स्थित ब्रिटिश उच्चायुक्त (हाई कमिश्नर) के ता० २५ मई, १८९७ के खरीतेका सहपत्र।

कलोनियल आफिस रेकर्ड्स: साउथ आफ्रिका, जनरल, १८९७।

१. सम्राज्ञी सरकारने इस मांगको स्वीकार नहीं किया था।

४६. पत्र : आदमजी मियाखानको

महारानी विक्टोरियाकी हीरक जयन्ती २२ जून १८९७ को मनाई जानेवाली थी। अतः नेटाल और ट्रान्सवालके भारतीयोने अपनी राजभक्ति और निष्ठा व्यक्त करते हुए उनको एक अभिनन्दन-पत्र भेजनेका निश्चय किया था। नेटालका अभिनन्दन-पत्र एक चाँदीकी ढालपर खुदवाया गया था। उसपर २१ लोगोंके हस्ताक्षर थे। अन्तिम हस्ताक्षर गांधीजीका था, जिन्होंने अभिनन्दन-पत्रका मसविदा बनाया था। वह सम्राज्ञीको समर्पित करनेके लिए नेटालके गवर्नरको दिया गया था। आदमजी मियाखानके नाम नीचे दिये हुए पत्रमें अभिनन्दन-पत्रके खुदावकी बाबत गांधीजीके निर्देश हैं। अभिनन्दन-पत्रका पाठ जो केवल *नेटाल मर्क्युरी*की एक कतरनमें उपलब्ध हुआ है, पृष्ठ ३५४ पर प्रकाशित किया गया है। इसी तरहकी शब्दावलीका अभिनन्दन-पत्र ट्रान्सवालके भारतीयोंने भी महारानीको भेजा था।

ट्रान्सवाल होटल
प्रिटोरिया
मई २१, १८९७

रा० रा०[१] आदमजी मियाखान,[२]

रानी-सरकारके लिए मानपत्रकी तजवीज कर ली होगी। अगर मानपत्र खुद या छप न गया हो तो उसके सिरनामेमें नीचे दिए अनुसार लिखा दीजिएगा। यह तुरन्त करना है।

"सेवामें,

महामहिमामयी विक्टोरिया, ईश्वरकी कृपासे इंग्लैंड तथा आयरलैंडकी रानी, धर्मकी संरक्षिका, भारतकी सम्राज्ञी,

परम कृपालु सार्वभौम सम्राज्ञी,

हम ...."

इसके नीचे "डर्बन, मई ..... १८९७" भी लिख देना।

१. गुजरातीमें इसका पूरा रूप "राजमान्य राजेश्री" है। हिन्दीमें इसकी जोड़ीके प्रचलित शब्द 'मान्यवर', 'श्रीमान्' आदि हैं।

२. १८९६में गांधीजीके भारत आनेपर इन्होंने नेटाल भारतीय कांग्रेसके अवैतनिक मन्त्रीका कार्य सँभाला था और उस पदपर ये जून १८९७ तक रहे।

श्री जोसफ़ तथा लारेंसके पाससे पत्र बिलकुल आया ही नहीं। इसका कारण समझमें नहीं आता। मेरा बुधवारको रवाना होना सम्भव है।

मो० क० गांधीके प्रणाम

एक गुजराती तथा अंग्रेजी मिली हुई प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३६७७) से।

४७. अभिनन्दन-पत्र: रानी विक्टोरियाको[1]

[जून ३ के पूर्व, १८९७][2]

आपके शानदार और कल्याणकारी राज्यका साठवाँ वर्ष पूरा हो रहा है। उसके आनन्दके चिह्न-स्वरूप हमें यह सोचकर अभिमान है कि हम आपकी प्रजा हैं। यह जानकर तो हमारा अभिमान और भी बढ़ जाता है कि भारतमें हम जिस शान्तिका उपभोग कर रहे हैं और जीवन तथा सम्पत्तिकी सुरक्षाका जो विश्वास हमें विदेशोंमें जाकर पराक्रम करनेका साहस प्रदान करता है, उस सबका मूल हमारी यह स्थिति ही है। हम आपके प्रति निष्ठा और भक्तिकी उन भावनाओंको पुनः प्रतिध्वनित किये बिना नहीं रह सकते जो आपके विशाल साम्राज्यमें, जिसमें सूर्य कभी अस्त नहीं होता, सर्वत्र, आपकी सब प्रजाओं द्वारा, प्रकट की जा रही है। सर्वशक्तिमान परमात्मा आपके स्वास्थ्य और शक्तिको हमारा शासन चलानेके लिए दीर्घ काल तक अक्षुण्ण रखे—यही हमारी हार्दिक कामना और प्रार्थना है।

[अंग्रेजीसे]

नेटाल मर्क्युरी: ३–६–१८९७

१. गांधीजीने मियाखानके नाम अपने पत्रमें जो सिरनामा सुझाया था उसे *नेटाल मर्क्युरी*ने अभिनन्दन-पत्रका पाठ प्रकाशित करते हुए छोड़ दिया था।

२. अभिनन्दनपत्र समर्पणार्थ भेजनेकी ठीक तारीख उपलब्ध कागज-पत्रोंमें नहीं दी गई।

४८. पत्र : औपनिवेशिक सचिवको

[डर्बन]
जून २, १८९७

सेवामें
माननीय औपनिवेशिक सचिव
पीटरमैरित्सबर्ग

महोदय,

नेटालके भारतीय समाजके प्रतिनिधियोंका इरादा गत अधिवेशनके भारतीय-विधेयकों[1] के सम्बन्धमें, जिनका आखिरी दस्ता कलके गज़टमें प्रकाशित हुआ है, परम माननीय उपनिवेश-मन्त्रीको प्रार्थनापत्र भेजनेका है। अतएव मेरा आपसे अनुरोध है कि जबतक प्रार्थनापत्र प्राप्त न हो जाये, तबतक उनके सम्बन्धमें उपनिवेश-मन्त्रीके पास अपना खरीता भेजना रोके रहें।[2] प्रार्थनापत्र तैयार किया जा रहा है।

आपका आज्ञानुवर्ती सेवक,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

पीटरमैरित्सबर्ग आर्काइव्ज। देखिए : सी० एस० ओ० ३७८९/९७।

१. यह उल्लेख सूतक, प्रवासी-प्रतिबन्धक, विक्रेता-परवाना और गर-गिरमिटिया भारतीय संरक्षण विधेयकोंका है।

२. खरीता पहले ही भेजा चुका था। देखिए पृष्ठ ३६२।

४९. तार : श्री चेम्बरलेनको

डर्बन
जून ९, १८९७

परम माननीय जोज़ेफ़ चेम्बरलेन,
सर विलियम हंटर, मारफत *टाइम्स*
इनकाज
भावनगरी
लंदन

पिछले प्रार्थनापत्रमें उल्लिखित भारतीय विधेयक कानूनके रूपमें गजटमें प्रकाशित। हमारा नम्र निवेदन है विचार स्थगित रखा जाये। प्रार्थनापत्र तैयार कर रहे हैं।

भारतीय

साबरमती संग्रहालयमें सुरक्षित अंग्रेजी दफ्तरी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० २३८१) से।

५०. भारतीय और हीरक-जयन्ती

डर्बन
जून २४, १८९७

सेवामें
सम्पादक
नेटाल मर्क्युरी

महोदय,

ग्रे स्ट्रीटमें हीरक-जयन्ती (डायमंड जुबिली) पुस्तकालयके उद्घाटनके सम्बन्धमें आपके आजके अंकमें जो विवरण[1] प्रकाशित हुआ है उसमें कुछ गलतियाँ और छूटें रह गई हैं।

१. हीरक-जयन्ती पुस्तकालयका उद्घाटन रेज़िडेंट मजिस्ट्रेट श्री वालरने किया था और उस अवसरपर अनेक भाषण दिये गये थे। गांधीजीने यह पत्र *नेटाल मर्क्युरी*में प्रकाशित रिपोर्टकी भूलें सुधारनेके लिए भेजा था। उक्त रिपोर्टके सम्बद्ध अंश पृष्ठ ३५७–५८ पर दिये जा रहे हैं।

Form for Messages to all parts of the

DURBAN STATION

Via EASTERN

VIA EASTERN

श्री चेम्बरलेनके नाम तार

हीरक-जयन्ती पुस्तकालयके प्रारम्भ होनेकी कार्यवाही मैंने नहीं, अवैतनिक पुस्तकालयाध्यक्ष श्री ब्रायन गैब्रियलने पढ़ी थी। उसे स्थापित करनेका मुख्य प्रयत्न करनेवाले वही रहे हैं। रेलवे भारतीय स्कूलके श्री जे० एस० डान पुस्तकालय-समितिके अध्यक्ष हैं। आपके विवरणसे ऐसा मालूम होता है कि श्रीमान् मेयर महोदयने जुलूसमें भारतीयोंकी दुःखद अनुपस्थितिका दोष भारतीय समाजपर मढ़ा है। मैं नहीं मानता कि उन्होंने ऐसी कोई बात कही होगी, या ऐसा उनका मतलब ही होगा। इसका दोषी कोई भी हो, मैं जानता हूँ, भारतीय समाज नहीं है।

आपका,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

नेटाल मर्क्युरी, २५–६–१८९७

हीरक-जयन्ती पुस्तकालय

अवैतनिक मन्त्री श्री मो० क० गांधीने सभाको सम्बोधित करते हुए कहा कि श्री वालरको इसलिए आमन्त्रित किया गया है कि विधि सम्पन्न करनेके लिए राज-प्रतिनिधिसे प्रार्थना करना एक पुरानी भारतीय प्रथाके अनुरूप है। ग्रन्थालयको खोलनेका विचार नया नहीं है। इसकी जरूरत थी और नेटालकी भारतीय शिक्षा-सभाने यह प्रस्ताव किया, जो स्वीकृत हो गया और एक ग्रन्थालय-समिति बना दी गई। सम्राज्ञीकी हीरक-जयन्ती मनानेके प्रस्तावोंमें एक प्रस्ताव एक विराट जुलूस निकालनेका भी था। [एक अन्य प्रस्ताव] एक कुटीर-चिकित्सालय खोलनेका था। परन्तु ये दोनों कार्य हमारी शक्तिके बाहर समझे गये। नेटाल भारतीय कांग्रेसने घोषित किया था कि जितनी रकम वे चन्देसे एकत्र करेंगे उतनी वह अपने कोषसे दानके रूपमें देगी। परिणामस्वरूप चन्देकी सूची ३० पौंडकी हुई। और उनके पास प्रारम्भिक कोष ६० पौंडका हो गया। यह ग्रन्थालय राजनिष्ठाके चिह्नके रूपमें महारानीको प्रिय होगा, और इसकी उपयोगिताका दायरा बहुत बड़ा होगा। इसमें अंग्रेजी भाषाकी लगभग २०० पुस्तकें होंगी। सब दानमें मिलेंगी और अंग्रेजी साहित्यकी हर शाखाकी होंगी। इसके अलावा इसमें भारतके

तथा दक्षिण आफ्रिकाके सब मुख्य-मुख्य समाचारपत्र मँगाये जायेंगे। ग्रन्थालय रविवारको छोड़कर प्रतिदिन सुबह सात बजेसे लेकर रातके नौ बजे तक खुला रहेगा। . . . श्री गांधीने श्री वालर और पेनको उनकी उपस्थितिके लिए भारतीय समाजकी ओरसे धन्यवाद देकर अपना भाषण समाप्त किया।. . .

श्री पेनने इस आन्दोलनकी जानकारी और सभामें उपस्थित होनेका निमन्त्रण पानेपर सन्तोष प्रकट किया। [उन्होंने कहा कि] जाति-जातिमें भेदके बारेमें बहुत-कुछ सुना जाता है परन्तु डर्बनके मेयरकी हैसियतसे वे स्वयं ऐसा कोई भेद नहीं मानते। उनके मनमें भारतीयोंके लिए दूसरोंके बराबर ही आदर है। पुस्तकालयका विचार शुभ है और उसका सूत्रपात तथा संरक्षण करनेवालोंके लिए श्रेयास्पद है। [उन्होंने कहा कि] उन्हें प्रसन्नता हुई है कि इस अनोखे और बेजोड़ मौकेपर भारतीय अपनी सम्राज्ञीका सम्मान करनेमें अपना हिस्सा अदा कर रहे हैं। भारतीयोंने दिनके जुलूसमें क्या हिस्सा लिया, इस विषयमें उन्होंने डॉ० बूथ तथा अन्य व्यक्तियोंसे बातचीत की थी; परन्तु वे निराश हुए बिना न रह सके कि भारतीयोंने उसमें कोई हिस्सा नहीं लिया। कौंसिलके सदस्योंने तो पूरी-पूरी रजामन्दी और आशा व्यक्त की थी कि वे शामिल होंगे। मेयर महोदयने निमन्त्रणके लिए उन्हें धन्यवाद देकर अपना भाषण समाप्त किया।

. . . श्री मो० क० गांधीने श्री वालर, श्री पेन तथा अन्य यूरोपीयोंसे सभामें आनेकी स्वीकृति प्राप्त करनेपर फिरसे हर्ष प्रकट किया।

[अंग्रेजीसे]

नेटाल मर्क्युरी, २४–६–१८९७

५१. भारतीय जुबिली पुस्तकालय

जून २५, १८९७

सेवामें
सम्पादक
नेटाल मर्क्युरी

महोदय,

डर्बनवासी भारतीय समाजके अनेक हमदर्दियों और मित्रोंने समाजके प्रमुखोंको उलाहना दिया है कि उन्हें डायमंड जुबिली [हीरक-जयन्ती] पुस्तकालयके उद्घाटन समारोहमें शामिल होनेका निमन्त्रण नही मिला। मैं निवेदन करना चाहता हूँ कि इस भूलके लिए जिम्मेदार मैं हूँ, हालाँकि जिन परिस्थितियोंमें निमन्त्रण-पत्र भेजे गये थे उनमें भूल हो जानेकी काफी गुंजाइश थी — यह, मुझे भरोसा है, मान लिया जायेगा। गत सोमवारको ५ बजे शामके पहले निमंत्रण-पत्र नही भेजे जा सके। नामोंकी सूची जल्दीमें बनाई गई थी। उसे सब प्रमुख सदस्योंको दिखा देनेका समय नहीं था। तथापि, समिति ऐसे सब सज्जनोंकी हृदयसे कृतज्ञ है कि वे अपनी उपस्थितिसे अवसरकी शोभा बढ़ानेको उत्सुक थे। समितिने उन सब सज्जनोंको धन्यवाद देनेका भी मुझे निर्देश किया है, जो निमन्त्रण-पत्र पाकर भी पहलेसे तय किये हुए कामोंके कारण समारोहमें नहीं आ सके, या जिन्हें पत्र देरीसे मिले। मालूम होता है कि कुछ निमन्त्रण-पत्र ठिकानेपर पहुंचे ही नही।

आपका, आदि,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
नेटाल मर्क्युरी, २८–६–१८९७

५२. पत्र : प्रार्थनापत्र भेजते हुए

श्री चेम्बरलेनके नाम मार्च १५, १८९७ का और नेटालकी विधानसभाओंके नाम मार्च २६ के प्रार्थनापत्र जब भारतीय-विरोधी कानूनोंके बनाये जानेसे कोई राहत न दिला सके तब मुख्य उपनिवेश-मन्त्रीके नाम एक प्रार्थनापत्र भेजकर यह अनुरोध किया गया कि उक्त चार कानूनोंको सम्राज्ञी-सरकारकी स्वीकृति प्रदान न की जाये। प्रार्थनापत्र निम्नलिखित पत्रके साथ नेटालके गवर्नरके पास भेजा गया था।

डर्बन

जुलाई २, १८९७

सेवामें

परमश्रेष्ठ माननीय सर वाल्टर फ्रांसिस हेली हचिन्सन, नाइट कमांडर ऑफ़ द डिस्टिंग्विश्ड ऑर्डर ऑफ़ सेंट माइकेल ऐंड सेंट जॉर्ज, गवर्नर, प्रधान सेनापति और वाइस एडमिरल, नेटाल और देशी आबादीके सर्वोच्च शासक, आदि-आदि

पीटरमैरित्सबर्ग, नेटाल

नम्र निवेदन है कि,

मैं इसके साथ सम्राज्ञीके मुख्य उपनिवेश-मन्त्रीके नाम भारतीय समाजके प्रार्थनापत्रकी तीन नकलें भेज रहा हूँ। यह प्रार्थनापत्र इस देशमें निवास करनेपर प्रतिबन्ध, विक्रेताओंके परवानों, संक्रामक रोग विषयक सूतक और भारतीय-संरक्षण सम्बन्धी कानूनोंके बारेमें है। नम्र निवेदन है कि महानुभाव जैसा उचित समझें वैसे अभिप्रायके साथ इसे मुख्य उपनिवेश-मन्त्रीके पास भेज दें।

(ह०) अब्दुल करीम हाजी आदम

हस्तलिखित अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० २४२९) से।

५३. प्रार्थनापत्र : श्री चेम्बरलेनको

डर्बन
जुलाई २, १८९७

सेवामें

परम माननीय जोज़ेफ चेम्बरलेन
सम्राज्ञीके मुख्य उपनिवेश-मन्त्री
लंदन

नेटालके भारतीय समाजके प्रतिनिधि निम्न हस्ताक्षरकर्ता
ब्रिटिश भारतीयोंका प्रार्थनापत्र

नम्र निवेदन है कि,

नेटाल उपनिवेशकी माननीय विधानसभा और माननीय विधानपरिषदने जो चार भारतीय विधेयक पास कर दिये है और जिन्हें गवर्नरकी स्वीकृति प्राप्त हो जानेके कारण सरकारी गज़टमें अधिनियमके रूपमें प्रकाशित कर दिया गया है, उन्हींके विषयमें प्रार्थी आप तक पहुँचनेका सादर साहस कर रहे हैं। इन विधेयकोंको जिस क्रमसे पास किया गया उसके अनुसार इन चारोंके नाम ये है: सूतक-विधेयक (क्वारंटीन बिल), प्रवासी-प्रतिबन्धक विधेयक (इमिग्रेशन रिस्ट्रिक्शन बिल), व्यापार-परवाना विधेयक (ट्रेड लाइसेंसेज़ बिल) और गैर-गिरमिटिया भारतीय संरक्षण विधेयक (बिल टु प्रोटेक्ट अनकावेनेंटेड इंडियन्स फ्राम लाएबिलिटी टु ऐरेस्ट)।

इनमें से प्रथम तीन विधेयकोंका[1] जिक्र प्रार्थियोंने अपने पिछले प्रार्थनापत्रमें भी किया था और कहा था कि यदि ये विधेयक नेटालके विधानमंडलमें पास हो गये तो शायद उन्हें विशेषतः इन्हींके कारण फिर आपकी सेवामें आना पड़े। अब ठीक वही करना प्रार्थियोंका दुर्भाग्यपूर्ण कर्तव्य हो गया है। उन्हें पूरा विश्वास है कि आपको वे जो कष्ट दे रहे है उसके लिए आप उन्हें क्षमा करेंगे; क्योंकि इन विधेयकोंकी तहमें जो प्रश्न है उसका असर नेटालवासी भारतीय समाजके अस्तित्वपर ही पड़ता है।

इनमें से अन्तिम दो विधेयक ज्यों ही सरकारी गज़टमें अधिनियमोंके रूपमे प्रकाशित हुए, त्यों ही प्रार्थियोंने माननीय उपनिवेश-सचिवसे लिखकर प्रार्थना

१. देखिए पृष्ठ २६६–२७५।

की थी[1] कि इन विधेयकोंका सम्राज्ञीकी सरकारके पास भेजना इस प्रार्थनापत्रके पहुँचने तक स्थगित रखा जाये। उसका माननीय उपनिवेश-सचिवने यह जवाब दिया कि विधेयक पहले ही भेजे जा चुके हैं। इसपर नीचे दिया हुआ नम्र तार[2] आपकी सेवामें भेजा गया था :

> पिछले प्रार्थनापत्रमें उल्लिखित भारतीय विधेयक कानूनके रूपमें गजटमें प्रकाशित। हमारा नम्र निवेदन है विचार स्थगित रखा जाये। प्रार्थनापत्र तैयार कर रहे हैं।

यहाँ उल्लिखित चारों विधेयकोंकी प्रतियाँ इसके साथ नत्थी हैं और उनपर क्रमश: क, ख, ग और घ चिह्न अंकित हैं।

प्रार्थियोंने इन विधेयकोंके सम्बन्धमें स्थानीय मंसदकी दोनों सभाओं तक पुकार करनेका साहस किया था,[3] पर उसका कुछ फल नहीं निकला।

माननीय विधानसभाकी सेवामें जो प्रार्थनापत्र प्रस्तुत किया गया था वह इसके साथ संलग्न है और उसपर ङ चिह्न[4] अंकित है। उसमें दिखलानेका यत्न किया गया है कि परिस्थितियोंसे भारतीयोंके विरुद्ध नये प्रतिबन्ध लगानेका औचित्य सिद्ध नहीं होता, इसलिए ऐसा कोई भी कानून बनानेसे पहले इस उपनिवेशकी सारी भारतीय आबादीकी गणना कर लेनेकी आज्ञा दी जानी चाहिए और यह जाँच कराई जानी चाहिए कि इस उपनिवेशमें भारतीयोंकी उपस्थितिसे उपनिवेशको लाभ है या हानि।

सूतक विधेयक[5]में गवर्नरको अधिकार दिया गया है कि वह न केवल संक्रामक रोग-ग्रस्त बन्दरगाहोंसे आनेवाले जहाजोंको बिना कोई यात्री और माल उतारे लौटा सकता है, बल्कि संक्रामक रोगग्रस्त बन्दरगाहसे चले हुए किसी यात्रीको भी नेटालमें उतरनेसे रोक सकता है, भले ही वह यात्री नेटाल आते हुए मार्गमें

१. देखिए पृष्ठ ३५५।

२. देखिए पृष्ठ ३५६।

३. देखिए पृष्ठ ३२३–३२८ और ३३०–३१।

४. यह प्रार्थनापत्र प्रास्ताविक अनुच्छेदके बिना इसके साथ परिशिष्ट ङ के रूपमें दिया गया था; परन्तु वह तिथिक्रमके अनुसार उचित स्थानपर दिया गया है, इसलिए यहाँ छोड़ दिया गया है। देखिए पृष्ठ ३२३–२८।

५ देखिए पृष्ठ ३७८–७९।

किसी अन्य जहाजमें सवार क्यों न हो गया हो। सूतकके कानूनका प्रयोजन यदि सचमुच संक्रामक रोगोंका प्रवेश रोकना ही हो तो प्रार्थियोंको उसके विरुद्ध कोई शिकायत नहीं हो सकती, वह कितना ही कठोर क्यों न हो। परन्तु वर्तमान विधेयक नेटाल सरकारकी भारतीय-विरोधी नीतिका एक अंग-मात्र है। जैसा कि भारतीय-विरोधी प्रदर्शन सम्बन्धी प्रार्थनापत्रमें बतलाया गया है, नेटाल-सरकारने प्रदर्शन-समिति[1]को आश्वासन दिया था कि गवर्नरके सूतक लगानेके अधिकार बढ़ानेके लिए एक विधेयक तैयार करनेपर विचार किया जा रहा है। प्रस्तुत विधेयककी गणना, संसदके वर्तमान अधिवेशनके भारतीय विधेयकोंमें की गई है। *नेटाल मर्क्युरी*ने अपने २४ फरवरी, १८९७ के अंकमें सूतक तथा अन्य भारतीय विधेयकोंके विषयमें लिखा है :

> इस सप्ताह सरकारी गज़टमें प्रकाशित किये गये प्रथम तीन विधेयकोंसे सरकारके इस वचनकी पूर्ति हो जाती है कि वह संसदके आगामी अधिवेशनमें भारतीय प्रवासियोंके आगमनके विषयमें विधेयक प्रस्तुत करेगी। परन्तु इनमें से किसी भी विधेयकका सम्बन्ध विशेष रूपसे एशियाइयोंके साथ नहीं है और, इस आधार मात्रपर, उनपर इस तरहके कानूनोंके साथ जुड़ी रहनेवाली वे शर्तें लागू नहीं होतीं, जिनके कारण कानूनका प्रयोग कुछ लोगोंपर या कुछ समयके लिए नहीं होता। इनकी रचना इस प्रकार की गई है कि इनका प्रयोग सबपर और जिस-किसीपर भी किया जा सकता है। इसलिए इनके विरुद्ध यह शिकायत नहीं की जा सकती कि ये व्यापक नहीं हैं। यह साफ-साफ स्वीकार कर लेनेमें कोई हानि नहीं कि ये विधेयक थोड़े-बहुत आपत्तिजनक हैं; परन्तु तीव्र रोगोंमें तीव्र औषधिका ही प्रयोग करना पड़ता है। यह खेदका विषय है कि ऐसे कानून बनाने पड़ रहे हैं, परन्तु इन्हें बनानेकी आवश्यकता निर्विवाद है। और ऐसे कानूनोंका निर्माण कितना ही अप्रिय क्यों न हो, यह एक आवश्यक कर्त्तव्य है और इसका पालन करना ही चाहिए। सूतकसे सम्बद्ध कानूनोंमें संशोधन करनेवाला विधेयक सचमुच असाधारण है, परन्तु जिन देशोंमें प्लेग फैला हुआ है उनके कारण असाधारण उपाय

१. देखिए पृष्ठ २६६ ।

करनेकी आवश्यकता भी पड़ गई थी। हमें भयंकर रोगोंसे अपना बचाव करना हो तो साधारण उपायोंसे बढ़कर कुछ करना आवश्यक है।

इसी पत्रने, प्रवासी-प्रतिबन्धक विधेयकपर उठाई गई आपत्तियोंका उत्तर देते हुए, अपने ३० मार्च १८९७ के अग्रलेखमें कहा है:

> **जो लोग इस विधेयक (अर्थात् प्रवासी-प्रतिबन्धक विधेयक) को इस कारण आपत्तिजनक बतलाते हैं कि यह सीधा और सच्चा नहीं है, वे कहते हैं कि एक विधेयक विशेष रूपसे एशियाइयोंके विरुद्ध पास करना चाहिए, हमें "दीर्घकालिक वैधानिक आन्दोलन" आरम्भ कर देना चाहिए, और तबतक हमें अपनी रक्षा सूतक-अधिनियम द्वारा करनी चाहिए। परन्तु इस मार्गकी असंगति स्पष्ट है। इसका अभिप्राय यह निकलता है कि हम प्रवासी-प्रतिबन्धक विधेयकके सम्बन्धमें तो असाधारण ईमानदारी बरतना चाहते हैं, परन्तु हमें सूतक अधिनियमसे अनुचित लाभ उठानेमें तनिक भी संकोच नहीं है। भारतीय प्रवेशार्थियोंको नेटालमें उतरनेसे यह कहकर रोकना कि वे अपने देशके जिस जिलेसे आ रहे हैं उससे हजार-हजार मील परे तक भयंकर संक्रामक रोग फैला हुआ है, उतना ही कुटिलतापूर्ण है जितना कि प्रवासी-प्रतिबन्धक विधेयकके अनुसार कार्रवाई करना।**

इस प्रकार सूतक विधेयकका प्रयोजन नेटालमें भारतीयोंके प्रवेशको प्रत्यक्ष रूपसे रोकना है, और इसीलिए प्रार्थी सम्मानपूर्वक उसका प्रतिवाद कर रहे हैं। यदि कोई भारतीय, नेटाल आते हुए किसी जर्मन जहाजमें जंजीबारसे सवार होकर यहाँ पहुँचे तो उसे यहाँ उतरनेमें रोक दिया जायेगा और अन्य सब यात्री बिना किसी कठिनाईके उतर जायेंगे। यह भेद-भाव क्यों होने दिया जाये? यदि उस भारतीय द्वारा उपनिवेशमें संक्रामक रोग आ सकता है तो उन अन्य यात्रियोंसे भी तो वैसा हो सकता है जिनका कि सम्पर्क उसके साथ हो चुका है।

प्रवासी-प्रतिबन्धक विधेयक[1] में अन्य बातोंके अतिरिक्त एक विधान यह भी है कि जो व्यक्ति निपट कंगाल हो तथा जिसके सरकारपर या जनतापर बोझ बन जानेकी संभावना हो और जो विधेयककी अनुसूची[2] में दिये हुए रूपमें

१. देखिए पृष्ठ ३७९–८४।

२ देखिए पृष्ठ ३८३–८४।

उपनिवेश-सचिवके नाम प्रार्थनापत्र न लिख सके, उसे निषिद्ध प्रवेशार्थी माना जाये। इस प्रकार, जो भारतीय किसी भारतीय भाषाका तो विद्वान होगा, परन्तु यूरोपीय भाषा कोई भी नहीं जानता होगा, वह अस्थायी रूपसे भी नेटालमें नहीं उतर सकेगा। वह ट्रान्सवालके विदेशी प्रदेशमें तो जा सकेगा, परन्तु नेटालकी भूमिपर पाँव तक नहीं रख सकेगा। आरेंज फ्री स्टेट तकमें कोई भारतीय दो महीने तक जाब्तेकी कोई कार्रवाई किये बिना रह सकता है, परन्तु नेटालके ब्रिटिश उपनिवेशमें नहीं। इस प्रकार यह विधेयक इस मामलेमें इन दोनों स्वतंत्र देशोंसे भी आगे बढ गया है। यदि कोई भारतीय राजा संसारका भ्रमण करता हुआ कहीं नेटाल पहुँच गया तो वह भी, विशेष अनुमति प्राप्त किये बिना, यहाँ नहीं उतर सकेगा। प्रवासी कानून लागू होनेके बाद, मारिशस जानेवाले बहुत-से जहाज भारतीय यात्रियोंको लेकर यहाँसे गुजरते हैं, परन्तु जब वे यहाँके बन्दरगाहमें खड़े होते हैं तब उनके भारतीय यात्रियोंको घूमने-फिरने या हवा खानेके लिए भी यहाँ नहीं उतरने दिया जाता। प्रवासी विभागकी आज्ञासे उनपर सख्त निगरानी रखी जाती है और उनका असबाब जहाजके गोदाममें बन्द कर दिया जाता है, जिससे कि वे कहीं नजर बचाकर तटपर न उतर जायें। दूसरे शब्दोंमें इसका अर्थ यह होता है कि ब्रिटिश प्रजाके साथ, ब्रिटिश-शासित भूमिमें ही, केवल भारतीय होनेके कारण प्रायः कैदियोंका-सा व्यवहार किया जाता है।

अधिकृत रूपसे कहा गया है कि कोई सरकार स्वप्नमें भी इस कानूनको भारतीयोंकी तरह ही यूरोपीयोंपर लागू नहीं करेगी। उपधारा ३ के जिस 'ख' भागका अब संशोधन कर दिया गया है, उसकी चर्चा करते हुए विधेयकके दूसरे वाचनमें प्रधानमंत्रीने कहा था :

> **जहाँ तक प्रवासियोंके पास २५ पौंडकी रकम होनेकी बात है, जब ये शब्द दाखिल किये गये थे तब मुझे कभी सूझा ही नहीं था कि यह व्यवस्था यूरोपीयोंपर लागू की जायेगी। अगर सरकार मूर्खतासे काम ले तो उनपर जरूर लागू की जा सकती है। परन्तु इसका उद्देश्य एशियाइयोंसे निपटनेका है। कुछ लोगोंका कहना है कि उन्हें ईमानदारीका, सीधा-सच्चा रास्ता पसन्द है। जब कोई जहाज उलटी हवामें चलता है तो उसे थोड़ी देरके लिए दिशा बदल लेनी पड़ती है और फिर धीरे-धीरे वह लक्ष्यपर पहुँच जाता है। जब आदमीके सामने कठिनाइयाँ आती हैं तो वह उनसे**

लड़ता है। अगर वह जीत नहीं पाता तो उन्हें कतरा कर निकल जाता है। ईंटकी दीवारसे टक्करें ले-लेकर सिर फोड़ता नहीं रहता।

विधेयकमें सीधे-सच्चेपनका अभाव उपनिवेशमें प्रायः सभी लोगोंको अखरा है। उपनिवेशकी राजधानी मैरित्सबर्गके किसान-सम्मेलन, बरोंके सदस्योंको विधेयकपर अपने विचार व्यक्त करनेका मौका देनेके लिए की गई डर्बनके टाउन-हालकी सभा और अन्य सभाओंने इस मुद्देपर उसका विरोध किया है कि विधेयक ब्रिटिश रीति-नीतिके प्रतिकूल है। संसदके अनेक सदस्योंने भी उसके खिलाफ जोरदार विचार व्यक्त किये हैं। विधानसभामें असंगठित विरोधी पक्षके नेता श्री बिन्सने कहा है :

हमें इतने गंभीर विषयपर शुद्ध स्थानिक दृष्टिसे विचार नहीं होने देना चाहिए। विधेयक सीधा-सच्चा नहीं है। वह सीधा विषयपर नहीं पहुँचता। उस शामको जो प्रार्थनापत्र पढ़ा गया था उसमें कहा गया था कि वह ब्रिटिश रीति-नीतिके प्रतिकूल है। इससे ज्यादा उपयुक्त आक्षेप और कोई नहीं हो सकता। विधेयकको किसीने पसन्द नहीं किया। सारे नेटालमें उसे पसन्द करनेवाला एक व्यक्ति भी नहीं है। और स्वयं प्रधानमंत्रीको तो वह हरगिज पसन्द नहीं है। हो सकता है, उन्होंने सोचा हो कि उसकी जरूरत है, और उसे यही रूप दिया जाना चाहिए। परन्तु अगर उनके भाषणमें कोई एक बात स्पष्ट थी तो यही थी कि वे विधेयकको पसन्द नहीं करते।

विधानसभाके एक अन्य सदस्य श्री मेडनने

अपना मत जोरोंसे व्यक्त किया। उनका विश्वास था कि नेटालके ज्यादातर उपनिवेशी उनसे सहमत हैं कि इस विधेयकको स्वीकार करनेके बदले वे एशियाई बाढ़के कीचड़में लुढ़कते रहना पसन्द करेंगे।

दूसरे सदस्य श्री सिमन्सने कहा :

हम भारतीयोंको अपने बीचसे हटा नहीं सकते। न ही हम उनके वे विशेषाधिकार छीन सकते हैं, जो उन्हें ब्रिटिश प्रजाकी हैसियतसे प्राप्त हैं। क्या कोई राजनीतिज्ञ कहलानेवाला अंग्रेज ऐसा विधेयक बनायेगा और फिर उसके स्वीकार होनेकी अपेक्षा करेगा? यह विधेयक एक राक्षसी

विधेयक है। ऐसा विधेयक एक ब्रिटिश उपनिवेशके लिए कलंककी चीज है। हम उसे एशियाइयोंको रोकनेका विधेयक क्यों न कहें? भापसे चलनेवाले जहाजोंके इस जमानेमें हम रुख बदलकर रास्ता तय करनेकी बातें नहीं किया करते। सीधे आगे बढ़ते रहते हैं।

इस प्रकार, विधेयकके बारेमे मतैक्य नही है। इसलिए, हमारा निवेदन है कि इतना कठोर विधेयक मंजूर करनेके पहले भारतीयोंकी जन-गणना कराने और विषयकी जाँच करानेके बारेमें कि क्या सचमुच ही भारतीय आबादी उपनिवेशके लिए अभिशापस्वरूप है, हमारी प्रार्थना पूरी की जा सकती थी। हमारा निवेदन है कि विधेयक मंजूर करनेका जरा भी औचित्य नही था। यह साबित नही किया गया कि भारतीयोंकी संख्या यूरोपीयोंकी संख्याकी अपेक्षा अधिक वेगसे बढ़ रही है। इसके उलटे, पिछली रिपोर्टसे मालूम होता है कि जब कि जनवरीमें समाप्त होनेवाले पिछले ६ महीनोंमे भारतीयोंमे केवल ६६६ व्यक्तियोंकी वृद्धि हुई होगी[1] तब यूरोपीयोंकी वृद्धि करीब-करीब २,००० रही। फिर विधेयकका मंशा जिस वर्गके भारतीयोंको रोकनेका है उसकी संख्या केवल ५,००० है। इसके विपरीत यूरोपीयोंकी संख्या ५०,००० है। नेटालमें दस वर्ष पूर्व उच्च न्यायालयके पहले छोटे न्यायाधीश सर वाल्टर रैगकी अध्यक्षतामे जो आयोग बैठाया गया था, उसने भी सोच-विचार कर अपना यह मत दिया था :

हमने बहुत देखा है। उसके आधारपर हमें यह कहनेमें सन्तोष है कि इन व्यापारियोंकी उपस्थिति सारे उपनिवेशके लिए कल्याणकारी हुई है। उनको हानि पहुँचानेका कोई कानून बनाना अगर अन्यायपूर्ण नहीं तो अबुद्धिमत्ताका कार्य जरूर होगा।

यही एकमात्र अधिकृत मन्तव्य है, जिससे स्थानिक विधानमंडल मार्गदर्शन ले सकता था। इन तथ्योंके होते हुए प्रार्थी अब भी आशा करते हैं कि सम्राज्ञी-सरकार नेटालके भारतीयोंकी स्वतन्त्रतापर प्रतिबन्ध लगानेकी आवश्यकताके बारेमें अन्तिम निर्णय करनेके पहले ऊपर बताये हुए ढंगकी जाँच करायेगी। अर्थात्, अगर सम्राज्ञी-सरकार निश्चय करे कि १८५८की घोषणाके बावजूद एक ब्रिटिश उपनिवेश भारतीयोंको हानि पहुँचानेवाला कानून बना सकता है,

१. देखिए पृष्ठ २५९।

अगर वह इस निष्कर्षपर पहुँचे कि उक्त घोषणासे भारतीयोंको इस अर्जीमें कहे हुए अधिकार नहीं मिलते, अगर वह मानती है कि नेटालमें भारतीयोंकी संख्या भयानक गतिसे बढ़ रही है और उपनिवेशके लिए भारतीय अभिशाप-स्वरूप हैं, तो यह बहुत ज्यादा सन्तोषजनक होगा कि भारतीयोंपर विशेष रूपमे लागू होनेवाला कोई कानून पेश कर दिया जाये।

जब ट्रान्सवाल-सरकारको अपना परदेशियों (एलिएन्स)-सम्बन्धी कानून[1] वापस ले लेनेके लिए बाध्य होना पड़ा है तब नेटाल सरकारने एक प्रवासी-कानून मंजूर कर लिया है। यह, हम अत्यधिक आदरके साथ निवेदन करते हैं, विचित्र मालूम पड़ता है। नेटालका प्रवासी-कानून तो ट्रान्सवालके कानूनसे बहुत अधिक कठोर है।

अब प्रार्थी समाचारपत्रोंके कुछ अंश उद्धृत करनेकी इजाजत चाहते है। इनसे मालूम होगा कि प्रवासी-प्रतिबन्धक कानूनके विषयमें पत्रोंका मत क्या है :

> **खण्ड ४ में व्याख्या की गई है कि जो वर्जित प्रवासी इस कानूनकी अवहेलना करके उपनिवेशमें प्रवेश करे उसे क्या दण्ड दिया जा सकता है। यह दण्ड है निर्वासन या ६ महीनेकी कैद, या दोनों। अब, हमारा खयाल है, ज्यादातर लोग हमसे सहमत होंगे कि उपनिवेशके लिए अपने खुदके कल्याणकी दृष्टिसे प्रवासियोंके आगमनपर प्रतिबन्ध लगाना कितना भी जरूरी क्यों न हो, उपनिवेशमें आनेका प्रयत्न करना किसीके लिए दण्डनीय अपराध नहीं है। नैतिक दृष्टिसे यह निश्चित भी है कि जिस वर्गके लोगोंपर यह विधेयक लागू है, वे आम तौरसे जानते न होंगे कि उपनिवेशमें प्रवेश करके वे उसके किसी कानूनका भंग कर रहे हैं। ऐसे कानूनकी स्थिति उपनिवेशके साधारण कानूनोंसे भिन्न है, क्योंकि यह उन लोगोंपर लागू होता है जो उपनिवेशके अधिकार-क्षेत्रमें नहीं हैं और जिन्हें उसके कानूनोंसे परिचित होनेका कोई मौका नहीं मिलता। इसलिए यह काम कर्मचारियोंका है कि वे वर्जित प्रवासियोंको उतरने न दें। इस अवस्थामें, हमारा खयाल है, निर्वासन काफी होगा और दण्ड-सम्बन्धी कानूनको रद कर देना चाहिए। खण्ड ५ के बारेमें भी यही आपत्ति है।**

१. देखिए पृष्ठ ३९४।

उसमें जमानतके रूपमें प्रवासीसे १०० पौंड जमा करानेकी व्यवस्था की गई है। शर्त यह है कि अगर भविष्यमें वह "वर्जित प्रवासियों"की श्रेणीका निकले तो यह रकम जब्त कर ली जायेगी। हमें इस अमानतको जब्त करनेमें कोई न्याय दिखलाई नहीं पड़ता। अगर उसे वर्जित प्रवासी मानकर उपनिवेशसे निकल जानेको बाध्य किया जाता है तो उसकी रकम वापस कर दी जानी चाहिए। जहाजके अधिकारियोंको भारी दण्ड देनेकी उपधाराकी निश्चय ही आलोचना की जायेगी। उससे तो जहाजके कप्तानपर यह कर्त्तव्य लद जाता है कि वह रवानगीका बन्दरगाह छोड़नेके पहले अपने सब यात्रियोंकी दशा तथा परिस्थितिकी बारीकीके साथ जाँच करे। कानूनके सफल प्रयोगकी दृष्टिसे यह आवश्यक हो सकता है, परन्तु इससे जहाजके अधिकारी भारी कठिनाइयोंमें फँस जायेंगे।

यह देखा जायगा कि विधेयक जल तथा स्थल मार्गसे उपनिवेशमें आनेवालोंपर लागू होता है। हमारा खयाल है कि अगर उसे सिर्फ समुद्री रास्तेसे आनेवालोंपर लागू किया जाये तो वह बहुत कम अप्रिय और अधिक सरलतासे अमलमें लाने योग्य बन जायेगा। स्थल मार्गसे किसी भी बड़ी मात्रामें एशियाइयोंके आनेका भय बहुत कम है। बाकी लोग तो दक्षिण आफ्रिकाके एक राज्यसे दूसरे राज्यमें ही आनेवाले होंगे। उन्हें प्रतिबन्धसे जितना मुक्त रखा जा सके, रखना चाहिए। उनके अलावा देशी लोग होंगे। उनमें से ज्यादातर लोग शिक्षाकी कसौटीपर पूरे न उतरनेके कारण निकल जायेंगे। शायद इससे हमारी मजदूर-प्राप्तिको धक्का पहुँचेगा। — *नेटाल एडवर्टाइज़र*, २४–२–९७।

क्या यह कहनेका रुख अख्तियार करना उचित न होगा कि "अगर आपको एक वर्ग नहीं चाहिए तो दूसरा वर्ग नहीं मिलेगा?" यह रुख अख्तियार करना अशक्य नहीं है — यह भारतीय पत्रोंकी ध्वनिसे स्पष्ट है। कुछ दिन पहले हमने *टाइम्स आफ इंडिया*का एक लेख प्रकाशित किया था। उसमें नेटालको करीब-करीब ललकारा गया था कि वह दो बातोंमें से एकको चुन ले — भारतीय मजदूरोंका प्रवास या तो प्रतिबन्ध-रहित, या बिलकुल नहीं। सम्भव है, यह सिर्फ एक स्थानिक खयाल हो। परन्तु हम

समझते हैं, यह कहनेमें हम बहुत गलती नहीं करते कि यदि मामला उलट दिया जाये तो हम भी ठीक यही जवाब देंगे। यह तर्क अनुचित न होगा कि यदि उपनिवेशको अपने कल्याणके लिए भारतीयोंके किसी एक वर्गको आनेसे रोक देना आवश्यक मालूम होता है तो अगर भारत सरकार भी अपने भलेके लिए उसे दूसरे वर्गके भारतीय प्रवासियोंको ले जानेसे रोक दे, तो वह शिकायत नहीं कर सकता। —*नेटाल एडवर्टाइज़र*, ५–४–९७।

हम पूछते हैं, क्या किसी भी ब्रिटिश उपनिवेशने इतना कठोर और व्यापक कानून पास किया है? फिर हमारे जैसे उपनिवेशके लिए, जो प्रगति और स्वतन्त्रताका इतना दावा करता है, अपनी कानूनी पुस्तकमें ऐसा कानून दर्ज करनेवालोंमें पहला होना, कोई सम्मानकी बात नहीं है। —*नेटाल एडवर्टाइज़र*, २६–२–९७।

यह दलील करना उचित ही होगा कि विधेयक के हेतुका खयाल किया जाये तो वह सिद्धांतकी दृष्टिसे बेईमानी और कपटसे पूर्ण है। क्योंकि, उसका सच्चा ध्येय वह नहीं है जो दिखाई देता है। उसका जाहिरा दावा तो आम प्रवासियोंके आगमनको रोकनेका है, परन्तु हर व्यक्ति जानता है कि सचमुच उसका ध्येय एशियाइयोंके आगमनको रोकना है। —*नेटाल एडवर्टाइज़र*, २६–२–९७।

हम जो-कुछ चाहते हैं उसे एक ईमानदारीके, न्यायपूर्ण और निष्कपट कानून द्वारा प्राप्त करें, जिसका मंशा सच्चे प्रश्नको अस्पष्ट, अव्यावहारिक और गैर-ब्रिटिश प्रतिबन्धोंकी घटाओंसे ढँक देना न हो। जबतक हम यह नहीं कर पाते, तबतक सरकार और म्यूनिसिपैलिटियोंके लिए अपनी शक्ति लगानेको बहुत-सा क्षेत्र है। वे स्थानिक नियम बनानेमें अपनी शक्ति लगा सकती हैं। इससे जिन बुराइयोंकी शिकायत की जाती है उन्हें अधिकसे अधिक घटा देनेकी दिशामें बहुत मदद मिलेगी। —*नेटाल एडवर्टाइज़र*, १२–३–९७।

कोई सरकार या विधानमण्डल जिन नितान्त घृणित चालबाजियोंमें शामिल हो सकता है, उनमें से ही एकका परिचायक है नेटाल प्रवासी-कानून। —*स्टार*, २०–५–९७।

अबसे १८९७ के अधिवेशनको उस नितान्त आपत्तिजनक कानूनके जन्मदाताके रूपमें पहचाना जायेगा, जो कुछ बातोंमें ट्रान्सवालकी फोक्सराट [संसद] के गत वर्षके कानून[1]से भी बदतर है। ट्रान्सवालका वह कानून भी इसी उद्देश्यसे बनाया गया था। सभी जानते हैं कि श्री चेम्बरलेनने उस कानूनका विरोध किया था और फोक्सराटने उसे तुरन्त रद्द कर दिया था। परन्तु यह निश्चय है कि यदि वह कानून नेटालके लिए अच्छा है, तो ट्रान्सवालके लिए शायद ही बुरा हो सकता है। —*ट्रान्सवाल एडवर्टाइज़र* २२–५–९७।

नेटालका नया कानून इस सामान्य सिद्धान्तका भंग करनेवाला ही नहीं, उससे ज्यादा है। इससे अधिक, अगर उसे मंजूर करनेके पक्षमें पेश किये गये दावेको मान्य करना है तो, वह अप्रामाणिक कानून भी है। उसकी व्यवस्थाएँ तो सबपर लागू होनेवाली हैं, परन्तु सरकारने विधानसभामें खुलेआम स्वीकार किया है कि उनका प्रयोग केवल अमुक वर्गोपर ही किया जायेगा। वर्गगत कानून बनानेका यह तरीका हद दर्जेका नाशकारी है। वर्गगत कानून तो आम तौरपर गलत या अनिष्ट है; परन्तु जब कोई वर्गगत कानून ऐसे रूपमें स्वीकार किया जाता है, जिससे मालूम नहीं पड़ता कि वह किसी एक वर्गके लिए है, तब तो उसके अन्दरूनी दोष बहुत ही प्रबल हो जाते हैं। इसके अलावा, फिर किसी भी संसदके लिए यह कायरताकी बात है कि वह यह बताकर कि कानूनका लक्ष्य वर्गगत व्यवस्था नहीं है, वास्तवमें वर्गगत कानूनको पास करे और इस तरह उसे खुले रूपमें स्वीकार करनेके परिणामोंसे भागे। नेटाल प्रवासी प्रतिबन्धक कानूनका स्पष्ट उद्देश्य स्वतन्त्र भारतीयोंकी भरमारको रोकना है। याद रहे, सब भारतीयोंको रोकना नहीं है। गिरमिटिया मजदूरोंको इस कानूनके अमलसे मुक्त लोगोंकी उसी श्रेणीमें शामिल किया जायेगा जिसमें, यों कहिये कि, ब्रिटेनके युवराज (प्रिंस आफ वेल्स) को। तिसपर, सच यह है कि, नेटालमें लाये जानेवाले अधिकतर मजदूर

१. यह उल्लेख ट्रान्सवाल परदेशी-कानून (एलियन्स ऐक्ट) का है। देखिए पृष्ठ ३९८, पादटिप्पणी।

भारतीयोंकी निम्नतम श्रेणीके लोग हैं, जो कलकत्ते और बम्बईकी गदगीसे उठाकर लाये जाते हैं। व्यक्तिगत तुलना की जाये तो अपने खर्चसे नेटाल आनेवाले भारतीय दूसरेके खर्चपर लादकर लाये जानेवाले दरिद्र मजदूरोंकी अपेक्षा ज्यादा ऊँची कोटिके होंगे। परन्तु उनके नीची-से-नीची जातिके इन गिरमिटिया देशवासियोंको आने दिया जायेगा, क्योंकि वे तो गुलाम हैं। फिर भी इस तरह आने दिये गये ये आधे गुलाम यदि चाहें तो पाँच वर्षके समयमें अपनी स्वतन्त्रताकी माँग कर सकते हैं और स्वतन्त्र भारतीयोंके रूपमें नेटालमें बस सकते है। —*स्टार*, १०–५–९७।

श्री चेम्बरलेनने इस राज्यमें बनाये गये अपेक्षाकृत बहुत कम सन्तापजनक कानूनके बारेमें जो रुख अख्तियार किया है, उसके बाद वे नेटालके कानूनको न्याय और औचित्यके किसी खयालसे बर्दाश्त नहीं कर सकते। हमारा राज्य तो उनके 'प्रभावक्षेत्र'में नेटालकी अपेक्षा बहुत कम है। —*स्टार*, ७–५–९७।

विक्रेता परवाना विधेयक[1] सम्भवतः सबसे खराब है। उसके द्वारा सिर्फ यही जरूरी नहीं है कि व्यापारी लोग अपना हिसाब-किताब अंग्रेजीमें रखें, बल्कि वह परवाना-अधिकारीको परवाने देने या उन्हें नया करनेसे इनकार कर देनेका निर्बाध अधिकार भी प्रदान करता है। उसके निर्णयके खिलाफ उच्चतम न्यायालयके पास अपील करनेका भी अधिकार वादीको नही है। इस तरह वह ब्रिटिश संविधानके एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तको नष्ट-भ्रष्ट करनेवाला है। प्रार्थी विधेयकके प्रति अपनी आपत्तियाँ विधानसभाके एक सदस्य श्री टैथम के शब्दोंमें ही सबसे अच्छी तरह व्यक्त कर सकते हैं:

उन्हें यह कहनेमें कोई हिचकिचाहट नहीं थी कि यह विधेयक वर्तमान व्यापारियोंका एकाधिकार स्थापित कर देगा। जिन सदस्योंने विधेयकपर बहस की है, उन्होंने केवल व्यापारियोंकी दृष्टिसे बहस की है, उपभोक्ताओंकी दृष्टिसे नहीं। कानून जो एक अत्यन्त विनाशकारी रास्ता अख्तियार कर सकता है वह व्यापारकी रोकथाम करनेका रास्ता है। और यह सिद्धान्त यहाँतक मान्य किया जा चुका है कि अगर साबित

१. पाठके लिए, देखिए पृष्ठ ३८४।

किया जा सके कि दो व्यक्तियोंके बीचका कोई निजी इकरारनामा व्यापार-पर प्रतिबन्ध लगाकर समाजके हितोंको हानि पहुँचाता है तो इंग्लैंडके सामान्य कानूनके अनुसार उसे अवैध ठहराया जा सकता है। सारी दुनियामें इस बातको व्यापारका सिद्धान्त मान लिया गया है कि प्रतिद्वंद्विता जैसी कोई चीज नहीं है। यह बात सिर्फ प्रतिद्वंद्वियोंके लिए नहीं, उपभोक्ताओंके लिए भी है। विधेयक उपभोक्ताओंको हानि पहुँचाकर सिर्फ व्यापारियोंका लाभ बढ़ानेका काम करेगा। उन्होंने कहा—मैं इस विधेयकपर एशियाइयोंका दमन करनेवाले विधेयककी दृष्टिसे विचार नहीं करता, बल्कि जिस दृष्टिसे यह सभाके सामने पेश किया गया है, उसी दृष्टिसे विचार करता हूँ। विधेयकमें समाजके सब अंग शामिल हैं, चाहे वे यूरोपीय हों, चाहे एशियाई। और उसमें भयानक स्वरूपकी व्यवस्थाएँ हैं। उसमें कहा गया है कि परवाने देनेवाला एक ही व्यक्ति होगा और जो परवाने आज जारी हैं उन्हें वह व्यक्ति वापस ले सकेगा। यह देहातोंके लिए है। शहरों और म्यूनिसिपल इलाकोंमें इसका प्रयोग कैसे होगा? उदाहरणके लिए डर्बनको ले लीजिए। नगर-परिषद्में अधिकतर सदस्य ऐसे हो सकते हैं जो समाजके हितोंपर विचार करनेके पहले अपने हितोंपर विचार करें और वहाँ व्यापार करनेके परवाने देनेसे इनकार कर दें। प्रधानमंत्री कह सकते हैं कि इन लोगोंपर जनताके मतोंका नियन्त्रण रहता है। परन्तु जब सारे समुदायके खिलाफ एक व्यक्ति-विशेषका मामला हो, तब जनताके मतोंका प्रभाव किस तरह डाला जायेगा?

स्वयं माननीय प्रधानमन्त्रीको भी विधेयककी न्याय्यता सिद्ध करना बहुत कठिन गुजरा। वे बहुत उत्सुक नहीं थे कि विधेयक पास हो ही जाये। उन्होंने कहा :

प्रस्तावकोंकी माँग है कि म्यूनिसिपैलिटियोंको उनके वर्तमान अधिकारोंके अतिरिक्त परवाने देनेपर अंकुश लगानेके अधिकार दिये जायें। और उनका उद्देश्य क्या है, यह बतानेमें संकोचकी जरूरत नहीं है। उद्देश्य है, यूरोपीयोंके साथ होड़ करनेवालोंको व्यापारके परवाने पानेसे, जो यूरोपीयोंको लेने ही पड़ते हैं, रोकना। विधेयकका मंशा यही है। अगर यह मंशा मंजूर कर लिया गया तो दूसरा वाचन मंजूर हो जायेगा। बादमें आपको तफसीलका निबटारा करना होगा। इस विधेयकको

स्वीकार करनेमें प्रजाकी स्वतन्त्रताके एक अंशका हरण दिखाई दिये बिना न रहेगा, क्योंकि अभी प्रजाको परवाना पानेका अधिकार मामूली तरीकेसे प्राप्त है और अगर यह विधेयक स्वीकार होकर कानूनमें परिणत हो गया तो उस प्रजाको यह अधिकार न रह जायेगा। फिर उसे वह अधिकार तभी मिल सकेगा, जब कि परवाना-अधिकारी देना उचित समझे। यह विधेयक कानूनी कार्रवाइयोंमें भी हस्तक्षेप करनेवाला है, क्योंकि अगर इसपर अदालतोंका अधिकार रहा तो इसका उद्देश्य विफल हो जायेगा। नगर-परिषदें अपने घटकोंके प्रति उत्तरदायी होंगी। परवाने देनेके बारेमें उनके निर्णयोंके खिलाफ अदालतोंमें अपील नहीं की जा सकेगी। इस विधेयकपर यह आपत्ति की गई है कि यह कानूनको अपना स्वाभाविक मार्ग ग्रहण करने न देगा। उत्तर यह है कि अगर इस आपत्तिको माना जाये तो हम इस विधेयकको मंजूर ही क्यों करें? परन्तु इस विधेयकके अधीन अकेले परवाना-अधिकारीको ही यह विवेकाधिकार प्राप्त होगा (सुनो! सुनो!)। उन्होंने इस बातपर जोर देना उचित समझा कि इस विधेयकके अन्तर्गत व्यापारके परवानोंपर अदालतोंका अधिकार नहीं होगा। इस अधिकारका प्रयोग परवाना-अधिकारी करेगा। अगर यह सभा मानती है कि इस विधेयकका दूसरा वाचन होना चाहिए तो तफसीलोंपर विचार कमेटीमें होगा। उन्होंने विधेयकको सभाके सामने पेश किया और यह बताना चाहा कि उसका मुख्य उद्देश्य उन लोगोंपर असर डालना है, जिनका निबटारा प्रवासी–विधेयकके अनुसार किया जाता है। जहाजोंके अधिकारियोंको अगर मालूम हो कि उन लोगोंको उतारना सम्भव न होगा तो वे उनको नहीं लायेंगे। और वे लोग भी यहाँ व्यापार करने नहीं आयेंगे, अगर उनको मालूम हो कि उन्हें परवाने नहीं मिलेंगे।

श्री सिमन्सने "विधेयकका विरोध किया। उन्होंने उसे अत्यन्त गैर-ब्रिटिश और अत्याचारी बताया।"

यह दिखलाई पड़ेगा कि केवल कुछ पौंड माल लेकर जगह-जगह घूमनेवाले फेरीवालोंको भी अपना हिसाब-किताब अंग्रेजीमें रखना होगा। सच बात तो यह है कि वे कोई हिसाब रखते ही नहीं। पीड़ित पक्षके उच्चतम

न्यायालयमें फरियाद करनेपर जो आपत्ति की गई है उसका कारण यह दीख पड़ता है कि परवाना-अधिकारी अपने विवेकाधिकार-प्रयोगको न्यायालयके सामने उचित सिद्ध न कर सकेगा।

यह प्रश्न भी उठता है कि परवानोंको नये करनेके बारेमें क्या किया जायेगा। क्या परवाना-अधिकारी आदेश दे तो सैकड़ों और हजारों पौंडका माल रखनेवाले व्यापारियोंको अपना कारबार बन्द कर देनेको कहा जायेगा? विधानसभाके एक सदस्य श्री स्मिथको एक उपाय सूझा। उन्होंने प्रस्ताव किया कि जिन लोगोंके पास परवाने हैं उन्हें अपना कारबार बन्द करनेके लिए एक वर्षका समय दिया जाये। उन्होंने सभाको ध्यान दिलाया कि फ्री स्टेट तकने व्यापारियोंको अपना काम बन्द करनेके लिए बाध्य करनेके पहले उचित समय दिया था। परन्तु दुर्भाग्यसे यह प्रस्ताव गिर गया।

नेटाल एडवर्टाइज़र (५–४–९७) ने विधेयकके बारेमें अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये हैं :

> **अफसोसकी बात है कि जिन तमाम सदस्योंने प्रवासी-विधेयक द्वारा ब्रिटिश परम्पराओंके भंग किये जानेका साहसपूर्वक विरोध किया था, उन्होंने परवाना-विधेयकमें निहित प्रजाकी स्वतन्त्रताकी उससे भी बहुत गम्भीर अवहेलनाको बिना आँख-भौंह चढ़ाये पी लिया। विधेयकके उद्देश्यसे हम पूर्णतया सहमत हैं। हम कारपोरेशनको भारी अधिकार देनेके बारेमें कुछ सदस्योंके भयको भी बहुत महत्त्व नहीं देते। न्यायालयमें अपील करनेका अधिकार छीनना अपेक्षाकृत बहुत गम्भीर और खतरनाक है। सचमुच यही एक बात है, जिससे विधेयकके द्वारा दिये गये अधिकार खतरनाक हो सकते हैं। एक ऐसा कानून बना लेना बिलकुल सरल था, जो इसी विधेयकके बराबर आवश्यक हितोंका संरक्षण कर सकता और लोगोंके न्यायालयमें अपील करनेका अधिकार छीननेके लिए ऐसे भोंड़े और राजनीतिज्ञता-विहीन कानूनका आश्रय लेना जरूरी न होता। तात्कालिक जरूरतका कोई दबाव इस विधेयकको उचित नहीं ठहरा सकता। प्रधानमन्त्रीका यह तर्क उनको और उनके श्रोताओंको शोभा**

देनेवाला नहीं है कि, "अगर विवेकाधिकार सर्वोच्च न्यायालय या किसी अन्य न्यायालयको हो तो वह विवेकाधिकार रहेगा ही नहीं। हम यह नहीं कर सकते कि विवेकाधिकार दें तो परवाना-अधिकारीको, और उसका प्रयोग करने दें किसी औरको।" वर्तमान कानूनके अन्तर्गत भी परवाना-अधिकारीको विवेकाधिकार है, परन्तु उससे सर्वोच्च न्यायालयके अन्तिम अधिकारका अपहरण नहीं होता। इसके अलावा, यह तर्क तो विधेयककी एक व्यवस्थासे ही छिन्न-भिन्न हो जाता है। वह व्यवस्था औपनिवेशिक मन्त्रीके सामने अपील करनेका हक देनेवाली है। इस तरह यह विधेयक परवाना-अधिकारीको विवेकाधिकार देकर दूसरेको उसका प्रयोग करने तो देता ही है।

प्रार्थियोंने उपर्युक्त विधेयकोंकी तफसीलवार मीमांसा करनेका प्रयत्न नहीं किया है। कारण, प्रार्थियोंके नम्र मतसे, विधेयकोंके सिद्धान्त ब्रिटिश संविधानकी भावनाओंके — और १८५८ की घोषणाकी भावनाओंके भी — इतने निहायत विरोधी है, कि तफसीलोंकी मीमांसा करना व्यर्थ मालूम होता है।

फिर भी, यह तो स्पष्ट है कि अगर इन विधेयकोंका निषेध नहीं किया गया तो नेटाल भारतीयोंको उत्पीड़ित करनेमें ट्रान्सवालसे कहीं आगे बढ़ जायेगा। प्रवासी कानूनके अनुसार, अंग्रेजी लिखना-पढ़ना जाननेवाले थोड़े-से भारतीयोंको छोड़कर शेष नेटालमें प्रवेश नहीं कर सकते, हालाँकि वे बिना रुकावटके ट्रान्सवालमें जा सकते हैं। फेरीवालोंको नेटालमें फेरी लगाकर माल बेचनेका परवाना नहीं मिल सकता, हालाँकि ट्रान्सवालमें वे अधिकारपूर्वक पा सकते हैं। ऐसी हालतोंमें, प्रार्थियोंको विश्वास है, अगर और कुछ नहीं किया जाता तो नेटालको भारतीय मजदूर भेजना तो बन्द कर ही दिया जायेगा। और इस प्रकार एक महाविसंगति — कि नेटाल भारतीयोंकी उपस्थितिसे लाभ तो सब उठा लेता है, किन्तु उन्हें देनेको कुछ भी तैयार नहीं है — दूर कर दी जायेगी।

गिरफ्तारीकी शक्यतासे गैर-गिरमिटिया भारतीयोंका संरक्षण करनेवाले विधेयक[1] का मंशा उपनिवेशकी भारतीय-विरोधी चीख-पुकारका जवाब देना नहीं है। उसका आविर्भाव सरकार और कुछ भारतीयोंके बीच हुए अमुक पत्र-

१. पाठके लिए, देखिए पृष्ठ ३८६-८७।

व्यवहारसे हुआ है। कभी-कभी भारतीय प्रवासी कानूनके मातहत गैर-गिरमिटिया भारतीयोंको गिरमिटिया भगोड़े मानकर गिरफ्तार कर लिया जाता है। इस असुविधासे बचनेके लिए कुछ भारतीयोंने सरकारसे निवेदन किया कि कुछ ऐसा किया जाये जिससे यह असुविधा कमसे कम हो। सरकारने कृपा करके एक घोषणा कर दी। उसके द्वारा प्रवासी संरक्षकको अधिकार दिया गया कि वह स्वतन्त्र भारतीयोंको इस आशयके प्रमाणपत्र दे दे कि प्रमाणपत्र रखनेवाला व्यक्ति गिरमिटिया नहीं है। यह एक अस्थायी कार्रवाई थी। वर्तमान विधेयकका मंशा उसकी एवज भरना है। प्रार्थी इस विधेयकको पेश करनेमें सरकारके अच्छे इरादोंको मंजूर करते हैं। परन्तु उपधारा ३[1] के द्वारा पुलिसको ऐसे किसी भी भारतीयको गिरफ्तार करनेका अधिकार दे दिया गया है, जिसके पास परवाना न हो। अगर पुलिस गैरकानूनी गिरफ्तारी भी कर ले तो उसे दण्ड न दिया जायेगा। विधेयकका मंशा निस्सन्देह भलाई करनेका है। परन्तु, प्रार्थियोंको भय है कि, यह उपधारा उसकी सारी भलाईको हर लेती है और उसे अत्याचारके एक यंत्रका रूप दे देती है। परवाने निकालना अनिवार्य नहीं है और यह माना गया है कि केवल गरीब वर्गके भारतीय परवानेकी धाराका लाभ उठायेंगे। पहले भी बहुत-सा संकट केवल इसीलिए खड़ा हुआ था कि अफसर गिरफ्तारियाँ करनेमें जरूरतसे ज्यादा उत्साहसे काम लेते थे। अब तो तीसरी धारासे मनचाहे तरीके पर किसी भी भारतीयको बिना दण्ड-भयके गिरफ्तार कर लेनेकी उन्हें छूट ही मिल गई है। इसके अलावा, प्रार्थी आपका ध्यान विधेयक-विरोधी उस दलीलकी ओर भी आकर्षित करते हैं, जो विधान-सभाको दिये गये पूर्वोक्त प्रार्थनापत्रमें पेश की गई हैं (परिशिष्ट ङ)।[2] प्रार्थियोंको आशा है कि इन सब बातोंपर विचार करके विधेयकका निषेध कर दिया जायेगा। पुलिसको गिरमिटिया कानूनके अन्तर्गत गिरफ्तारी करनेमें सावधानी बरतनेके निर्देश दे देनेसे कठिनाई हल हो जाती है।

अन्तमें प्रार्थी विनती करते हैं कि किसी भी कानूनका उसके कार्यान्वित होनेसे दो वर्षके अन्दर निषेध कर देनेका जो अधिकार संविधान-कानूनके अनुसार सम्राज्ञी-सरकारके पास सुरक्षित है, उसके बलपर उपर्युक्त विधेयकोंका

१. अधिनियममें इस उपधाराको चौथी उपधारा बनाया गया था। देखिए पृष्ठ ३८६।

२. परिशिष्टको यहाँ छोड़ दिया गया है, क्योंकि प्रार्थनापत्र पृष्ठ ३२३–२८ पर, अपने तिथिक्रममें, दिया जा चुका है।

निषेध कर दिया जाये। अथवा, उपर्युक्त विधेयकोंका या उनके किसी अंशका निषेध करनेसे इनकार करनेके पहले सम्राज्ञी-सरकार ऊपर बताये हुए ढंगकी जाँच करनेका आदेश दे। भारतके बाहर रहनेवाले भारतीयोंके नागरिक दर्जेके बारेमें एक निश्चित घोषणा की जाये। और अगर उपर्युक्त कानूनोंका निषेध करना सम्भव न समझा जाये तो गिरमिटिया भारतीयोंको नेटाल भेजना बन्द कर दिया जाये, या ऐसी दूसरी राहत दी जाये, जिसे सम्राज्ञी-सरकार उचित समझे।

और न्याय तथा दयाके इस कार्यके लिए प्रार्थी, कर्तव्य समझकर, सदा दुआ करेंगे, आदि-आदि।

(ह०) अब्दुल करीम हाजी आदम
तथा अन्य

परिशिष्ट क

न० १, १८९७

अधिनियम

"संक्रामक रोग सूतक (क्वारंटीन)-सम्बन्धी कानूनोंमें संशोधनार्थ"

नेटालकी विधानपरिषद् और विधानसभाके परामर्श तथा सम्मतिसे महा महिमामयी सम्राज्ञी निम्नलिखित कानून बनाती हैं:

१. जब कभी १८८२के चौथे कानूनके अनुसार किसी स्थानको संक्रामक रोगसे आक्रान्त घोषित किया गया हो, सपरिषद् गवर्नर एक और घोषणा करके आदेश दे सकता है कि वैसे स्थानसे आनेवाले किसी जहाजसे किसी व्यक्तिको उतरने न दिया जाये।

२. ऐसा कोई भी आदेश उन जहाजोंपर भी लागू होगा, जिनमें रोगाक्रान्त घोषित स्थानोंसे आये हुए यात्री सवार हों — भले ही वे किसी दूसरे स्थानसे क्यों न चढ़े हों, और जहाज घोषित स्थानको न गया हो।

३. ऊपर बताये हुए स्वरूपका कोई भी आदेश तबतक अमलमें रहेगा, जबतक कि वह दूसरे आदेश द्वारा वापस न ले लिया जाये।

४. जो-कोई व्यक्ति इस कानूनके विरुद्ध नेटालमें उतरेगा उसे, अगर सम्भव हो तो, तुरन्त उसी जहाजसे वापस भेज दिया जायेगा, जिससे वह आया हो।

और जहाजका अधिकारी ऐसे व्यक्तिको जहाजमें लेने और जहाज-मालिकोंके खर्चपर उपनिवेशसे बाहर ले जानेके लिए बाध्य होगा।

५. जिस-किसी जहाजसे इस कानूनके विरुद्ध कोई व्यक्ति नेटालमें उतरेगा उसके अधिकारी और उसके मालिकोंको ऐसे प्रत्येक व्यक्तिके पीछे कम-से-कम १०० पौंड जुर्माना किया जायेगा। ऐसे किसी भी जुर्मानेको सर्वोच्च न्यायालयसे आदेश प्राप्त करके जहाजसे वसूल किया जा सकेगा। जबतक जुर्माना अदा न कर दिया जाये और जबतक जहाजका अधिकारी ऐसे उतारे हुए प्रत्येक व्यक्तिको उपनिवेशसे बाहर ले जानेकी व्यवस्था न कर दे, तबतक जहाजको रवाना होनेकी अनुमति देनेसे इनकार किया जा सकेगा।

६. इस कानूनको और १८५८के तीसरे तथा १८८२ के चौथे कानूनको मिलाकर एक कानून समझा जायेगा।

परिशिष्ट ख

वाल्टर हेली हचिन्सन,
गवर्नर।

नं० १, १८९७

अधिनियम

"प्रवासियोंपर अमुक प्रतिबन्ध लगानेके लिए"

चूँकि प्रवासियोंपर कुछ प्रतिबन्ध लगाना वांछनीय है :

इसलिए नेटालकी विधानपरिषद और विधानसभाके परामर्श तथा सम्मतिसे महा महिमामयी सम्राज्ञी निम्नलिखित कानून बनाती हैं :

१. इस अधिनियमको "१८९७ का प्रवासी प्रतिबन्धक कानून (इमिग्रेशन रिस्ट्रिक्शन ऐक्ट, १८९७) कहा जायेगा।"

२. यह कानून निम्नलिखितपर लागू नहीं होगा :

(क) जिस व्यक्तिके पास इस कानूनके साथ दी गई सूची क में बताये गये फार्ममें उपनिवेश-सचिव, नेटालके एजेंट-जनरल या नेटाल-सरकार द्वारा इस कानूनकी पूर्तिके लिए नेटालके अन्दर या बाहर नियुक्त किसी अन्य अधिकारीका दस्तखती प्रमाणपत्र हो।

(ख) नेटाल-सरकारने कानून द्वारा अथवा किसी स्वीकृत योजना द्वारा जिस वर्गके लोगोंके नेटालमें आकर बसनेकी व्यवस्था की हो, उसका कोई भी व्यक्ति।

(ग) उपनिवेश-सचिवके हस्ताक्षरित आज्ञापत्र द्वारा जिस व्यक्तिको इस कानूनके अमलसे मुक्त कर दिया गया हो।

(घ) सम्राज्ञीकी जल और स्थल सेनाएँ।

(ङ) किसी भी सरकारके लड़ाईके जहाजके अफसर और चालक।

(च) साम्राज्य-सरकार या किसी अन्य सरकार द्वारा या उसकी सत्ताके मातहत नेटालमें मुनासिब तौरसे नियुक्त किया गया कोई भी व्यक्ति।

३. निम्नलिखित उपखण्डोंमें जिन वर्गोंकी व्याख्या की गई है उनके किसी भी व्यक्तिका स्थल या समुद्री मार्गसे नेटालमें आकर बसना वर्जित है। ऐसे लोगोंको आगे "वर्जित प्रवासी" कहा गया है। वे हैं:

(क) ऐसा कोई व्यक्ति जो इस कानूनके अनुसार नियुक्त अधिकारीके माँग करनेपर इस कानूनकी सूची ख में दिये हुए फार्ममें उपनिवेश-सचिवके नाम किसी यूरोपीय भाषा तथा लिपिमें अर्जी न लिख सके और हस्ताक्षर न कर सके।

(ख) ऐसा कोई व्यक्ति जो कंगाल हो और जिसके पालनका भार जनता अथवा सरकारपर पड़नेकी संभावना हो।

(ग) कोई भी अहमक या पागल व्यक्ति।

(घ) कोई भी व्यक्ति जो किसी घृणित या भयानक संक्रामक रोगसे ग्रस्त हो।

(ङ) कोई भी व्यक्ति, जिसे पिछले दो वर्षोंके अन्दर हत्या या नैतिक अधमताके किसी अन्य अपराध या दुराचरणके कारण सजा हुई हो, और जिसे माफी देकर अपराध-मुक्त न कर दिया गया हो, और जिसका अपराध केवल राजनीतिक न हो।

(च) कोई भी वेश्या और ऐसा कोई भी व्यक्ति जो किसीकी वेश्यावृत्तिसे जीवन-निर्वाह करता हो।

४. जो वर्जित प्रवासी इस कानूनकी धाराओंकी अवहेलना करके नेटालमें आयेगा या नेटालकी सीमामें पाया जायेगा उसे इस कानूनका भंग करनेवाला माना जायेगा और वह जो-कुछ भी दूसरा दण्ड दिया जाये उसके अलावा उपनिवेशसे निष्कासनका पात्र होगा। उसे सादी कैदकी सजा दी जा सकेगी, जो ६ माससे अधिक न होगी।

शर्त यह है कि अपराधीको देशसे निकाल देनेके लिए या अगर अपराधी ५०–५० पौंडकी दो जमानतें देकर एक मासके अन्दर उपनिवेश छोड़कर चले जानेका आश्वासन दे तो, यह कैदकी सजा मंसूख कर दी जायेगी।

५. ऐसे किसी भी व्यक्तिको, जो इस कानूनकी धारा ३ के अर्थके अन्तर्गत वर्जित प्रवासी मालूम होता हो और इस तीसरी धाराके उपखण्ड (ग), (घ), (ङ), (च) के अन्दर न आता हो, नीचे लिखी शर्तोंपर नेटालमें प्रवेश करने दिया जायेगा :

(क) जहाजसे उतरनेके पहले वह इस कानूनके अनुसार नियुक्त अधिकारीके पास १०० पौंडकी रकम जमा करे।

(ख) अगर ऐसा व्यक्ति नेटालमें प्रवेश करनेसे एक हफ्तेके अन्दर उपनिवेश-सचिव या किसी मजिस्ट्रेटसे इस आशयका प्रमाणपत्र प्राप्त कर ले कि वह इस कानून द्वारा वर्जित वर्गमें शामिल नहीं है तो उसकी सौ पौंडकी रकम वापस कर दी जायेगी।

(ग) अगर ऐसा व्यक्ति एक सप्ताहके अन्दर इस तरहका प्रमाणपत्र प्राप्त न कर सके तो उसकी सौ पौंडकी जमा जब्त की जा सकती है और उसे "वर्जित प्रवासी" माना जा सकता है।

शर्त यह है कि, इस धाराके अनुसार नेटालमें प्रवेश करनेवाले व्यक्तिके सम्बन्धमें उस जहाजके अधिकारियों या मालिकोंपर कोई देनदारी न होगी, जिससे वह व्यक्ति उपनिवेशके किसी बन्दरगाहमें आया हो।

६. ऐसे किसी व्यक्तिको "वर्जित प्रवासी" न माना जायेगा, जो इस कानूनके अनुसार नियुक्त अधिकारीको सन्तोष दिला दे कि वह पहले नेटालमें रहता था और वह इस कानूनकी धारा ३ के उपखण्डों (ग), (घ), (ङ) और (च) में से किसीके अर्थके अन्तर्गत सम्मिलित नहीं है।

७. जो व्यक्ति "वर्जित प्रवासी" नहीं है उसकी पत्नी और नाबालिग बच्चा इस कानूनकी रोकसे मुक्त रहेंगे।

८. जिस-किसी भी जहाजसे कोई "वर्जित प्रवासी" उतारा जायेगा उसका अधिकारी और उसके मालिक अलग-अलग और मिलकर कम-से-कम १०० पौंडका जुर्माना भोगनेके जिम्मेदार होंगे। यह जुर्माना पहले पाँच "वर्जित प्रवासियों" के बाद पाँच प्रवासियोंके प्रत्येक समूहके पीछे १०० पौंडके हिसाबसे ५००० पौंड तक बढ़ाया जा सकेगा। और इस तरहका जुर्माना सर्वोच्च न्यायालयका आदेश प्राप्त करके जहाजसे वसूल किया जा सकेगा। जबतक जुर्माना वसूल न हो और जहाजका

अधिकारी इस तरहसे उतारे हुए प्रत्येक "वर्जित प्रवासी" को उपनिवेशसे बाहर ले जानेकी ऐसी व्यवस्था न कर दे, जिससे इस कानूनके मातहत नियुक्त अधिकारीको सन्तोष हो, तबतकके लिए जहाजको बाहर जानेकी इजाजत देनेसे इनकार किया जा सकता है।

९. किसी वर्जित प्रवासीको कोई व्यापार-धन्धा करनेके परवानेका हक न होगा। उसे पट्टे पर या मिल्क मुतल्क या और किसी प्रकारकी जमीन प्राप्त करने, या मताधिकारका प्रयोग करने, या किसी *बरो* के *बर्गेस* अथवा किसी बस्तीके बाशिन्दाके तौरपर नाम दर्ज करानेका अधिकार न होगा। इस कानूनके विरुद्ध उसने कोई परवाना या मताधिकार प्राप्त कर लिया हो तो वह निःसत्त्व हो जायेगा।

१० सरकारसे अधिकार-प्राप्त कोई भी अधिकारी किसी भी जहाजके कप्तान, मालिक या एजेंटके साथ नेटालमें पाये गये किसी भी वर्जित नागरिकको उसके देशके या उसके पासके किसी बन्दरगाहमें छोड आनेका करार कर सकता है। पुलिस ऐसे किसी भी प्रवासीको उसके सामानके साथ जहाजपर बैठा सकती है। ऐसी हालतमें अगर वह प्रवासी कंगाल हो तो उसे इतना धन दे दिया जायेगा, जिससे जहाजसे उतरनेके बाद वह अपनी स्थितिके अनुसार एक मास तक अपना निर्वाह कर सके।

११. जो व्यक्ति इस कानूनकी धाराओंको तोड़नेमें किसी वर्जित प्रवासीको इरादतन मदद करेगा उसे इस कानूनका भंग करनेवाला माना जायेगा।

१२. जो व्यक्ति इस कानूनकी धारा ३ के (च) वर्गके वर्जित प्रवासीको देशमें प्रवेश करनेमें इरादतन मदद करेगा उसे इस कानूनका भंग करनेवाला माना जायेगा। उसे कड़ी कैदकी सजा दी जा सकेगी, जो १२ माससे अधिककी न होगी।

१३. जो व्यक्ति उपनिवेश-सचिवके हस्ताक्षरयुक्त लिखित या मुद्रित अधिकारके बिना किसी अहमक या पागलको नेटाल लानेमें इरादतन सहायक होगा, उसे इस कानूनका भग करनेवाला माना जायेगा। उसे जो भी दूसरा दण्ड दिया जाये उसके अलावा, ऐसे अहमक या पागलके नेटालमें रहते हुए उसके पालन-पोषणका व्यय उठाना होगा।

१४. इस कानूनके मातहत इस कामके लिए नियुक्त कोई भी पुलिस अफसर किसी भी वर्जित प्रवासीको समुद्री या स्थल मार्गसे नेटालमें प्रवेश करनेसे धारा ५ की व्यवस्थाओंके अधीन रोक सकेगा।

१५. गवर्नरको इस कानूनकी व्यवस्थाओंको पूरा करनेके लिए समय-समय पर अफसरोंकी नियुक्ति करने और, जब उचित मालूम हो, उन्हें निकाल देनेका अधिकार

है। वह ऐसे अफसरोंके कर्तव्योंकी व्याख्या करेगा। ऐसे अफसर अपने विभागके प्रमुख सचिव द्वारा समय-समय पर दिये गये आदेशोंका पालन करेंगे।

१६. सपरिषद् गवर्नरको इस कानूनकी धाराओंका ज्यादा अच्छी तरह अमल करानेके लिए समय-समय पर नियम-विनियम बनाने, उनमें संशोधन करने और उन्हें रद करनेका अधिकार होगा।

१७. इस कानूनको या इसके मातहत बनाये गये किसी नियम-विनियमको भंग करनेपर, जहाँ साफ तौरसे ज्यादा दण्ड निश्चित न किया गया हो, ५० पौंड जुर्माने या उसके वसूल होने तकके लिए सादी या कड़ी कैदकी सजा दी जायेगी। यह कैदकी सजा जुर्मानेके अलावा भी दी जा सकती है, परन्तु यह किसी मामलेमें तीन महीनेसे ज्यादाकी न होगी।

१८. इस कानून या इसके मातहत बनाये गये नियम-विनियमोंकी सब अवहेलना और ज्यादा-से-ज्यादा सौ पौंड तक जुर्माने या अन्य प्रकारके द्रव्यके मामले मजिस्ट्रेटोंके हस्तक्षेपके योग्य होंगे।

सूची क

नेटाल उपनिवेश

प्रमाणित किया जाता है कि . . . . जिसका निवासस्थान . . . . आयु . . . . धन्धा या व्यापार . . . . है, नेटालमें प्रवासीके तौरपर स्वीकार किया जानेके लिए सही और योग्य व्यक्ति है।

स्थान . . . . तारीख . . . .

(हस्ताक्षर)

सूची ख

सेवामें, उपनिवेश-सचिव,

महोदय,— मैं १८९७के कानून नं० . . . . के अमलसे बरी किये जानेका हक पेश करता हूँ।

मेरा पूरा नाम . . . . है। गत १२ माससे मेरा निवासस्थान . . . . रहा है। मेरा व्यापार या धन्धा . . . . है। मेरा जन्म . . . . में सन् . . . . में हुआ था।

आपका, आदि,

आज, ५ मई, १८९७को राज्य-भवन (गवर्नमेंट हाउस), नेटालमें दिया।

परमश्रेष्ठ गवर्नर महोदयके आदेशसे —

टामस के० मरे,
उपनिवेश-सचिव

परिशिष्ट ग

वाल्टर हेली-हचिन्सन,
गवर्नर

नवम्बर १८, १८९७

अधिनियम

"थोक और फुटकर विक्रेताओंको परवाने देने सम्बन्धी कानूनका संशोधन करनेके लिए"

चूंकि थोक और फुटकर विक्रेताओंके परवानोंका, जो १८९६के अधिनियम ३८के अन्तर्गत न दिये गये हों, नियमन और नियन्त्रण करना आवश्यक है :

इसलिए नेटालकी विधानपरिषद और विधानसभाके परामर्श तथा सम्मतिसे महामहिमामयी सम्राज्ञी निम्नलिखित कानून बनाती है :

१. सन् १८७२ के कानून नं० १९की धारा ७१के उपखण्ड (क) में उल्लिखित वार्षिक परवानोंमें थोक विक्रेताओंके परवाने शामिल होंगे।

२. इस अधिनियमके लिए "फुटकर विक्रेता" और "फुटकर परवाने" — ये शब्द हर प्रकारके खुदरा विक्रेताओं और खुदरा परवानोंपर लागू समझे जायेंगे। इनमें फेरीवाले और फेरीवालोंके परवाने भी शामिल होंगे। परन्तु १८९६के ३८ वें अधिनियमके अन्तर्गत दिये गये परवाने शामिल नहीं होंगे।

३. हरएक नगर-परिषद या नगर-निकाय (टाउन बोर्ड) को समय-समयपर एक अधिकारीकी नियुक्ति करनेका अधिकार होगा। यह अधिकारी बरो या बस्तीमें थोक या फुटकर विक्रेताओंके लिए आवश्यक वार्षिक परवाने देगा। ये परवाने १८९६ के अधिनियम ३८ के अन्तर्गत न होंगे।

४. जो भी व्यक्ति १८८४के कानून नं० ३८, या उसी तरहके किसी स्टाम्प अधिनियम या इस अधिनियमके अन्तर्गत परवाने देनेके लिए नियुक्त किया जायेगा उसे इस अधिनियमके मानीमें "परवाना-अधिकारी" माना जायेगा।

५. परवाना-अधिकारीको १८९६के अधिनियम ३८ के मातहत दिये जानेवाले परवानोंको छोड़कर अन्य थोक या फुटकर व्यापारके परवाने देने या न देनेका विवेकाधिकार होगा। परवाना-अधिकारी द्वारा परवाना देने या न देनेके फैसलेपर कोई अदालत पुनर्विचार न कर सकेगी। न किसी अदालतको उसे उलटने या उसमें फेर-फार करनेका अधिकार होगा। किन्तु इसमें अगली धारामें दिया हुआ अपवाद रहेगा।

६. अगर परवाना बरो या बस्तीके लिए माँगा गया हो तो अर्जदार या उस मामलेमें हित रखनेवाले किसी भी व्यक्तिको नगर-परिषद या नगर-निकायके सामने, और अगर वह बरो या बस्तीसे पृथक् किसी स्थानके लिए माँगा गया हो तो उस विभागमें १८९६के शराब अधिनियमके मातहत नियुक्त परवाना निकाय (लाइसेन्सिंग बोर्ड) के सामने अपील करनेका अधिकार होगा। और नगर-परिषद, नगर-निकाय या परवाना-निकाय परवाना देने या नामंजूर करनेका आदेश दे सकेगा।

७. ऐसे किसी व्यक्तिको परवाना नहीं दिया जायेगा, जो नगर-परिषद, नगर-निकाय या परवाना-निकायके परवाना-अधिकारीको सन्तोष न दिला सके कि वह जो व्यापार करना चाहता है उसके लिए जरूरी हिसाब-किताब अंग्रेजीमें रखनेके बारेमें १८८७के दिवालिया-कानून ४७, धारा १८०, उपखण्ड (क) की शर्तें पूरी करनेमें समर्थ है।

८. ऐसे किसी मकानमें व्यापार करनेका परवाना नहीं दिया जायेगा, जो वांछित व्यापारके लिए अयोग्य हो, या जिसमें सफाईकी उचित व्यवस्था न हो, या जहाँ मकान रहने और माल रखने — दोनोंके काम आता हो, परन्तु वहाँ सामान रखनेके कमरो या गोदामोंके अलावा, विक्रेताओ, मुहर्रिरो और नौकरोके रहनेके लिए दूसरा उपयुक्त स्थान न हो।

९. जो व्यक्ति बिना परवानेके थोक या फुटकर व्यापार करेगा, या जो परवानाशुदा मकानकी हालत परवाना न देने लायक रखेगा, उसे इस कानूनका भंग करनेवाला माना जायेगा। उसे हर अपराधके लिए २० पौंड तक जुर्मानेकी सजा हो सकेगी। जुर्मानेकी वसूली अदालतमें क्लार्क आफ द पीस द्वारा की जा सकेगी। अगर कानूनका भंग किसी बरो या बस्तीमें हुआ हो तो जुर्मानेकी वसूली नगर-परिषद या नगर-निकाय द्वारा नियुक्त अधिकारी करेगा।

१०. किसी भी बरो या बस्तीके अन्दर किसी भी व्यापार या मकानसे पूर्वोक्त धाराके अनुसार वसूल किया गया सारा जुर्माना उस बरो या बस्तीके कोषमें जमा किया जायेगा।

११. सपरिषद गवर्नरको परवाने प्राप्त करनेके तरीके और परवाना-अधिकारीके निर्णयके खिलाफ निकाय या परिषदके सामने अपीलोंका नियमन करनेके नियम बनानेका अधिकार होगा।

आज ता० २९ मई, १८९७को राज्य-भवनमें दिया गया।

परमश्रेष्ठ गवर्नर महोदयके आदेशसे —

टामस के० मरे
उपनिवेश-सचिव

परिशिष्ट घ

वाल्टर हेली-हचिन्सन,
गवर्नर

नं० २८, १८९७

अधिनियम

"भगोड़े गिरमिटिया भारतीयोंके धोखे गैर-गिरमिटिया भारतीयोंको गिरफ्तारीसे संरक्षण देनेके लिए।"

नेटाल विधानपरिषद् और विधानसभाके परामर्श तथा सम्मतिसे महा महिमामयी सम्राज्ञी निम्नलिखित कानून बनाती हैं :

१. जो भी भारतीय १८९३के कानून नम्बर २५ या उसका संशोधन करनेवाले किसी कानूनके अनुसार गिरमिटिया सेवा करनेके लिए बाध्य नहीं है, वह अपने विभागके मजिस्ट्रेटकी मारफत या सीधे भारतीय प्रवासी संरक्षकको अर्जी देकर एक परवाना (पास) प्राप्त कर सकता है। इस परवानेपर उसे एक शिलिंगका टिकट लगाना होगा। यह परवाना इस कानूनसे संलग्न सूचीमें दिये गये फार्मपर होगा। या, अर्जदार इस परवानेके लिए आवश्यक सब जानकारीसे मजिस्ट्रेट या प्रवासी संरक्षकको सन्तोष दिलाकर भी परवाना प्राप्त कर सकता है।

२. इस कानूनके मातहत यह परवाना रखना और दिखा देना परवाना रखनेवालेकी हैसियतका प्रत्यक्ष प्रमाण होगा। उसे १८९१के कानून नं० २५ की धारा ३१ के अनुसार गिरफ्तार न किया जायेगा।

३. ऐसा परवाना जिस वर्षमें दिया गया हो उसके बाद वैध नहीं रहेगा। वैध रखनेके लिए उसे हर वर्ष मजिस्ट्रेटकी मारफत प्रवासी-संरक्षकके पास भेजकर सकरवाना होगा।

४. अगर भारतीय प्रवासी संरक्षक, या कोई मजिस्ट्रेट, या जस्टिस ऑफ द पीस, या पुलिस सिपाही इस कानूनके मातहत मंजूर परवाना न रखनेवाले किसी भारतीयको

रोके या गिरफ्तार करे, तो वह भारतीय सिर्फ इस बिनापर गैरकानूनी गिरफ्तारीके बारेमें कोई दावा करनेका हकदार न होगा कि वह गिरमिटिया भारतीय नहीं है ।

५. जो व्यक्ति अपना झूठा परिचय देकर परवाना प्राप्त करेगा या अपने परवानेका छलपूर्ण उपयोग होने देगा वह "१८९५ के झूठे परवाना अधिनियम" के अन्तर्गत अपराधी माना जायेगा ।

सूची

१८९७ के कानून नं० २८ के अनुसार परवाना

नकल	परवाना
	मजिस्ट्रेटका विभाग . . . .
नाम	यह परवाना रखनेवाले भारतीयका नाम . . .
स्त्री या पुरुष	स्त्री या पुरुष . . . .
मूल निवास	मूल निवास (देश और गाव) . . . .
पिताका नाम	पिताका नाम . . . .
माताका नाम	माताका नाम . . . .
जाति	जाति . . . .
उम्र	उम्र . . . .
ऊँचाई	ऊँचाई . . . .
रंग	रंग . . . .
हुलियाके निशान	हुलियाके निशान . . . .
अगर विवाहित है तो किसके साथ . . .	अगर विवाहित है तो किसके साथ . . . . .
हैसियत, पद	हैसियत, पद . . . .
निवासस्थान	निवासस्थान . . . .
पेशा	पेशा या जीविकाका साधन . . . .
तारीख	तारीख . . . माह . . . सन् . . . १८९

भारतीय प्रवासी संरक्षक

आज ता० २९ मई, १८९७ को राज्यभवनमें दिया ।

परमश्रेष्ठ गवर्नर महोदयके आदेशसे —

टामस के० मरे
उपनिवेश-सचिव

परिशिष्ट ङ

नेटालकी विधानसभाको दिया गया २६–३–१८९७ का प्रार्थनापत्र। पाठके लिए, देखिए पृष्ठ ३२३–२८।

छपी हुई अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० २४३०–३५) से।

५४. भारत व इंग्लैंडके लोकसेवकोंको

५३–ए, फील्ड स्ट्रीट
डर्बन (नेटाल)
जुलाई १०, १८९७

महोदय,

नेटाल संसदके गत अधिवेशनमें जो भारतीय-विरोधी विधेयक स्वीकार किये गये, उनके बारेमें भारतीयोंने श्री चेम्बरलेनके नाम एक प्रार्थनापत्र[1] भेजा था। उसकी एक नकल आपके पास भेजी गई है। मैं उसकी ओर आपका ध्यान आकर्षित करता हूँ। विधेयकोंपर गवर्नरकी अनुमति मिल गई है और अब वे कानून बनकर अमलमें आ गये हैं। सम्राज्ञी-सरकारको औपनिवेशिक विधान मंडलों द्वारा स्वीकृत किसी भी कानूनका दो वर्षके अन्दर निषेध कर देनेका अधिकार है। इसी व्यवस्थाके बलपर प्रार्थी श्री चेम्बरलेनके हस्तक्षेपका भरोसा रखते हैं।

मेरे नम्र मतसे विधेयकोंको पढ़ लेना ही उनके विरुद्ध निर्णय करनेके लिए काफी है। उनपर टीका-टिप्पणी करना अनावश्यक मालूम होता है। नेटालमें भारतीयोंपर निर्योग्यताओंका जो ढेर लादा जा रहा है, उसके खिलाफ अगर जबरदस्त लोकमत न हो तो हमारे दिन इने-गिने ही समझिये। भारतीयोंको सोच-समझकर उत्पीड़ित करनेमें नेटाल दोनों गणराज्यों[2]को मात दे रहा है। और, नेटाल ही भारतीयोंके बिना अपनी गुजर सबसे कम कर सकता है। उसे उनको गिरमिटमें *बाँधकर ही रखना* है। वह उन्हें स्वतन्त्र लोगोंके तौरपर

१. देखिए पृष्ठ ३६१।

२. ट्रान्सवाल और आरेंज फ्री स्टेटके बोअर गणराज्य। इन गणराज्योंके भेदभावके कानूनोंके लिए देखिए पृष्ठ ३१–३७ और ७०–७३।

P. O. Box 66.
M. K. GANDHI,
ADVOCATE.
Agent for
THE ESOTERIC CHRISTIAN UNION
AND
THE LONDON VEGETARIAN SOCIETY.

53, Field Street,
Durban, 10th July 1897
Natal

Sir,

I beg to draw your attention to a copy sent to you of the Indian Petition to Mr Chamberlain regarding the Anti Indian Bills of the last session of the Natal Parliament. The Bills have received the Governor's assent & are Acts in operation. The Crown has the power to disallow any Acts of the Colonial Legislatures within two years after their passage & it is on the strength of this proviso that the petitioners rely for Mr Chamberlain's intervention.

The Bills in my humble opinion have only to be read in order to be condemned. Comment thereon seems superfluous. Unless there is a powerful public opinion against the disabilities that are being heaped upon the Indians in Natal our days are numbered. Natal beats both the Republics in its studied persecution of the Indians. And it is Natal that can least do without Indians. She must have them under indenture. She won't have them as free men. Would not the Home & the Indian Governments stop this unfair arrangement & stop indentured emigration to Natal. We have but to request you to redouble your efforts on our behalf & we may yet hope to get justice!

I am
yours obt servant
M. K. Gandhi

भारत व इंग्लैंडके लोकसेवकोंको पत्र

2255

M. K. GANDHI,

53a, Field Street,
Durban, 16 Sep. 1897
Natal

Sir,

I have the honour to enclose herewith a letter addressed to you by the representatives of the Indian community of Natal with reference to Mr Chamberlain's address to the Colonial premiers. The newspaper cutting enclosed was seen after the letter was in print. It gives great force to the argument contained in the letter. Mr Chamberlain's address has naturally created surprise amongst both the communities European as well as Indian. I venture to trust that your powerful influence will be exerted in order to bring about the changes in the Immigration Act referred to in the letter if nothing more can be done. The kind of Indians referred to in the letter whom the act at present debars from entering into Natal while absolutely necessary for the regular conduct of Indian houses already established cannot in any way interfere with Europeans if they were allowed to enter the colony.

Copy of Immigration petition is sent under separate cover.

I am
Your obed: Servt.
M K Gandhi

Hon'ble Dadabhai Naoroji
London

दादाभाई नौरोजीके नाम पत्र

रखेगा ही नहीं। क्या ब्रिटेन और भारतकी सरकारें इस अन्यायपूर्ण व्यवस्थाको रोकेंगी नहीं? क्या वे नेटालको गिरमिटिया मजदूर भेजना बन्द नहीं करेंगी? हमारी आपसे केवल इतनी ही विनती है कि आप हमारे पक्षमें अपने प्रयत्न फिरसे दुगुनायें। इससे हमें अब भी न्याय पानेकी आशा हो सकती है।

आपका आज्ञानुवर्ती सेवक,

मो० क० गांधी

अंग्रेजी दफ्तरी प्रतिकी, जिसमें गांधीजीकी सही है, फोटो-नकल (एस० एन० २४४८) से।

५५. पत्र : टाउन क्लार्कको[1]

५३ ए, फील्ड स्ट्रीट
डर्बन
सितम्बर ३, १८९७

श्री विलियम कूली
(टाउन क्लार्क)
डर्बन

महोदय,

श्री वी० लॉरेन्स मेरे दफ्तरमें मुहर्रिर हैं। उन्हें अक्सर शामको सभाओंमें शामिल होने या तमिल पढ़ानेके लिए बाहर जाना पड़ता है। ये काम ९ बजे रातके पहले खत्म नहीं होते। उनको दो-तीन बार पुलिसने रोका-टोका था और उनसे परवाना दिखानेको कहा था। मैं यह बात पुलिस सुपरिटेंडेंटकी नजरमें लाया तो उन्होंने सलाह दी कि मैं श्री लॉरेन्सके लिए मेयरके परवानेकी अर्जी दे दूं। मेरा खयाल यह था कि खण्ड त (पी) का उपनियम नम्बर १०६ श्री लॉरेन्सपर लागू नहीं होता। इसलिए मैं वह कार्रवाई करनेका अनिच्छुक था। परन्तु तीन दिन पूर्व श्री लॉरेन्ससे फिर परवाना दिखानेको कहा गया, हालाँकि जब उन्होंने बताया कि वे कहाँ गये थे तब उन्हें जाने दिया

१. सरकारी कागज-पत्रोंमें प्राप्त मूल प्रतिके हाशियामें लिखा है: सिफारिश की— हस्ताक्षर, आर० सी० अलेक्जैंडर, पुलिस सुपरिंटेंडेंट।

गया। मेरा तो अब भी यही खयाल कायम है कि उक्त कानून श्री लॉरेन्स-पर लागू नहीं होता, फिर भी इस तरहकी अड़चनसे बरी होनेके लिए, मेरा खयाल है, श्री लॉरेन्सके लिए छूटका परवाना आवश्यक है।

इसलिए मैं उनके लिए ऐसे परवानेका आवेदन करता हूँ।

आपका आज्ञानुवर्ती सेवक,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

डर्बन टाउन कौंसिल रेकर्ड्स; जिल्द १३४, नं० २३४४६।

५६. सरकार बनाम पीताम्बर तथा अन्य

अनेक भारतीय अपना माल बेचनेके लिए सीमा पार करके ट्रान्सवाल गये थे। जब वे नेटालमें अपने घरोंको लौटे, उन्हें प्रवासी प्रतिबन्धक कानून भंग करनेके आरोपमें गिरफ्तार कर लिया गया। मुकदमा, जो ६ सितम्बरको शुरू हुआ था, कई दिनों तक चलता रहा। सितम्बर १३ को गांधीजी सफाई-पक्षकी ओरसे पैरवीके लिए उसमें हाजिर हुए थे और उन्होंने अभियुक्तोंको छुड़ा लिया था। उस दिनकी कार्रवाईकी जो रिपोर्ट अदालतके मुंशीने लिखी थी, उसके कुछ अंश नीचे दिये जाते हैं।

सितम्बर १३, १८९७

ता० ११ से आगे कार्रवाई शुरू हुई।

सर्वश्री ऐंडर्सन, स्मिथ और गांधी सफाई-पक्षकी ओरसे हाजिर।

मुस्तगीसने अदालतके सामने दलीलें पेश कीं।

श्री गांधीने जवाब दिया और नीचे लिखी आपत्तियाँ उठाईं :

पहली : सरसरी मुकदमा, बिना रजामंदीके।

दूसरी : मुकदमेके लिए मुस्तगीसका अधिकार-पत्र पेश नहीं किया गया।

तीसरी : सब अभियुक्तोंका मुकदमा एक साथ।

चौथी : कोई सबूत नहीं कि अभियुक्त वर्जित प्रवासी है।[1]

१. उन विभिन्न वर्गोंके लोगोंके लिए, जिन्हें इस संज्ञाकी मर्यादामें शामिल कर दिया गया था, देखिए पृष्ठ ३७९–८०।

पांचवी : ऐसा कोई आरोप नही है कि वे कंगाल हैं या अंग्रेजी नही जानते।[1]

छठी : कोई सबूत नहीं कि वे नेटालमें कब दाखिल हुए।

श्री अटर्नी स्मिथ बताते हैं कि ये व्यक्ति कानून मंजूर होनेके पहले नेटालमें थे।

—मैं पहली आपत्ति मंजूर करता हूँ। अभियुक्त बरी किये गये।

(ह०) ऐलेक्स डी० गिल्मन
(रेजिडेंट मजिस्ट्रेट)

[अंग्रेजीसे]

मुख्य उपनिवेश-मन्त्री, लंदनके नाम नेटालके गवर्नरके २८ फरवरी, १८९८ के खरीता नं० २७ का सहपत्र।

कलोनियल आफिस रेकर्ड्स, साउथ आफ्रिका, जनरल, १८९७।

५७. श्री चेम्बरलेनका भाषण : प्रधानमन्त्रियोंकी सभामें

औपनिवेशिक प्रधानमन्त्री-सम्मेलनमें श्री चेम्बरलेनका भाषण साम्राज्य-सरकार द्वारा नेटाल प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियमकी वास्तविक स्वीकृतिका द्योतक था। उससे यह भी पता चल गया कि दूसरे एशियाई-विरोधी विधेयकोंके सम्बन्धमें साम्राज्य-सरकारकी नीति क्या रहेगी। इन भेद-भावमूलक कानूनोंके खिलाफ आखिरी प्रयत्नके रूपमें गांधीजीने इंग्लैंड तथा भारतके प्रभावशाली व्यक्तियों और संस्थाओंके नाम नीचेका पत्र लिखा था।

[सितम्बर १८, १८९७][2]

श्रीमन्,

हम जानते हैं कि जिन लोकसेवकोंकी भारतीय मामलोंमें रुचि है उनका ध्यान इस समय मुख्यतया पूना और भारतके अन्य भागोंकी मुसीबतों[3]की

१. देखिए पृष्ठ ३७९–८०।

२. दफ्तरी नकलमें तारीख नहीं है। परन्तु दादाभाई नौरोजीके नाम इसी तरहके एक पत्रमें (देखिए पृष्ठ ३९८–९९) सितम्बर १८, १८९७की तारीख पड़ी है।

३. मुसीबतोंका सम्बन्ध दुर्भिक्ष, प्लेग और प्लेग-सम्बन्धी शासन-व्यवस्थासे था।

ओर लगा हुआ है। यदि नेटालके भारतीयोंकी स्थिति गम्भीर न होती तो इस समय हम आपके मूल्यवान समय और ध्यानमें दखल न देते।

*नेटाल गवर्नमेंट गज़ट*में इस सप्ताह श्री चेम्बरलेनका वह भाषण प्रकाशित हुआ है जो उन्होंने सम्राज्ञीके शासनकी हीरक-जयन्तीके अवसरपर लंदनमें एकत्र हुए उपनिवेशोंके प्रधानमन्त्रियोंके सामने दिया था। उक्त भाषणमें उन्होंने इस उपनिवेश तथा ब्रिटिश साम्राज्यके अन्य भागोंमें भारतीयोंके प्रवास सम्बन्धी कानूनोंके विषयमें जो कहा था वह यों प्रकाशित हुआ है...[1]

श्री चेम्बरलेनने ब्रिटिश ताजके प्रति भारतीयोंकी राजभक्तिकी और उनकी सभ्यताकी इस भाषणमें जो धाराप्रवाह प्रशंसा की उसके बावजूद हम यह परिणाम निकाले बिना नहीं रह सकते कि उन परम माननीय सज्जनने *भारतीय पक्षको सर्वथा त्याग दिया* है और वे विभिन्न उपनिवेशोंकी भारतीय-विरोधी चिल्ल-पुकारके वश हो गये हैं। उन्होंने यह तो अवश्य माना है कि ब्रिटिश साम्राज्यकी परम्पराएँ "किसी भी जाति या रंगके पक्ष-विपक्षमें भेदभाव नहीं करती", परन्तु उसी साँसमें भारतीयोंके सम्बन्धमें उपनिवेशों द्वारा अपनाई गई नीतिको भी मंजूर करके नेटाल-प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियमको बिना किसी शर्तके स्वीकार कर लिया है। इस अधिनियमकी एक प्रति और उसके सम्बन्धमें अपना प्रार्थनापत्र हम कुछ मास पूर्व आपकी सेवामें भेज चुके हैं।[2]

श्री चेम्बरलेन इस तथ्यसे अपरिचित नहीं हो सकते कि नेटाल-कानून जान-बूझ कर इसी इरादेसे स्वीकृत किया गया था कि इसे *प्राय: एकमात्र* भारतीयोंके विरुद्ध प्रयुक्त किया जाये। हमारे प्रार्थनापत्रमें दिये हुए उद्धरणोंसे यह भली भाँति सिद्ध हो जाता है। नेटाल उपनिवेशके प्रधानमन्त्री परम माननीय श्री एस्कम्बने इस प्रवासी विधेयकको प्रस्तुत करते हुए यह भी कहा था कि अभीष्ट लक्ष्यकी, अर्थात् भारतीयोंका प्रवेश रोक देनेकी, सिद्धि क्योंकि प्रत्यक्ष उपायोंसे नहीं हो सकती, इसलिए मुझे अप्रत्यक्ष उपायोंका अवलम्बन करना पड़ रहा है।

१. उपलब्ध प्रतिमें उक्त उद्धरण नहीं है। अत: कलोनियल आफिस रेकर्ड्समें उपलब्ध श्री चेम्बरलेनके भाषणका सम्बद्ध अंश परिशिष्टके रूपमें दे दिया गया है। देखिए पृष्ठ ३९६–९८।

२. देखिए पृष्ठ ३६१।

इस विधेयकको प्राय: सर्वसम्मतिसे अब्रिटिश और बेईमानीभरा बतलाया गया था। वस्तुत: *यह अँधेरेमें किया गया छुरेका वार* था। हमें यह देखकर बहुत निराशा हुई कि इस विधेयकपर भी श्री चेम्बरलेनने अपनी पसन्दगीकी छाप लगा दी। हम नहीं जानते कि अब हमारी स्थिति क्या है और हमें क्या करना चाहिए। इस अधिनियमका प्रभाव हमपर पड़ने भी लगा है। कुछ ही दिनोंकी बात है कि इकहत्तर नेटालवासी भारतीय अपना माल बेचने ट्रान्सवाल गये थे। उन्हें नेटाल लौटनेके कुछ समय पश्चात् गिरफ्तार कर लिया गया और उनके मुकदमेकी सुनवाईके समय उन्हें वर्जित प्रवासी बतला कर छ: दिनतक जेलमें रखा गया।[1] वे कुछ कानूनी अपवादोंके कारण छोड़ दिये गये, परन्तु यदि ऐसा न होता तो मुकदमा कई दिन चलता रहता और ब्रिटिश भूमिपर रहनेका अधिकार प्राप्त करनेसे पहले, उन्हें शायद कई सौ पौंड व्यय करने पड़ जाते। अब भी सात दिनकी सुनवाईमें उन्हें कुछ कम व्यय नहीं करना पड़ा। ऐसी घटनाएँ समय-समयपर घटित होती ही रहेंगी और फिर जो लोग नेटालमें पहलेसे आबाद हो चुके हैं केवल वही यहाँ आ सकेंगे।

श्री चेम्बरलेनने कहा है कि कोई प्रवासी इसलिए अवांछनीय हो सकता है कि "वह मैला है या वह दुराचारी है, या वह कंगाल है या उसमें कोई दूसरी आपत्तिजनक बात है, जिसकी परिभाषा संसदके अधिनियममें की जा सकती है।" परन्तु उन्होंने ही ट्रान्सवाल-सरकारको भेजे हुए अपने खरीतेमें स्वयं माना है कि जिन भारतीयोंका नेटालमें प्रवास नेटाल-अधिनियम द्वारा रोका गया है वे न दुराचारी हैं न मैले-कुचैले।[2] वे कंगाल तो निश्चय ही नहीं हैं। नेटाल अधिनियमकी सबसे बड़ी निर्बलता यह है कि शायद *जिन लोगोंके दुराचारी या मैला-कुचैला होनेकी सम्भावना है उनको प्रविष्ट करनेकी इसमें विशेष व्यवस्था की गई है।* वे हैं गिरमिटिया भारतीय। उनके वैसा होनेकी सम्भावना इस कारण है कि उनकी भर्ती समाजके निम्नतम वर्गमें से की जाती है। यह अधिनियम बननेके तुरन्त पश्चात् भारतीय प्रवासी निकाय (इंडियन इमिग्रेशन बोर्ड) ने ४००० गिरमिटिया भारतीयोंको बुला लेनेकी माँग स्वीकृत की थी। अबतकके लेखेमें शायद एक साथ इतने अधिक गिरमिटिया मजदूरोंकी यह सबसे बड़ी माँग है। हम नहीं कह सकते कि श्री चेम्बरलेनने

१. देखिए पृष्ठ ३९०–९१।

२. भारतीय प्रवासियोंके बारेमें श्री चेम्बरलेनकी रायके लिए देखिए पृष्ठ १९।

इन तथ्योंकी उपेक्षा कैसे कर दी। हम तो अब भी यही कहते हैं—जैसा कि हम अबतक निरन्तर कहते आये हैं—कि भारतीयोंके विरुद्ध आन्दोलनका कारण *रंग-भेद और व्यापारिक ईर्ष्या* है। हमने निष्पक्ष जाँच की जानेकी माँग की है, और यदि वह मान ली गई तो हमें तनिक भी सन्देह नहीं कि इसका परिणाम यही निकलेगा कि नेटालमें भारतीयोंकी उपस्थिति उपनिवेशके लिए लाभदायक पाई जायेगी। १२ वर्ष पूर्व जिन आयुक्तों (कमिश्नरों) ने नेटालमें कुछ भारतीय मामलोंकी जाँच की थी, उन्होंने लिखा था कि भारतीयोंकी उपस्थिति इस उपनिवेशके लिए एक वरदान सिद्ध हुई है।

सत्य तो यह है कि श्री चेम्बरलेनने व्यवहारतः यह मान लिया है कि कोई भी भारतीय भारत छोड़ते ही ब्रिटिश प्रजा नही रहता; और इसका भयंकर परिणाम यह हो रहा है कि हमें, प्रायः प्रतिदिन, ब्रिटिश भारतीय प्रजाओंके नेटालकी ब्रिटिश भूमिसे निकाल दिये जाने अथवा उसमें प्रविष्ट न होने दिये जानेका, और फलतः उनके ट्रान्सवाल या डेलागोआ-बेकी विदेशी भूमियोंमें जानेके लिए विवश होनेका, दुःखदायी दृश्य देखना पड़ रहा है।

इसकी तुलनामें तो ट्रान्सवाल परदेशी-कानून (ट्रान्सवाल-एलिएन ऐक्ट) एक वरदान था। जब यह कानून लागू था तब कोई भी भारतीय, नेटाल या डेलागोआ-बे या भारतसे पारपत्र (पासपोर्ट) लेकर, या ट्रान्सवालमें रोजगार पा लेनेपर, ट्रान्सवालमें प्रविष्ट हो सकता था। इसके अतिरिक्त, यह कानून विशेष रूपसे भारतीयोंपर ही लागू नहीं होता था। इस कारण कोई भी भारतीय—यदि वह बिलकुल कँगला ही न हो तो—ट्रान्सवालमें प्रविष्ट हो सकता था। फिर भी डाउनिंग स्ट्रीट [ब्रिटिश सरकार] का दबाव पड़नेपर ट्रान्सवालका यह कानून हटा दिया गया, क्योंकि यह विदेशियों (एटलॉण्डरों)[1] के बहुत विपरीत पड़ता था। दुर्भाग्यवश हमारे पक्षमें—यद्यपि हम ब्रिटिश प्रजा हैं—वैसा ही दबाव ब्रिटिश भूमिमें दिखलाई नही पड़ता। नेटाल-अधिनियम ऐसे किसी भी भारतीयका नेटालमें प्रवेश निषिद्ध करता है जो कोई भी यूरोपीय भाषा पढ़ और लिख न सकता हो। इसका अपवाद केवल तब किया जायेगा जब कि वह पहलेसे नेटालमें बस चुका हो। इसका परिणाम यह

१. ट्रांसवालमें आकर बसे हुए मूल डच प्रवासियोंको छोड़कर अन्य गैर-डच यूरोपीय—विशेषतः ब्रिटिश, जर्मन आदि—जो बादमें जाकर वहाँ बसे। डच (बोअर) लोग उन्हें विदेशी मानते थे।

होगा कि मुस्लिम लोग किसी मौल्वीको या हिन्दू लोग किसी पण्डितको, केवल उनके अंग्रेजी न जाननेके कारण नेटालमें नहीं बुला सकेंगे, वे दोनों अपने-अपने धर्मके कितने ही विद्वान क्यों न हों। नेटालमें बसा हुआ कोई भारतीय व्यापारी उपनिवेशसे बाहर जाकर यहाँ फिर वापस आ सकता है, परन्तु वह अपने साथ कोई नया नौकर नहीं ला सकता। नये भारतीय नौकरों और मुनीमोंको न ला सकनेकी इस असमर्थताके कारण यहाँके भारतीय लोगोंको बहुत भारी असुविधा होती है।

यदि इस प्रवासी अधिनियमको नेटालकी कानूनकी पुस्तकमें सदाके लिए रहना ही हो और श्री चेम्बरलेन भी इसे अस्वीकृत करनेके लिए तैयार न हों तो भी इसकी यूरोपीय भाषावाली धाराको तो सुधार ही देना चाहिए, जिससे कि जो लोग अपनी भाषा पढ़ और लिख सकते हों और अन्य प्रकार इस अधिनियमके अनुसार प्रवेश पानेके अधिकारी हों, वे सब भी यहाँ आ सकें। हमें आशा है कि कम-से-कम इतनी रियायत तो हमारे साथ की ही जा सकती है। हमारी आपसे प्रार्थना है कि आप और कुछ न भी करें तो इतना परिवर्तन करवानेके लिए तो अपने प्रभावका उपयोग अवश्य करें। श्री चेम्बरलेनके भाषणमें शायद यह आशा दिलाई गई है कि हमारे प्रार्थनापत्रमें जिन अन्य एशियाई-विरोधी अधिनियमोंका जिक्र है उन्हें वे अस्वीकृत नहीं करेंगे। यदि यह ठीक हो तो यह एक प्रकारसे स्वतन्त्र भारतीयोंको नेटाल छोड़कर चले जानेकी सूचना है, क्योंकि यदि विक्रेता-परवाना अधिनियमको कठोरतासे लागू किया गया तो उसका परिणाम यही होगा; और चूंकि उपनिवेशियोंको अब पता चल गया है कि वे जो कुछ करना चाहते हैं उसे अप्रत्यक्ष—और हम तो कहेंगे अनुचित—उपायोंसे करें तो उन्हें कहने मात्रसे श्री चेम्बरलेनसे कुछ भी मिल सकता है, इसलिए उस कानूनके कठोरतासे लागू किये जानेकी संभावना भी है। यह सोचकर हमें बहुत निराशा होती है कि सम्राज्ञीके प्रधान उपनिवेश-मन्त्री अनुचित उपायोंको पसन्द कर रहे हैं—सब यूरोपीयों और भारतीयोंका सर्वसम्मत मत यही है। जो यूरोपीय यहाँ भारतीयोंका निर्बाध प्रवेश होने देनेके तीव्रतम विरोधी हैं वे भी ऐसा ही समझते और मानते हैं कि भारतीयोंका निर्बाध प्रवेश रोकनेके उक्त उपाय अनुचित हैं। परन्तु वे इसकी परवाह नहीं करते।

हम बेबस हैं। इस मामलेको अब हम आपके ही हाथमें सौंपते हैं। हमारी एकमात्र आशा अब यही है कि आप हमारे लिए द्विगुणित शक्तिसे फिर प्रयत्न

करेंगे। हमारा पक्ष सर्वथा न्यायसंगत है, इसलिए हमें निश्चय है कि आप इतना कष्ट अवश्य करेंगे।

(ह०) कासिम मोहम्मद जीवा
और अन्य

हस्तलिखित अंग्रेजी मसविदेकी फोटो-नकल (एस० एन० २५०९) से। मसविदेमें गांधीजीके अपने हाथसे किये हुए संशोधन हैं।

परिशिष्ट

परदेशियोंका प्रवास

(श्री चेम्बरलेनके भाषणके अंश)

मुझे एक बात और कहनी है, और सिर्फ एक ही बात; यानी, मैं आपका ध्यान एक क़ानूनकी ओर खींचना चाहता हूँ, जो या तो कुछ उपनिवेशोंमें विचाराधीन है, या स्वीकार किया जा चुका है। उसका सम्बन्ध परदेशियों (एलियन्स) और खास तौरसे एशियाइयोंके प्रवाससे है।

मैंने ये विधेयक देखे हैं और ये कुछ-कुछ बातोंमें एक-दूसरेसे भिन्न हैं। परन्तु, नेटालसे आये हुए विधेयकको छोड़कर, इनमें से एक भी ऐसा नहीं है, जिसे हम सन्तोषकी दृष्टिसे देख सकें। मैं कहना चाहता हूँ कि सम्राज्ञी-सरकार इस विषयका निबटारा करनेके उपनिवेशोंके ध्येयों और उनकी आवश्यकताओंके महत्त्वको पूरी तरह मान्य करती है। ये उपनिवेश लाखों और करोड़ों एशियाइयोंके अपेक्षाकृत अधिक निकटवर्ती हैं; और इनके गोरे निवासियोंके इस संकल्पके साथ हमारी पूरी सहानुभूति है कि जो लोग सभ्यतासे पराये हैं, धर्मसे पराये हैं, रीति-नीतिसे पराये हैं और इसके अलावा, जिनकी बाढ़से मजदूर-आबादीके वर्तमान अधिकारोंमें बहुत गम्भीर बाधा पड़ेगी, उनकी भरमार उपनिवेशोंमें नहीं होने दी जायेगी। इस तरहके प्रवासको, मैं खूब समझता हूँ, उपनिवेशोंके हितके लिए सब जोखिमें उठाकर भी रोकना ही होगा। और इस उद्देश्यसे पेश किये गये प्रस्तावोंका हम कोई विरोध नहीं करेंगे। परन्तु हमारी आपसे माँग है कि आप साम्राज्यकी परम्पराओंका ध्यान रखें, जो जाति अथवा रंगके पक्ष-विपक्षमें कोई भेदभाव नहीं करतीं; और यह कि, सम्राज्ञीकी सब भारतीय प्रजाओंको, या सब एशियाइयोंको भी, उनके रंगके कारण या उनकी प्रजाति (रेस) के कारण निकाल

देना उन लोगोंको इतना संतापकारी होगा कि, मुझे बिलकुल निश्चय है, सम्राज्ञीको उसे स्वीकार करना पड़े तो वह उनके लिए अत्यन्त पीड़ाजनक बात होगी। जरा सोचिए, अपनी इस देशकी यात्राके दौरानमें आपको क्या देखनेको मिला है। ब्रिटिश संयुक्त राज्य अपने सबसे बड़े और सबसे उज्ज्वल अधीन देशके रूपमें उस विशाल भारत-साम्राज्यका मालिक है, जिसमें ३०,००,००,००० प्रजाजन निवास करते हैं। वे ताजके प्रति उतने ही वफादार हैं, जितने कि आप स्वयं हैं और उनमें लाखों लोग रोएँ-रोएँसे उतने ही सभ्य हैं जितने कि स्वयं हम हैं। वे, अगर इस बातका कोई महत्त्व हो तो, इस अर्थमें हमसे ज्यादा अभिजात हैं कि उनकी परम्पराएँ और उनके परिवार ज्यादा पुराने हैं। वे धनवान हैं, संस्कारी हैं, विशिष्ट वीर हैं; वे ऐसे लोग हैं, जिन्होने पूरीकी पूरी सेनाएँ लाकर रानीकी सेवामें समर्पित कर दी हैं और भारतीय विद्रोहके जैसे अत्यन्त कठिन और संकटमय अवसरोंपर अपनी राजभक्तिके द्वारा साम्राज्यकी रक्षा की है। मैं कहता हूँ कि आप लोग, जिन्होंने यह सब देखा है, इन लोगोंका अनादर नहीं कर सकते। मेरे खयालसे उनका अनादर करना, जिससे वैमनस्य, असन्तोष, सन्ताप पैदा होगा, और जो न केवल महामहिमामयी सम्राज्ञीकी, बल्कि उनकी तमाम प्रजाकी भावनाओंके विपरीत पड़ेगा, आपके मतलबके लिए बिलकुल अनावश्यक भी है।

मेरे नम्र खयालसे तो आपको जिस बातका निबटारा करना है वह है, प्रवासियोंकी पात्रता-अपात्रताकी। कोई आदमी सिर्फ इसलिए जरूरी तौरपर अवांछनीय नहीं हो जाता कि उसका रंग हमारे रंगसे भिन्न है; बल्कि इसलिए अवांछनीय होता है कि वह गन्दा है, या वह दुराचारी है, या वह कंगाल है, या उसमें कोई दूसरी आपत्तिजनक बात है जिसकी संसदके अधिनियम द्वारा व्याख्या की जा सके और जिसके आधारपर उन सब लोगोंको निकालनेकी व्यवस्था की जा सके, जिन्हें आप सचमुच निकालना चाहते हों। सो, सज्जनो, यह बात हमारे बीच मैत्रीपूर्ण सलाह-मशविरेकी है। जैसा कि मैं बता चुका हूँ, नेटाल उपनिवेशने एक ऐसा उपाय निकाल लिया है। वह, मेरा विश्वास है, उसके लिए पूर्ण सन्तोषप्रद है। और याद रखिए, इस विषयमें उसकी दिलचस्पी सम्भवत: आपकी दिलचस्पीसे ज्यादा ही है; क्योंकि वह प्रवासके लिए, जो पहलेसे ही बहुत बड़े पैमानेपर शुरू हो चुका है, ज्यादा नजदीक है। और नेटालवालोंने एक ऐसा कानून पास कर लिया है जो, वे मानते हैं, उन्हें मनचाहा सब-कुछ दे सकेगा, जिसपर उनकी [एशियाइयोंकी] उठाई आपत्ति लागू नहीं होती और जिसका इस [हमारी] आपत्तिसे भी संघर्ष नहीं है। इस आपत्तिमें

तो, मुझे निश्चय है, आप मेरे साथ हैं। इसलिए मुझे आशा है, आपकी इस यात्राके दौरानमें हम शब्दोंका एक ऐसा मसविदा तय कर लेंगे, जिससे सम्राज्ञीकी किसी प्रजाकी भावनाओंको ठेस न पहुँचे और साथ ही, उस वर्गके लोगोंके आक्रमणसे, जिनपर आस्ट्रेलियाइयोंको न्यायपूर्ण आपत्ति हो, उनके उपनिवेशोंकी रक्षा भी हो जाये।

[अंग्रेजीसे]

कलोनियल आफिस रेकर्ड्स; पार्लमेंटरी पेपर्स, १८९७; जिल्द २, नं० १५।

५८. पत्र: दादाभाई नौरोजीको

५३–ए, फील्ड स्ट्रीट
डर्बन, नेटाल
सितम्बर १८, १८९७

माननीय दादाभाई नौरोजी
लंदन

श्रीमन्,

मुझे श्री चेम्बरलेनके भाषणके सम्बन्धमें, जो उन्होंने उपनिवेशोंके प्रधान-मन्त्रियोंके सम्मेलनमें दिया था, एक पत्र[1] इसके साथ भेजनेका सम्मान प्राप्त हुआ है। यह पत्र नेटालवासी भारतीय समाजके प्रतिनिधियोंने आपकी सेवामें लिखा है। अखबारकी जो कतरन[2] इसके साथ है वह पत्रके छप जानेके बाद देखी गई थी। उससे पत्रमें दी हुई दलीलको भारी बल मिलता है। श्री चेम्बरलेनके भाषणसे स्वभावतः ही भारतीय और यूरोपीय दोनों समाजोंको आश्चर्य हुआ है। मैं मानता हूँ कि अगर कुछ और न किया जा सका तो भी पत्रमें जिस प्रवासी-अधिनियमका उल्लेख किया गया है उसमें परिवर्तन करानेके लिए तो आप अपने प्रबल प्रभावका उपयोग करेंगे ही। जिस प्रकारके भारतीयोंका पत्रमें जिक्र है और जिन्हें अधिनियम अभी नेटालमें प्रवेश करनेसे रोकता है, वे यहाँ जमी-जमाई भारतीय पेढ़ियोंके नियमित संचालनके लिए बिलकुल

१. देखिए पृष्ठ ३९१–९८।

२. यह उपलब्ध नहीं है; सम्भवतः सम्मेलनकी कार्रवाईकी अखबारी रिपोर्ट थी।

जरूरी तो हैं ही, साथ ही, यदि उन्हें उपनिवेशमें आने दिया गया तो, वे यूरोपीयोंके कारबारमें किसी तरहका हस्तक्षेप भी नहीं कर सकते।

प्रवास-सम्बन्धी प्रार्थनापत्र[1] की नकल अलग लिफाफेमें भेजी है।

आपका आज्ञानुवर्ती सेवक,

मो० क० गांधी

गांधीजीके हस्ताक्षर-युक्त मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (जी० एन० २२५५) से।

५९. पत्र : विलियम वेडरबर्नको

५३-ए, फील्ड स्ट्रीट
डर्बन, नेटाल
सितम्बर १८, १८९७

सर विलियम वेडरबर्न
लंदन

श्रीमन्,

नेटालके भारतीय समाजके प्रतिनिधियोंने आपको जो पत्र लिखा है[2] वह और उसके ही सम्बन्धमें समाचारपत्रकी एक कतरन, इस पत्रके साथ आपको भेजनेका सम्मान मुझे प्राप्त हुआ है। मैं विश्वास करता हूँ कि यदि और कुछ न भी किया जा सका तो भी इस पत्रमें जिस नेटाल अधिनियमका जिक्र किया गया है उसमें परिवर्तन करानेके लिए तो आप अपने प्रबल प्रभावका उपयोग करेंगे ही।

प्रवास-सम्बन्धी प्रार्थनापत्रकी प्रति अलग लिफाफेमें भेजी है।

आपका आज्ञानुवर्ती सेवक,

मो० क० गांधी

एक अंग्रेजी दफ्तरी प्रतिकी फोटो-नकल (जी० एन० २२८१) से।

१. देखिए पृष्ठ ३६१।
२ देखिए पृष्ठ ३९१।

६०. "भारतीयोंका आक्रमण" (१)

भारतीयोंके प्रवाससे सम्बद्ध स्थितिके बारेमें नेटालके समाचारपत्रोंमें बहुत उलझे हुए विचार व्यक्त हुआ करते थे और अर्थका अनर्थ भी किया जाता था। कहा जाता था कि भारतीय एक संघके मार्ग-दर्शनमें कानूनको बरका रहे हैं। गांधीजीने स्थितिको स्पष्ट कर देना आवश्यक समझा। निम्नलिखित और उसके बादके पत्रोंसे, जो उन्होंने *नेटाल मर्क्युरी* तथा औपनिवेशिक सचिवको लिखे, वह उद्देश्य सिद्ध हुआ।

डर्बन
नवम्बर १३, १८९७

सेवामें
सम्पादक
नेटाल मर्क्युरी

महोदय,

मालूम होता है कि कुछ लोग नेटालके भारतीय समाजके विरुद्ध द्वेष-भावना कायम रखनेपर तुले हुए हैं। और, दुर्भाग्यवश, अखबारनवीसोंने अपने-आपको धोखेमें पड़ जाने दिया है। कुछ हफ्ते पहले आपके एक संवाददाताने, जो एक गैरजिम्मेदार व्यक्ति दिखाई देता है, कहा था कि डंडीमें जिन भारतीयोंपर प्रवासी कानून (इमिग्रेशन ऐक्ट) के अनुसार मुकदमा चलाया गया था[1] वे भारतसे आये हुए नये आदमी थे और लुका-छिपीसे उपनिवेशमें घुस आये थे। बादमें इस विषयपर सरकार और प्रदर्शन-समितिके बीचका पत्र-व्यवहार[2] प्रकाशित हुआ। उससे जनताके मनपर यह छाप पड़ी कि एक बड़े पैमानेपर प्रवास-कानूनको बरकानेका प्रयत्न किया जा रहा है। इन वक्तव्यों और अखबारोंमें प्रकाशित इसी तरहके दूसरे वक्तव्योंके आधारपर आपने एक पत्र छापा। इन वक्तव्योंको आपने सही माना और साथ ही जनताको यह भी बताया कि

१ यह उल्लेख उन ७० भारतीयोंके मामलेका है, जिन्हें 'अरब' कहा गया था और जिनपर प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियमके अनुसार डंडीमें मुकदमा चलाया गया था। अभियुक्तोंकी ओरसे इस मामलेमें गांधीजीने पैरवी की थी और उन्हें छुड़ा लिया था। देखिए पृष्ठ ४०१–२।

२. देखिए पृष्ठ २१३।

इन लोगोंने स्थायी निवासके प्रमाणपत्र डर्बनमें प्राप्त कर लिये थे। डेलागोआ-बे से एक तार भेजा गया। उसमें बताया गया था कि एक हजार स्वतन्त्र भारतीय वहां उतरे है और वे नेटाल जा रहे हैं। आजके *मर्क्युरीमें* इस आशयका एक तार छपा है कि सरकारने पुलिसको डेलागोआ-बेकी ओरसे आनेवाले एशियाइयोंकी खोज करनेका आदेश दिया है। यह सब एक नाटकीय चीज है। और अगर इसका मंशा यूरोपीय समाजके राग-द्वेषको उभाड़ना न होता तो यह अत्यन्त मनोरंजक भी होती। "मैन इन द मून" [चन्द्रवासी आदमी] ने अपने साप्ताहिक स्तम्भमें एक अंश लिखकर इसपर आखिरी मुलम्मा चढ़ाया है। उसका प्रहार सबसे निष्ठुर है, क्योंकि उसके लेखोंको न केवल जनता उत्सुकताके साथ पढ़ती है, बल्कि उनमें वजन भी होता है। जहाँ तक मै जानता हूँ, यह दूसरा मौका है, जब कि उसने भारतीय प्रश्नके बारेमें सत्य-असत्यको पहचाननेकी शक्ति खोई है। अगर काफी उत्तेजना मिलनेपर भारतीयोंको कड़ी भाषा काममें लानेकी स्वतन्त्रता होती, तो ऐसी भाषाका प्रयोग उचित सिद्ध करनेके लिए विचाराधीन विषयपर उस 'आदमी' के आजके लेखांशोंमें काफीसे ज्यादा उत्तेजना मौजूद है। मगर वैसा हो नही सकता। मुझे तो जो हकीकतें मैंने खुद देखी-सुनी हैं उन्हें उसी रूपमे जनताके सामने रखकर संतोष मान लेना होगा।

मुझे दो वकील भाइयोंके साथ डंडीके भारतीयोंकी पैरवी करनेका अवसर मिला था। मै पूरे जोरके साथ कहता हूँ कि अभियुक्त भारतीयोंमें से एक भी भारतसे नया आया हुआ नही था। इसके सबूत अब भी डंडीके प्रवास-अधिकारी (इमिग्रेशन आफिसर) के पास मौजूद हैं। इसे निर्णयात्मक रूपमें साबित कर देना सम्भव है कि वे सब भारतीय दक्षिण आफ्रिकामें या, यों कहिये कि, नेटालमें प्रवासी-कानून पास होनेके पहले आये थे। उनके परवाने, दूसरे कागज-पत्र और जहाजी कम्पनीके दफ्तरोंके लेखे झूठ नही बता सकते। सरकार और प्रदर्शन-समितिके बीचका पत्र-व्यवहार पत्रोंमे प्रकाशित होते ही मैंने उनमें से अधिकतर लोगोंको किसी अधिकारी अदालतके सामने पेश करने और उनकी निर्दोषता साबित कर देनेकी तैयारी दिखाई थी। अर्थात् मै यह साबित करनेको तैयार था कि वे सबके सब पहले ही नेटालके बाशिन्दे थे, इसलिए उन्हें उपनिवेशमें प्रवेश करनेका पूरा अधिकार था। उनमें से एक व्यक्ति हालमें डर्बनमें है। उसे जब कभी भी सरकार चाहे, मजिस्ट्रेटके सामने पेश किया जा सकता है।

यह कहना सच नहीं है कि इन लोगोंने अपने प्रमाणपत्र डर्बनमें प्राप्त किये। इनमें से कुछने, प्राविधिक (टेकनिकल) आधारपर बरी हो जानेके बाद, डंडीके मजिस्ट्रेटको स्थायी निवासके प्रमाणपत्रोंके लिए अर्जी दी थी। वह अर्जी नामंजूर कर दी गई। कागजात मेरे पास भेजे गये और मैंने सरकारसे प्रमाण-पत्र पानेका प्रयत्न किया। परन्तु मैं असफल रहा। अब उनमें से अधिकतर लोग बिना प्रमाणपत्रोंके ट्रान्सवाल चले गये हैं। यह सच है कि तीन लोगोंने डर्बनमें प्रमाणपत्र प्राप्त किये। जिन सबूतोंके आधारपर ये प्रमाणपत्र दिये गये वे हलफनामे थे। वे दफ्तरके कागजातमें नत्थी हैं। परन्तु डंडीवाले लोगोंके डर्बनमें प्रमाणपत्र प्राप्त करने और कानूनके खिलाफ प्रमाणपत्र प्राप्त करने-वालोंके बीच तो आकाश-पातालका अन्तर है। अमजिमकूलूके एक आदमीने और डर्बनके बाहर दूसरे जिलोंके लोगोंने डर्बनमें ऐसे प्रमाणपत्र प्राप्त किये थे। ऐसे प्रमाणपत्र देनेका आदेश निकलनेके पहले श्री वाल्टरके सामने इस प्रश्नपर पूरी तरहसे बहस की जा चुकी थी।

यह भय बिलकुल निराधार है कि जो भारतीय डेलागोआ-बेमें उतरते हैं वे कानून तोड़कर उपनिवेशमें आ जाते हैं। मैं यह कहनेकी जिम्मेदारी तो नहीं लूँगा कि चार्ल्सटाउनके पास सीमाको पार करनेका प्रयत्न एक भी नये व्यक्तिने नहीं किया; परन्तु जहाँतक मुझे मालूम है, अबतक एक भी व्यक्ति चार्ल्सटाउनके सार्जेन्ट ऐलनकी गृध्र-दृष्टिसे बचकर निकलनेमें सफल नहीं हुआ। कानूनके अमलमें आनेके पहले और प्रदर्शन-समितिकी स्थापनाके समय भारतीय समाजकी ओरसे खुलेआम कहा गया था कि हर माह जो भारतीय डर्बनमें उतरते हैं उनमें से ज्यादातर ट्रान्सवाल जानेवाले मुसाफिर होते हैं। यह तो खास तौरसे कहा गया था और आजतक उस कथनका खंडन नहीं किया गया — कि *कूरलैंड* और *नादरी* जहाजोंसे जो ६०० यात्री आये थे उनमें १०० से कम नेटाल आनेवाले नये लोग थे। अब भी परिस्थिति बदली नहीं है। और मैं तो यह भी कहनेका साहस करता हूँ कि जो १००० यात्री डेलागोआ-बेमें उतरे बताये जाते हैं, उनमें से भी ज्यादातर ट्रान्सवाल जानेवाले होंगे। विभिन्न राष्ट्रोंके नये लोगोंको भारी संख्यामें बसा लेनेका सामर्थ्य उसी उपनिवेशमें है। और जबतक ट्रान्सवाल भारतीयोंको लेता जाता है और सरकार उन्हें आने देती है, तबतक आप भारतीयोंको डेलागोआ-बेमें आते देखते रहेंगे। मेरा कथन यह नहीं है कि उनमें से कोई नेटाल आना ही नहीं चाहता। कुछने तो पूछा था कि वे किन शर्तोंपर आ सकते हैं।

जब उनको बताया गया कि वे इन शर्तोंको पूरा नहीं कर सकते, तब वे ट्रान्सवालमें रह गये। वे कोई फरिश्ते तो नही हैं। अगर देख-रेख न हो तो कुछ लोग कानूनको बरकाकर उपनिवेशमें आ भी सकते है।

मेरा कथन यह है कि कानूनको तोड़नेकी भारी पैमानेपर कोई कोशिश नहीं की जाती। "मैन इन द मून"ने अपनी उपजाऊ कल्पनाशक्तिसे जो भूत खड़ा किया है, उसके अनुसार न तो कोई संगठन है, न कानून तोड़ने और लुक-छिपकर उपनिवेशमें घुस आनेकी सलाह ही दी जाती है। उचित आदरके साथ हमें कहना होगा कि प्रदर्शन-समितिसे उसका अनुरोध, अधिकारियोंको उसकी सलाह और उसके आक्षेप बहुत ही दुःखदायी हैं, क्योंकि वे गैरजरूरी हैं और वस्तुस्थितिसे साबित नही होते। उसका पद बहुत जिम्मेदारीका है। इसलिए लोगोंका खयाल होना स्वाभाविक है कि दूसरे कुछ भी करें, कमसे कम वह तो सत्यके रूपमें किसी कल्पित बातका प्रचार करनेके पहले ज्यादासे ज्यादा सावधानी बरतेगा ही। शरारत एक बार शुरू हो गई तो फिर उसे रोकना शायद सम्भव न हो।

कानूनका अमल होनेपर डर्बनके जहाज-मालिकोंको एक पत्र मिला था। उसमें उनसे अनुरोध किया गया था कि वे उसका अमल करानेमें सरकारको सहयोग दें। मुझे मालूम है कि उन्होंने जवाबमें यह लिखा था कि हम उस कानूनको पसन्द नहीं करते, फिर भी जबतक वह कानूनकी किताबमें रहेगा तबतक हम शक्तिभर तथा वफादारीके साथ उसे मानेंगे और उसके अमलमें सरकारको मदद करेंगे। और, जहाँतक मुझे मालूम है, जहाज-मालिकोंके अपनाये हुए इस रुखके विरुद्ध कोई जिम्मेदार भारतीय नहीं गया। सच तो यह है कि जब-जब मौका आया, चाहे वह कांग्रेस-भवनके अन्दर रहा हो या बाहर, भारतीय समाजके नेताओंने भारतीयोंको सदा यही समझानेका प्रयत्न किया है कि कानूनकी अवज्ञा न करना आवश्यक है। दूसरी बात हो ही कैसे सकती थी? अगर कानूनको कभी भी रद कराना है तो वह तो सिर्फ समझाने-बुझाने और भारतीयोंके अपना आचरण बिलकुल निष्कलंक रखने से ही हो सकता है। आँख बचानेकी नीति तो आत्मघातक है। और मैं कह सकता हूँ कि भारतीय समाजके अतीत-जीवनका चिट्ठा इस विश्वासको सही साबित करनेवाला नहीं है कि वह कोई आत्मघातक कार्य कर सकता है। इस सबके बाद क्या "मैन इन द मून" को यह विश्वास दिलाना जरूरी है कि भारतीयोंकी उपनिवेशके साथ खिलवाड करनेकी कोई इच्छा नहीं है, भले

यह इसलिए ही क्यों न हो कि खिलवाड़ करना उनको पुसानेवाली चीज नहीं है?

फिर भी, पूरी-पूरी सार्वजनिक जाँच होने दीजिए। अगर यह साबित हो जाये कि कानूनकी अवज्ञा करनेवाले किसी संगठनका अस्तित्व है तो, बेशक, उसे कुचल दिया जाये। परन्तु, दूसरी ओर, अगर ऐसा कोई संगठन या 'व्यापक आक्रमण' पाया न जाये, तो इस बातको खुले आम स्वीकार किया जाये, जिससे संघर्षके कारण मिट जायें। सरकार तो यह कर ही सकती है। परन्तु आप भी कर सकते हैं। इसके पहले समाचारपत्रोंने अपने विशेष संवाददाताओंको भेजकर सार्वजनिक कार्योंकी जाँच कराई है। अगर आप सचमुच विश्वास करते हैं कि भारतीय समाजगत रूपमें कानूनको बरकानेका प्रयत्न कर रहे हैं तो आप एक आरम्भिक जाँच करके भारतीय समाजको अत्यन्त आभारी बना लेंगे। और यह आपकी एक लोकसेवा होगी। इस जाँचका मंशा सरकारके लिए सार्वजनिक जाँच करनेका मार्ग प्रशस्त करना और, वह जाँच करनेके लिए ही तैयार न हो तो, उसे बाध्य करना होगा। कुछ हो, भारतीय अपनी ओरसे ऐसी जाँचका स्वागत करते हैं।

विषय बहुत महत्त्वका है, इसलिए मैं आपके सहयोगियोंसे इस पत्रको उद्धृत करनेका अनुरोध करता हूँ।

आपका,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

नेटाल मर्क्युरी, १५-११-१८९७

६१. पत्र : औपनिवेशिक सचिवको

डर्बन

नवम्बर १३, १८९७

माननीय औपनिवेशिक सचिव
मैरित्सबर्ग

महोदय,

मैं इसके साथ *मर्क्युरी*की एक कतरन भेज रहा हूँ। इधर, कुछ दिनोंसे अखबारोंमें ये समाचार निकल रहे हैं कि भारतीय लोग डेलागोआ-बे या चार्ल्स-टाउनके रास्ते इस उपनिवेशमें प्रवेश करके, या प्रवेश करनेके प्रयत्न करके,

प्रवासी अधिनियमको बरकानेकी कोशिशें कर रहे हैं। आजतक ऐसे समा-चारोंपर ध्यान देना जरूरी नही समझा गया था। परन्तु माथकी कतरनने बातको ज्यादा गम्भीर रूपमें पेश किया है, और सम्भव है कि इससे यूरोपीय समाजका क्रोध भड़क उठे। इसलिए नेटालके प्रमुख भारतीयोंकी ओरसे मैं यह सुझाव देता हूँ कि सरकार कृपा करके इस समाचारका खंडन कर दे। मैं कह दूँ कि उक्त कानूनका उल्लंघन करनेके लिए नेटालमें या अन्यत्र कोई संगठन नहीं है। नेटालके उत्तरदायी भारतीयोंने कानूनके पास होनेके समयसे ही वफादारीके साथ उसका पालन किया है और दूसरोंको भी ऐसा करनेकी आवश्यकता समझाई है। फिर भी, अगर सरकारका खयाल इसके विपरीत हो तो मुझे इस विषयमें सार्वजनिक जाँचकी माँग करनी होगी।

आपका,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

नेटाल मर्क्युरी, २०-११-१८९७

६२. "भारतीयोंका आक्रमण" (२)

डर्बन

नवम्बर १५, १८९७

सेवामें

सम्पादक

नेटाल मर्क्युरी

महोदय,

प्रवासी-कानून (इमिग्रेशन ऐक्ट) को बरकानेके लिए तथाकथित संगठनके बारेमें मेरे पत्र[1]पर आपने आजके अंकमें कुछ आक्षेप किये हैं। आशा है, न्यायकी दृष्टिसे, आप उन आक्षेपोंपर मुझे कुछ शब्द कहनेकी अनुमति देंगे। मुझे शंका है कि मेरे पत्रका अर्थ गलत लगाया गया है। मैंने उसमें नेटालवासी भारतीयोंके प्रति किये जानेवाले व्यवहारकी विवेचना नहीं की। मैंने पत्रोंमें प्रकाशित इस आशयके बयानको, और ऐसे दूसरे बयानोंको कि, जो भारतीय हालमें

१ देखिए पृष्ठ ४०० ।

डेलागोआ-बेमें उतरे हैं वे नेटाल आ रहे हैं, नकार भर दिया है। ऐसा करनेमें मेरा मंशा अनावश्यक आतंकको टालना था। "गत अधिवेशनके कानूनको बरकाया न जाये, इसलिए सजग" रहनेके यूरोपीयोंके अधिकारपर मैं विवाद नहीं करता।

उलटे, मेरा कहना यह है कि जबतक कानूनकी किताबमें वह कानून है तबतक उत्तरदायी भारतीयोंका इरादा उसे मानने और सरकारको उसका अमल करानेमें शक्तिभर मदद करनेका है।

मैं जिस बातपर आदरपूर्वक आपत्ति करता हूँ वह है झूठी अफवाहों और उनके आधारपर बनी धारणाओंका फैलाया जाना। उनसे बेचैनी पैदा हो सकती है और यूरोपीयोंके मनका समतोल बिगड़ जानेका अन्देशा है। मैंने जिस जाँचका सुझाव दिया है वह, आपके मतके लिए उचित आदर रखते हुए भी, स्पष्टत: जरूरी है। जनताके सामने दो विरोधी बातें हैं। एक तो यह है कि प्रवासी-कानूनको समग्रत: बरकानेका प्रयत्न किया जा रहा है। "मैन इन द मून"के मतानुसार उसे एक संगठनका बल प्राप्त है। दूसरी ओर, इस वक्तव्यको पूरी तरह नामंजूर भी किया गया है। जनता किस बातपर विश्वास करे? क्या सबके लिए यह बेहतर न होगा कि कोई अधिकृत वक्तव्य देकर बता दिया जाये कि कौन-सी बात विश्वासके लायक है?

मैंने भारतमें जो कुछ कहा था, उसके बारेमें आपने मेरा पक्ष उचित बताया है। जब वह बात जनताके सामने थी तब आपने यह कहनेका सौजन्य दिखाया था कि भारतीय दृष्टिकोणसे मैंने ऐसा कुछ नहीं कहा जिसपर आपत्ति की जा सके। और मैं अब भी अपनी भारतमें कही हुई सारी बातोंको साबित करनेको तैयार हूँ। अगर मुझे ब्रिटिश सरकारों[१]की दृढ़ न्याय-बुद्धि पर आस्था न होती तो मैं यहाँ होता ही नहीं। पहले मैं दूसरी जगहोंपर जो-कुछ कह चुका हूँ वही मैं यहाँ दुहराता हूँ कि ब्रिटिशोंकी न्याय व औचित्यप्रियता ही भारतीयोंकी आशाका आधार है।

आपका,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

नेटाल मर्क्युरी, १७-११-१८९७

१. आशय ब्रिटेन और नेटालकी सरकारोंसे है।

६३. औपनिवेशिक सचिवको उत्तर

डर्बन
नवम्बर १८, १८९७

माननीय औपनिवेशिक सचिव,
मैरित्सबर्ग

महोदय,

मैं आपके १६ तारीखके पत्र[1]का प्राप्ति-स्वीकार निवेदन करता हूँ। उसके द्वारा आपने मुझे सूचना दी है कि सरकारने ऐसा कभी नहीं कहा, न उसके पास विश्वास करनेका कारण ही है, कि नेटालमें प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियमको बरकानेके लिए किसी संगठनका अस्तित्व है। इस पत्रके लिए मैं सरकारको धन्यवाद देता हूँ और निवेदन करता हूँ कि अगर अधिनियमको बरकानेके प्रयत्नोंकी सूचना भारतीय समाजको दी जायेगी तो उन प्रयत्नोंकी पुनरावृत्तिको रोकनेके लिए नेटालवासी भारतीयोंके प्रतिनिधि सब सम्भव प्रयत्न करेंगे। मैं इस पत्र-व्यवहारकी नकलें पत्रोंमें प्रकाशनार्थ भेजनेकी स्वतन्त्रता लेता हूँ।

आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

नेटाल मर्क्युरी, २०–११–१८९७

१. पत्र निम्नलिखित था :

मैरित्सबर्ग
नवम्बर १६, १८९७

महोदय,

भारतीयोंके डेलागोआ-बेके रास्ते उपनिवेशमें आनेके कथित प्रयत्नोंकी बाबत अखबारोंमें प्रकाशित समाचारोंके विषयमें आपका १३ तारीखका पत्र मिला। उसके उत्तरमें सूचनार्थ निवेदन है कि सरकारने यह कभी नहीं कहा, न उसके पास ऐसा माननेका कोई कारण ही है, कि नेटालमें प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियमको बरकानेके लिए किसी संगठनका अस्तित्व है।

आपका,
सी० बर्ड
मुख्य उपसचिव

[अंग्रेजीसे]

६४. भारतीय और प्रवासी-अधिनियम

औपनिवेशिक मन्त्रिके साथ गांधीजीका पत्र-व्यवहार निम्न पत्रके साथ *नेटाल मर्क्युरी*में प्रकाशित हुआ था।

डर्बन
नवम्बर १९, १८९७

सेवामें
सम्पादक
नेटाल मर्क्युरी

महोदय,

मैं इसके साथ अपने और सरकारके बीच हुए पत्र-व्यवहारकी नकल प्रकाशनार्थ भेज रहा हूँ। यह पत्र-व्यवहार अखबारोंमें प्रकाशित उन समाचारोंसे[1] सम्बन्ध रखता है, जिनमें डेलागोआ-बेके रास्ते भारतीयोंके उपनिवेशमें आनेके कथित प्रयत्नोंका जिक्र किया गया है।

आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
नेटाल मर्क्युरी, २०–११–१८९७

१. देखिए पृष्ठ ४०४ और ४०७।

६५. पत्र : फर्दुनजी सोराबजी तलेयारखाँको

५३–ए, फील्ड स्ट्रीट
डर्बन (नेटाल)
दिसम्बर १७, १८९७

श्री फर्दुनजी सोराबजी तलेयारखाँ
बैरिस्टर, जे० पी०, आदि
बम्बई

प्रिय श्री तलेयारखाँ,

इस पत्रसे आपको श्री ऐलेक्स कैमेरॉन[1]का परिचय मिलेगा। ये एक समय नेटालमें *टाइम्स ऑफ़ इंडिया*के संवाददाता थे। जिस समय ये यहाँ थे, इन्होंने दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंके हितमें जो कुछ ये कर सकते थे, सब किया था। अब ये भारत जा रहे हैं। इनका इरादा है कि हालकी घटनाओंके कारण भारतीयोंके बारेमें जो गलतफहमियाँ पैदा हो गई हैं उन्हें दूर करनेके भारतीयोंके प्रयत्नोंमें हिस्सा लें। इस बारेमें उन्हें जो भी सहायता मिले वह मूल्यवान मानी जायेगी।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी प्रतिसे। सौजन्य : रुस्तमजी फर्दुनजी सोराबजी तलयारखाँ।

१. देखिए पृष्ठ १९६।

सामग्रीके साधन-सूत्र

इंग्लिशमैन : कलकत्तेका दैनिक समाचारपत्र, १८३० में स्थापित। उस समय यह यूरोपीय लोकमतका प्रमुख मुखपत्र था।

इंडिया : भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी ब्रिटिश समिति, लंदनका मुखपत्र। विलियम डिग्बीके सम्पादकत्वमें १८९० में आरम्भ हुआ। १८९२ तक नियमित रूपसे निकला। बादमें मासिक बन गया और १८९८ से १९२१ तक साप्ताहिक रूपमें प्रकाशित होता रहा।

कलोनियल आफिस रेकर्ड्स : औपनिवेशिक कार्यालय, लंदनके पुस्तकालयमें स्थित। इनमें दक्षिण आफ्रिकी कामकाज-सम्बन्धी अधिकतर प्रलेख (डाक्युमेंट्स) और कागजात उपलब्ध हैं। देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३५९।

गांधी स्मारक संग्रहालय, नई दिल्ली : गांधीजी-सम्बन्धी साहित्य और कागज-पत्रोंका केन्द्रीय संग्रहालय तथा पुस्तकालय। देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३५९।

टाइम्स आफ़ इंडिया : एक प्रमुख भारतीय समाचारपत्र। १८६१ में चार समाचारपत्रोंके मिल जानेपर इस नामसे स्थापित हुआ। उन चारमें से *बाम्बे टाइम्स* नामक पत्र १८३८ में आरम्भ हुआ था।

दक्षिण–आफ्रिकी सरकारके कागज-पत्र : प्रिटोरिया और पीटरमैरित्सबर्गके आर्काइव्ज़में।

नेटाल एडवर्टाइज़र : डर्बनसे प्रकाशित दैनिक समाचारपत्र।

नेटाल मर्क्युरी : डर्बनसे प्रकाशित दैनिक समाचारपत्र।

बंगाली : एक जमानेमें कलकत्तेका प्रमुख समाचारपत्र। १८६८ में साप्ताहिकके रूपमें स्थापित। १८७९ में सुरेन्द्रनाथ बनर्जीने ले लिया और १९०० में उसे दैनिक पत्र बना दिया तथा जीवन-भर उसका सम्पादन किया।

बम्बई-सरकारके कागज-पत्रोंमें प्राप्त पुलिसके गोशवारे।

बाम्बे गज़ट : १७९१ में स्वतंत्र समाचारपत्रके रूपमें स्थापित। शीघ्र ही अर्ध-सरकारी मुखपत्र बन गया था।

भारत-सरकारके कागज-पत्र : नेशनल आर्काइव्ज़, नई दिल्लीमें।

साबरमती संग्रहालय, अहमदाबाद : इसके पुस्तकालयमें गांधीजीके दक्षिण आफ्रिकी काल (१८९३-१९१४) और उससे पूर्वके बहुत-से कागज-पत्र सुरक्षित हैं। देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३६०।

स्टेट्समैन : कलकत्तेका विशिष्ट अंग्रेजी दैनिक पत्र। १८७५ में आरम्भ। १८७७ से "१८१८ में स्थापित *फ्रैंड आफ़ इंडियामें* प्रत्यक्ष अवतीर्ण व उससे सम्मिलित" रूपमें निकलने लगा।

हिन्दू : मद्राससे प्रकाशित प्रमुख भारतीय समाचारपत्र। १८७९ में साप्ताहिक के रूपमें आरम्भ हुआ, १८८३ में सप्ताहमें तीन बार निकलने लगा और १८८९ में दैनिक बना।

तारीखवार जीवन वृत्तान्त

(१८९६-१८९७)

१८९६

जुलाई ४: गांधीजी ५ जूनको डर्बनसे रवाना होकर कलकत्ते पहुँचे। इलाहाबादके मार्गसे बम्बईके लिए रवाना। इलाहाबादमें गाड़ी चूक जानेके कारण एक दिन ठहरे रहे और *पायोनियर*के सम्पादक श्री चेज़नीसे भेंट की। बादमें श्री चेज़नीने भेंटका जो विवरण लिखा उससे "उस घटनावलीकी नींव पड़ी, जिसका अन्तिम परिणाम नेटालमें मेरी हत्याका प्रयत्न हुआ।"

जुलाई ९: राजकोट पहुँचे।
बम्बईमें प्लेग फैलनेपर राजकोटमें सफाई-समितिमें शामिल हुए।

अगस्त १४: राजकोटमें *हरी पुस्तिका* प्रकाशित की।

अगस्त १७: राजकोटसे बम्बईके लिए रवाना।

अगस्त १९: बम्बईमें रानडे, बदरुद्दीन तैयबजी और फीरोजशाह मेहतासे मिले।

सितम्बर ११: बीमार बहनोईको लेकर बम्बईसे राजकोटके लिए रवाना; मृत्युके समय तक उनकी शुश्रूषा की।

सितम्बर १४: लंदनसे डर्बन भेजे हुए रायटरके तार (केबल)से *हरी पुस्तिका* की सामग्रीके बारेमें भ्रामक समाचार प्रकाशित।

सितम्बर १६: नेटालके पत्रोंमें रायटर द्वारा तारसे भेजे गये साराशके प्रकाशित होनेसे डर्बनके यूरोपीय भड़क गये और उन्होंने यूरोपीय संरक्षण संघ (यूरोपियन प्रोटेक्शन असोसिएशन) का सगठन किया।

सितम्बर २६: बम्बईमें, फीरोजशाह मेहताकी अध्यक्षतामें, सार्वजनिक सभामें भाषण दिया।

सितम्बर २९: बम्बईकी सभाने दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंके प्रति दुर्व्यवहारका विरोध और भारतमन्त्रीको शिकायतें दूर करनेके लिए प्रार्थनापत्र भेजनेका निश्चय किया।

अक्टूबर ११: गांधीजी बम्बईसे पूनाके रास्ते मद्रासके लिए रवाना।

अक्टूबर १२ : दिन भर पूनामें ठहरे। गोखले, लोकमान्य तिलक और डा० भाण्डारकरसे मिले।

अक्टूबर १४ : मद्रास पहुँचे।

अक्टूबर २६ : पचैयप्पा कालेज, मद्रासके सभा-भवनमें सार्वजनिक सभामें भाषण दिया।

अक्टूबर ३१ : नागपुर होकर कलकत्ते पहुँचे। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी तथा लोकमतके अन्य नेताओंसे मिले।

नवम्बर १२ : डर्बनसे दादा अब्दुल्लाका तार बम्बई पहुँचा, जिसमें गांधीजीको नेटाल वापस बुलाया गया था, क्योंकि फोक्सराट (संसद) ने सिफारिश की थी कि भारतीयोंको पृथक् बस्तियोंमें रहनेके लिए बाध्य किया जाये।

नवम्बर १३ : दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंकी समस्यापर *इंग्लिशमैन*को पत्र लिखा।

नवम्बर १४ (१५?) : बम्बई पहुँचे।

नवम्बर १६ : पूना गये; वहाँ सार्वजनिक सभाके तत्त्वावधानमें आम सभामें भाषण दिया।

नवम्बर २० : बम्बई वापस।

नवम्बर २६ : डर्बनके यूरोपीयोंकी आम सभा — अध्यक्ष नगरके मेयर। उसमें एशियाइयोंके आगमन और वासकी निन्दा। गांधीजीका नाम निकलनेपर श्रोताओंकी "छी-छी" की परिहास-सूचक आवाजें। औपनिवेशिक देशभक्त संघ (कलोनियल पैट्रिऑटिक यूनियन) की स्थापना।

नवम्बर ३० : गांधीजीने वाइसरायके नाम कलकत्ते तार भेजकर उनका ध्यान ट्रान्सवाल-सरकारके इस निश्चयकी ओर आकर्षित किया कि भारतीयोंको पृथक् बस्तियोंमें रहनेके लिए बाध्य किया जाये। धर्मपत्नी और दो पुत्रोंके साथ *कूरलैंड* द्वारा बम्बईसे दक्षिण आफ्रिकाके लिए रवाना।

दिसम्बर १८ : *कूरलैंड* और *नादरी* जहाज भारतीय यात्रियोंको लेकर डर्बन पहुँचे।

दिसम्बर १९ : बम्बई प्रदेशके कुछ हिस्सोंमें प्लेग फैल गया है, इस आधारपर नेटाल-सरकारने एक सूचना प्रकाशित करके बम्बई बन्दरगाहको संसर्गित

स्थान घोषित कर दिया। जहाजोंको पाँच दिनके लिए संक्रामक रोग सम्बन्धी सूतकमें रखा गया और यह अवधि थोड़ी-थोड़ी करके ११ जनवरी तक बढ़ाई गई।

दिसम्बर २५ : गांधीजीने सह-यात्रियोंकी क्रिसमस-दिवस सभामें पाश्चात्य सभ्यतापर व्याख्यान दिया। बादमें नेटालके समाचारपत्रोंने उनपर "नेटालके गोरोंकी जोरदार निन्दा करने" और "नेटालको भारतीयोंसे पूर देनेकी इच्छा" का आरोप लगाया।

दिसम्बर २९ : डर्बनके यूरोपीयोंने विज्ञापन प्रकाशित किया कि भारतीयोंके जहाजसे तटपर उतरनेके विरोधमें प्रदर्शन करनेके लिए जनवरी ४ को सभा होगी। समाचारपत्र "एशियाइयोंके आक्रमण" की कहानीसे भर गये।

दिसम्बर ३१ : कलकत्तेमें भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसका अधिवेशन; नेटाल भारतीय कांग्रेसके प्रतिनिधि जी० पी० पिल्लेने, जिन्हें गांधीजीने तैयारी कराकर भेजा था, दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंपर लगे बाधा-निषेधोंके विरोध और सरकारसे शिकायतें दूर करानेकी अपीलका एक प्रस्ताव पेश किया, जो मंजूर कर लिया गया।

१८९७

जनवरी २ : *नेटाल एडवर्टाइज़र*में एक पत्र प्रकाशित, जिसमें गांधीजी तथा उनके मित्रोंका डर्बनमें उतरनेपर "उपयुक्त स्वागत" करनेकी कार्रवाइयोंका समर्थन।

जनवरी १३ : गांधीसे *कूरलैंड* जहाजपर *नेटाल एडवर्टाइज़र*के प्रतिनिधिकी भेंट। शामको ५ बजे जहाजसे उतरे; डर्बनकी भीड़ द्वारा उनपर हमला, परन्तु पुलिस सुपरिंटेंडेंटकी पत्नी श्रीमती अलेक्ज़ैंडरके बीचमें पड़नेके कारण घातक प्रहारोंसे बच गये। बादमें पारसी रुस्तमजीके मकानमें घेर लिये गये; परन्तु पुलिस सुपरिंटेंडेंट अलेक्ज़ैंडर उन्हें भारतीय पुलिस-सिपाहीका वेश धारण करा कर निकाल ले गये।

जनवरी १४ : नेटाल-सरकारने घटनाकी रिपोर्ट उपनिवेश-मन्त्रीको भेजी और गांधीजीपर दोषारोपण किया कि वे बेमौके और बुरी सलाह मानकर जहाजसे उतरे।

जनवरी २० : महान्यायवादीके भेंट करनेपर गांधीजीने हमलावरोंपर मुकदमा चलवानेसे इनकार कर दिया और अपनी यह इच्छा लिखकर दे दी कि मामलेकी उपेक्षा कर दी जाये।

जनवरी २२ : भीड़ द्वारा आक्रमणके समय श्री और श्रीमती अलेक्ज़ैंडरने जो मदद की थी, उसके लिए उन दोनोंको धन्यवादके पत्र लिखे और भेंटें भेजीं।

जनवरी २८ : दादाभाई नौरोजी, हंटर और भावनगरीको तार भेजकर जहाजसे उतरते समयकी घटनाओंकी सूचना दी।

जनवरी २९ : तारकी पुष्टि करते हुए उन्हें पत्र लिखे और सविस्तर समाचार दिये।

फरवरी २, ३, ४ : अखबारोंमें पत्र लिखकर भारतीय अकाल-पीड़ित सहायता कोषके लिए चन्देकी अपील की और उसी प्रयोजनसे हिन्दी, अंग्रेजी तथा कुछ अन्य भारतीय भाषाओंमें लोगोंको परिपत्र भेजे।

फरवरी ६ : डर्बनके धर्मोपदेशकोंसे अकाल-पीड़ितोंकी सहायताके लिए लोगोंका योग प्राप्त करनेकी अपील की।

मार्च २ : नेटालके मन्त्रियोंने गवर्नरको सूचित किया कि गांधीजीकी चोटें गम्भीर नहीं थीं और "उनकी इच्छाके अनुसार, शांति-भंग की जानेके सम्बन्धमें कोई कार्रवाई नहीं की गई।"

मार्च १५ : भारतीय-विरोधी प्रदर्शन तथा उसके बादकी घटनाओंके बारेमें श्री चेम्बरलेनके नाम प्रार्थनापत्र पूर्ण किया।

मार्च २६ : नेटालकी विधान-निर्मात्री सभाओंके विचाराधीन भारतीय-विरोधी विधेयकोंके सम्बन्धमें उन सभाओंको प्रार्थनापत्र।

अप्रैल ६ : प्रभावशाली ब्रिटिश तथा भारतीय मित्रोंके नाम एक परिपत्र लिखा और उसके साथ चेम्बरलेनको प्रेषित प्रार्थनापत्रकी नकलें भेजी।

मूल प्रार्थनापत्र श्री चेम्बरलेनको भेजनेके लिए नेटालके गवर्नरके सुपुर्द।

जहाजसे उतरनेके समयकी घटनाओंके बारेमें नेटाल-सरकारके साथ हुआ पत्र-व्यवहार समाचारपत्रोंको प्रकाशनार्थ प्रेषित।

अप्रैल १३ : समाचारपत्रोंमें लिख कर भारतीयोंके आगमन तथा वासके सम्बन्धमें अपने विरुद्ध किये गये आरोपोंका प्रतिवाद किया।

मई ७: केन्द्रीय अकाल-पीड़ित सहायता कोष, कलकत्ताके अध्यक्षको सूचना दी कि नेटालके भारतीयोंने पीड़ितोंके सहायतार्थ १,५३९ पौंड १ शि० ९ पेन्स चन्दा इकट्ठा किया है।

मई १८: प्रिटोरियामें ब्रिटिश एजेंटसे भेंट की और लिखित दलील पेश की कि १८८५ के कानून ३ के अर्थ-सम्बन्धी परीक्षात्मक मुकदमेका खर्च ब्रिटिश सरकार बरदाश्त करे।

जून १: सूतक, विक्रेता-परवाना, प्रवासी प्रतिबन्धक और गैर-गिरमिटिया भारतीय संरक्षण विधेयकोंके कानून बन जानेके सम्बन्धमें हंटरको तार।

जून २२: महारानी विक्टोरियाकी रजत-जयन्तीके दिन भारतीय पुस्तकालयके उद्घाटनके अवसरपर भाषण दिया।

जुलाई २: चारों भारतीय-विरोधी कानूनोंके बारेमें श्री चेम्बरलेनको प्रार्थनापत्र।

जुलाई १०: ब्रिटेन तथा भारतके लोकसेवकोंको भारतीय-विरोधी कानूनोंके सम्बन्धमें परिपत्र भेजा।

सितम्बर ११: वर्जित प्रवासी होनेके आरोपमें जिन भारतीयोंपर मुकदमा चलाया गया था उनकी पैरवी की और उन्हें छुड़ा लिया।

सितम्बर १४: पारसी रुस्तमजीके दानसे और डा० बूथकी देखरेखमें डर्बनमें एक भारतीय अस्पतालकी स्थापना; जिसमें, बादमें, गांधीजी दो घण्टे रोज दवा-दारू देनेवाले सहायकका काम करते रहे।

सितम्बर १८: लंदनके औपनिवेशिक प्रधानमंत्री-सम्मेलनमें श्री चेम्बरलेनने जो भाषण दिया था उसके फलितार्थके सम्बन्धमें दादाभाई नौरोजी, विलियम वेडरबर्न और अन्य व्यक्तियोंको पत्र।

नवम्बर १३: *नेटाल मर्क्युरी* और औपनिवेशिक सचिवको पत्र लिखकर इस आरोपका प्रतिवाद किया कि प्रवासी-प्रतिबन्धक कानूनका उल्लंघन करनेके संगठित प्रयत्न किये जा रहे हैं।

नवम्बर १५: *नेटाल मर्क्युरी*को पत्र—उसी विषय पर।

नवम्बर १८: औपनिवेशिक सचिवको पत्र—उसी विषय पर।

दिसम्बर १: एक ईसाई मिशनकी सभामें सम्मिलित और एक पारसी दाता (रुस्तमजी ?) की ओरसे एक टंकीका दान।

टिप्पणियाँ

आर्कोनम्: दक्षिण रेलवेका एक जंक्शन स्टेशन।

आसन्सोल: पूर्वी भारतीय रेलवेका एक जंक्शन स्टेशन—कलकत्तेसे लगभग ७० मील।

ईस्ट लंदन: केप कालोनीका एक कस्बा। देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३९२।

एकाधिकार, एलिज़ाबेथ-कालीन: इन एकाधिकारोंका प्रचलन मोटे तौरपर इस खयालसे हुआ था कि देशकी उन्नतिके लिए उद्योगोंकी वृद्धि और विकासकी आवश्यकता है। इनके अनुसार, उद्योगपतियोंको अपने-अपने उद्योग बढ़ानेके लिए सरकारसे बिना ब्याज ऋण और अपने कामकी सारी उपज या कच्चा माल खरीद लेनेका एकाधिकार प्राप्त होता था। बदलेमें, सरकारको भी हक होता था कि वह उनका तैयार किया हुआ सारा माल खरीद ले। ये एकाधिकार इंग्लैंडमें रानी एलिज़ाबेथके कालमें प्रचलित थे।

एस्कम्ब, सर हैरी (१८३८–९९): नेटालके प्रमुख एडवोकेट और प्रधान-मन्त्री। देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३९०।

एस्टकोर्ट (या ईस्टकोर्ट): नेटालका एक कस्बा। देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३९०।

काठियावाड़: सौराष्ट्र; अब बम्बई राज्यका भाग।

क्रैंजक्लूफ़: डर्बनसे २३ मीलपर एक रेलवे स्टेशन।

गोखले, गोपाल कृष्ण (१८६६–१९१५): भारतके एक प्रतिष्ठित नेता और राजनीतिज्ञ। डेक्कन एजुकेशन सोसाइटीके फरग्युसन कालेजमें गणित, अंग्रेजी और राजनीतिके प्राध्यापक। सक्रिय राजनीतिमें प्रविष्ट, १८९०। भारतीय वित्त-व्यवस्थापर वेल्बी आयोगके सामने गवाही दी, १८९६। बम्बई विधानपरिषदके सदस्य चुने गये, १८९९। भारत सेवक समाज (सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी) की स्थापना और कांग्रेसके बनारस अधिवेशनके अध्यक्ष, १९०५। शाही विधान परिषदके सदस्य, १९०२ से १९१५ तक; इस हैसियतसे शिक्षा-सम्बन्धी मामलोंमें बहुत दिलचस्पी ली और प्राथमिक शिक्षा विधेयक (एलिमेंटरी एजुकेशन बिल) पेश किया; लोक-सेवाओं

सम्बन्धी शाही आयोगके सदस्य बने। दक्षिण आफ्रिकाके गिरमिटिया भारतीयोंके पक्षमें आन्दोलन किया और, गांधीजीके आमन्त्रणपर १९१२ में दक्षिण आफ्रिकाकी यात्रा की।

चार्ल्सटाउन: नेटालका एक कस्बा। देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३९२।

चेम्बरलेन, जोजेफ़ (१८३६–१९१४): ब्रिटेनके उपनिवेश-मन्त्री, १८९५–१९०२। देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३९२।

जेमिसनका हमला (जेमिसन रेड): १८९५ में ब्रिटिश साउथ आफ्रिका कम्पनीके प्रशासक डा० जेमिसनका केप कालोनीसे ट्रान्सवालपर हमला करके उसे हस्तगत कर लेनेका प्रयत्न, जो विफल कर दिया गया। परदेशियों (एटलॉण्डर्स) ने उस समय ट्रान्सवालमें बलवा करनेकी योजना बना रखी थी। डा० जेमिसनने यही मौका साधकर हमला किया था। परन्तु बलवा हुआ ही नहीं। जेमिसनको गिरफ्तार कर लिया गया और उसपर मुकदमा चलाकर उसे सजा दी गई। यह हमला और ब्रिटिश सरकार द्वारा इसका स्पष्ट प्रतिवाद न किया जाना आगे चलकर बोअर-युद्धका कारण बना।

डंडी: नेटालका कस्बा। देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३९२।

डर्बी, अर्ल आफ़ (१८२६–१८९३): ब्रिटिश पिअर, जिन्होंने भारतमन्त्रीकी हैसियतसे १८५८में भारतका शासन सम्राज्ञीके अधीन करनेका विधेयक मंजूर कराया था। १८८२ से १८८५ तक उपनिवेश-मन्त्री।

तिलक, बाल गंगाधर (१८५६–१९२०): भारतके महान राष्ट्रीय नेता, विद्वान और ग्रंथकार। साधारणत: "लोकमान्य" कहे जाते थे। डेक्कन एजुकेशन सोसाइटी, पूनाके एक संस्थापक। प्रभावशाली पत्रों *केसरी* और *मराठा*के प्रवर्तक। *केसरी*में लेख लिखकर सरकारकी आलोचना करनेके कारण ६ वर्षका कारावास-दण्ड भोगा। कांग्रेसमें "गरम दल" के नेता। "नरम दल" के साथ सूरतके झगड़ेके बाद १९१६ में फिर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसमें शामिल। होमरूल लीगकी स्थापना की और लखनऊके हिन्दू-मुस्लिम समझौतेको गढ़नेमें अग्रणी रहे। १९१९ के "भारत शासन विधान" के प्रति भारतीयोंकी प्रतिक्रियाके विषयमें ब्रिटिश लोकमतको शिक्षित करनेके लिए कांग्रेसके एक प्रतिनिधिकी हैसियतसे इंग्लैड गये। *गीता-रहस्य*, *दि ऑरिओन*, *दि आर्कटिक होम इन द वेदाज़* तथा अन्य ग्रंथोंके प्रणेता।

दादाभाई नौरोजी (१८२५–१९१७) : पथदर्शक भारतीय राजनीतिज्ञ; बहुधा "भारत राष्ट्र-पितामह" (दि ग्रैंड ओल्डमैन ऑफ़ इंडिया) कहे जाते हैं। १८८६, १८९३ और १९०६ में तीन बार कांग्रेसके अध्यक्ष चुने गये। १८९३ में ब्रिटिश संसदके सदस्य बने और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी ब्रिटिश समिति, लंदनके प्रमुख सदस्य रहे।

नट्सफर्ड लार्ड : ब्रिटेनके उपनिवेश-मन्त्री, १८८७–९२।

नागपुर : पहलेके मध्यप्रदेशकी, जिसका एक भाग अब बम्बई राज्यमें मिला दिया गया है, राजधानी।

फोक्सरस्ट : नेटालका एक कस्बा। देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३९३।

फ्राईहाइड : एक जिला, जो मूलतः उत्तर-पश्चिमी ज़ूलूलैंडका हिस्सा था परन्तु बादमें ट्रान्सवालमें मिला दिया गया। डंडीसे आनेवाली रेलवे लाइनका एक कस्बा।

बनर्जी, सर सुरेन्द्रनाथ (१८४८–१९२५) : भारतके एक प्रमुख राजनीतिज्ञ; देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३९३–४।

बाम्बे प्रेसिडेन्सी असोसिएशन : १८८५ में बम्बईमें स्थापित संस्था, जिसका उद्देश्य "सब उचित और वैध उपायोंसे लोकहितकी हिमायत और वृद्धि" करना था।

बिन्स, सर हेनरी (१८३७–१८९९) : नेटालके प्रमुख राजनीतिज्ञ और प्रधानमन्त्री; देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३९४।

ब्रिटिश समिति, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी, लंदन : सर विलियम वेडरबर्नकी अध्यक्षतामें १८८९ में संगठित। दादाभाई नौरोजी, डब्ल्यू० एस० केन, विलियम डिग्बी तथा जे० ई० एलिस इसके मूल सदस्यों में थे। इसका एक मुख्य लक्ष्य था : "ब्रिटिश मजदूर-वर्गको, जिसके हाथोंमें राजनीतिक सत्ता इतनी अधिक मात्रामें पहुँच गई है, उन कर्तव्योंके प्रति जाग्रत करना, जिनका इंग्लैण्ड भारतके प्रति ऋणी है।"

भाण्डारकर, डा० रामकृष्ण गोपाल (१८३७–१९२५) : प्राच्य-विद्याके अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त आचार्य। बम्बई विश्वविद्यालयके उपकुलपति; वाइसरायकी विधानपरिषदके नामजद सदस्य, १९०३; बम्बई विधान-

परिषदके सदस्य, १९०४–८; हिन्दुओंके सामाजिक तथा धार्मिक सुधार-सम्बन्धी आन्दोलनोंके नेता।

भावनगरी, सर मंचरजी मेरवानजी (१८५१–१९३३) : भारतीय पारसी बैरिस्टर, जो इंग्लैण्डके निवासी बन गये थे। यूनियनिस्ट दलकी ओर से दस वर्ष तक ब्रिटिश संसदके सदस्य रहे। इस हैसियतसे और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी लन्दन-स्थित ब्रिटिश समितिके सदस्यकी हैसियतसे इन्होंने दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंके कष्टोंके सम्बन्धमें ब्रिटिश लोकमतको शिक्षित करनेमें बहुत सहायता पहुँचाई।

***मद्रास टाइम्स* :** मद्रासका एक समाचारपत्र, जो बन्द हो गया। यह १८५८ में भी निकलता था।

मद्रास महाजन सभा : मद्रासके नागरिकोंकी एक प्रातिनिधिक सभा; १८८१ में स्थापित।

***मद्रास स्टैंडर्ड* :** सप्ताहमें तीन बार प्रकाशित होनेवाले पत्रके रूपमें १८७७ में स्थापित। १८९२ में दैनिक बना। १९१४ में श्रीमती एनी बेसेंटने ले लिया और उसका नाम बदल कर *न्यू इंडिया* रखा।

मालाबोक-युद्ध : उत्तरी ट्रान्सवालमें ट्रान्सवालकी सैनिक कार्रवाई (१८९४), जिसका उद्देश्य वहाँकी मालाबोक जातिको अधीन करना था। जातिका यह नाम उसके मुखियाके नामपर पड़ा है।

माशोनालैंड : दक्षिणी रोडेशियाका वह प्रदेश जिसमें सोना पाया जाता है।

मेटाबेले लैंड : दक्षिणी रोडेशियाका एक अन्य प्रदेश, जिसमें सोना पाया जाता है। यह 'मेटाबेले' जातिका निवास-स्थान था।

मेलमॉथ : जूलूलैंडकी एक बस्ती, और एक विभाग भी।

मेहता, सर फीरोजशाह (१८४५–१९१५) : भारतीय कांग्रेसके एक प्रमुख नेता; देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३९५।

राजकोट : सौराष्ट्रका एक भूतकालीन देशी राज्य। गांधी-कुटुम्बका एक-कालीन निवास-स्थान।

रानडे, महादेव गोविन्द (१८४२–१९०१) : एक यशस्वी भारतीय नेता, समाज-सुधारक और ग्रंथकार। न्याय-सम्बन्धी अनेक पदोंपर रहनेके बाद

आखिरमें, बम्बई उच्च न्यायालयके न्यायाधीश बनाये गये। बम्बई विधान-परिषदके सदस्य, १८८५–९३। अपने समयके समाज-सुधार आन्दोलनोंके नेता। *ब्रह्म-समाज*के समान *प्रार्थना-समाज* नामक धार्मिक संस्थाकी स्थापना की। सार्वजनिक सभा, पूनाकी स्थापनामें सहायक हुए और १८९५ तक उसका काम करते रहे। भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसके संस्थापकोंमें से एक।

राबिन्सन, सर हर्क्युलिस (१८२४–१८९७) : दक्षिण आफ्रिका स्थित उच्चायुक्त (हाई कमिश्नर), १८८०–१८८९। १८८४ के लंदन-समझौतेकी शर्तें तैयार करनेमें योग दिया। १८८५ में बेकवानालैंडमें बोअरोंका विद्रोह दबानेमें मदद की। १८८९ में अवसर ग्रहण किया। १८९६ में फिरसे दक्षिण आफ्रिकामें नियुक्त किये गये; परन्तु अस्वस्थताके कारण थोड़े दिनों बाद त्यागपत्र दे दिया।

रुस्तमजी, पारसी : नेटालके एक प्रमुख भारतीय व्यापारी। देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३९५।

लंदन-समझौता (लंडन कान्वेंशन) : ट्रान्सवालवासी प्रजाके नागरिक अधिकारोंके सम्बन्धमें बोअरों और अंग्रेजोंके बीच हुआ १८८४ का समझौता। देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३९५–९६।

लेडी स्मिथ : डर्बन से २०३ मीलपर नेटालका तीसरे नम्बरका सबसे बड़ा शहर।

वढवाण : काठियावाड़का एक रेलवे-जंकशन, राजकोटसे बम्बईके मार्गमें।

वाछा, सर दिनशा एदुलजी (१८४४–१९३६) : भारतके प्रमुख पारसी राजनीतिज्ञ, जो कांग्रेसकी स्थापनाके समयसे ही उससे सम्बद्ध थे और १९०१ में उसके कलकत्ता अधिवेशनके अध्यक्ष बनाये गये। वित्तीय विषयोंके अधिकारी पण्डित। वाइसरायकी विधानपरिषदके नामजद सदस्य।

वेडरबर्न, सर विलियम : भारतीय सिविल सर्विसके एक यशस्वी सदस्य। बादमें भारतीय राष्ट्रीय काग्रेससे सम्बन्ध जोड़ लिया। देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३९६।

सार्वजनिक सभा, पूना : रानडे तथा गणेश वासुदेव जोशी द्वारा १८७० में स्थापित। उस समय यह भारतकी एक महत्त्वपूर्ण राजनीतिक सभा थी।

हंटर, सर विलियम विलसन (१८४०–१९००) : भारतीय सिविल सर्विसके एक विशिष्ट सदस्य। लेखक और भारतीय मामलोंके अधिकारी विद्वान। देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३९६।

सांकेतिका